है, बल्कि इसलिए अच्छा लगता है कि इस विचार से हमे सात्वना मिलती है कि हम स्वय उस दुर्भाग्य के शिकार नही है।" अखबारो के मोटे-मोटे विज्ञापनपत्रो मे 'आश्चर्यजनक' शब्द से ज्यादा प्रयोग किसी अन्य विशेषण का नही होता और शायद वह इसलिए है कि 'आश्चर्यजनक' से बढकर लुभावना कोई अन्य विशेषण नही है। 'आश्चर्यजनक' शब्द मे अक्सर कष्ट या मानसिक आघात का तत्त्व भी निहित रहता है। 'ग्रैन्ड गिन्योल' जैसे भयकरतायुक्त नाटको को देखने के लिए आज भी मुग्ध दर्शक जुड जाते है। साथ ही यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि ऐसे उपन्यास अक्सर ऊचे दरजे के लेखको की रचनाए होती है जिनमे कष्टपूर्ण परिस्थितियो को आमोदपूर्ण और कष्टग्रस्त पात्रो को हास्यास्पद बना दिया जाता है। यह साफ है कि जिसे अकामात्मक सादवाद और मासोकवाद कहते है (जिसे जर्मन मे 'सादेनफ्रायदे' या 'कष्ट मे सुख' का नाम दिया जा सकता है) उसका कुछ तत्त्व अल्प मात्रा मे सामान्य जनता मे व्यापक रूप से पाया जाता है।

जब हम इन विचारो को ध्यान मे रखते है तो हमे यह मालूम होता है कि सादवादी सभी दशाओ मे निष्ठुरता की इच्छा से परिचालित क्यो नही होता। सादवादी का उद्देश्य तो भावना को जागरित करना और उसकी अनुभूति करना होता है, न कि कष्ट देना। उदाहरणार्थ यह बात बुद्धियुक्त आहतो के नात्युग्र सादवादी यानी सक्रिय सहयौन सुखदु खास्तित्व वाले कर्ता की दशा से देखी जा सकती है, जिसे पहले ही उद्धृत किया जा चुका है। वह लिखता है—"कोडे मारने को वास्तविक क्रिया से मै मुग्ध हो जाता हू। मेरी जरा भी यह इच्छा नही रहती कि मै स्त्री का अपमान किया करू। स्त्री को कष्ट का अनुभव होना जरूरी है, पर ऐसा अनुभव उसे सिर्फ कोडे लगाने की तेजी की अभिव्यक्ति के रूप मे ही होना चाहिए, कष्ट पहुचाने की महज प्रक्रिया से मुझे कोई आनन्द नही होता। इसके विपरीत उससे मुझे घृणा होती है। इस गडबडी के अलावा मुझे क्रूरता से बहुत घृणा है। अपनी जिन्दगी मे मैने सिर्फ एक ही जानवर को जान से मारा है और मै दु ख के साथ इस घटना को याद रखता हू।"

इस बात की सम्भावना है कि सहयौन सुखदु खास्तित्व मे हमारा ध्यान कष्ट के तत्त्व पर ही जम जाए क्योकि हम इस दशा मे निहित समस्त मानसिक लक्षणो को समझने मे असमर्थ रहते है। कल्पना कीजिए कि एक वाद्ययन्त्र अनुभूतिशील हो जाता है तो उस हालत मे यह कहना युक्तिसगत होगा कि वाद्य का अनुष्ठान कष्ट देना है, और निश्चित रूप से भविष्य मे ऐसे वैज्ञानिक और मनोविश्लेषक मिलेगे जो यह निष्कर्ष निकालेगे कि सगीत से प्राप्त होने वाला आनन्द कष्ट देने से प्राप्त होने वाला आनन्द है, और सगीत का भावनात्मक असर इस प्रकार

पहुचाए गए कष्ट के कारण है।

सहयौन सुखदु खास्तित्व के अन्तर्गत अस्वाभाविक यौन आवेग की कुछ सब से उत्कट अभिव्यक्तिया आती है। सादवाद के कारण कुछ अत्यन्त हिसात्मक दुराचार हो सकते है जो मानवस्वभाव के विरुद्ध है और मासोकवाद के कारण मानवीय प्रकृति का भद्दा से भद्दा अपमान हो सकता है। पर यह याद रखना जरूरी है कि दोनो ही स्वाभाविक मानवीय आवेगो पर आधारित है, पर वे उन प्रवृत्तियो के अन्तिम सीमान्त है जो अल्प मात्रा मे होने पर वैधजैविक क्षेत्र के अन्तर्गत माने जा सकते है।

सहयौन सुखदु खास्तित्व का स्वाभाविक सामान्य आधार जटिल और बहुमुखी है। इस सम्बन्ध मे विशेष रूप से दो बाते ऐसी है जिन्हे ध्यान मे रखना चाहिए—(१) कष्ट चाहे पहुचाया जाए या सहन किया जाए, पूर्वराग-प्रक्रिया की गौण उपज है, जो निम्नतर श्रेणी के जानवरो और मनुष्यो मे समान रूप से पाया जाता है। (२) कष्ट चाहे सहन किया जाए चाहे पहुचाया जाए, विशेषत जन्मजात अथवा वातावरण से प्राप्त स्नायविक शिथिल दशाओ मे स्नायुओ के लिए उत्तेजक है और यौन केन्द्रो पर उसका जोरदार असर होता है। यदि हम इन दो आधारभूत बातो को ध्यान मे रखे तो हमे सहयौन सुखदु खास्तित्व की प्रक्रिया के बहुरूपी यन्त्र को विशद रूप से समझने मे कठिनाई नही होती और हमे उनके मनोविज्ञान की चाभी मिल जाएगी। यौन आवेग का प्रत्येक सहयौन सुखदु खास्तित्व वाला रूप या तो पूर्वराग के किसी आदिम स्तर की अतिवृद्धि है (जो कभी-कभी पूर्वजो से आए हुए लक्षणो के रूप मे प्रकट होती है) या फिर वह उन प्रयत्नो को सूचित करती है जो शिथिल शरीर मे यौन स्फीति की स्थिति उत्पन्न करने के लिए कामोद्दीपक के रूप मे काम करते है।

सब तरह का प्रेम, जैसा कि प्राचीन अग्रेज लेखक राबर्ट बर्टन ने बहुत पहले कहा था, एक प्रकार की दासता ही है। प्रेमी अपनी प्रेमिका का सेवक होता है। उसे प्रेमिका की सेवा करने और उसकी कृपादृष्टि पाने के लिए सब तरह के खतरे उठाने, अनेक सकटो का मुकाबला करने तथा बहुत से बुरे लगने वाले कामो को करने के लिए तैयार रहना चाहिए। प्रेमी के उस दृष्टिकोण के प्रमाणो से रोमाटिक कविता भरी पडी है। हम आदिम अवस्थाओ की ओर, असभ्य समाजो के बीच, जितना ही पीछे जाते है उसमे उतना ही यह देखते है कि पूर्वराग मे प्रेमी की यह दासता और उन परीक्षाओ की कडाई जिनमे से उसे अपनी प्रेमिका की दयादृष्टि को पाने के लिए गुजरना पडता है, कुल मिलाकर शाब्दिक दासता के रूप मे स्पष्ट हो जाती है। जानवरो मे यह चीज उससे भी अधिक अपरिपक्व रूप मे देखी जाती है। मादा का

हृदय जीतने के लिए नर को अपनी शक्तियों का अधिक से अधिक जोरदार उपयोग करना पडता है और अक्सर वह प्रतिस्पर्धा मे अपने प्रतिद्वन्द्वी के मुकावले मे लहू-लुहान और विकलाग होकर लौटता है। समान रूप मे कष्ट सहना और कष्ट पहुचाना पूर्वराग का यदि आवश्यक नही तो आनुषगिक अग अवश्य है। जहा तक मादा का सवाल है, वह उसी प्रक्रिया मे या तो सहानुभूतिपूर्ण अथवा अन्योन्याश्रित प्रभावो द्वारा पृथक् न हो सकने योग्य रूप से उलझी रहती है। और यदि पूर्वराग की प्रक्रिया के दौरान मे मादा का प्रेमी मादा का गुलाम है और यदि वह प्रसन्नतापूर्वक अपने सफल और असफल प्रेमियो को उन कष्टो को उठाती हुई देख सकती है जिनका कारण वह स्वय है, तो अपनी वारी आने पर मादा भी उस कष्ट को सहन करने के लिए प्रस्तुत हो जाती है जो मैथुनिक प्रक्रिया मे निहित रहता है, और अपने साथी के तथा उसके वाद उसके सन्तान के अधीन हो जाती है। वहुत मे पक्षियो मे मैथुन का अवसर आने पर जब नर कामोन्माद की अवस्था मे पहुच जाता है और अपेक्षाकृत निष्क्रिय मादा को कष्ट सहना पडता है तो यही देखने मे आता है। इस प्रकार चैफिन्च नामक प्राणी कठोर और निष्ठुर प्रेमनिवेदक है, यद्यपि जव मादा आत्मसमर्पण करने के लिए प्रस्तुत होने लगती है तो वह शान्त और सहानुभूतिशील हो जाता है। प्रेम मे काटना-कटवाना भी एक ऐसा तरीका है जो जानवरो और मनुष्यो दोनो मे पाया जाता है और घोडे-गधे आदि मैथुन के पहले मादा को हलके से काटते है।

यह धारणा प्राचीन और वर्तमान दोनो ही युगो मे व्यापक रूप से प्रचलित रही है कि कष्ट पहुचाना प्रेमनिवेदन का एक लक्षण है। लूशियन एक स्त्री से यह कहलाते है—"जिसने अपनी प्रेमिका पर मुक्को की वौछार नही की और उसके बालो तथा उसके कपडो को नही फाडा, वह प्रेमिक क्या खाक है?" सर्वेन्टिस के 'रिन्कोनेते' और 'कोर्तादिल्लो' नामक उपन्यासो मे भी इसी धारणा का प्रतिपादन किया गया है कि एक पुरुष का अपनी प्रेमिका को मारना-पीटना उसके प्रेम का एक प्रशसित लक्षण है। और जेनेट की एक रोगिणी अपने पति के वारे मे कहती है—"वह यह नही जानता कि मुझे किस प्रकार थोडा सा कष्ट पहुचाया जाए। कोई भी स्त्री ऐसे पुरुष को प्यार नही कर सकती जो उसे जरा सा कष्ट न पहुचाए।" इसको उलटे ढग से मिलामा कान्ग्रेव के 'ससारचरित्र' मे कहते है—"एक व्यक्ति की शक्ति उसकी क्रूरता है।"

सहयौन सुखदु खास्तित्व की अभिव्यक्तिया सिर्फ पूर्वराग के स्वस्थ और स्वाभाविक अभिव्यक्तियो के पूर्वजानुग अतिरजन होने के अलावा भी कुछ और है। वे विशेषत अवयवो की दृष्टि से अशक्त शरीरो मे यौन आवेग को पुनरुत्तेजित करने

के सहजातजन्य प्रयत्न की अभिव्यक्ति है। पूर्वराग की आनुषगिक भावनाए जैसे क्रोध और भय स्वय यौन सक्रियता के लिए उत्तेजक है इस प्रकार एक बुझते हुए यौन आवेग को प्रवल बनाने के उद्देश्य से कृत्रिम रूप से गुस्सा या भय जागरित करना सम्भव है। इसे करने का सव से सुविधापूर्ण तरीका कष्ट वाली क्रिया है, यदि कष्ट पहुचाया जाए तो हम सादवाद मे पहुच जाते है, यदि कष्ट सहा जाए तो मासोक-वाद मे पहुच जाते है और यदि सिर्फ दर्शक के रूप मे देखा जाए तो हम एक ऐसी मध्य स्थिति मे रहते है जिसमे सहयौन सुखदु खास्तित्व वाले दर्शक की सहानुभूति के रुख के अनुसार सादवाद या मासोकवाद मे से किसी एक का पुट दर्शन की क्रिया पर रहता है। इस दृष्टि से सादवादी या मासोकवादी समान रूप से कष्ट को एक साधन के रूप मे काम मे लाते है, जिससे वे आदिम भावना के विशाल स्रोत मे से कुछ न कुछ निकाल लेते है और इस तरह अपने शिथिल यौन आवेग को शक्ति प्रदान करते है।

जव हम उन आधारो को समझ लेते है जिनपर सहयौन सुखदु खास्तित्व वाली विच्युतिया स्थित है तो हम दखते है कि क्रूरता के साथ उनका सम्वन्ध केवल आकस्मिक है, आवश्यक नही। सादवादी व्यक्ति को क्रूर वनने की इच्छा प्रेरित नही करती, चाहे उसका काम वास्तविक रूप मे कितना ही क्रूर क्यो न हो। वह स्वय कोडे मारने की अपनी भावना को जागरित करना चाहता है और ऐसा करने मे वह अनेक मामलो मे अपने शिकार की भी भावनाओ को जगा देता है। उसे सिर्फ इतना ही मालूम है कि इस कार्य को करने का सव से शक्तिशाली तरीका यही है कि अपनी प्रेमपात्री को कष्ट पहुचाया जाए। किन्तु अक्सर कर्ता की इच्छा यही रहती है कि पात्र इस कष्ट को आनन्द के रूप मे महसूस करे। यहा तक कि स्वस्थ प्रेम के क्षेत्र मे भी पुरुष उस स्त्री को जिसे वह प्यार करता है, हलका सा कष्ट अथवा परेशानी देना चाहता है और साथ ही हर समय इस वात के लिए व्यग्र रहता है कि स्त्री पहुचाई हुई परेशानी को पसन्द करे, यहा तक कि उसमे रस ले। साद-वादी उससे महज एक कदम और आगे वढ जाता है और (जैसा कि एक मामले मे, जिसका लेखा मौजूद है, हुआ था) लडकी को पिने चुभोता है और साथ ही यह आग्रह भी करता है कि लडकी के चेहरे पर मुस्कराहट नाचती रहे। उसकी इच्छा क्रूर होने की नही है। वह आनन्द देना ही अधिक पसन्द करता है, यद्यपि वह अपने शिकार के सिर्फ ऊपर से ही आनन्दित दिखलाई देने पर सन्तुष्ट हो जाता है। यहा तक कि सादवादी जब इतना आगे बढ जाता है कि वह अपने शिकार का खून तक कर देता है, तव भी वह हत्या करने की इच्छा से नही किन्तु खून वहाने की इच्छा से परिचालित होता है और इस प्रकार उस भावनात्मक उत्तेजना को प्राप्त कर

चाहता है जो वहते हुए खून के दृश्य से प्राय समस्त ससार मे पाई जाती है। लेप-मेन ने बडी बारीकी के साथ इसी बात को परिलक्षित किया है कि सादवादी ढग के अपराधो मे साधारण घाव गले और पेडू जैसे भागो मे पाए जाते है, जिनपर चोट करने पर अधिक से अधिक रक्तस्राव होता है।

इसी प्रकार मासोकवादी मे क्रूरता सहने की कोई इच्छा नही रहती। क्राफ्ट-एबिग, मोल और दूसरे लोग निष्क्रय सहयौन सुखदु खास्तित्व की जिस अल्प मात्रा को महज स्वस्थ अवस्था का एक उग्र रूप मानते है और जिसे यौन अधीनता-स्वीकृति की अवस्था कहते है उसमे गभीर हिसा की– चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक– जरूरत नही होती। इसमे तो सिर्फ प्रिय व्यक्ति के मन की तरगो और उसकी प्रभुता को गौरव के साथ स्वीकार कर लेना ही होता है। इस महत्त्वपूर्ण तथ्य के अलावा कि यौन अधीनता मे मैथुन के लिए स्वस्थ आवेग मौजूद रहता है और मासोकवाद मे उसका स्थान विकृत आवेग ले लेता है। यौन अधीनता और मासोकवाद के बीच कोई स्पष्ट सीमा-रेखा नही है और मासोकवादी मे जैसे उसे उसका वाछित दुर्व्यवहार मिलता है उसमे वही आनन्द और कुछ मामलो मे वही उल्लास कायम रहता है। इस दुर्व्यवहार मे वहुत से कार्यो की, जैसे वाधा जाना और वेडियो से जकडा जाना, कुचला जाना, थोडा-थोडा गला घोटवाना, प्रिय व्यक्ति द्वारा घृणित समझे जाने वाले तुच्छ कार्य करना, गालिया खाना आदि सम्मिलित है। ये कार्य वास्तविक हो सकते है या केवल उनका ढोग रचा जा सकता है। मासोकवादी के लिए ऐसे कार्य मैथुन के वरावर बन जाते है और अधिकाश मामलो मे क्रूरता का यहा तक कि कष्ट का विचार ही नही उठता। यदि हम इस बात को याद रखे तो वे विशद काल्पनिक अवस्थाए पूर्ण-तया अनावश्यक जान पडती है जिन्हे मासोकवाद की व्याख्या करने के लिए कुछ मनोवैज्ञानिको ने (यहा तक कि फ्रायड ने भी) बडे परिश्रम से चतुराई के साथ गढा है।

मासोकवादी की अभिव्यक्ति सामाजिक दृष्टि से वहुत ही कम महत्त्व रखती है और उनसे समाज के लिए अपेक्षाकृत बहुत ही कम खतरे है। इस प्रकार के सह-यौन सुखदु खास्तित्व वाले उदाहरण सभ्यता के इतिहास मे बहुत पहले से मिलते है, तो भी जब तक क्राफ्ट एबिग ने अपने ग्रन्थ 'साइकोपेथिया सेक्चुआलिस' मे इस दशा के विशद लक्षणो की बहुत प्रमाणित व्याख्या नही की, तब तक मासोकवाद को एक निश्चित विपरीतता नही माना गया। सादवाद का सामाजिक और चिकित्सा-शास्त्र-सम्बन्धी कानूनी महत्त्व बिलकुल अलग किस्म का है, यद्यपि जैविक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह मासोकवाद के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। जहा एक ओर प्रेमावेश मे कारखाना जैसी निर्दोष और स्वस्थ अभिव्यक्ति आती है, वही

दूसरी ओर उसके अन्तर्गत दशाओ के प्रकार सब से गम्भीर और समाज-विरोधी कार्यो तक भी प्रसारित रहते है, जैसा कि हत्यारे जैक के मामले मे देखा जाता है। यह बात अवश्य है कि शेषोक्त दशाए एक ऐसे लगभग साधारण वर्ग की उग्रतम अवस्थाए है जिनमे मैथुनिक उद्देश्य से साथी को घायल किया जाता है। पर ऐसी बात नही है कि हर हालत मे उसका खून ही किया जाए (लाकासान्यि ने इस वर्ग की दशाओ का विशेष अध्ययन किया था)। ऐसी दशाओ के एक दूसरे महत्त्वपूर्ण वर्ग मे स्कूलो के शिक्षक-शिक्षिकाए तथा बालको की देख-रेख करने वाले दूसरे लोग और नौकरानिया सादवादी उद्देश्यो से प्रेरित होकर बच्चो को कष्ट देती है।

सादवाद स्त्री और पुरुष दोनो मे अभिव्यक्त होता है। मासोकवाद विशेषकर पुरुषो मे अधिक पाया जाता है। यह कुछ तो इसलिए हो सकता है कि स्त्रियो मे मासोकवाद का प्रारम्भिक सोपान अर्थात् एक सीमा तक यौन अधीनता प्राय स्वस्थ है और कुछ इसलिए कि (जैसा कि मोल ने बतलाया था) स्त्रियो को उसकी जरूरत नही रहती क्योकि वे सामान्यत यौन कार्य मे अपेक्षाकृत निष्क्रिय रहती है। बात यह है कि मासोकवाद का प्रयोग शिथिल पुस्त्व के बदले मे अन्य कुछ पाने के लिए या कोई उद्दीपन प्राप्त करने के लिए होता है।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, सादवाद और मासोकवाद के अन्तर्गत ही सहयौन सुखदु खास्तित्व की समस्त अभिव्यक्तिया नही आ जाती। व्यापक अर्थ मे सहयौन सुखदु खास्तित्व कामात्मक प्रतीकवाद का एक बडा उपविभाग है और उसमे वे सब मामले समा जाते है जिनमे यौन आनन्द सक्रिय रूप से अथवा निष्क्रिय रूप से कष्ट, क्रोध, भय, व्यग्रता, मानसिक आघात, इच्छा-निरोध, अधीनता, तिरस्कार और सम्बद्ध मानसिक दशाओ से जुडा रहता है। चाहे यह सयोग वास्तविक हो या दिखावटी। कारण यह है कि इन सब दशाओ मे कर्ता का उद्देश्य आदिम भावना के विशाल भडार से सहायता लेना है और इसका उपयोग वह यौन आवेग को सबल बनाने के लिए कर सकता है। यही वह तरीका है जिससे कोडे मारना (चाहे ऐसा किया जाए, सहन किया जाए, देखा जाए अथवा उसके सम्बन्ध मे सोचा जाए) कुछ लोगो मे प्राय बचपन से ही यौन उत्तेजक के रूप मे कार्य कर सकता है। अधिकाश मामलो मे शारीरिक और मानसिक ये दोनो तत्त्व प्रभाव उत्पन्न करते है और इस प्रकार सहयौन सुखदु खास्तित्व वाले मामलो का एक विस्तृत और महत्त्वपूर्ण वर्ग बन जाता है। अन्य मामलो मे विविध घटनाए, जिन्हे देखने मात्र से ही आकस्मिक भावनात्मक आघात लगता है, जैसे भूकम्प या साडो की लडाई या रिश्तेदारो की शवयात्रा, यहा तक कि उनकी मृत्यु मैथुनिक उद्दीपन का कार्य करती है। यह उद्देश्य सादवादी या मासोकवादी रुख के अलावा भी कुछ और हो सकता है।

व्यापक रूप से देखने पर सहयौन सुखदु खास्तित्व का क्षेत्र इस तरह वहुत विशाल है। इसके अलावा इन दशाओ के समूह ऐसे भी है जो इस विच्युति के सीमान्त पर स्थित है, यद्यपि इन दशाओ का शायद अधिक उपयुक्त ढग से कामात्मक फेटिशवाद के साथ वर्गीकरण किया जा सकता है। गार्नियर ने कुछ-कुछ सादवादी-फेटिशवादी दशाओ का एक समूह खडा करने की कोशिश की थी, पर जो दशा उन्होने सामने रखी उससे उनका तर्क सिद्ध नही हुआ क्योकि वह दशा पैर के प्रतीक रूप मे बन जाने के वर्ग की थी। यद्यपि एब्राहम घटती हुई कामात्मक सक्रियता के तत्त्व को स्वीकार करते है, तो भी वे यह नही मानते कि यह जरूरी है कि यही तथ्य प्राथमिक हो। अवश्य वे यह मानते है कि मौलिक रूप से तगडी जिजीविषा के दमित या पक्षाघातग्रस्त हो जाने से भी ऐसा हो सकता है। उन्होने फ्रायड के इस सुझाव का उल्लेख किया कि शरीर की महको से होने वाले कामात्मक सुख तथा मूल मे कामात्मक सुखवोध भी पैर के प्रतीक बन जाने के कारणस्वरूप हो सकता है। ये तत्त्व वाद को चलकर सौन्दर्य-विरोधी होने के कारण पीछे हट जाते है, पर दर्शनानन्द रह जाता है।

सहयौन सुखदु खास्तित्व और फेटिशवाद के योग को कार्सेट[1] फेटिशवाद का नाम दिया गया है, जो क्वचित् ही पाया जाता है। यहा स्त्री की कडी चुस्त वाडिस एक प्रकार का कामात्मक प्रतीक बन जाती है, पर उसका आकर्षण दवाव-सम्वन्धी अनुभूतियो और बन्धनो के आकर्षण से सम्बद्ध रहता है। कार्ल एब्राहम ने २२ वर्ष के एक पुरुष विद्यार्थी की अपेक्षाकृत जटिल दशा की विशद व्याख्या की है। इस व्यक्ति मे पैर-सम्बन्धी फेटिशवाद बाडिस-सम्बन्धी फेटिशवाद, जकडने वाले दवाव के प्रति आकर्षण और शरीर की महको से उत्तेजना होने की विच्युति यानी शरीर की अनुकूल महको के प्रति प्रेम, ये सब दशाए एकसाथ मौजूद थी। इनमे से अन्तिम दशा, शरीर की महक से होने वाली कामात्मक उत्तेजना की विच्युति को मूल अभिव्यक्ति माना गया और उसका सम्बन्ध कर्ता की मा से स्थापित किया गया। इस व्यक्ति मे मलद्वार तथा मूत्रप्रणाली द्वारा कामात्मक उत्तेजना होने की दशाए भी मौजूद थी। जिस लडकी की दशा का पहले उल्लेख किया जा चुका है, उस लडकी के समान वर्तमान कर्ता भी बचपन मे बैठकर एडियो से मलद्वार को दबाता था। उसमे स्त्री बनने की प्रवृत्ति भी मौजूद थी। वह अपने-आपको फीतो से कसने और ऊची एडी के असुविधाजनक जूतो के पहनने के उद्देश्य से ही स्त्री होने की इच्छा करता था। कर्ता ने यौवनारम्भ के समय अपने-आपको अपनी मा

---

१. कार्सेट —स्त्रियों की भीतरी बाडिस।

की एक पुरानी वाडिस से बाधना शुरू कर दिया था। ऐसा कोई भी आकस्मिक सयोग या घटना नही थी जिससे इन फेटिशवाद की दशाओ की व्याख्या की जा सके।

शवो (मुर्दो) के प्रति कामात्मक आकर्षण एक अन्य लक्षण है जिसे अक्सर सादवाद के अन्तर्गत शामिल कर लिया जाता है। ऐसी दशाओ मे निरवच्छिन्न अर्थ मे न तो कष्ट पहुचाया जाता है और न कष्ट सहा ही जाता है। इसलिए यहा सादवाद या मासोकवाद की दशाए मौजूद होने का प्रश्न ही नही उठता। पर जहा मुर्दा शरीर के साथ सम्पर्क होने वाले आकस्मिक भावात्मक आघात को कामात्मक उत्तेजना का कारण वतलाया जाता है, वहा ये सव दशाए सहयौन सुख-दु खास्तित्व की व्यापक परिभाषा के अन्तर्गत आ जाती है। किसी अवसर पर अधिक उपयुक्तता के साथ उन्हे कामात्मक फेटिशवाद वर्ग के अन्तर्गत आने वाली दशाए भी कहा जा सकता है। जो भी हो, इलाज की दृष्टि से हम जव ऐसी दशाओ की चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से छानवीन करते है तो हम सामान्यत ऐसे दशा-गस्त लोगो को बहुत वडे अश मे मनोरोगग्रस्त पाते है या उनमे मानसिक कम-जोरी रहती है। वे अक्सर मन्दवुद्धि, अल्प-अनुभूतिशील और अक्सर जडीभूत होते है। जैसा कि एपोलार ने वैम्पायर द मुई नामक इस दशा के विशेष प्रकार मे वतलाया है। वे ऐसे पुरुष होते है जिन्हे स्त्रिया ठुकरा देती है और उनका मुर्दो के पास जाना प्राय एक प्रकार का हस्तमथुन है या किसी भी परिस्थिति मे उसकी तुलना जानवरो के साथ व्यभिचार करने की विच्युति से की जा सकती है। ऐसी दशाओ को जिनमे मुर्दो के साथ सिर्फ दुर्व्यवहार ही नही किया जाता, वल्कि उनका अग-भग भी कर दिया जाता है (जैसे सार्जेन्ट वर्ट्रेन्ड के मामले मे हुआ था)। कभी-कभी शव को कष्ट देने की विच्युति को शवमर्षण सादवाद का नाम दिया जाता है। अवश्य ही यहा सकुचित अर्थ मे वास्तविक सादवाद की दशा नही है, वर्ट्रेन्ड ने इसकी शुरुआत इस कल्पना से की कि वह स्त्रियो के साथ दुर्व्यवहार कर रहा है। वाद को वह कल्पना करने लगा कि स्त्रिया मुर्दा थी। इसलिए उसके भावना-त्मक विकास मे सादवादयुक्त विचार तो कार्यमात्र थे, न कि कारण। वात यह है कि हर हालत मे उसका लक्ष्य क्रूरता करना नही था। उसका लक्ष्य तो हमेशा प्रवल भावना को जगाना था। ऐसी दशाओ मे अंग-भग सिर्फ भावनात्मक उत्तेजना को वढाने के लिए किया जाता है और ऐसी दशाए वहुत ही असामान्य और अस्वा-भाविक होती है।

पहले कुछ लोगो का (जैसे क्राफ्ट एबिग और लेपमान का) विचार था कि मानसिक रूप से स्वस्थ वृद्ध पुरुषो द्वारा बच्चो के प्रति जो अपराध किए जाते है वे अपराध सिर्फ स्वाभाविक यौन सम्बन्धो से परितोप होने के कारण होते है, पर यह कथन सन्दिग्ध है । हिर्शफेल्ड को अपने दीर्घ और व्यापक डाक्टरी अनुभव के दौरान मे बच्चो के प्रति यौन अपराध करने वाला एक भी व्यक्ति ऐसा नही मिला जो मानसिक रूप से स्वस्थ हो। ऐसी दशाओ मे हमेशा सावधानी के साथ मनश्चिकित्सा के ढग पर छानबीन करनी चाहिए ।

सहायक पुस्तक-सूची

क्राफ्ट एबिग—Psychopathia Sexualis
थायनाट तथा वेइसे—Medico-Legal Aspects of Moral offences

यौन विच्युतियों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण

रेमी द गुरमो ने अपनी पुस्तक 'फिजिक दलामूर' (प्रेम का शरीरशास्त्र) मे लिखा है—"प्रेम का निदानशास्त्र एक नरक है, जिसके दरवाजे कभी नही खोलने चाहिए ।" इस प्रकार की हास्यास्पद नाटकीयतापूर्ण घोषणा प्रेम पर विचार करने वाले किसी ऐसे दार्शनिक द्वारा ही की जा सकती थी जो वैज्ञानिक प्रशिक्षण से कोरा रहा है, भले ही अपने क्षेत्र मे वह कितना ही प्रशसनीय क्यो न हो। और यह बडे आश्चर्य की बात है कि वान् डि वेल्डे जैसे स्त्रीरोगविशेषज्ञ ने उसका समर्थन कैसे कर दिया। जैसा कि अरस्तू ने कहा था, अलकारशास्त्र का वेत्ता होना एक बहुत बडी बात है । और इसलिए कहा जा सकता है कि 'नरक का द्वार' वाला रूपक गलत है । इस स्थान पर हम दान्ते द्वारा लिखित-दिव्य सुखान्त नाटक जैसे किसी आदर्शवादी नाटक के रगमच पर नही है । यहा तो हम जीवविज्ञान के क्षेत्र मे है जहा किसी दरवाजे को खोले बगैर ही शरीरशास्त्र की बाते निरन्तर रोगनिदानशास्त्र मे जाकर अदृश्य रूप से उसमे घुलती-मिलती रहती है । रोगनिदानशास्त्र के तत्त्वो को पहले से ही सम्बद्ध शरीरशास्त्र के तत्त्वों मे पाया जा सकता है और रोगनिदानात्मक प्रक्रियाए भी शरीर-विज्ञान के नियमों का अनुसरण करती है। जब हम यथेष्ट सावधानी के साथ जाच करते है तो देखते है कि प्रत्येक सहीदिमाग पुरुष कुछ, विकृतमस्तिष्क-सुलभ तत्त्वो को व्यक्त करता है और विकृतमस्तिष्क पुरुष सहीदिमाग पुरुष के किसी पहलू को सिर्फ

अव्यवस्थित ढग से या बढा-चढाकर व्यक्त करता है। सहीदिमाग और विकृत-मस्तिष्क व्यक्तियो को एकसाथ लेने पर उन्हे एक ही ग्राफ रेखा पर अलग-अलग अशो के प्रकारभेदो के रूप मे दर्शाया जा सकता है। प्यार मे जो स्त्री एकाएक कह उठती है, "मैं तुम्हे खा सकती हू", उसका सम्बन्ध शृखलावद्ध रूप से 'हत्यारे जैक' के साथ जोडा जा सकता है। यह ठीक है कि इस शृखला की कडिया अपने-आपमे वहुत छोटी है। हम सब मे न्यूनाधिक विकसित रूप मे अनाचार के कीटाणु विद्यमान है।

अतएव कोई यौन कार्य इसलिए गर्हित नही बन जाता कि वह अस्वाभाविक है। यह दृष्टिकोण किसी समय प्रचलित था। क्या स्वाभाविक है, इसकी एक सकुचित धारणा मानी जाती थी और इस धारणा के अलावा हरएक चीज अस्वा-भाविक थी, और उसके लिए यदि सजा नही तो गाली-गलौज अवश्य ही मिलती थी, यहा तक कि कडी सजा भी दी जाती थी क्योकि ऐसे कार्य को शायद अपराध और प्राय निश्चित रूप से एक पाप तो माना ही जाता था।

चूकि क्या स्वाभाविक है और क्या नही, इस सम्बन्ध मे अब हमारा ज्ञान वढ गया है और हमे प्रकृति मे अनगिनत प्रकारभेदो को स्वीकार करना पड रहा है। इससे एक अलग प्रकार की धारणा वढ रही है। हम देखते है कि विवेकपूर्वक इनका फर्क समझना जरूरी है। अव प्रश्न यह नही रह गया है कि क्या अमुक कार्य अस्वा-भाविक है, वल्कि प्रश्न यह है कि क्या अमुक कार्य हानिकारक है ? समाज को यौन जोडो की विविधताओ से सम्पर्क नही है, किन्तु यौन कार्य के उन प्रकार-भेदो को निश्चित करने की चिन्ता है जो हानिकारक है। यह प्रश्न कुछ महत्त्व-पूर्ण है क्योकि तजुर्वेकार डाक्टरो का यह विश्वास है कि पिछले कुछ वर्षो से 'विपरीतताए' (जैसा कि यौन कार्य के कुछ तरीको को अभी तक अक्सर कहा जाता है) अपेक्षाकृत अधिक सामान्य हो गई है। बहुत से कारणो से यह परिस्थिति उत्पन्न हुई होगी। कुछ अश मे इस वात को वडा महत्त्व दिया जाता है कि वेश्या-गमन मे कमी हो गई है और लोगो मे वेश्याओ के साथ सम्बन्ध करने के प्रति विरक्ति बढ गई है। साथ ही लोगो की परितृप्ति अब वेश्याओ के वदले ऐसी स्त्रियो से होती है जो नैतिक सिद्धान्तो के कारण या गर्भ रह जाने के भय के कारण वास्तविक मैथुन नही करने देती।

इसके बाद सम्भवत हमे सभ्यता की प्रगति से परिमार्जन की मात्रा मे होने वाली वृद्धि पर भी विचार करना होगा, जिससे प्रेमियो को उन तरीको से आनन्द मिलता है जो आदिम लोगो को अथवा तीव्र प्रेम के अभाव मे स्वय इन प्रेमियो को घृणित दिखलाई देगे। अवश्य ऐसे भी लोग है जिन्हे यौन भावना की किसी

गहरी विच्युति के कारण जैसे यौन विपरीतता या मासोकवाद या फेटिशवाद के कारण कामात्मक परितृप्ति की सम्भावना तभी होती है जब कि यौन उत्तेजना किसी विकृत प्रणाली मे होती है। यहा भी विपरीतता अपने चरम बिन्दु पर नही पहुचती और वोल्वार्स्ट के शब्दो मे यह अक्सर सहीदिमाग व्यक्तियो के जीवन मे स्वाभाविक घटक के रूप मे पाई जाती है। फ्रायड ने सम्भवत सच ही कहा है कि ऐसा कोई भी स्वस्थ व्यक्ति नही है जिसमे विपरीतता के ऐसे तत्त्व कभी न कभी पाए न जाए।

धीरे-धीरे आज हम इस निष्कर्ष पर पहुच रहे हैं कि यौन आवेग की अस्वाभाविक परितृप्ति की दशा मे किसी प्रकार की भर्त्सना अथवा दो ऐसी दशाओ के अतिरिक्त हस्तक्षेप या निन्दा करने की जरूरत नही है, चाहे यह दशा कितनी ही असाधारण यहा तक कि घृणात्मक क्यो न दिखलाई देती हो। ये दो दशाए इस प्रकार है। एक तो वह दशा जिसमे चिकित्साशास्त्र का विरुद्धाचरण किया जाता है और दूसरी वह जिसमे कि कानून तोडा जाता है। इसका अर्थ यह है कि पहली दशा मे कर्ता अपने स्वास्थ्य को नुकसान पहुचाता है और इस दशा मे उसे डाक्टरी चिकित्सा या मनश्चिकित्सक द्वारा चिकित्सा की जरूरत है। दूसरी दशा मे वह अपने साथी या साथिन या किसी अन्य व्यक्ति के स्वास्थ्य या अधिकारो को हानि पहुचा सकता है और इस दशा मे कानून को हस्तक्षेप करने का अधिकार है। ऐसे बहुत से तरीके है जिनसे ऐसा हो सकता है। साथ ही ऐसे भी बहुत से तरीके है जिनसे होने वाले नुकसान को ध्यान मे रखकर कानूनी कार्यवाही की जाती है, या कुछ लोगो के मत के अनुसार कार्यवाही की जानी चाहिए। किसी नाबालिग को फुसलाना, व्यभिचार द्वारा दाम्पत्य-अधिकारो का हनन, मैथुन द्वारा किसी रोग का सक्रमण, दृश्यगत रूप से यौन परितृप्ति के लिए क्रूरता करना (भले ही कर्ता का उद्देश्य ऐसा न करना रहा हो) आदि इस प्रकार की हानिया है। इनमे से बहुत से प्रश्नो पर मतैक्य है। सिर्फ समलैगिक अप्राकृतिक व्यभिचार की अभिव्यक्तियो का मामला ही एक ऐसा मामला है जिसपर अभी तक व्यापक मतभेद है और अलग-अलग देशो मे उसके प्रति अलग-अलग कार्यवाही की जाती है। इस विषय पर हम अगले अध्याय मे विस्तार से विचार करेगे।

समलैगिक मैथुन हर जगह और हमेशा मौजूद रहा है। यह दशा प्रकारान्तरो की स्वाभाविक और अपरिहार्य परिधि के भीतर ही आने वाली अन्तर्यौन दशाओ मे से एक है। इस तथ्य के अलावा और इस तथ्य के अलावा भी कि समलैगिकता बाल्यावस्था मे लेगिक प्रभेद के प्रति उदासीनता पर आधारित होती है। कुछ देशो मे और कुछ सस्कृतियो मे समलैगिक व्यभिचार एक फैशन के रूप मे लोकप्रिय रहा

है या एक आदर्श के रूप मे वाञ्छनीय रहा है। वह सिर्फ कानून ही बनाने से, चाहे वे कानून कितने ही कडे क्यो न हो, या सामाजिक तिरस्कार या डर से निर्मूल नही किया जा सकता। ईसाई-धर्म के प्रचलन की शुरू की सदियो मे जब कान्स्टेन्टाइन के ईसाई होने के साथ राज्य पर नए धर्म का आधिपत्य हो गया तो समलैगिक मैथुन के विरुद्ध बहुत सी दिल दहलाने वाली घोषणाए की गई और फ्रास मे क्रान्ति के ऐन पहले तक समलैगिक व्यभिचार करने वाले पुरुषो को कभी-कभी जिन्दा जला दिया जाता था। जो भी हो, क्रान्ति के बाद नेपोलियन-रचित सहिता के साथ-साथ वयस्को मे सहमति से छिपकर निजी स्थान मे समलैगिक मैथुनिक कार्यो को कानूनी तौर पर दण्डनीय अपराध मानना बन्द हो गया, यद्यपि ऐसे कार्यो को नाबालिगो के साथ या सामाजिक स्थानो मे करने पर कडी सजा दी जाती थी। अब उन सब देशो मे उसी नियम का अनुसरण किया जाता है जिनपर नेपोलियन-सहिता का प्रभाव पडा है। जो भी हो, अन्य देशो मे विशेषकर इग्लैड और अमेरिका मे प्राचीन कठोर दृष्टिकोण अभी तक मौजूद है और पुराने कानूनो मे सुधार करना मुश्किल दिखलाई पडता है। इन देशो मे अभी तक सिर्फ इतना ही किया गया है कि कुछ हद तक इन कानूनो का पालन किया जाए।

समाज मे अपेक्षाकृत प्रबुद्ध दृष्टिकोण के विकास की हम आशा कर सकते है। उससे आगे चलकर बहुत-कुछ होने को बाकी है। यौन कार्य और यौन रुख जब तक सामाजिक अपराध नही बन जाते, उन्हे निबटाना किसी अन्य व्यक्ति का नही बल्कि सम्बन्धित व्यक्तियो का कार्य है। हमे यह याद रखना चाहिए कि ऐसे कार्य और रुख एक बडी हद तक जन्मजात बनावट के परिणाम होते है। जब डाक्टर के सामने तथाकथित अथवा जन्मजात दिखलाई देने वाली यौन विच्युतिया आती है तो एक कठिन समस्या पैदा हो जाती है। क्या डाक्टर उस मरीज को 'स्वस्थ' बनाने की कोशिश करे, जबकि मरीज के लिए 'स्वस्थता' की दशा वही है जो सच्चे रूप से स्वस्थ व्यक्तियो के लिए अस्वाभाविक और विपरीत होगी। मै वोल्वार्स्ट के इस कथन से सहमत हू कि—"यदि हम इस सिद्धान्त पर अमल करे कि ऐसी कोई भी यौन विच्युति कर्ता के लिए स्वस्थ और स्वाभाविक है जिससे उस व्यक्ति को किसी अन्य व्यक्ति को हानि पहुचाए बिना परितृप्ति प्राप्त हो जाती है तो हम सम्भवत ठीक रास्ते पर पहुच जाए।" यद्यपि यहा इतना और जोड देना चाहिए कि यदि किसी अन्य व्यक्ति को इस विच्युति से हानि पहुचती है तो हमे अपने इस दृष्टि-कोण मे कुछ सशोधन करना होगा। हमे व्यर्थ मे कठोर दमन की प्रक्रिया अपनाने की जरूरत नही है। तथापि हमे उन लोगो को ऐसी विच्युतियो के डाक्टरी इलाज यहा तक कि चीर-फाड द्वारा इलाज की भी सुविधाए देनी चाहिए जिन्हे व्यक्ति

भारी बोझ समझते हैं, चाहे ये विच्युतिया जन्मजात हो या अन्यथा हो। हमारा उद्देश्य न्यायपरक होने के साथ ही सहानुभूतिशील भी होना चाहिए।

यौन मामलो मे जो अपेक्षाकृत सहनशीलता वाञ्छनीय दिखलाई देती है उससे सिर्फ उन लोगो के प्रति *अन्याय का ही सम्बन्ध नही है* जो औसत से कुछ हटकर चलने वाले हैं वल्कि सम्पूर्ण सामाजिक ढाचे मे उसका असर पडता है और नैतिक प्रणाली को एक नई स्थिरता प्राप्त होती है। यौन विविधताओ को अनाचार या अपराध मानकर कार्यवाही करना वेकार तो है ही, साथ ही उससे इन कार्यवाहियो की सफलताओ के कारण सामाजिक प्रणाली पर से लोगो का विश्वास उठता जाता है और विविधताओ का प्रचलन और वढ जाता है क्योकि ऐसे मामलो मे, जैसा कि हम जानते हैं (शराव के सम्वन्ध मे अव इस वात को अच्छी तरह मान लिया गया है), निषेध उत्तेजना का कार्य करते हैं। यूनान मे यौन अभिव्यक्तियो के इतिहासज्ञ लिख्त ने ग्रीस मे यौन विपरीतताओ की विरलता को दिखलाया है। याद रहे कि वे समलैंगिकता को विकृति नही, वल्कि विवाह के साधारण पूरक के रूप मे मानते हैं। वे वतलाते हैं कि इसका कारण यह था कि यूनानी समाज के लिए यौन विषय (सिवाय उन मामलो के जिनमे वच्चे सम्पृक्त होते थे अथवा हिसा निहित होती थी) नैतिकता के अन्तर्गत नही थे। नैतिकता का सम्वन्ध तो अन्याय, राज्य के विरुद्ध अपराध तथा अन्य अपराधो से था। जहा सामान्य सम्वन्ध वन्धनरहित होते हैं, वनावटी तौर पर प्रकारभेद नही पनपते और यदि ऐसे प्रकारभेद होते भी हैं तो वे किसीका ध्यान आकर्षित नही करते। वोल्वार्स्ट कहते हैं—"यह गोरखधन्धा जैसा दिखलाई दे सकता है, पर यह सच है कि अमेरिकन समाजो मे यौन विपरीतता का प्रसार एक बडी सीमा तक नैतिक सस्थाओ द्वारा और उनकी सहायता से पनपा है। अवश्य ही ऐसा उनके अनजान मे और उनकी मूर्खता से हुआ है।

अब हम यूनानी नैतिकता के युग मे लौटने की आशा या इच्छा नही कर सकते। दोनों ही हालतो मे समान रूप से सुन्दर शरीर और आत्मा वाला आदर्श हमारी पहुच से बाहर हो सकता है। पर इसमे सन्देह नही कि धीरे-धीरे हम झूठी धारणाओ और कानूनी सामाजिक निषेध के लिए होने वाले दकियानूसी और कठोर प्रयासो का ध्वस कर डालेगे। ऐसा करके हम अपने आध्यात्मिक वातावरण को शुद्ध करेगे और ऐसे नुस्खो को दूर कर जो सिर्फ कमजोरी के स्रोत थे, अपने आचारशास्त्र को सशक्त वनाएगे।

सहायक पुस्तक-सूची

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex, Vol II 'Sexual Inversion'

डब्ल्यू मैक्डूगल—Outline of Abnormal Psychology.

ए० एल० वोल्बार्स्ट—'Sexual Perversions Their Medical and Social Implications Medical Journal and Record, July 1931

हैस लिख्त—Sexual life in Ancient Greece

अध्याय | ५

समलैंगिक मैथुन

यौन विपरीतता

जब यौन आवेग अपने ही लिंग के व्यक्ति की ओर परिचालित होता है तो हमरा साबका एक ऐसी गुमराही से पडता है जिसे यौन विपरीतता, प्रतिकूल स्वभावयुक्त यौन भावना, यूरेनवाद या अधिक सामान्य तौर पर समलैंगिकता कहा जाता है। यह दशा सामान्य और स्वाभाविक भिन्नलैंगिक यौन सम्बन्धो से बिलकुल उलटी है। इस प्रकार की मैथुनिक गडबडी के समस्त रूपो के लिए समलैंगिकता सब से उपयुक्त शब्द है, जो सामान्य, स्वाभाविक भिन्नलैंगिक यौन सम्बन्धो से बिलकुल अलग है। साथ ही दृश्यमान जन्मजात और निश्चित रूपो के लिए यौन विपरीतता सब से अच्छा शब्द है। यह विच्युति अन्य समस्त यौन विच्युतियो से भिन्न है क्योकि वह एक ऐसे आवेग को सामने रखती है जो साधारण और स्वाभाविक पात्र या लक्ष्य से हटकर पूर्ण और मूलभूत रूप से एक ऐसे पात्र मे स्थानान्तरित हो जाता है जो अपने लिंग का होता है। यह पात्र या लक्ष्य स्वाभाविक अवस्था मे यौन वासना के क्षेत्र के बाहर रहता है। फिर भी उसमे वे सब गुण और लक्षण मौजूद रहते है जो मानवीय स्नेह के प्रति आवेदन करते है और अन्य मानसिक गडबडियो की अपेक्षा इस गडबडी से अधिक परितृप्ति मिलती है। सम्भवत यही विशेषता इस आवेग को इतना महत्त्वपूर्ण बना देती है। यह महत्त्व तीन प्रकार से प्रकट होता है—(१) इस आवेग का व्यापक प्रचार और संस्कृति के विभिन्न युगो मे इसे प्राप्त बडा हिस्सा, (२) आज की सभ्यता मे उसका अधिक प्रचलन, और (३) ऐसे विख्यात पुरुषो की सख्या की अधिकता जिनमे यह गुमराही मौजूद थी।

जानवरो मे जो समलैंगिक अति मिलती है उसे समलैंगिकता का मूलभूत और स्वाभाविक आधार कहा जा सकता है। वह स्तनपान कराने वाले विविध प्राणियो मे और जैसी कि हमे आशा करनी चाहिए विशेषत वानरो मे, जिनका विकास की दृष्टि से मनुष्य के बाद ही दूसरा नम्बर है, आम तौर से पाई जाती है। जी० वी० हैमिल्टन वन्दरो और लगूरो का अध्ययन करने के बाद लिखते है कि "अपरिपक्व

उम्र के नर बन्दर आवश्यक रूप से एक ऐसे काल मे से गुजरते हैं जिसमे वे प्रकट रूप से और करीब-करीब निरवच्छिन्न रूप से समलैंगिक ही होते हैं। यौन परिपक्वता प्राप्त करने के बाद एकाएक यह युग समाप्त हो जाता है और वह भिन्न-लैंगिक मैथुन की दशा मे प्रवाहित हो जाता है।" जुकरमेन ने, जिन्होने लगूरो और शिम्पेजी के समलैंगिक यौन व्यवहार का घनिष्ठ अध्ययन किया है, कभी-कभी यह देखा कि समलैंगिकता नर की अपेक्षा मादा मे अधिक स्पष्ट होती है और वे यहा तक कहने को तैयार हैं कि बडे बन्दरो मे समलैंगिक और भिन्नलैंगिक मैथुनिक व्यवहार मे कोई स्पष्ट प्रभेद नही होता।

बहुत सी असभ्य और वर्बर जातियो मे समलैंगिक व्यभिचार प्रख्यात रहा है और कई वार वह श्रद्धा की दृष्टि से भी देखा जाता रहा। ऐसा उन प्राचीन सभ्यताओ मे भी था जिनके आधार पर हमारी सभ्यता का निर्माण हुआ। लगभग चार हजार वर्ष पहले असीरियन उससे परिचित थे और मिश्रवासी अपने देवताओ होरस और सेत को समलैंगिक मैथुनकारी बताते है। न केवल धर्म से वल्कि सैनिक गुणो से भी समलैंगिकता का सम्बन्ध जोडा गया है और इस रूप मे प्राचीन कार्थेजीनिया-वासियो, डोरियन और सिथियन समाजो मे और बाद को नार्मन लोगो मे उसका प्रचलन था। अत मे चलकर यूनानी लोगो ने उसे सैनिक गुणो के लिए तो आदर्श माना ही, साथ ही बौद्धिक कलात्मक सौन्दर्यपूर्ण और नैतिक गुणो के लिए भी आदर्श माना। यूनान मे अनेक लोग तो उसे भिन्नलैंगिक प्रेम से भी स्वस्थतर और अधिक शरीफ मानते थे। ईसाई-धर्म के आगमन के पश्चात् उसका पाया तो जमा रहा, पर वह बदनाम हो गया। साथ ही समलैंगिक मैथुनिक कार्यो के अलावा जो इस प्रकार के व्यक्तियो की वैचारिक दृष्टि से पूजा होती थी वह भी भुला दी गई या अब अज्ञात हो चली। मनोवैज्ञानिक गडबडी के रूप मे भी इसे स्वीकृति नही मिली। जस्टिनियन के काल के बाद ही समलैंगिकता को पुरुष के साथ पुरुष द्वारा अप्राकृतिक व्यभिचार यानी गवारू दुर्व्यसन या अपराध के रूप मे स्वीकार किया गया और इस अपराध के लिए राज्य द्वारा कडी से कडी और गिरजो द्वारा कडी से कडी धार्मिक सजा, यहा तक कि जिन्दा जला देने की सजा रखी गई।

मध्ययुग मे यह सम्भव हो सकता है कि यौन विपरीतता न केवल फौजी लश्करो मे, वल्कि मठो मे भी पनपती थी। इसी कारण धार्मिक ग्रन्थो के प्रायश्चित्त-सम्बन्धी अध्यायो मे उसका लगातार उल्लेख मिलने लगा। जो भी हो, सास्कृतिक नवजागरणयुग तक यौन विपरीतता ने बहुत बडा हिस्सा अदा किया, दान्ते का गुरु लातिनी विपरीत यौन वृत्ति का पुरुष था और दान्ते ने लिखा है कि उस युग के प्रसिद्ध और बौद्धिक रूप से उन्नत लोगो मे यह विपरीतता पाई ज

थी। विपरीतता के कारण सुप्रसिद्ध मानवतावादी म्यूरे के सिर पर जीवन भर मौत के खतरे की तलवार कच्चे धागे से लटकती रही। नवजागरणयुग का सब से महान् मूर्तिकार माइकेल एजलो समलैंगिक आदर्शो और वासनाओ का पोषण करता था, यद्यपि यह मान लेने का कोई कारण नही है कि जिन पुरुषो के प्रति वह आकर्षित था उनके साथ उसका शारीरिक सम्बन्ध भी था। इगलैंड मे नवजागरण-युग के अन्यतम प्रधान कवि मार्लो स्पष्टत इसी भावना से ग्रस्त व्यक्ति थे। साथ ही ऐसा विश्वास करने के लिए आधार मौजूद है कि बेकन भी इसी तरह के थे।

यह बिलकुल सच है कि कोई यौन विपरीत व्यक्ति शायद ही किसी डाक्टर के पास जाता है। अक्सर वह जो कुछ है, उससे भिन्न या अलग नही होना चाहता। यदि उसकी बुद्धि औसत दर्जे से ऊपर नही होती तो औसत दर्जे की अवश्य होती है, इसलिए वह बडी सावधानी के साथ अपने राज को छिपाए रहता है और शायद ही उसकी तरफ पुलिस का ध्यान जाता है। इस तरह यौन विपरीतता कितनी अधिक पाई जाती है यह उन लोगो के लिए अज्ञात रहता है जो यह नही जानते कि उसे कैसे और कहा खोजना चाहिए। जर्मनी मे हिर्शफेल्ड ने, जिनका समलैंगिकता-सम्बन्धी ज्ञान बेजोड है, दिखलाया है कि आबादी के विभिन्न वर्गो मे समलैंगिक मैथुनकारी और उभलैंगिक मैथुन करने वाले व्यक्तियो की सख्या के बारे मे लगाए गए विभिन्न अनुपात एक प्रतिशत से लेकर पाच प्रतिशत तक हैं। इगलैंड मे मैंने भी अपने स्वतन्त्र पर अपेक्षाकृत कम सम्पूर्ण और कम व्यापक निरीक्षण से भी शिक्षित मध्यमवर्ग मे इतना ही अनुपात पाया। पर निम्नतर सामाजिक वर्गो मे समलैंगिकता निश्चित रूप से उससे कम नही है और यदि उनमे समलैंगिकता अन्तर्निहित नही होती है तो भी इतना कहा ही जा सकता है कि उनके बीच समलैंगिकता के प्रति अरुचि का अभाव रहता है। बहुत से यौन रूप से विपरीत व्यक्तियो ने इस बात का उल्लेख किया है। इस मामले मे यह समलैंगिकता स्त्रियो मे भी प्राय उतनी ही सामान्य दिखलाई देती है जितनी कि पुरुषो मे, यद्यपि स्त्रियो मे उसका पता लगाना अपेक्षाकृत मुश्किल है। समलैंगिकता की बहुत प्रकट और स्पष्ट दशाए शायद स्त्रियो मे पुरुषो की अपेक्षा कम पाई जाती है, पर अपेक्षाकृत कम स्पष्ट और कम गहरी दशाए उनमे शायद पुरुषो की अपेक्षा अधिक पाई जाती हैं। कुछ पेशो मे अन्य पेशो की अपेक्षा यौन विपरीततायुक्त लोगो का अनुपात अधिक दिखाई देता है। यौन विपरीतता वैज्ञानिक और डाक्टरी पेशे के आदमियो के बीच विशेष रूप से अधिक नही पाई जाती, पर वह साहित्यिक और कलाकार लोगो मे अपेक्षाकृत अधिक पाई जाती है और नाटक-सम्बन्धी पेशो मे तो अक्सर पाई जाती है। वह बाल सवारने वालो, होटल के स्त्री-पुरुष बेयरो मे भी

विशेष रूप से पाई जाती है। शिक्षित यौन विपरीततायुक्त व्यक्तियो मे कलात्मक प्रवृत्ति या सगीत-प्रेम बहुत बडे अनुपात मे, मेरे अनुमान के अनुसार ६८ प्रतिशत तक पाया जाता है।

अमेरिका मे शिक्षित और ऊची नौकरी करने वालो के बीच खोज करते समय एम० डब्ल्यू०-पेक ने यह पाया कि बोस्टन के कालेज के ६० व्यक्तियो मे से, जो विश्वविद्यालय और कालेज-जीवन के सभी विभागो का प्रतिनिधित्व करते थे, ७ निश्चित रूप से समलैंगिक थे, और उनमे ६ ने वयस्कावस्था मे प्रकट रूप से समलैंगिक कार्य करने की बात को स्वीकार किया। अन्य दो व्यक्ति निकट रूप से अवचेतन रूप से समलैंगिक थे। पेक का विचार है कि कालेजो के व्यक्तियो मे कम से कम १०% समलैंगिक होते है, भले ही वे इस सम्बन्ध मे कोई कार्य करे या न करे। जी० वी० हैमिल्टन ने देखा कि उनके द्वारा लिए हुए १०० विवाहित पुरुषो मे सिर्फ ४४ ही ऐसे थे जिन्हे बचपन मे खेले गए किसी प्रकार के समलैंगिक खलो की याद नही आती है, जब कि ४६ पुरुषो और २३ स्त्रियो ने बतलाया था कि अपने ही लिग के व्यक्तियो की मित्रता से बचपन मे उनके यौन अग उत्तेजित हो जाते थे। कैथेराइन डैविस ने पाया कि ३१ ७ प्रतिशत स्त्रियो ने दूसरी स्त्रियो के साथ घनीभूत भावनात्मक सम्बन्धो को स्वीकार किया और २७ ५ प्रतिशत अविवाहित स्त्रियो ने मजूर किया कि बचपन मे वे समलैंगिक यौन खेलो को खेलती थी। इनमे से ४८ २ प्रतिशत ने किशोरावस्था के बाद ऐसे खेलो को बन्द कर दिया।

फिर समलैंगिक व्यभिचार का महत्त्व समलैंगिक वेश्यावृत्ति के प्रचलन से भी दृष्टिगोचर होता है। इसका विशेष तौर पर बर्लिन मे अध्ययन किया गया है, जहा पुलिस स्त्री-वेश्यावृत्ति की तरह उससे चश्मपोशी करती है, ताकि वह उसकी अभिव्यक्ति को उचित सीमा और नियन्त्रण मे रख सके। हिर्शफेल्ड के विचार से बर्लिन मे पुरुष-वेश्याओ की सख्या लगभग २०००० है। अभी हाल मे और अपेक्षाकृत सावधानी के साथ किए गए वेर्नर पिक्टन के अनुमान के अनुसार वह सख्या ६००० है। इनमे से एक तिहाई से अधिक व्यक्तियो को मनोविकारग्रस्त निर्धारित किया गया है। स्वय समलैंगिक व्यभिचारियो की सख्या उनकी एक चौथाई से भी कम है। स्त्री-वेश्यावृत्ति की तरह यहा भी बेकारी को ही इसका कारण माना जाता है, पर सम्भवत दूसरे विविध तत्त्व भी इसके कारणो मे आ जाते है।

यद्यपि यौन विपरीतता, इस तरह इतना महत्त्वपूर्ण व्यापार है, तो भी हाल मे ही उसे स्वीकार किया गया है या उसके सम्बन्ध मे वैज्ञानिक अध्ययन शुरू हुआ है। यह पहले-पहल जर्मनी मे शुरू हुआ। अठारहवी सदी

अन्त मे जर्मनी मे दो पुरुषो की दशाओ का वर्णन प्रकाशित हुआ था, जिनमे कर्ता अपने ही लिग के व्यक्तियो के प्रति विशिष्ट यौन आकर्षण को व्यक्त करते थे। पर इसके बावजूद कि हास्ली, केस्पर और विशेषकर उलरांख्स ने (जिन्होने इस दशा को यूरेनवाद का नाम दिया था) उसके लिए आगे और रास्ता बनाया। सन् १८७० के बाद ही वेस्टफाल ने एक यौन विपरीत स्वभाव की स्त्री का विशद पूर्व-इतिहास प्रकाशित किया और स्पष्ट रूप मे यह बतलाया कि यह दशा जन्मजात थी तथा वातावरण से प्राप्त नही थी, इसलिए इसे पाप नही कहा जा सकता था। साथ ही इस दशा मे यद्यपि स्नायविक रोगग्रस्त अवस्था के तत्त्व भी मौजूद थे तो भी यह पागलपन की दशा नही थी। इसके बाद ही यौन विपरीतता का अध्ययन तेजी के साथ बढने लगा। क्राफ्ट एबिग यौन विपरीत दशा के प्रथम महान् चिकित्सक थे और उन्होने अपनी पुस्तक 'साइकोपेथिया सेक्चुआलिस' मे बहुत सी दशाए सगृहीत की। यह यौन मस्तिष्क-विकृति के सम्बन्ध मे लिखी जाने वाली पहली पुस्तक थी और इसकी ओर सामान्यत लोगो का ध्यान आकृष्ट हुआ। इसके बाद मोल ने यौन विपरीतता पर अपना प्रशसनीय ग्रन्थ प्रस्तुत किया। क्राफ्ट एबिग की अपेक्षा उनकी आलोचक दृष्टि अधिक तेज थी और उनके वैज्ञानिक सस्कार व्यापक थे। फिर मैग्नस हिर्शफेल्ड ने, जिन्हे यौन विपरीतताग्रस्त व्यक्तियो की बेजोड और सब से अधिक सहानुभूतिपूर्ण जानकारी थी, इस सम्बन्ध मे हमारी जानकारी बढाने मे भारी योग दिया। सन् १९१४ मे प्रकाशित उनकी पुस्तक 'डर होमोसेक्चुआलिटाट' सम्पूर्ण विषय का एक विश्वकोष ही है, जिसका अग्रेजी मे अभी तक अनुवाद नही हुआ है। मालूम होता है कि इटली मे इस दशा के लिए 'यौन विपरीतता' नाम पहले-पहल प्रचलित हुआ था और शुरू से ही रित्ती, तमासिया, लोम्ब्रोसो और अन्य लोगो ने इन दशाओ का वर्णन किया था। फ्रास मे पहले-पहल सन् १८८२ मे इस दशा के अध्ययन को शार्को और मानियान ने शुरू किया था और उसके बाद एक के बाद एक करके प्रसिद्ध शोध-कर्ताओ, जैसे फेरे, सेरिए और सा-पाल ने (जो डाक्टर लाउण्टस के छद्म नाम से लिखते थे) इस दिशा मे हमारे ज्ञान को आगे बढाया। रूस मे पहले-पहल तार्नोव्स्की ने इस लक्षण की छानबीन की। इगलैड मे एक प्रसिद्ध डाक्टर के सुपुत्र और स्वय एक ऊचे साहित्यमर्मज्ञ जान एडिगटन साइमड्स ने निजी तौर पर दो पुस्तिकाए प्रकाशित की—एक प्राचीन यूनान मे यौन विपरीतता पर थी और दूसरी समलैंगिक व्यभिचार की आधुनिक समस्याओ पर। एडवर्ड कार्पेन्टर ने (पहले निजी तौर पर ही) इस विषय पर एक पुस्तिका और बाद मे माध्यमिक यौन विषय पर एक पुस्तक (सब से पहले जर्मनी मे) प्रकाशित

कराई, जिसका नाम 'अन्तर्वर्ती सेक्स' था। राफालोविच ने फ्रेंच भाषा मे एक उल्लेखनीय पुस्तक प्रकाशित की और यौन विपरीतता पर मेरी अपनी पुस्तक पहले जर्मनी मे सन् १०९६ मे और बाद मे इंगलैंड और अमेरिका मे प्रकाशित हुई, जहा यौन विपरीतता के सिद्धान्त और तथ्यो पर कीर्नान और लाइड्रटन पहलेही ध्यान दे चुके थे। इस दशा पर सब से उल्लेखीय पुस्तक मेरानान की सन् १९३२ मे प्रकाशित पुस्तक है जो स्पैनिश से अनूदित है।

बाद मे इस विषय पर और अधिक अध्ययन किया गया है, पर उसमे अभी तक पूर्ण मतैक्य नही हो सका है। पहली और मूलभूत कठिनाई यह निश्चित करना है कि यौन विपरीतता जन्मजात होती है या वह बाद मे अन्य प्रभावो के कारण उत्पन्न होती है। क्राफ्ट एबिग के विचारो के प्रभाव के पहले यह मत प्रचलित था कि यौन विपरीतता वातावरण से प्राप्त की जाती है, दूसरे शब्दो मे वह सीधे-सीधे एक दुर्व्यसन या पाप की ओर सामान्यत केवल हस्तमैथुन या अतिमैथुन-जन्य नपुसकता का परिणाम थी, अन्यथा वह बचपन मे बीने और श्रिक नात्सिग के अनुसार दिए गए मानसिक सुझाव का नतीजा थी। क्राफ्ट एबिग ने समलैंगिकता के दोनो प्रकारो को (जन्मजात और वातावरणजन्य) स्वीकार किया। बाद की प्रवृत्ति जन्मजात से अन्यथा यानी वातावरणजन्य समलैंगिकता के महत्त्व को घटाने की ओर है। यह प्रवृत्ति मोल के ग्रन्थ मे बहुत ही स्पष्ट थी। हिर्शफेल्ड और मेरनान का विचार है कि समलैंगिकता मे हमेशा जन्मजात तत्त्व मौजूद रहता है और ब्लाख, एलट्रिनो आदि ने ऐसे व्यक्तियो को जो जन्म से ही समलैंगिक नही रहते, छद्म समलैंगिकता के वर्ग मे रख दिया, जो किसी न किसी कारण से समलैंगिक मैथुन करने लगते हैं। नैके का भी यही मत था और उनका विचार था कि हमे जन्मजात या अन्यथा यानी वातावरणजन्य यौन विपरीतता की दशाओ मे भेद नही करना है, पर असली यौन विपरीतता और नकली यौन विपरीतता मे भेद करना है। नैके यह मानते थे कि जीवन मे देर से प्रकट होने वाली समलैंगिकता जन्मजात से अन्यथा यानी वातावरणजन्य दशा नही होती, बल्कि वह जन्मजात तत्त्व पर आधारित होती है और या तो उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है या विलम्ब से प्रकट होती है। कुछ अधिकारी विद्वान्, जैसे ब्लाख और नैके पहले यौन विपरीतता के बारे मे इस पुराने मत को मानकर चले थे कि यौन विपरीतता विशेष रूप से केवल या मुख्यत वातावरणजन्य दशा होती है, पर बादको चलकर उन्होने अपेक्षाकृत आधुनिक मत को अपना लिया। पर बहुत से मनोविश्लेषक अभी तक इस विश्वास को लेकर बैठे हुए हैं कि समलैंगिकता सदैव वातावरणजन्य होती है। पर साथ ही वे यह भी मान लेते है कि वह अक्सर पूर्वनिर्दिष्ट और इसलिए शरीर-

गठन से सम्बद्ध होती है। इस दशा मे मतभेद का कोई महत्त्व नही रह जाता।

एक दूसरी आधारभूत बात, जिसके सम्बन्ध मे मत बदल गया है, यह है कि यौन विपरीतता को चाहे वह जन्मजात ही क्यो न हो, रोगग्रस्त या पतित अवस्था समझना चाहिए, अथवा नही। इस विषय पर क्राफ्ट एविंग ने पहले प्राचीन दृष्टिकोण की हा मे हा मिलाई और यौन विपरीतता को स्नायविक रोग अथवा मनोरोग की दशा की अभिव्यक्ति के रूप मे माना, पर अपनी हाल की रचनाओ मे उन्होने बुद्धिमानी के साथ इस स्थिति को सुधार लिया और वे यौन विपरीतता को बीमारी अथवा 'पतन' के रूप मे नही वल्कि गडबडी के रूप मे देखने लगे। यही दिशा है जिस तरफ आधुनिक मत दृढता के साथ वढ रहा है। यौन रूप से विपरीत व्यक्ति अपनी इस विशेष गुमराही को छोडकर सभी वातो मे स्वस्थ और सही-दिमाग हो सकते है। मेरा दृष्टिकोण हमेशा यही रहा है, यद्यपि मै यह मानता हू कि यौन विपरीतता अक्सर छोटी-मोटी स्नायविक दुर्बलता की दशा से भी घनिष्ठ रूप से सम्वन्धित होती है। हम हिर्शफेल्ड के (जो २५ प्रतिशत यौन विपरीतता-युक्त व्यक्तियो से अधिक मे वशानुक्रमगत प्रभाव को नही पाते) इस मत से सहमत हो सकते है कि यदि यौन विपरीतता मे स्नायविक रोग का आधार हो तो भी रोग का तत्त्व अक्सर छोटा रहता है।

इस प्रकार हम उस सोपान पर पहुच जाते है जिसे जैविक वनावट की दृष्टि से वह मूलभूत आधार कहा जा सकता है जिसपर मनोवैज्ञानिक क्षेत्र से वाहर निकलने पर समलैंगिकता स्थित रहती है। यह कहना आसान जान पडता है कि निश्चित रूप से दो स्पष्ट रूप से अलग और ध्रुववत् स्थिर लिग है—शुक्राणुधारी पुरुष और डिम्बाणुधारी नारी। बहुत दिनो यह कथन पूर्ण रूप से जीव-वैज्ञानिक दृष्टि से सत्य नही रहा। हम भले ही ठीक-ठीक तौर से यह न जाने कि लिग (सेक्स) क्या है, पर हम इतना तो अवश्य जानते है कि वह परिवर्तनीय है और एक लिग के दूसरे लिग मे परिवर्तन हो जाने की सम्भावना है। लिग के सीमान्त अक्सर अनिश्चित होते है और एक पूर्ण पुरुष और पूर्ण स्त्री के बीच कई सोपान रहते है। प्राणि-जीवन के कुछ रूपो मे यह भेद करना आसान नही है कि कौन नर है, कौन मादा। इन सव दशाओ मे हम सेक्स को प्रकृति की एक युक्ति मान सकते है, जो उसने प्रजनन को सुनिश्चित करने के लिए निकाली है (क्योकि प्रकृति मे दूसरी युक्तिया भी है), यद्यपि यह भी औचित्यपूर्ण है कि प्रजनन के अलावा भी यौन व्यापारो पर विचार किया जाए। यह कथन जितना सच है कि प्रजनन ही प्रकृति का प्राथमिक लक्ष्य है, उतना ही यह कथन भी सच है कि यौन प्रजनन उस लक्ष्य को प्राप्त करने की अनेक युक्तियो मे से सिर्फ एक युक्ति है।

हमे यह मानना ही पडेगा कि प्रत्येक सेक्स क्रोमोसोम मे चाहे वह एक्स-एक्स हो चाहे एक्स-वाई, उस आवेग का वह शारीरिक आधार निहित रहता है जो विकासमान व्यक्ति का पुरुष या स्त्री होना निश्चित करता है। जब दो अलग-अलग वश-जातियो के दो व्यक्तियो का सयोग होता है तो उसमे अक्सर सन्तान स्वाभाविक नही होती और नर सन्तान की मादा के स्वभाव मे प्रवृत्ति हो सकती है और अन्य परिस्थितियो मे मादा सन्तान मे नर के स्वभाव की प्रवृत्ति दिखाई पड सकती है। पखियो के वर्ग मे (जिसमे इस प्रक्रिया का विशेष रूप से अध्ययन किया गया है) ऐसा ही होता है। इस प्रकार की प्रवृत्ति के दो तरह के प्रभाव पैदा हो सकते है, जिनमे से एक को प्रबल और दूसरे को दुर्बल का नाम दिया गया है। यहा हम निम्न प्राणि-वैज्ञानिक रूपो मे अन्तर्यौनता की अवस्था प्रत्यक्ष करते है। जब हम मानव पर आते है और मनोवैज्ञानिक क्षेत्र मे प्रवेश करते है तो यह अन्तर्यौनता की अवस्था कभी-कभी (यद्यपि गलत तौर से) अन्तर्वर्ती लिग की दशा बताई जाती है। यदि कडाई के साथ कहा जाए तो वह पुरुष और स्त्रीलिग को निश्चित करने वाले तत्वो मे मात्रागत असगति के होने का नतीजा है। यह अन्तर्यौनता की अवस्था व्यक्ति की वशानुक्रम से प्राप्त शारीरिक बनावट का एक हिस्सा होती है और इस कारण वह जन्मजात होती है और ज्यो-ज्यो विकास होता जाता है, त्यो-त्यो उसके अधिक स्पष्ट होने की सम्भावना रहती है। स्तनपान कराने वाले प्राणियो मे यह अन्तर्यौनता मानसिक क्षेत्र मे भी आविर्भूत होती है।

पखियो पर विचार करते समय यह देखा गया है कि पखियो की अन्तर्यौनता की अवस्था उच्चतर प्राणिवैज्ञानिक स्तर पर पाई जाने वाली अन्तर्यौनता की अपेक्षा सरल है और उसे उसी प्राणिवर्ग की भिन्न जातियो के मिश्रण से पैदा किया जा सकता है। जैसे-जैसे हम मानव के नजदीक आते है, अन्तर्यौनता के रूप शारीरिक दृष्टि से कम स्पष्ट या बिलकुल ही अस्पष्ट होते है। अन्तर्यौनता के इन रूपो के होने का बडा कारण स्वस्थ और स्वाभाविक व्यक्ति से भिन्न होना है न कि अलग-अलग वश-जातियो का मिश्रण। साथ ही प्रत्येक सोपान मे बाह्य तत्त्वो का प्रभाव पड सकता है।

जब हम हार्मोनो के कार्यो की ओर देखते है तो हम उस यान्त्रिक प्रक्रिया के बिलकुल निकट पहुच जाते है जिससे अन्तर्यौनता पैदा होती है। हम इन्हे इस रूप मे देख सकते है कि जब प्रारम्भिक यौन क्रोमोसोम एक्स-एक्स या एक्स-वाई का प्रभाव खत्म हो जाता है तो हार्मोन यौन प्रक्रिया का परिचालन करते है। शरीर के खुद बखुद काम करने वाले या सामान्य तन्तुओ मे यह क्षमता होती है कि सेक्स हार्मोनो की विशिष्ट जटिलता से जो उत्तेजना प्राप्त होती है उसके अनसार

किसी एक लिग के लक्षणो का विकास करे। स्त्रियो मे बाल्यावस्था मे खुद-बखुद काम करने वाले डिम्बाशय का कोई स्पष्ट और उल्लेखनीय प्रभाव नही होता और स्त्रीत्व का विकास सहजात दीख पडता है, यद्यपि स्त्री के विकसित यौन यन्त्रो का कायम रहना सेक्स के हार्मोनो पर निर्भर करता है। दूसरी तरफ पुरुप रूप मे फूटकर अलग हो जाने के कार्य मे पुरुप-अण्डज हार्मोनो की जरूरत होती है। इस प्रकार यह कहा जाता है कि मादा उस तटस्थ रूप का प्रतिनिधित्व करती है जिसे पुरुप-सेक्स-हार्मोनो के अभाव मे खुद-बखुद काम करने वाले तन्तु ग्रहण करते है। जब पुरुप-हार्मोन सामान्य अवधि के बाद प्रकट होता है तो उससे इस तरह अन्त-र्यौनता का कोई न कोई रूप पैदा हो जाता है और पुरुप-सेक्स-हार्मोन जितने विलम्ब से प्रकट होगा, पुरुप मे स्त्री-स्वभाव उतना ही अधिक होगा। जैसा कि क्यू ने कहा है—"जिस काल से पुरुप-हार्मोन कार्य शुरू करता है, उसी काल के अनुसार अस्वाभाविकता की मात्रा निश्चित होती है।" इसमे यह समझाने मे मदद मिलती है कि बचपन मे स्त्रीस्वभाव दिखलाई देने वाला व्यक्ति यौन रूप से परिपक्व हो जाने पर किस प्रकार पुरुप-चरित्र ग्रहण करता है।

यह विशेष रूप से कहा जाता है कि एड्रेनल ग्रन्थि की ऊपरी सतह द्वारा एक हार्मोन बनता है जिसका अण्डकोप के हार्मोन के ही समान पुरुषीकरण की दिशा मे प्रभाव पडता है। इस परिणाम को अब 'पौरुप विरिलवाद' का नाम दिया जाता है। पहले इसे 'ऐड्रेनो-जेनिटल सिड्रोम' कहा जाता था। यह केशरोग से सम्बन्धित है। पुरुषो मे इसका सम्बन्ध समय से पूर्व यौन परिपक्वता और खुद-बखुद काम करने वाले तन्तुओ के विकास से युक्त रहता है और स्त्रियो मे इस हार्मोन से गर्भाशय के ह्रास के साथ ही यह परिवर्तन देखे जा सकते है—डिम्बकोशो का रूपान्तर, भगोष्ठो के अल्पविकास, भगाकुर की अतिवृद्धि, स्तन-ग्रन्थियो का ह्रास, नितम्बो का सकरा होना और कन्धो का चौडा होना, इसके साथ-साथ स्पष्टत मासपेशियो का विकास और मुटापा पाया जा सकता है। इस हार्मोन से यौन कार्यकलाप की गडबडी होती है, यहा तक कि पूर्ण रूप से बाझपन भी हो जाता है। पौरुप के निम्न-लिखित चार प्रकार बतलाए गए है और इस वर्गीकरण का आधार उनके शुरू होने की उम्र है।

(१) **जन्मजात दशा** [स्त्रियोचित छद्म-उभलैगिकता, जिसमे स्त्रियोचित यौन ग्रन्थिया रहते हुए भी यौन गौण चरित्र पुरुष के होते है]

(२) **यौवनारम्भकालीन दशा** [यौवनारम्भ के लगभग शुरू होती है, जिसमे पुरुष के समान शरीर के भागो पर केशवृद्धि और मासिकधर्म की गडबडी की प्रधानता रहती है]

(३) **वयस्क दशा** [यह अवस्था भी पूर्वोल्लिखित यौवनारम्भकालीन दशा के समान होती है, पर उससे कम स्पष्ट होती है]

(४) **प्रसूतियुक्त दशा** [रजोनिवृत्ति के वाद शारीरिक स्थूलता, वालो की अधिकता या वालो का एकदम झड जाना, मानसिक गडवडी और कमजोरी हो सकती है । यह अभी तक विवादग्रस्त है कि एड्रेनल हार्मोन ठीक-ठीक किस प्रणाली से कार्य करता है]

जव हम समलैंगिकता पर विचार करते है, तव भी हम अन्तर्यौन क्षेत्र के भीतर ही रहते है और निस्सदेह वहुत दूर तक हमारा हार्मोन की क्रियाओ के साथ सम्वन्ध रहता है, पर इतने पर भी हम एक ऐसे मानसिक क्षेत्र मे रहते है जहा शारीरिक अनुवर्ती लक्षणो के चिह्न मिलना अवसर मुश्किल रहता है। इसमे सन्देह नही कि अल्प अश मे और किसी-किसी अवसर पर स्पष्ट गोचर मात्रा मे वे फिर भी मौजूद रहते है, पर उनका कोई महत्त्व नही होता। यद्यपि वीस साल पहले वाइल और दूसरे लोगो ने यह दिखलाने की कोशिश की थी कि समलैंगिक व्यक्तियो मे अल्प अश मे किन्तु नापी जा सकने वाली मात्रा मे समलैंगिकता की जन्मजात जडो की शारीरिक विशेषता पाई जाती है। इन नापे जा सकने वाले भेदो के अलावा इसमे सन्देह नही किया जा सकता कि कुछ व्यक्तियो का उनकी शारीरिक वनावट और सम्भवत हार्मोनो के असाधारण असन्तुलन के फलस्वरूप विशेष झुकाव अपने ही लिग के व्यक्तियो के साथ यौन परितृप्ति प्राप्त करने की ओर अधिक होता है। जैसा कि अच्छी तरह ज्ञात है, मनुष्यो मे और साथ ही मानवेतर जानवरो मे अनुमानत एक वडी तादाद मे सहीदिमाग व्यक्ति ऐसे रहते है जो भिन्न लिग के व्यक्तियो के सम्पर्क से वचित रहने पर अपने ही लिग के व्यक्तियो से अस्थायी तौर पर यौन परितृप्ति प्राप्त करते है।

यह दावा खतरनाक मालूम हो सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति पुरुषमिश्रित उपादान और स्त्री-उपादान की विविध मात्रा के सयोग से वना होता है और यौन विपरीततायुक्त पुरुष वह व्यक्ति है जिसमे स्त्री-तत्त्व असाधारण अनुपात मे रहते है और यौन विपरीततायुक्त स्त्री ऐसा व्यक्ति है जिसमे पुरुष-तत्त्व असाधारण अनुपात मे रहते है। यह एक मनगढन्त दृष्टिकोण है, जो इस लक्षण पर विलकुल ही प्रकाश नही डाल सकता। पर जव हम सहीदिमाग व्यक्तियो मे किसी-किसी अवसर पर पाई जाने वाली समलैंगिकता को एक ओर रख देते है तो विपरीतता को जन्मजात गडवडी के रूप मे या अधिक उपयुक्तता के साथ जन्मजात दशाओ पर आधारित गडवडी के रूप मे देखना औचित्यपूर्ण जान पडता है। यह गडवडी यदि रोगग्रस्त है तो वह सिर्फ विर्चाउ के द्वारा वताए हुए इसी

अर्थ मे है कि रोगनिदान-शास्त्र रोगो का नही किन्तु गडबडियो का विज्ञान है और इस प्रकार एक यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति उसी प्रकार स्वस्थ हो सकता है, जैसे कि वर्णान्धता से पीडित होने पर भी वर्णान्ध व्यक्ति स्वस्थ हो सकता है। जन्मजात यौन विपरीतता इस प्रकार जीववैज्ञानिक प्रकारभेद के सदृश है। यह प्रकारभेद निस्सन्देह इस कारण होता है कि अभी लिग-क्षेत्र मे भिन्नता की क्रिया पूर्ण रूप से सम्पादित नही हुई है, पर अक्सर ऐसी कोई बात नही होती जिसमे इसका सम्बन्ध स्वय व्यक्ति मे किसी रोगग्रस्त दशा के साथ खोजा जा सके।

यौन विपरीतता के बारे मे उस दृष्टिकोण का प्रचलन बढ रहा है और हाल ही मे इसे बहुत बल मिला है, पर उसके चिह्न हम कुछ समय पहले से देख सकते है। सन् १८६२ ही मे उलरिख्स ने घोषणा की थी कि विपरीतता उभलैंगिकता का एक विशिष्ट प्रकार है। अमेरिका मे कीर्नान ने सन् १८८८ मे इस बात पर जोर दिया कि मानव-वश के पूर्वज शुरू मे उभलैंगिक थे। शेवेलियर ने १८९३ मे विपरीतता का एक ऐसा सिद्धान्त सामने रखा जो भ्रूण-सम्बन्धी उभलैंगिकता पर आधारित था। सन् १८९४ मे मैड्रिड के लेतामेदी ने सर्वव्यापी उभलैंगिकता का सिद्धान्त सामने रखा, जिसके अनुसार पुरुष मे सदैव प्रच्छन्न स्त्री-कीटाणु रहते है और स्त्री मे प्रच्छन्न पुरुष-कीटाणु। अन्त मे १८९६ के लगभग क्राफ्ट एविग, हिर्शफेल्ड और मैंने (जान पडता है कि सभी ने कमोबेश स्वतन्त्र रूप से) कुछ-कुछ इसी जैसी व्याख्या को अपनाया।

यौन विपरीतता के इन सामान्य दृष्टिकोणो के प्रचलन से उसके प्रकारभेदो से सम्बन्धित वर्गीकरण पर भी प्रभाव पडा है। क्राफ्ट एविग ने जन्मजात विपरीतता के चार प्रकार और वातावरणजन्य विपरीतता के भी चार प्रकारभेद माने है। मोल ने सिर्फ मनोयौन उभलैंगिकता और पूर्ण यौन विपरीतता को माना और इस विस्तृत वर्गीकरण को ठुकरा दिया। यह अधिकाश अधिकारी विद्वानो द्वारा मान्य विभाजन से मेल खाता है। इसका मतलब यह है कि यदि हम ऐसे लोगो को एक तरफ रख दे जो सिर्फ भिन्न लिग के व्यक्तियो की ओर आकर्षित है तो हम ऐसे व्यक्तियो को पाएगे जो सिर्फ अपने ही लिग के व्यक्तियो की तरफ आकर्षित है, साथ ही ऐसे व्यक्तियो को पाएगे जो दोनो लिगो के व्यक्तियो के प्रति आकर्षित होते है। जब हम इस प्रारम्भिक वर्गीकरण से आगे बढते है तो हमारा साबका अनगिनत वैयक्तिक प्रकारभेदो से पडता है जो आसानी से निश्चित वर्गों मे क्रमपूर्वक नही रखे जा सकते। यहा तक कि उभलैंगिक वर्ग भी कडाई के साथ एकरूप नही होता, क्योकि उसमे निश्चित रूप से ऐसे कई व्यक्ति रहते है जो जन्मजात यौन विपरीततायुक्त होते है, पर वातावरण के प्रभाव से भिन्न लैंगिकता अपना लेते है।

जब हम यौन विपरीतता के सुस्पष्ट मामलो पर विचार करते है, तो हमे कुछ ऐसे लक्षण मिलते है जो अक्सर पाए जाते है। जब कि यौन विपरीततायुक्त व्यक्तियो का सम्वन्ध एक पर्याप्त अनुपात मे (मेरे अनुभव के अनुसार ५० प्रतिशत से अधिक) काफी स्वस्थ परिवार से होता है, लगभग ४० प्रतिशत मे उनके परिवार मे रोगग्रस्त दशा अथवा विकृत मस्तिष्क दशा—सनकीपन, शराबखोरी, स्नायविक दुर्बलता या स्नायविक रोग—किसी न किसी अश मे चाहे वह वहुत ही कम हो या ज्यादा, मौजूद रहते है। यौन विपरीतता का वशानुक्रम सुस्पष्ट रहता है, यद्यपि कभी-कभी उसे मानने से इन्कार किया जाता है, कभी-कभी भाई-बहिन मा और बेटा, काका और भतीजा, दोनो यौन विपरीततायुक्त रहते है यद्यपि एक-दूसरे से इस सम्वन्ध मे अनजान रहते है। मै ३५ प्रतिशत मामलो मे पारिवारिक या वशानुक्रमिक यौन विपरीतता पाता हू। वान रोमर को भी ठीक यही अनुपात मिला। यह दिखलाने के लिए कि यौन विपरीतता जन्मजात होती है, अकेला यही काफी है। लगभग दो तिहाई मामलो मे सामान्य वैयक्तिक स्वास्थ्य अच्छा और कभी-कभी वहुत अच्छा होता है, वाकी लोगो मे अक्सर स्नायविक रोग अथवा कमोवेश असन्तुलित स्वभाव पाया जाता है, सिर्फ एक थोडे अनुपात मे ही (मेरे अनुमान के अनुसार ८ प्रतिशत मे) सुस्पष्ट रोगग्रस्त दशा रहती है।

अधिकाश मामलो मे यौन विपरीतता की प्रवृत्ति बचपन मे, अक्सर यौवनारम्भ के समय प्रकट होती है। पर उसके लक्षण प्राय यौवनारम्भ के पहले से ही मिलने लगते है। एक वडे अनुपात मे स्पष्ट दिखलाई देने वाली समय से पूर्व यौन परिपक्वता रहती है और अक्सर अति यौन अनुभूतिशीलता की प्रवृत्ति भी होती है।

वहुत से विपरीततायुक्त व्यक्ति अपने को अति-अनुभूतिशील या विगडे हुए स्नायुओ का वतलाते है। वाहर से आए हुए सुझाव का प्रभाव भी अक्सर खोजा जा सकता है। पर इन मामलो मे पूर्वप्रवृत्ति के प्रमाण भी अक्सर मिलते रहते है। इन मामलो मे एक वडे अनुपात मे हस्तमैथुन किया जाता है, पर हस्तमैथुन तो भिन्न लिग के साथ मैथुन करने वाले व्यक्तियो मे भी सामान्य रूप से पाया जाता है और यह मानने का कोई कारण नही है कि विपरीतता होने के कारणो मे हस्तमैथुन भी है। यौन विपरीततायुक्त व्यक्तियो के स्वप्न भी अक्सर विपरीत होते है, पर ऐसा हर हालत मे हो ही, ऐसी वात नही और ऐसे यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति जो जन्मजात रूप से ही यौन विपरीततायुक्त दिखलाई दे सकते है, भिन्न लिग के व्यक्ति के साथ मैथुन करने के सपने देख सकते है, जैसे कभी-कभी सहीदिमाग व्यक्ति को भी अपने ही लिग के व्यक्ति के साथ कामात्मक स्वप्न आ सकते है।

विपरीत यौन आवेग की परितृप्ति अनेक प्रकार से होती है। मेरे पास आए हुए मामलो मे से लगभग २० प्रतिशत मे कर्ताओ का कभी भी किसी प्रकार का यौन सम्बन्ध नही था। ३० से लेकर ३५ प्रतिशत मे यौन सम्बन्ध विरले ही निकट सम्पर्क की सीमा से या अधिक से अधिक परस्पर हस्तमैथुन से आगे गया था। दूसरे व्यक्तियो मे एक-दूसरे के पैरो मे पैर फसाने या कभी-कभी लिगचुम्बन करने का तरीका अपनाया जाता है। स्त्रियो मे परितृप्ति चुम्बन, घनिष्ठ रूप से सटकर बैठने आदि, परस्पर हस्तमैथुन और कुछ मामलो मे योनि को चूमने के द्वारा प्राप्त की जाती है, जो अक्सर निष्क्रिय के बजाय सक्रिय होती है। ऐसे विपरीततायुक्त पुरुषो का अनुपात जो मलद्वार-मैथुन की इच्छा करते है (जो अक्सर निष्क्रिय के बजाय सक्रिय होता है), अधिक नही होता। हिर्शफेल्ड उसका अनुपात ८ प्रतिशत बतलाते है पर मुझे उसका अनुपात १५ प्रतिशत के लगभग मिला।

यौन विपरीततायुक्त पुरुषो मे अक्सर स्त्रियो के समान बनने की प्रवृत्ति पाई जाती है और यौन विपरीततायुक्त स्त्रियो मे पुरुषो के समान होने की। यह बात शारीरिक और मानसिक दोनो ही क्षेत्रो मे होती है और यह प्रवृत्ति बहुत सी बातो मे खोजी जा सकती है। वह हर हालत मे सामने आती ही हो, ऐसी बात नही है। जो भी हो, कुछ यौन विपरीततायुक्त पुरुष अपने पौरुष पर जोर देते है, जब कि दूसरे बहुत से व्यक्ति यह बतलाने मे बिलकुल असमर्थ रहते है कि वे स्त्री जैसा अधिक अनुभव करते है या पुरुष जैसा। यौन विपरीततायुक्त स्त्रियो मे अक्सर पुरुषस्वभाव या रुख के साथ समानता पाई जाती है, यद्यपि यह समानता हर हालत मे स्पष्ट नही रहती। यौन विपरीततायुक्त व्यक्तियो मे बनावट या शारीरिक कार्य-प्रणाली-सम्बन्धी कई प्रकार की छोटी-मोटी गडबडिया हो सकती है। दोनो लिगो के यौन अग कभी-कभी अतिविकसित होते है या ज्यादातर शायद शैशवकालीन अगो से मिलते-जुलते हुए अल्पविकसित रहते है, किसी-किसी अवसर पर गर्भाशय-सम्बन्धी गडबडी भी देखी जाती है, स्त्रियो मे कभी-कभी स्वर-यन्त्र का विकास कुछ-कुछ मर्दाना, साथ ही कुछ अश मे अतिकेशरोग भी होता है। मेरेनान ने पाया कि पुरुष-लक्षण शरीर की दाहिनी ओर और स्त्री-लक्षण बाई ओर प्रकट होते है। यौन विपरीततायुक्त पुरुष कभी-कभी मुह से सीटी नही बजा पाते। दोनो ही लिगो के व्यक्ति की आकृति मे अक्सर वयस्कावस्था मे भी ध्यान देने योग्य रूप से तरुणाई कायम रहती है। उनमे हरे रग के प्रति प्रेम (जो सामान्यत बच्चो विशेषत लडकियो द्वारा खास तौर पर पसन्द किया जाता है) अक्सर देखा जाता है। कुछ अश मे नाटकीयता की ओर झुकाव साथ ही घमड और खुद को सजाने-सवारने की प्रवृत्ति तथा किसी-किसी अवसर पर हीरे-जवाहिरात और

गहनो के प्रति प्रेम का होना भी असाधारण नही है। इन शारीरिक और मानसिक लक्षणो मे बहुतो को किसी अश तक शैशव के समान अल्पविकास का सूचक कहा जा सकता है और यह उस दृष्टिकोण से मेल खाता है जो यौन विपरीतता के चिह्न मूलभूत उभलैंगिक आधार से खोजता है क्योकि हम ज्यो-ज्यो व्यक्ति के जीवन इतिहास मे गहराई के साथ पीछे जाते है, त्यो-त्यो हम उभलैंगिक सोपान के निकट पहुच जाते है।

नैतिक रूप से यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति अक्सर अपने ऊपर सामान्य आचारशास्त्र को लागू करते है और अपनी स्थिति को औचित्यपूर्ण सावित करने की कोशिश करते है। ऐसे व्यक्ति जो अपनी सहजात बुद्धि से सघर्ष करते है या स्थायी रूप से अपने रवैये को नापसन्द करते है या उसके प्रति सन्देह भी करते है, बहुत अल्प सख्या मे यहा तक कि २० प्रतिशत से भी कम होते है। यही कारण है कि बहुत ही कम यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति डाक्टरी सलाह लेते है। उनका अपने को सही समझना इस तथ्य से पुष्ट होता है कि न केवल फ्रास मे, वल्कि दूसरे देशो मे भी (जैसे इटली, बेलजियम, हालैंड आदि) जहा नेपोलियन सहिता का प्रभाव पडा है, समलैंगिक कार्य कानून की गिरफ्त मे नही आते, बशर्ते किसी अल्पवयस्क पर अन्याचार, हिसा और सार्वजनिक सुरुचि को हानि न पहुचाई गई हो। इग्लैंड और अमेरिका शायद ऐसे मुख्य देश है, जहा समलैंगिकता के प्रति पोपवादी विचारो का असर अभी तक कायम है। जो भी हो, इन देशो मे इस सम्बन्ध मे वहुत कठिनाई होती है। यह तय करना वडा मुश्किल है कि समलैंगिक व्यभिचार के कौन से कार्य दण्डनीय अपराध है। बहुत थोडे से मामलो मे ही अपराधी पकड मे आ पाते है या उन्हे खोजा जाता है क्योकि नियमत पुलिस सावधानी के साथ ऐसे मामलो की छानवीन से वचती रहती है। और यह समझने का लेशमात्र भी कारण नही है कि उन देशो मे, जहा यौन विपरीतता के खिलाफ कानून वनाए जाते है, समलैंगिक व्यक्तियो का अनुपात अपेक्षाकृत कम होता है या अपेक्षाकृत कम स्पष्ट होता है। उदाहरण के लिए फ्रास मे, जहा प्राचीन राजतन्त्र के जमाने मे एक यौन विपरीतायुक्त व्यक्ति कानून के अनुसार जिन्दा जला दिया जा सकता था, यौन विपरीतता कभी-कभी फैशन समझी जाती थी और खुले आम स्पष्ट रहती थी, पर आज वहा वस्तुस्थिति इससे विलकुल उल्टी है। इन तथ्यो को दृष्टि मे रखकर आज एक आन्दोलन चल रहा है कि उन मामलो के सिवाय जिनमे समलैंगिक कार्य समाज-विरोधी हो जाते है, समलैंगिक कार्यो पर दी जाने वाली सजा को उठा लिया जाए, और इस आन्दोलन को डाक्टरो और विधि-

शास्त्रियो का समर्थन समान रूप से प्राप्त है। इस तरह की सजा को हटा देने के पक्ष मे यह बहुत तगडा तर्क है कि इससे जिन देशो मे समलैंगिकता को दण्डनीय अपराध माना जाता है, उन देशो मे समलैंगिकता को गौरव प्रदान करने के आन्दोलन की जड कट जाती है। और यह तो स्पष्ट ही है कि गौरवदान की प्रवृत्ति अवाञ्छनीय और बहुत से मामलो मे हानिकारक भी है।

सहायक पुस्तक-सूची

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex Vol II 'Sexual Inversion'

एफ० ए० ई० क्र्यू, आर्ट—'Sex' in Outline of Modern Knowledge

जी० मैरेन.न—The Evolution of Sex and Intersexual Conditions

एम० डब्ल्यू० पेक—'The Sex Life of College Men,' Journal of Nervous and Mental Diseases, Jan 1925

जी० वी० हैमिल्टन—A Research in Marriage

के० बी० डैविस—Factors in the Sex Life of Twenty-two Hundred Women

एल० आर० ब्रोस्टर—'A Review of Sex Characters,' British Medical Journal, 2 May, 1931

वेरनर पिक्टन—'Male Prostitution in Berlin,' Howard Journal, 1931

यौन विपरीतता का निदान

यह पहले ही बताया जा चुका है कि बच्चो मे यौन आवेग आगे चलकर वयस्को मे बनने वाले उसके रूप की अपेक्षा अधिक बिखरा रहता है। सम्भवत इस बिखराव के फलस्वरूप वह भिन्न लिग के व्यक्तियो पर उतना अधिक केन्द्रित नही रहता। मैक्स देसवार तो इतने आगे बढ गए कि उनका कहना है कि चौदह या पन्द्रह वर्ष की उम्र तक लडको और लडकियो दोनो मे ही यौन सहजात साधारणत प्रभेदरहित होता है। अभी हाल ही मे (विलियम जोन्स और अन्य लोगो

का अनुसरण करते हुए) फ्रायड ने बार-बार कहा है कि छोटी उम्र के कर्ताओं मे सामान्यत सही दिमाग तौर पर स्पष्ट समलैंगिक प्रवृत्ति रहती है। सैद्धान्तिक रूप से यह दृष्टिकोण पूरी तरह सही है। चूंकि प्रत्येक व्यक्ति मे भिन्न लिग के शारीरिक जीवाणु मौजूद रहते हैं, इसलिए यह अनुमान करना उचित ही है कि उसमे मानसिक जीवाणु भी होते होगे। और चूकि बचपन मे उसकी यौन विशेषताए (मानसिक और शारीरिक) अविकसित रहती हैं इसलिए हमे विरुद्ध विशेषताओ के अपेक्षाकृत स्पष्ट होने की आशा करनी चाहिए।

बचपन मे समलैंगिक प्रवृत्ति के प्रकट होने का उन नतीजो से मेल बैठ जाता है जिनपर शरीरवैज्ञानिक स्वतन्त्र रूप से पहुचते हैं। इस तरह हीप का निष्कर्ष है कि प्रमाणो के अनुसार "विशुद्ध नर या मादा प्राणी जैसी कोई चीज ही नही है, सभी जानवरो मे किसी न किसी अश मे दोनो ही लिगो के तत्त्व रहते हैं।" इस निष्कर्ष के कुछ कारण तो बहुत साफ हैं और यह बहुत समय पहले से यौन विपरीतता की सब से अधिक उपयुक्त और तर्कसगत व्याख्या के रूप मे माना जाता रहा है। यह अच्छी तरह समझ मे आ जाता है कि बचपन मे जब सब से शक्तिशाली लैंगिक तत्त्व इतना विकसित नही होता कि वह दूसरे प्रच्छन्न लैंगिक तत्त्व को दबा पाए, तो प्रच्छन्न तत्त्व आसानी के साथ सतह पर प्रकट हो जाता है। सन् १६०५ मे फ्रायड ने लिखा था—"अभी तक मुझे किसी पुरुष अथवा स्त्री के एक भी ऐसे मनोविश्लेषण से साबका नही पडा जिसमे समलैंगिकता का यथेष्ट तत्त्व न आ जाता हो।" यदि हम एक इतने तीक्ष्णदृष्टिसम्पन्न और अनुभवी वैज्ञानिक के इस कथन को मनोविश्लेषण के रोगग्रस्त कर्ताओ के लिए सत्य मान लेते हैं तो इतना अवश्य ही और कह देना चाहिए कि अपेक्षाकृत सही-दिमाग व्यक्तियो और रोगियो मे प्रभेद की कोई स्पष्ट सीमारेखा नही है। यह तत्त्व बहुत, कभी-कभी इतना धीमा रह सकता है कि किशोरावस्था के पश्चात् वह पकड मे ही न आए।

इसलिए समलैंगिक तत्त्व की मौजूदगी को स्वीकार कर लेने का अर्थ यह नही है कि यौन आवेग की शैशवकालीन पूर्णत प्रभेदरहित दशा के अस्तित्व मे विश्वास आ जाता है। यह सच है कि कुछ बडे स्कूलो मे (उल्लेखनीय रूप से इग्लैंड के पब्लिक स्कूलो मे, जहा अभिजातवर्गो के लडके पढते हैं) समलैंगिकता पाई जाती है, साथ ही यह भी मालूम होता है कि एक प्रकार की परम्परा से उसे सहायता मिलती है, पर ये दशाए अपवाद मालूम होती हैं। हम मे से बहुत से लोग अपने प्रारम्भिक और विद्यार्थी-जीवन की ओर दृष्टि डालते हुए ऐसे सम्पर्क की याद नही कर सकते जो समलैंगिक आकर्षणो के अस्तित्व का सबूत बन सके।

यदि थोडे-बहुत यौन आकर्षण थे भी, तो उसका सुख पूर्ण रूप मे भिन्न लिंग के व्यक्तियों की ओर था।

ऊपर बताई गई बातो से इस बात की सत्यता मे कोई फर्क नही आता कि लडको मे कमोबेश समलैंगिक रूमानी प्रेम पाया जाता है, जबकि लडको की अपेक्षा लडकिया बहुत अधिक, अपनी उम्र से कुछ ज्यादा उम्र की स्त्रियो और प्राय अपनी शिक्षिकाओ के प्रति आसक्त होती है। जो भी हो, जब ऐसी भावनाओ का आदान-प्रदान होता है और यहा तक कि जब उनकी परिणति निश्चित रूप से यौन अभिव्यक्ति और परितृप्ति मे होती है, तब भी जल्दबाजी मे यह नही समझना चाहिए कि वह पाप का सूचक है जिसके लिए कडी सजा दी जाए, या वह बीमारी है जिसका इलाज किया जाए। एक बहुत बडे अंश मे इन मामलो मे एक अनिवार्य तरुणसुलभ सोपान होता है। यदि पात्र की भावी ख्याति के बारे मे कुछ न भी कहा जाए तो भी उसकी स्नायविक और मानसिक प्रवृत्ति को इस धारणा से हानि पहुच सकती है कि ऐसी अभिव्यक्तिया रोगग्रस्त या पापपूर्ण है, जब कभी जरूरत हो तो इन दशाओ से एक उदार शिक्षक या अभिभावक अच्छी तरह निपट सकता है, जो पात्र को सामान्य यौन शिक्षा देते समय उसमे आत्मसम्मान और दूसरो के हित के प्रति आदर की भावना भर सकता है। लडकियो मे ये अभिव्यक्तिया अक्सर दुर्व्यवहार से बच जाती है। कुछ तो इसलिए कि लडकियो मे इनका बहुत अधिक प्रचलन है और कुछ इसलिए कि स्त्रिया इन अभिव्यक्तियो के प्रति पुरुषो की तुलना मे सहिष्णुतापूर्ण रुख रखती है, कभी-कभी तो उसमे हाथ भी बटाती है।

जो भी हो, समलैंगिकता की इन अस्थायी अभिव्यक्तियो और जन्मजात यौन विपरीतता मे, जो यौन आवेग और आदर्शो के स्थायी जीवनव्यापी निर्देशन का सूचक हो सकती है, फर्क किया जाना चाहिए। पहले से ही कुछ बच्चो मे यौन आवेग भिन्न लिग की दिशा मे न मुडकर निश्चित रूप से अपने ही लिग की ओर झुका रहता है। जो भी हो, जन्मजात यौन विपरीतता का निदान तब तक पूर्ण निश्चय के साथ नही किया जा सकता जब तक कि किशोरावस्था पूर्ण रूप से पूरी न हो जाए। उदाहरण के लिए विश्वविद्यालय का एक सुरुचिसम्पन्न, परिमार्जित और बौद्धिक रूप से उन्नत तरुण छात्र अपने ही लिग के आकर्षक और मनोनुकूल व्यक्तियो से घिरे रहने के कारण स्त्रियो के प्रति उदासीन रह सकता है। वह अपने ही लिग के व्यक्ति से प्रबल और भावनात्मक मित्रता और प्रसन्नता की कामना कर सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह स्वभाव से यौन विपरीतायुक्त होगा। इतने पर भी जब वह विश्वविद्यालय से बाहर निकलकर

दुनिया में जाता है तो वह यह जान जाता है कि अन्ततः साधारण मनुष्यों की सामान्य वासनाए उसमे भी है। सचमुच ही व्यक्ति की जब तक पच्चीस साल या उससे भी अधिक की उम्र न हो जाए, हम यह अच्छी तरह से निश्चित नही कर सकते कि उसमे मौजूद समलैंगिक आवेग सही दिमाग के विकास के सोपान के अन्तर्गत है या नही। यहा तक कि वयस्कावस्था मे पहुचने के बहुत बाद भी यह हो सकता है कि समलैंगिक आवेग मुडकर भिन्नलैंगिक आकर्षण या इसके सिवाय इससे भी अलग बिलकुल उभलैंगिक हो जाए।

पर यह भी सम्भव है कि बहुत पहले से ही हमे ऐसे ठोस कारण दिख जाए कि हम यह विचार कर ले कि प्रस्तुत व्यक्ति जन्मजात यौन विपरीततायुक्त है। यदि हम असाधारण यौन परिपक्वता के साथ-साथ समलैंगिक व्यक्तियो के प्रति केन्द्रित आकर्षण देखे और भिन्नलिंग के प्रति आकर्षण का अभाव पाए, यद्यपि यह सम्भव है कि साथ ही स्त्रियोचित दिलचस्पियो तथा कार्यों के प्रति आकर्षण हो, साथ ही यदि पारिवारिक इतिहास से यह पता लगे कि स्नायविक अस्वाभाविकता या झक्कीपन के प्रति झुकाव है तो हम उस हालत मे निश्चयतापूर्वक तो नही कह सकते, पर यह सन्देह जरूर कर सकते हे कि हमारा साबका जन्मजात विपरीतता-युक्त व्यक्ति से पड रहा है।

दूसरी दशाओ मे यह भी हो सकता है कि समलैंगिक प्रवृत्ति जीवन मे काफी बाद को प्रकट हो, और पहले न प्रकट हो। पहले यह मान लिया जाता था कि इन मामलो मे यह दशा जन्मजात न होकर वातावरणजन्य होती है। जो भी हो, आज बहुत से लोग यह मानने से इन्कार करते है। वे यह मानते हे कि वह दशा बाधित जन्मजात विपरीतता की ही विकसित अवस्था है, जो किसी जन्मजात प्रवृत्ति के देर से विकसित होने के कारण होती है।

इस तरह हम इस नतीजे पर पहुचते है कि हमे एक तरफ सच्ची जन्मजात यौन विपरीतता (चाहे वह कम उम्र मे ही प्रकट हो जाए या बाधित होकर बाद मे), उभलैंगिक आकर्षण–जिसमे व्यक्ति का यौन आवेग दोनो ही लिगो के व्यक्तियो की ओर जाता है (इनमे से सभी तो नही पर अधिकाश मामले ऐसे यौन विपरीतता-युक्त व्यक्तियो के होते हैं जो स्वस्थ स्वभाव के हो जाते हे)–और दूसरी तरफ छद्म-समलैंगिक यौन विपरीततायुक्त व्यक्तियो के व्यापक और अस्पष्ट वर्ग मे–जिनकी विपरीतता परिस्थितियो (जैसी कि नाविका की होती है) बुढापे की नपुसकता अथवा अस्वाभाविक अनुभूतियो के लिए जानबूझकर की जाने वाली खोज के कारण होती है–प्रभेद करना पडेगा। यहा तक कि छद्म-समलैंगिकता मे भी प्रच-लित मत के अनुसार हमे यह स्वीकार करना पडेगा कि वह भी स्वाभाविक जैविक

आधार पर स्थित है और इसलिए उसे पूर्ण रूप से परिस्थितिजन्य या अर्जित नही माना जा सकता, वल्कि वह एक सुप्त झुकाव का परिणत रूप है।

यौन विपरीतता का वहुत अधिक महत्त्व कुछ तो इसलिए है कि यदि हम भूत-काल के और आधुनिक काल के प्रख्यात राजाओ, राजनीतिज्ञो, कवियो, मूर्तिकारो, चित्रकारो, सगीतकारो और अध्येताओ को एक तरफ रख दे तो भी वह ऐसे व्यक्तियो मे पाई जाती है जो वुद्धि और चरित्र की दृष्टि से औसत से ऊचे दरजे के होते है। शायद यही कारण है कि यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति आसानी से पकड मे नही आते। वहुत से डाक्टरो का विश्वास है कि उन्होने कभी किसी यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति को नही देखा है, यहा तक कि सर जार्ज सेवेज जैसे अनुभवी मनश्चिकित्सक ने एक वार कहा था कि शायद ही उन्हे कभी कोई यौन विपरीततायुक्त मिला होगा। एक दूसरे प्रख्यात मनश्चिकित्सक का अनुभव भी वहुत शिक्षाप्रद है। नैके अपनी जानकारी मे कभी किसी यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति से नही मिले थे। एक वार उन्होने हिर्शफेल्ड को—जिनका इस क्षेत्र मे अन्य किसी डाक्टर की अपेक्षा वहुत विस्तृत अनुभव है—लिखा कि वे नैके के घर किसी यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति को भेज दे। नैके के आश्चर्य का उस समय ठिकाना नही रहा, जव उन्होने देखा कि भेजे हुए व्यक्ति से वे सुपरिचित हैं, जो ससुराल की तरफ से उनका निकट-सम्वन्धी भी था। जव तक कोई परिस्थिति हमारी आखे न खोल दे, साधारणत हम यह खोजना ही शुरू नही करते कि प्रत्येक सामाजिक वातावरण मे यौन विप-रीततायुक्त व्यक्ति पाए जाते है। जो भी हो, केवल वे ही लोग अपनी इस विपरी-तता का प्रदर्शन करते है जो सव से नीची, सव से पतित और कभी-कभी भाडे के टट्टू वर्ग के होते है। समय-समय पर उच्च स्थिति के और अक्सर वडे योग्य व्यक्तियो द्वारा की जाने वाली आत्महत्याए और एकाएक रहस्यमय तरीके से गायव हो जाने की घटनाए अक्सर यौन विपरीतता से सम्वन्धित होती है, यद्यपि दुर्घटना होने के वहुत वाद तक भी उसका कारण साधारण जनता के लिए रहस्य ही वना रहता है। इन व्यक्तियो ने सम्भवत कभी भी डाक्टरो पर इतना विश्वास नही किया कि उन्हे अपना रहस्य वतला दे। वे समझते है कि ऐसा करना व्यर्थ होगा और औसत दर्जे का डाक्टर उनकी वात सुनकर सचमुच न भी चौके या उसे कर्ता से घृणा न भी हो तो भी उसकी इतनी तैयारी और योग्यता नही होती कि वह ऐसी दशाओ का इलाज कर सके।

एक डाक्टर अत्यत चरित्रवान् और वुद्धिमान् व्यक्ति होते हुए भी स्वय जन्म-जात यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति है, यद्यपि उसके नैतिक सस्कारो ने उसे अपने आवेगो की परितृप्ति नही करने दी। यह डाक्टर एक ससारप्रसिद्ध डाक्टरी

शिक्षा के केन्द्र मे अपनी शिक्षा के सबध मे लिखता है कि—"यौन विपरीतता के सबध मे सब से पहली बार उल्लेख चिकित्साशास्त्रीय न्याय-क्षेत्रशास्त्र की कक्षा मे किया गया था। पर उस प्रसग मे भी इस बात की बिलकुल ही चर्चा नही की गई थी कि कुछ असुखी व्यक्तियो मे यौन विपरीतता स्वाभाविक हो सकती है। न तो उसमे त्रिविध असामान्य और अस्वाभाविक कार्यो के बीच मे कोई भेद किया गया था। इन सब को साधारण व्यक्तियो की अपराधी वृत्ति या पागलपन की अभि-व्यक्तियो के साथ मिलाकर बताया गया था। एक विद्यार्थी के लिए, जो इस सबध मे गभीरता के साथ सचेत हो रहा था कि उसके और उसके साथियो के यौन चरित्रो मे गहरा भेद है, इससे बढकर उलझन और अशाति पैदा करने वाली अन्य कोई बात नही हो सकती थी। इन बातो का नतीजा यह हुआ कि पहले की तुलना मे मै और भी एकातसेवी हो गया। यह और भी अधिक दुर्भाग्यपूर्ण रहा कि न तो पद्धतिगत औषध-सबधी श्रेणी मे और न चिकित्सा पर दिए गए व्याख्यानो मे ही इस विषय का कोई उल्लेख रहता था। सभी प्रकार के विरल रोगो पर, जिनमे से कुछ से तो पिछले इक्कीस साल की व्यस्त डाक्टरी के दौरान मे मेरा एक बार भी साबका नही पडा, ब्योरेवार विचार किया गया पर इस विषय के बारे मे हमे पूर्णत अधकार मे रखा गया, जो मेरे लिए और मेरी दृष्टि से मेरे मनचाहे धधे के लिए इतना महत्त्वपूर्ण था।" डाक्टरी शिक्षा मे यौन समस्याओ के उल्लेख न होने का अनुभव हम लोगो मे से प्राय सभी को है, यद्यपि इस प्रकार की त्रुटियुक्त शिक्षा अक्सर व्यक्तिगत रूप से विद्यार्थी की अपेक्षा उन लोगो के लिए अधिक दुर्भाग्यपूर्ण रही है जिनकी वह सेवा कर सकता था। सौभाग्य से यह वस्तुस्थिति तेजी से बदल रही है।

जो भी हो, ऐसे लोग जो स्पष्ट रूप से दूसरे मामलो मे असाधारण है, चाहे वे पतित हो या प्रतिभाशाली व्यक्ति के रूप मे हो, उन्हीमे यह त्रुटि पाई जाती हो ऐसी बात नही, यद्यपि इन लोगो के बीच वह कुछ अधिकता से पाई जाती है। इसमे सदेह नही कि वह औसत आबादी के अच्छे-खासे अनुपात मे ऐसे लोगो के बीच भी पाई जाती है जिन्हे औसत लोगो से अलग नही किया जा सकता। कभी-कभी डाक्टरो द्वारा भी यौन विपरीततायुक्त व्यक्तियो का 'जनाने' वर्ग के रूप मे उल्लेख किया जाता है, पर असली बात यह नही होती। अवश्य ही यौन विप-रीततायुक्त व्यक्तियो का एक वर्ग इस प्रकार का हो सकता है। इस वर्ग के लोग शारीरिक या मानसिक रूप से शिथिल हो सकते है, वे आत्मसज्ञान, घमडी, आभू-षणो और हीरे-जवाहिरात और सजधज के प्रेमी हो सकते है। ऐसे पुरुषो मे वेश्याओ के लक्षण रहते है और कुछ मामलो मे तो वे पुरुष-वेश्या भी बन जाते है,

पर ऐसे लोग वास्तविक या मिजाज की दृष्टि से स्त्री-वेश्याओ के तुल्य नही होते। बात यह है कि स्त्री-वेश्या चाहे जो कुछ भी हो, वह स्त्री ही रहती है। यौन विपरीततायुक्त व्यक्तियो की एक बडी सख्या असाधारण रूप से परिमार्जित, अनुभूतिशील या भावुक रहती है, पर बहुत से स्नायविक रोगो से अल्पपीडित कई व्यक्तियो के बारे मे भी यही कहा जा सकता है, जो समलैंगिक नही होते। अन्य लोग, स्त्री और पुरुष दोनो ही प्रकट तौर पर किसी ऐसे विशेष लक्षण द्वारा अलग नही किए जा सकते जिससे यौन आवेग का विकृत होना दिखाई पडे। यही वह तथ्य है जो यह बतलाता है कि क्यो इतने बहुत से लोग यह विश्वास करते है कि उनका कभी किसी यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति से साबका नही पडा, जब कि साधारण जनता मे यौन विपरीततायुक्त व्यक्तियो का अनुपात सावधानी के साथ विशेषज्ञो द्वारा की गई जाच से कम से कम एक प्रतिशत से भी ऊपर पाया गया है।

जैसा कि पहले ही दिखलाया जा चुका है, यह सम्भव जान पडता है कि यौन विपरीतता के प्रचलन की मात्रा अलग-अलग देशो मे अलग-अलग होनी है। हा, यह कहा जाता है कि दक्षिण यूरोप के कुछ खास हिस्सो मे शायद वहा के लोगो की खास आदतो और परम्पराओ के कारण यौन विपरीतता काफी अधिक है। कभी-कभी विभिन्न देशो के लोग यह कहते है कि उनके देश मे विदेशो की तुलना मे यौन विपरीतता का कम प्रचलन है। पर वे वास्तविक तथ्यो की जानकारी न होने से ही ऐसा कहते है। दिखलाई देने वाले अतर सिर्फ ऊपरी और ज्यादातर उस देश मे यौन विपरीतता के प्रति प्रचलित सामाजिक और कानूनी दृष्टिकोण के कारण होते है। इसका मतलब यह नही है कि वह उन देशो मे अधिक पनपता है जहा कानून उदार है क्योकि कठोर दमनकारी कानूनो के मौजूद होने से उन्हे समाप्त करने के लिए एक जोश भरा प्रचार हो सकता है जो यौन विपरीतता के प्रचलन की ओर ध्यान आकर्षित करेगा। समस्त यौन विच्युतियो मे समलैंगिकता सब से अधिक मात्रा मे पाई जाती है, क्योकि यद्यपि मैथुनिक प्रतीकवाद कुछ कम और अविकसित अश मे यौन विपरीतता की अपेक्षा सभवत अधिक पाया जाता है, फिर भी उनका प्रचलन इतना नही होता जितना कि यौन विपरीतता का होता है। बहुत से मामलो मे इस गडबडी के कर्ताओ की शक्ति और चरित्र के कारण भी इस प्रचलन पर और भी ज्यादा जोर दिया जाता है।

साधारण रूप से औसत बुद्धि और चरित्र के लोगो के बीच यौन विपरीतता के पाए जाने की मात्रा को जो क्रमश स्वीकृति मिल रही है, उससे इसकी और सचमुच ही दूसरी यौन गडबडियो की प्रकृति के सबध मे मनश्चिकित्सको के मत मे काफी सुधार हो गया है। मध्ययुग और प्राचीन काल मे समलैंगिकता को सिर्फ

अप्राकृतिक समलैंगिक व्यभिचार और स्त्रियो मे प्रचलित विपरीतता को ट्राइवड-वाद के रूप मे ही माना जाता था और वह ऐसा पाप और अपराध समझा जाता था जिसका प्रायश्चित्त अपराधी को जिन्दा जलाकर होता था। उन्नीसवी सदी मे भी बहुत दिनो तक वह घृणित पतितावस्था की अभिव्यक्ति मानी जाती रही। इसके वाद उसे पागलपन के अथवा हर हालत मे पतन के लक्षण के रूप मे देखने की प्रवृत्ति रही। यह दृष्टिकोण अब पुराना पड गया है, जो उस हालत मे अपरिहार्य है जब हम देखते हैं कि ऐसी विच्युतिया मानसिक रूप से समर्थ और नैतिक रूप से सदाचारी और आत्मसयमी व्यक्तियो मे पाई जाती है और उनमे से बहुत से तो किसी भी हालत मे अपने आवेगो से वेकाबू नही होते और कुछ तो किसी भी समय उनके सामने घुटने नही टेकते। जब तब सयोगवश होने वाली समलैंगिकता एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसके सबध मे यह कहा जा सकता है कि मनुष्य हर जगह प्राणिजगत् के उस हिस्से के स्तर पर ही है जिससे उसका सब से निकट सबध है। जन्मजात यौन विपरीतता एक गडवडी—भीतर से उत्पन्न प्रकारभेद है जिसके कारणो को समझना हमने शुरू कर दिया है। यौन विपरीतता उग्र भी होती है, तव भी वह उसी अर्थ मे रोगयुक्त दशा कही जा सकती है जिस अर्थ मे वर्णाधता या एल्बिनवाद[1] या आतो की अपस्थिति रोगग्रस्त दशा कही जा सकती है।

सहायक पुस्तक सूची

मोल—The Sexual Life of the Child

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex, Vol II 'Sexual Inversion'

फ्रायड—Collected Papers, Vol. III

कैथराइन डेविस—Factors in the Sex Life of Twenty-two Hundred Women

एडवर्ड कार्पेन्टर—The Intermediate Sex.

१ बाल और चमड़े का सफेद तथा आखो का गुलाबी होना।

एग्रोनवाद या रुचिक्षेत्रीय विपरीतता (भिन्नलिंगीय परिच्छदासक्तिवाद या सौंदर्यक्षेत्रीय विपरीतता)

यह एक ऐसी दशा है जिसे समलैंगिकता के साथ एक करके नही देखना चाहिए, यद्यपि कभी-कभी वह उससे सयुक्त रहती है और उसमे कर्ता या कर्त्री न केवल वेशभूषा के मामले मे, वल्कि साधारण रुचि, हाव-भाव और भावनात्मक झुकाव मे भी भिन्न लिग के साथ कमोवेश अपने को एक करके देखते है। पर इस एक-रूपता मे भिन्न लिग के यौन झुकाव का अभाव रहता है, स्वस्थ भिन्नलैंगिक झुकाव अक्सर स्पष्ट रहता है, किन्तु इतने पर भी यहा इस विषय पर विचार कर लेना सुविधाजनक होगा।

यह एक ऐसी दशा है जिसकी व्याख्या करना और उसे नाम देकर अलग कर देने का काम उलझन से भरा है। वहुत साल पहले मेरा इससे सावका पडा था, पर आगे और विचार करने के ख्याल से मैंने उसे छोड दिया। इसी वीच जर्मनी मे हिर्शफेल्ड की, जो इस समय तक समलैंगिकता पर एक प्रमुख अधिकारी विद्वान् के रूप मे मान्य हो चुके थे, दिलचस्पी वढी और उसे इन्होने यौन विपरीतता से अलग माना तथा 'भिन्नलिंगीय परिच्छदासक्तिवाद' का नाम दिया। इस दशा को उन्होने अपनी कई पुस्तको का मुख्य विषय वनाया। मैंने इस दशा के सम्वन्ध मे लिखे गए अपने पहले निवन्ध मे उसे रुचियो की यौन विपरीतता का एक प्रकार मानते हुए यौन सौन्दर्यक्षेत्रीय विपरीतता का नाम दिया। ये दोनो ही नाम सन्तोष-जनक नही है। भिन्नलिंगीय परिच्छदासक्तिवाद तो एकदम अनुपयुक्त है क्योंकि भिन्न लिग के वस्त्रो को पहनने की चाह तो इस दशा के दिखलाई देने वाले लक्षणो मे से सिर्फ एक ही लक्षण है और कुछ मामलो मे तो वह रहती ही नही है। दूसरी ओर यौन सौन्दर्यक्षेत्रीय विपरीतता से यह गलत सुझाव मिल सकता है कि इसका सम्बन्ध समलैंगिकता से भी है, यद्यपि इसमे इसका तत्त्व अक्सर मौजूद नही होता।

अन्तिम रूप से मैंने सन् १९२० मे इस दशा के लिए रुचिक्षेत्रीय नाम दिया। बहुत से लोगो ने इस सज्ञा को मान लिया और अब भी यही नाम सब से सुविधाजनक और उपयुक्त रूप से वर्णनात्मक है। यह सज्ञा सादवाद और मासोकवाद की तरह बरगडी के एक अच्छे परिवार के शेवेलियेर द एग्रोन द बोमो (१७२८–१८१०) के नाम पर वनाई गई। उस व्यक्ति में यह गडवडी विशिष्ट रूप से प्रकट थी। वह लुई पन्द्रहवे के अधीन फ्रांस का राजदूत था। अन्तत: उसकी मृत्यु लन्दन मे हुई, जहा साधारणत: लोग उसे स्त्री मानते थे, यद्यपि मृत्यु के बाद जव उसकी शव-परीक्षा की गई तो पता चला कि वह एक साधारण पुरुष था। एक अन्य अपेक्षाकृत

अल्पज्ञात व्यक्ति 'आबे द श्वाजी' (१६४४–१७२४) एओनवाद का कुछ बातो मे और भी विशिष्ट उदाहरण है । यह व्यक्ति भी फ्रासीसी और अभिजातवशीय था। उसने खुद अपने सस्मरण लिखे है, जिनसे और साथ ही दूसरे सूत्रो से मालूम होता है कि वह सभ्य और सामाजिक स्वभाव का था और अपनी इस गडवडी के बावजूद भी वह साधारणत लोकप्रिय था । वह परिमार्जित, हसमुख और कुछ-कुछ स्त्री-स्वभाव का था, साथ ही वह स्त्रियो का बहुत अधिक प्रशसक था। अवश्य उसकी वासना औसत दर्जे से कम थी, पर वह कम से कम एक बच्चे का बाप तो था ही। वह सच्चे अर्थ मे बौद्धिक रूप से उन्नत व्यक्ति था और अपने समय के सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियो का सम्मानित मित्र था। वह एक प्रख्यात धर्मशास्त्री, चर्च का इतिहासकार और फ्रासीसी अकादमी का वरिष्ठ सदस्य बना। इसके सदृश स्वभाव की स्त्रियो मे लेडी हेस्टर स्टानहोप और साथ ही जेम्स बेरी उल्लेखनीय है, जिन्होने अपने विख्यात और दीर्घ जीवन को पुरुषवेश मे बिताया और जो अग्रेजी सेना के डाक्टरी-विभाग की महानिरीक्षिका बनी। यह समझने का कोई कारण नही है कि इनमे से कोई भी स्त्री समलैंगिक थी।

एओनवाद विलक्षण रूप से एक बहुधा पाई जाने वाली गडवडी है। मेरे अपने अनुभव के अनुसार यौन विच्युतियो मे सब से अधिक पाई जाने वाली दशाओ मे समलैंगिकता के वाद उसीका नम्बर आता है। साधारण जीवन मे इसके शिकार कोई चौका देने वाले असाधारण लक्षण प्रदर्शित नही करते और वे साधारणत विलकुल पुरुष-स्वभाव के दिखलाई दे सकते है, पर कभी-कभी वे अति-अनुभूति-शील, एकान्तसेवी और अपनी बात किसीसे न कहने वाले होते है । वे अक्सर अपनी पत्नियो के प्रति ईमानदारी से आसक्त होते है, पर शायद ही कभी उनका यौन स्वभाव प्रवल रहता है । यहा तक कि जो लोग उनके सब से निकट रहते है, वे भी उनके गुप्त रग ढग का पता नही पाते। उनमे से सभी विपरीत वेश-भूपा (जैसा कि एडवर्ड कार्पेन्टर ने उसका नामकरण किया था) नही अपनाते, पर जब वे ऐसा करते है तो पूरी सफलता के साथ, अत्यन्त चतुरतापूर्वक और सूक्ष्म स्त्रियोचित तरीको को सहज वुद्धि से अपनाकर करते है, जिसे वे स्वाभाविक रूप से अपनाते है। यद्यपि वे अक्सर विपरीत यौन सम्बन्धो की इच्छा नही करते, फिर भी कभी-कभी पुरुष एओनवादी को स्त्री के अनुभवो––गर्भावस्था और मातृत्व की स्त्रियोचित अनुभूति प्राप्त करने की तीव्र लालसा होती है। वे मानसिक योग्यता मे औसत दर्जे से ऊपर रहते है और लेखक या अन्य किसी रूप मे प्रसिद्धि पा सकते है।

एओनवाद को कामात्मकता के सक्रमणकालीन अथवा मध्यान्तरकालीन

रूपो के वर्ग मे रखना चाहिए। पर उसके ठीक-ठीक उद्गम को समझाना आसान काम नही है । हम कीर्नान की इस बात से सहमत हो सकते है कि कभी-कभी विकास रुक जाता है, जो (जैसा कि मै पहले ही सुझाव दे चुका हू) शारीरिक दृष्टि से नपुसकता के पास होता है और जिसमे उसकी दशा कभी-कभी सचमुच ही सम्बद्ध रहती है। उसका सम्बन्ध शायद क्षरण-ग्रन्थियो के असन्तुलन मे है। यदि हम ऐसा मान ले तो पुन सन्तुलन प्राप्त करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक जानकारी के साथ सम्भावनाए पैदा हो सकती हैं।

मानसिक दिशा मे जैसा कि मै समझता हू, एक एओनवादी व्यक्ति उग्रतम अश मे प्रशसित लक्ष्य के अनुकरण के और उसके साथ एकरूप होने के सौन्दर्यात्मक वैशिष्ट्य को मूर्त करता है । एक पुरुष के लिए यह स्वाभाविक है कि वह खुद को उस स्त्री के साथ एकरूप करके देखे जिसे वह प्यार करता है। इस एकरूपता को एओनवादी बहुत दूर तक ले जाता है। इसमे उसे अपने भीतर के अति-अनुभूतिशील और स्त्रीसुलभ तत्त्वो से सहायता मिलती है, जो प्राय त्रुटियुक्त पुस्त्व से सम्बन्धित होते है । इसका आधार किसी न किसी मात्रा मे स्नायविक विकृति पर हो सकता है । ऐसा मालूम होता है कि असाधारण ढग की बाल्यावस्था मे मा से अत्यन्त लगाव होने पर एओनवादी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। फेनिकेल का मत है कि एओनवाद की विशिष्टता नपुसकीकरण जटिलता या अण्डकोपच्छेद से सम्बद्ध है । जो भी हो, सभी प्रकार की यौन विच्युतियो के सम्बन्ध मे वे यही कहते है और इस प्रकार इससे हमे आगे बढने मे कोई मदद नही मिल सकती। इसके साथ ही वे यह भी मजूर करते है कि एओनवादी स्त्री के सम्बन्ध मे यह बात लागू नही होती।

सहायक पुस्तक-सूची

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex, Vol VII 'Eonism '

होमबर्ग तथा जासेलीन—D' Eon de Beaumont His Life and Times

ओ० फेनिकेल—'The Psychology of Transvestism,' International Journal of Psycho-analysis, April, 1930

फ्लूगेल—The Philosophy of Clothes

चिकित्सा का प्रश्न

यौन विपरीतता जैसी अजीव दशा से विशेष समस्याए उत्पन्न हो जाती हैं। एक तरफ तो तगडे स्वास्थ्य के साथ ऐसा मालूम होता है कि कुछ-कुछ प्रकार-भेद-मात्र है। ऐसा नही मालूम होता कि कोई ऐसी बात हो रही है जो मनुष्य-जाति मे किसी बहुत ही आकस्मिक परिवर्तन की सूचना देती हो। इस प्रकारभेद से एक विशिष्ट क्रिया पर असर पडता है, यद्यपि यह एक ऐसी क्रिया है जिसका समस्त शरीर पर व्यापक और विस्तृत प्रभाव पडता है। यह उसी अर्थ मे प्रकार-भेद है जिस अर्थ मे वर्णान्धता एक प्रकारभेद है। असवल्ड स्वार्त्स अपने हाल ही के एक खोजपूर्ण निवन्ध मे इस वात पर अभी भी जोर देते है कि हमे समलैगिकता को रोगग्रस्त मानना चाहिए। वे रोगग्रस्त अवस्था की परिभाषा वडी सावधानी के साथ करते है। उनकी परिभाषा के अनुसार रोगग्रस्त अवस्था शरीर के कार्यकलाप-सम्वन्धी नियम की किसी एक इन्द्रिय के द्वारा हुक्म-उदूली है, जो उनके कथन के अनुसार सामान्यत शैशवकालीन अवस्थाओ के कायम रहने के कारण होती है। इस तरह की रोगग्रस्त अवस्था का पारिभाषिक महत्त्व प्राय वही रहता है जो विर्चाऊ के शब्द 'निदानात्मक' का है, पर स्वार्त्स की खोजे वहुत-कुछ वाल की खाल निकालने वाले अटकल-पच्चुओ मे भटक जाती है। यहा हम फ्रायड की उस स्थिति से दूर नही है जिसके अनुसार पूर्वप्रवृत्ति और अनुभव अच्छेद्य रूप से सम्वद्ध रहते है या फिर हम उन अधिकारी विद्वानो से दूर नही हे जो यह मानते है कि समस्त वास्तविक समलैगिकता का जन्मजात आधार होता है, जव कि वाहरी दवाव के कारण जो वातावरगजन्य रूप होता है वह छद्म-समलैगिकता मात्र है।

यहा हम प्रधानत उपचारात्मक वातो पर विचार नही कर रहे है। उनपर मेरेनान और अन्य लोग पूरे तौर पर विचार कर चुके है। पर समलैगिक दशाओ के सम्वन्ध मे इलाज का सवाल लगातार सामने आता रहा है, चाहे इसका सम्वन्ध सहजात यौन विपरीतता से हो या न हो। चूकि प्रस्तावित इलाज अक्सर मानसिक उपचारात्मक होता है, इसलिए हम मानसिक दृष्टि से उसकी उपयुक्तता पर विचार करने के लिए वाध्य है।

मै शल्य-चिकित्सा को एक तरफ छोड देता हू, क्योकि अभी तक वह सामान्य रूप से व्यवहार मे नही आई है। लिप्शुत्स एक ऐसे समलैगिक पुरुप के मामले का उल्लेख करते है जिसमे एक स्वाभाविक स्वस्थ पुरुष का-अण्डकोप लगाए जाने पर वह समलैगिक से भिन्नलैगिक हो गया और एक साल के भीतर ही खुद को शादी करने के लायक समझने लगा। इस प्रकार की कार्यवाही की सम्भावना और वाछ-नीयता के सम्वन्ध मे किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले हमे इस वात की जरूरत है

कि उपलब्ध मामलो मे से बहुत अधिक मामलो का निरीक्षण कर ले। किसी समय सभी मामलो मे इस प्रकार के किसी इलाज की जरूरत को पहले से ही मान लिया जाता था। पर ऐसी बात नही है, यद्यपि अभी तक कुछ अधिकारी व्यक्ति इस पक्ष मे है कि जहा मरीज इस बात के लिए उत्सुक हो कि ऐसा प्रयत्न किया जाए, वहा स्पष्टत जन्मजात यौन विपरीतता के मामलो मे भी इलाज की इस प्रणाली का अनुसरण करना चाहिए। जो भी हो, यदि हमारे सामने ऐसे मामले आए जो विपरीततायुक्त है और जिनकी जडे गहराई तक गई हुई है तो सगठित आदतो, धारणाओ और आदर्शो की व्यवस्था मे—जिसमे व्यक्ति के मूलभूत स्वभाव का अतिक्रमण सन्निहित है—परिवर्तन करने का प्रयत्न भी सावधानी के साथ करना चाहिए। यह याद रखना चाहिए कि यदि हम वास्तव मे एक स्थायी दशा पर विचार कर रहे हो, तब भी इलाज की सामान्य प्रणालियो का अनुसरण मुश्किल रहता है। सम्मोहन के जरिए दिए हुए सुझाव पहले अधिकाश यौन गडबडियो के बहुत से मामलो मे उपयोगी पाए जाते थे, पर वे सुविकसित जन्मजात विच्युतियो के लिए अपेक्षाकृत कम उपयोगी सिद्ध हुए है। उसका आसानी से प्रयोग भी नही किया जा सकता क्योकि कर्ता इस सुझाव का ठीक उसी तरह प्रतिरोध करता है जिस तरह सहीदिमाग कर्ता सम्मोहन के अधीन अपराध करने के सुझाव का प्रतिरोध करता है। कई साल पहले जब यौन विपरीतता को सामान्यत जन्मजात नही माना जाता था, तब श्रृकनोत्सिग ने यौन विपरीततायुक्त व्यक्तियो का वेश्यागमन की सहायता से सम्मोहन द्वारा इलाज करने मे बहुत समय नष्ट किया और बहुत कठिनाइया उठाई और उनका विश्वास भी था कि उन्हे सफलता मिली है, पर जब सफलता का सिर्फ यही अर्थ लिया जाए कि भिन्नलिंग के व्यक्ति के साथ मैथुन करने मे समर्थ होना ही सफलता है तो रोगी की सदिच्छा तथा सहयोग से यह सफलता प्राप्त हो सकती है, पर इस अर्थ मे सफलता-प्राप्ति का यह अर्थ नही होता कि आदर्श और आवेग वास्तविक तथा स्थायी रूप मे नई अथवा वाछनीय दिशा मे मुड गए है। नतीजा सिर्फ इतना ही हो सकता है, जैसा कि एक मरीज ने कहा था कि योनि के अन्दर हस्तमैथुन करने की क्षमता प्राप्त हुई है।

इन मामलो का इलाज करने के लिए फ्रायड की मनोविश्लेषण-प्रणाली का भी प्रयोग किया गया है और यह दावा भी किया जाता है कि इस प्रणाली मे कुछ सफलता भी मिलती है। जो भी हो, अब मनोविश्लेषकों मे यह मानने की प्रवृत्ति हो रही है कि जब विपरीतता की दशा निर्दिष्ट होती है (चाहे वह जन्मजात हो या न हो) तब यौन आवेग की दिशा मे परिवर्तन के उद्देश्य से मनोविश्लेषण का प्रयोग करना व्यर्थ है। मै ऐसे बहुत से समलैंगिक व्यक्तियो के विषय मे जानता हू

जिन्होंने मनोविश्लेषण-प्रणाली से अपना इलाज कराया है। कुछ तो बीच ही मे भाग खडे हुए, कुछ का यह कथन था कि उनपर लगभग कोई असर नही हुआ, कुछ को निश्चित लाभ हुआ, पर यह जो लाभ हुआ वह वढे हुए आत्मज्ञान के कारण हुआ, न कि यौन आवेग की दिशा मे किसी परिवर्तन के कारण। मुझे ऐसे किसी भी मामले की जानकारी नही है जिसमे समलैंगिकता का भिन्न लैंगिकता मे पूर्ण और स्थायी परिवर्तन हो सका हो। मोल के सम्पर्कात्मक आचार को शायद ध्यान देने योग्य तीसरी मनश्चिकित्सा-प्रणाली कहा जा सकता है, यद्यपि उसके प्रयोग के ढग मे क्रान्तिकारी रूप से कोई नवीन वात नही है। जो भी हो, वह सिद्धान्तत ठोस और व्यावहारिक है और एक ऐसे सयोग-सूत्र की खोज मे सन्निहित है जिससे कर्ता की विकृत इच्छाए स्वस्थ लक्ष्यो की ओर प्रवृत्त की जा सकती है। इस प्रकार यदि कर्ता लडको के प्रति आकृष्ट है तो उसमे वालस्वभावयुक्त स्त्रियो के प्रति आकर्षण पैदा किया जा सकता है। यह पहले से ही मालूम था कि यौन विपरीतता-युक्त व्यक्ति ऐसी वातो से प्रभावित होता है। इस प्रकार मेरे रोगियो मे से एक व्यक्ति जो स्वस्थ और सक्रिय जीवन व्यतीत कर रहा है उसकी आदते पुरुषो की सी है। वह अपनी समलैंगिक इच्छाओ का दमन करता है और शादी करना तथा पिता वनना चाहता है। उसने मैथुन करने की अनेक असफल चेष्टाए की। वाद मे माल्टा मे एक सार्वजनिक नृत्य के अवसर पर एक इटालियन लडकी से उसकी भेट हुई, जिसने उसे अपने घर आने का निमन्त्रण दिया। यह व्यक्ति लिखता है—"उस लडकी का छरहरा शरीर और चेहरा लडके जैसा था और उसके उरोज प्राय नही के वरावर थे। मै उसके मकान पर गया और उसे मैने पुरुष का पायजामा पहने हुए पाया। निश्चित रूप से मुझे उसके प्रति आकर्षण का अनुभव हुआ, पर इतने पर भी मै पुरुष का हिस्सा अदा नही कर सका। मै वापस आ गया, पर जैसे भी हो, इस वार मुझमे हमेशा की तरह विकर्षण की भावना नही थी और अगली रात को मुझे इस वात की खुशी हुई कि नतीजा सन्तोषजनक रहा। माल्टा से रवाना होने के पहले मै वहा अनेक वार गया, पर मुझे इस कार्य मे वास्तविक आनन्द कभी नही मिला, यद्यपि इस लडकी ने मुझे अपने प्रति आकर्षित कर लिया था, और ज्यो ही यह कार्य समाप्त होता था, त्यो ही मुझमे उससे पीठ फेर लेने की इच्छा होने लगती थी। तव से लगभग एक दर्जन व्यक्तियो के साथ मैने मैथुन किया। पर वह हमेशा एक रस्मअदायगी मात्र होता है और विकर्षण की भावना छोड जाता है। मै इस निष्कर्ष पर पहुचा हू कि मेरे लिए सामान्य भिन्नलैंगिक मैथुन हस्तमैथुन का सिर्फ एक खतरनाक और महगा रूप है।" पर कोई मनश्चिकित्सक उमसे अधिक अच्छा नतीजा पाने की आशा नही कर सकता।

यहां इतना और वता देना चाहिए कि इन सव प्रणालियों को यहां तक कि उन्हे भी जिन्हे कुछ सफल कहा जा सकता है, जव गहरी यौन विपरीतता के मामलो मे प्रयुक्त किया जाता है तो अधिक से अधिक उनमे उभलैंगिक आकर्षण की दशा पैदा हो सकती है जिससे मरीज दोनो लिगो के व्यक्ति के साथ परितृप्ति प्राप्त करने के योग्य हो जाता है। यौन आवेग के लगर का यह कृत्रिम रूप मे हटना अथवा ढीला पडना न तो चरित्र की स्थिरता और न किसी ऊची नैतिकता के ही अनुकूल है। और न तो यह कहा जा सकता है कि किसी यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति को प्रजनन मे समर्थ वनाना कोई अच्छी वात है। इसकी सम्भावना हो सकती है कि एक स्वस्थ जोडीदार के सयोग से एक यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति के अच्छी सन्तान पैदा हो, पर इसमे इतने गम्भीर जोखिम है कि हम यह नही कह सकते कि इन जोखिमो को उठाया जाए। जव कोई यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति अपनी हालत से वहुत असन्तुष्ट हो जाता है और जव वह स्वस्थ और स्वाभाविक वनने के लिए अत्यधिक उत्सुक रहता है, तव उसकी स्वाभाविक वनने की इच्छा का प्रतिरोध करना कोई सरल काम नही है। पर यह भी सम्भव नही है कि भावी सफलता की सम्भावनाओ के अथवा जव सफलता मिल जाए तो उसके नतीजो के सम्वन्ध मे कोई आशाजनक दृष्टिकोण लिया जाए। दूसरे शव्दो मे फिर भी अन्ततोगत्वा वुरे नतीजो की कुछ न कुछ सम्भावना वनी रहती है।

उस समय भी इलाज की गुजाइश हो सकती है जव यौन विपरीतता की प्रवृत्ति का दमन करने के लिए कोई प्रत्यक्ष प्रयत्न नही किया जाता और समलैंगिकता के वारे मे यह प्रसन्नताजनक और आसानी से चलने वाला दृष्टिकोण अपना लिया जाता है कि वह सिर्फ वदतमीजी का एक रूप है। (मैंने देखा है कि कई लोग इस तरह की वात करते है।) यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति कई हालतो मे आम तौर से और कई वार केवल यौन दृष्टि से दुश्चिन्ताजन्य स्नायविक रोग से ग्रस्त होता है। कुछ दशाओ मे वह यौन रूप से अति-अनुभूतिशील रहता है। उसमे शीघ्र उत्तेजनशीलता की वह दुर्वलता रहती है जो साधारणत अति-उत्तेजनशीलता के साथ पाई जाती है। अक्सर यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति अनुभूतिशील और भावुक होता है तथा कभी कभी वह अपनी यौन गडवडी के सम्वन्ध मे भय या दुश्चिन्ता से आतकित रहता है। इन दशाओ का इलाज साधारणत शान्त करने वाली दवाओ जैसे व्रोमाइड और कभी-कभी पुष्टिकर ओषधियो से हो जाता है। विजली से इलाज, स्नानोपचार, कसरत, हितकर कार्यो मे व्यस्त रहना, वायुपरिवर्तन आदि तमाम स्नायविक दुर्वलता को दूर करने वाले उपाय लाभदायक सिद्ध हो सकते है। वहुत से यौन विपरीततायुक्त व्यक्तियो का जव तक स्वास्थ्य अच्छा रहता है तव तक

वे अपनी यौन गडवडी के अस्तित्व के सम्बन्ध में प्रायः चिन्ता नहीं करते है। इस लिए जब कभी इलाज की जरूरत पडती है तो इसी आधार पर यह बहुत जरूरी है कि आवश्यकता के अनुसार कोई विशिष्ट डाक्टरी इलाज किया जाए और आरोग्य-शास्त्र की तथा स्वच्छता की आदत डालने पर जोर दिया जाए। इस तरह यौन विपरीतता तो दूर नही होगी, पर बुद्धिमानी के साथ मामले को समझने और सहानु-भूति से उस दुश्चिन्ता से मुक्ति मिल सकती है जो इस दशा से पैदा होती है। साथ ही इस गडबडी की अधिकता को नियन्त्रित किया जा सकता है और वह सुविवेचित आत्मसयम के अन्तर्गत लाई जा सकती है। अधिकाश मामलो मे केवल इतना ही जरूरी है और बहुत से मामलो मे सिर्फ इतना ही वाञ्छनीय है।

यौन विपरीततायुक्त व्यक्तियो के मामलो मे कभी-कभी शादी का सवाल उठता है, यद्यपि अक्सर ही यह सवाल बिना डाक्टर की सलाह लिए तय कर लिया जाता है। इलाज की एक प्रणाली के रूप मे, चाहे मरीज पुरुष हो या स्त्री, शादी को निरवच्छिन्न रूप से बिना किसी शर्त के ठुकरा देना चाहिए। यदि यौन सहजात पहले से ही उभलैंगिकता की ओर मुडा हुआ है तो शायद यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति के उभलैंगिक बनने की सम्भावना है, पर जब तक शादी होने के समय यौन विपरीतता का आवेग समाप्ति की ओर अग्रसर न हो गया हो, तब तक शादी से उसके समाप्त होने के अवसर कम से कम है। इसके विपरीत शादी होने पर यह परिस्थिति हो सकती है कि जीवनसाथी की तरफ से घृणा ही उत्पन्न हो और उसके फलस्वरूप यौन विपरीतता और उग्र हो जाए। ऐसे कई मामले हुए हैं, जिनमे ऊपर से सुखी दिखलाई देने वाला शादी के ही बाद ही यौन विपरीतता-युक्त व्यक्ति इस तरह खुलकर खेला कि वह कानून के फन्दे मे आ गया। शादी के बाद पति अथवा पत्नी से या शादी के बगैर किसी अन्य व्यक्ति के साथ स्वा-भाविक मैथुन को और कम से कम वेश्यागमन को यौन विपरीतता का इलाज नही माना जा सकता, जिसमे स्त्रिया ऐसे रूप मे सामने आती है जो यौन विप-रीततायुक्त व्यक्ति के भीतर विकर्षण ही पैदा करता है। भिन्न लिंग के परि-मार्जित और बुद्धिमान् व्यक्ति के साथ वासनारहित आदर्श मैत्री अपेक्षाकृत आकर्षक और सहायक होती है। साथ ही यदि भिन्न लिंग का यह वासना-सम्बन्ध-रहित मित्र उस प्रकार का हो जो समलैंगिक दृष्टिकोण से उसके लिए आकर्षक है तो इस बात की अधिक सम्भावना है कि उसके सम्पर्क से रोगी को अधिक फायदा होगा, बनिस्बत इसके कि मैथुन के प्रश्न पर सीधा ही पहुचा जाए। ऐसा यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति जिसकी गडबडी जन्मजात पूर्वप्रवृत्तियो पर आधारित रहती है, सम्भवत जीवनपर्यन्त यौन विपरीततायुक्त बना रहेगा और इसलिए

इसमे परिवर्तन लाने वाले प्रभाव क्रमिक और वहुमुखी होने चाहिए।

जहा किसी भी हालत मे यह नही माना जा सकता कि चिकित्सा के रूप मे मैथुन करने की सलाह दी जाए (चाहे यह मैथुन विवाहवन्धन के वाहर हो या अन्दर) वहा यह भी आवश्यक नही हे कि यह निष्कर्ष निकाला जाए कि ऊपर वताए गए लोगो के लिए विवाह का सर्वथा निषेध किया जाए। यह वात सभी गहरी यौन विच्युतियो पर लागू है। यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति अक्सर ही शादी करते दिखाई देते हैं, पर यह वाछनीय है कि ऐसे विवाह गैर-जानकारी मे अथवा भ्रामक आशाओ के साथ न किए जाए। इन दशाओ मे दाम्पत्य-जीवन के साथी अथवा साथिन को वहुत अधिक तरुण नही होना चाहिए और उन्हे पहले से ही स्थिति और भविष्य की सम्भावनाए वतला देनी चाहिए। यदि ऐसे जोडो के पति-पत्नी एक दूसरे के अनुकूल हो तो इस प्रकार किए गए विवाह कभी-कभी सहन करने योग्य यहा तक कि सुखी भी सिद्ध हो सकते हैं। पर यह हमेशा याद रखना चाहिए कि दोनो पक्षो को पूर्ण यौन परितृप्ति मिल सकने की वहुत थोडी ही सम्भावना है। यौन विपरीतता-युक्त व्यक्ति जव तक वास्तविक रूप से उभलिगगामी न हो (अधिकाश उभलिग-गामी व्यक्ति प्रधान रूप से समलैंगिक होते हैं) तव तक भिन्न लिग के किसी व्यक्ति के साथ वह घनिष्ठ नि सकोच आत्मीयता और भावनात्मक अतिरेक का अनुभव नही कर सकता, जो यौन प्रेम का सार है। यद्यपि ऐसी दशा मे यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति मे पुस्त्व हो सकता है, पर यह तभी सम्भव है जव वह यह कल्पना करे कि उसका मैथुन-साथी अपने ही लिग का है या वह अपने विचारो को अपने ही लिग के किसी आकर्षक व्यक्ति पर केन्द्रित करे। ऐसी परिस्थिति मे यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति को बहुत सन्तोष नही मिल सकता, साथ ही उसका साथी भी ऐसे सम्वन्ध के अधूरे होने के बारे मे स्पष्ट रूप से सज्ञान न होने पर भी अपने सहजात से यदि विकर्षण का नही तो असन्तोष और अवसाद का अवश्य ही अनुभव करता है। जव इस प्रकार का जोडा यौन परितृप्ति पाने की कोशिश नही करता और जव दोनो साथियो का सम्वन्ध दोनो मे समान रूप से पाई जाने वाली दूसरी दिलचस्पियो के आधार पर होता है तो इस प्रकार की शादी अधिक सुखी होती है।

यह एक गम्भीर प्रश्न है कि इन दिलचस्पियो मे सन्तान भी एक दिलचस्पी हो या न हो। पर इस प्रश्न का हमेशा ही 'नही' मे उत्तर देना आसान नही है। अवश्य एक सामान्य नियम के रूप मे यह निश्चित किया जा सकता है कि ऐसा व्यक्ति जो वनावट से समलैंगिकता की ओर पहले से ही झुका हुआ है उसका प्रजनन करना वाछनीय नही। जो कुछ भी हो, जब यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति अन्यथा स्वस्थ रहता है और उसका वश भी स्वस्थ रहता है तथा दूसरा साथी अथवा साथिन भी

पूर्ण रूप से स्वस्थ और सहीदिमाग होती है तो सही तौर पर यह आशा की जा सकती है कि बच्चे काफी अच्छे निकलेगे। अक्सर यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति को सन्तान की इच्छा होती है, सन्तान दूसरे साथी या साथिन को भी सान्त्वना प्रदान करती है और इस प्रकार उससे उनकी दाम्पत्य-एकता मजबूत हो सकती है, पर इस तरह की शादी अक्सर अस्थायी होती है, पति-पत्नी के अलग हो जाने अथवा स्थायी मनमुटाव की हमेशा सम्भावना रहती है । इस तरह पारिवारिक जीवन असन्तुष्ट होने का खतरा हमेशा बना रहता है।

आज समाज की जैसी बनावट है उसे देखते हुए जन्मजात यौन विपरीतता-युक्त व्यक्ति के हित मे सब से अच्छा यही होगा कि वह अपने खुद के आदर्शो अथवा आन्तरिक सहजातो को कायम रखते हुए स्वाभाविक बनने के प्रयत्न को छोड दे और साथ ही वह अपनी अस्वाभाविक इच्छाओ की अपेक्षाकृत भद्दे ढग से परि-तृप्ति को भी छोड दे यद्यपि उसे कभी-कभी ऐसा मालूम होता है कि असन्तोषजनक होने पर भी आत्ममैथुनिक परितृप्ति उसके लिए अपरिहार्य है । अपेक्षाकृत चरित्र-वान् व्यक्तियो मे भी यह बात पाई जाती है । ऐसा ही एक व्यक्ति, जिसने उन्नीस साल की उम्र के पहले समलैंगिक मैथुन का कुछ अनुभव किया था पर बाद मे उससे बिलकुल अलग रहा, लिखता है—"कभी-कभी मै महीनो हस्तमैथुन नही करता था और ऐसे मौको पर मै अपने दिमाग को अधिक सन्तुष्ट पाता था, यद्यपि इस दौरान मे मेरे मन मे पुरुपत्वपूर्ण प्रेम करने की इच्छा अधिक अनियन्त्रित रूप से बढ जाती थी। पर मै इसे प्रकट नही होने देता था और मेरे सब से अच्छे दोस्त भी यह जानकर दग रह जाएगे कि मै उनके प्रति भावुक हू। मुझे ही पता चलता है कि मै कितना क्या हू। अपने दोस्तो के लिए मै यौन रूप से साधारण बना रहता हू। मेरा विश्वास है कि मुझमे कोई ऐसी बात नही है जिससे तीक्ष्णदृष्टिसम्पन्न निरीक्षक को भी यह भास हो सके कि मुझमे भी कोई ऐसी वासना है जो पतित लोगो मे पाई जाती है । मै अपने को पतित अनुभव नही करता । मुझे अपनी इच्छाओ के लिए कभी शर्म महसूस नही हुई, यद्यपि दूसरे लोगो को मेरी इन बातो की जानकारी हो जाने पर मुझे शर्म का अनुभव होगा क्योकि ऐसी हालत मे मुझे नक्कू बनना पडेगा।"

कर्मठ जीवन बिताने वाले नौ-सेना के एक अफसर को भी, जिसे कभी सम-लैंगिक सम्पर्को का तजरबा नही रहा, यौन भावरहित मित्रता से काफी सन्तोप मिला है। वह लिखता है—"मै किसी भी तरह स्त्रीस्वभावयुक्त नही और अपनी ही पसन्द मे मैने एक कठोर और अक्सर खतरनाक जीवन बिताया है। ऐसे पुरुषो के साहचर्य की जिन्हे मेरे प्रति यौन आकर्षण हो, मुझे बहुत ज्यादा इच्छा रहती है

और मेरी जिन्दगी के सब से सुखी दिन ऐसे लोगो के साहचर्य मे बीते है । मेरी इच्छाओ मे सिर्फ यौन भावना ही नही होती, बल्कि उनमे लगभग पचास प्रतिशत उस पूर्ण मानसिक सामञ्जस्य की इच्छा रहती है जो ऐसे आकर्षण के साथ सम्बद्ध रहता है । इसे मै कही खो न दू, इस भय से मैने कभी खुलकर कोई बात नही कही और मै यह अनुमान करता हू कि पुरुष-वेश्या के साथ यह सामञ्जस्य असम्भव होगा । दूसरे पुरुषो से अलग ढग का होने के कारण अपनी शर्म पर मै काबू पा चुका हू और मै अब अपनी दशा को खुद के लिए स्वाभाविक समझता हू।"

इसमे सन्देह नही कि कुछ लोगो के लिए ऐसा करना मुश्किल से ही सम्भव हो सकता है और कई लोगो को उसके लिए कष्टकर सघर्ष करना पडेगा और उसमे उनके जीवन के अन्य कार्यो मे लगने वाली शक्ति की क्षति हो सकती है । पर यौन विपरीततायुक्त व्यक्तियो की एक बडी सख्या मे यौन आवेग वस्तुत बहुत प्रबल नही होता, यद्यपि उसकी अस्वाभाविकता उसे अनुचित रूप से चेतना के समक्ष प्रस्तुत कर सकती है और उसके मार्ग मे जो कृत्रिम निषेध प्रस्तुत किए जाते है उनसे कर्ता उनकी आवश्यकता और अधिक प्रबल रूप से अनुभव कर सकता है । यौन विपरीततायुक्त व्यक्ति के इस यौन आवेग को मनचाहे व्यक्ति की यौन भावरहित आदर्श मित्रता मे अधिक सन्तोष मिल सकता है । ऐसी मित्रता उन विचारो के अध्ययन से दृढ होती है जो खुद अफलातून और समलैंगिक भावनाओ से प्रभावित यूनानी कवियो की कृतियो मे प्रतिपादित किए गए है । इस-सम्बन्ध मे वाल्ट व्हिटमैन, एडवर्ड कार्पेन्टर और आन्द्रे जीद जैसे आधुनिक लेखको का नाम भी लिया जा सकता है ।

इसके अलावा यह भी याद रखना चाहिए कि विपरीत यौन आवेग विशेष रूप से उदात्तीकरण के लिए अधिक उपयुक्त होता है । फ्रायड का विचार है कि भिन्नलैंगिक आवेगो के स्थापित हो जाने के बाद ही भिन्नता, साहचर्य, दल-प्राणता और समस्त मानव-जाति के प्रति प्रेम की दिशा मे उदात्तीकरण का विकास हो सकता है । पर उसके लिए प्रतीक्षा करने का अर्थ यह होगा कि उदात्तीकरण को हमेशा के लिए स्थगित कर दिया जाए । न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी । सौभाग्य से हम अक्सर देखते है कि काफी कम उम्र मे और ऐसे व्यक्तियो मे जिनमे समलैंगिक आवेग निर्दिष्ट हो चुका है, प्राय उदात्तीकरण हो जाता है । ऐसा अक्सर हुआ है कि यौन विपरीततायुक्त व्यक्तियो ने अपने लिग के तरुण व्यक्तियो की भलाई के लिए अपने-आपको बडे जोश के साथ महत्त्वपूर्ण सामाजिक और परोपकार के कार्यो मे लगा दिया और ऐसे कार्यो से उन्हे आनन्द और सन्तोष प्राप्त हुआ ।

यहा समलैंगिक आवेगयुक्त एक और व्यक्ति का उदाहरण देना अप्रासगिक न होगा। ये व्यक्ति एक ऐसे क्वेकर परिवार के है जिसमे स्नायविक दुर्बलता की प्रवृत्तिया और प्रखर मानसिक योग्यता—दोनो ही बाते एकसाथ पाई जाती है। प्रस्तुत व्यक्ति मे भी ये पारिवारिक विशेषताए थी। बहुत कम हद तक ही उन्होने समलैंगिक आवेग के सामने आत्मसमर्पण किया। वे शादीशुदा है, यद्यपि उनमे भिन्नलिगगामी आवेग प्रबल नही है। वे लिखते है—"उभलिगगामी व्यक्ति सिर्फ एक व्यक्ति को प्रेम करने की बजाय समस्त मानव-जाति को प्रेम करता दिखलाई देता है। शायद यह एक महान् और अधिक उपयोगी प्रकार का समर्पण है। गवेषणापूर्ण मौलिक वैज्ञानिक निबन्धो मे अपने जीवन को प्रतिफलित करना कीडे-मकोडो की तरह बच्चे पैदा करने से कही अच्छा है।" कई बार समलैंगिक प्रवृत्ति वैज्ञानिक दिशा मे नही बल्कि धार्मिक दिशा मे मुड जाती है। एक पत्रप्रेषक ने (जिसने दान्ते का बहुत अध्ययन किया है) अपनी खुद की प्रवृत्ति को उभ-लैंगिक मानता है। इस सम्बन्ध मे वह लिखता है—"मेरा विचार है कि धर्म और सेक्स मे एक घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिन यौन विपरीततायुक्त व्यक्तियो को (चार पुरुषो को) मै जानता हू, वे परम भक्त है। मै भी चर्च आफ इगलैंड का एक भक्त हू। मेरे वैयक्तिक सिद्धान्त के अनुसार प्रेम का सार स्वार्थरहित भक्ति है और सेवा ही सच्चे सुख की एकमात्र कुजी है। व्यक्ति चाहे वह यौन विपरीततायुक्त हो या न हो, उसे कुछ विचारो को मन मे नही आने देना चाहिए, चाहे वे मन को कितना ही विचलित करे। मै लडको और लडकियो—दोनो मे ही सौन्दर्य के ऐश्वर्य को देख सकता हू, पर मै अपनी इस अनुप्रेरणा का उपयोग अपने धर्म और रोजमर्रे के कार्य के लिए करता हू। साथ ही मै यह कोशिश करता हू कि अन्यथा भावुक न बनू। मै अपने मानसिक विकास के सब से तूफानी हिस्सो मे से गुजर चुका हू। शायद किसी दिन किसी मनचाही उपयुक्त लडकी से मेरी भेट हो जाएगी और तब सन्तान के पिता होने का आनन्द मुझे अपने-आप मिल जाएगा।"

यह सच है कि ये उद्देश्य सिर्फ ऊचे दरजे के यौन विपरीततायुक्त व्यक्तियो के लिए ही आकर्षक है। पर यहा यह फिर से बता दिया जाए कि समस्त यौन विपरीततायुक्त वर्ग मे ऐसे लोगो की सख्या बहुत बडी है। वे पहले-पहल यह महसूस कर सकते है कि वे एक ऐसे ससार मे जो उनके लिए नही बना है, भटक रहे है। यह अच्छा होगा कि जब उन्हे शिक्षा दी जाए तो उनके ज्ञान के साथ-साथ उनके सुख और उनकी उपयोगिता को भी बढाया जाए। इस तरह उन्हे इस योग्य बना दिया जाए कि वे यह अनुभव करने लगे कि जिस दशा मे वे है उनके लिए उसी दशा मे इस दुनिया मे जगह है, और ऐसी जगह कि जिसने दूसरो को ईर्ष्या हो।

सहायक पुस्तक-सूची

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex, Vol II

एडवर्ड कार्पेन्टर—The Intermediate Sex and also My Days and Dreams (autobiography) Edward Carpenter . in Appreciation, edited by G Beith

अध्याय ६

विवाह

विषयप्रवेश (ब्रह्मचर्य की समस्या)

विवाह को कानून अथवा धर्म की स्वीकृति मिली हो या न मिली हो, फिर भी विवाह जीववैज्ञानिक अर्थ मे और कुछ हद तक सामाजिक अर्थ मे भी एक स्थायी यौन सम्बन्ध है। पर इसके पहले कि हम उसपर विचार करना शुरू करे, यह अच्छा होगा कि हम ब्रह्मचर्य की समस्या और उससे सबधित कठिनाइयो को, चाहे वे वास्तविक हो या कल्पित, सरसरी निगाह से देख ले।

यह समस्या कई सोपानो में से गुजर चुकी है। एक सदी पहले यह बहुत कम डाक्टरो के सामने आती थी और यदि आती भी थी तो डाक्टर सिर्फ इतना ही कह सकता था कि केवल विवाहिता पत्नी को छोडकर पुरुष के लिए ब्रह्मचर्य नैतिक और मैथुन अनैतिक है (यद्यपि गुप्त रूप से उसे छूट दे दी जाती थी), जबकि स्त्रियो के सबध मे यह प्रश्न ही नही उठता था क्योकि उनकी यौन आवश्यकताओ को मान्यता नही मिली थी। इसके बाद, हममे से बहुत से लोगो के जीवन-काल मे ही नई सामाजिक दशाओ के उदय और स्त्रियो के प्रति कुछ न कुछ मुक्त दृष्टि-कोण होने से लोग डाक्टर के पास पहुचने लगे। साथ ही डाक्टर से यह माग की गई कि समस्त ससार के लिए वह इस सबध मे सामान्य सिद्धातो का उद्घोषण करे। इस माग से ब्रह्मचर्य के हानिरहित होने के सबध मे विविध प्रकार की अस्पष्ट धारणाओ का निर्माण हुआ, जिनका कुछ भी अर्थ नही निकलता था और जिन्हे ऐसे अर्थ मे भी प्रयुक्त किया जा सकता था जो उनके प्रतिपादको को अभीष्ट नही था। उदाहरण के लिए सतोष के साथ ऐसे लोग उन्हे उद्धृत कर सकते थे जो इस बात की वकालत करते है कि सन्तानोत्पत्ति के उद्देश्य के अलावा मैथुन नही करना चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि सम्पूर्ण जीवनकाल मे सिर्फ दो या तीन बार ही मैथुन करना चाहिए। इसमे सन्देह नही कि पेशियो और ग्रथियो की प्रणाली के उपयोग मे सयम आम तौर मे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नही है, इसी प्रकार विशिष्ट यौन पेशियो और ग्रथियो के उपयोग मे भी सयम समान रूप

सहायक पुस्तक-सूची

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex, Vol II

एडवर्ड कार्पेन्टर—The Intermediate Sex and also My Days and Dreams (autobiography) Edward Carpenter in Appreciation, edited by G Beith

विवाह

विषयप्रवेश (ब्रह्मचर्य की समस्या)

विवाह को कानून अथवा धर्म की स्वीकृति मिली हो या न मिली हो, फिर भी विवाह जीववैज्ञानिक अर्थ मे और कुछ हद तक सामाजिक अर्थ मे भी एक स्थायी यौन सम्बन्ध है। पर इसके पहले कि हम उसपर विचार करना शुरू करे, यह अच्छा होगा कि हम ब्रह्मचर्य की समस्या और उससे सबधित कठिनाइयो को, चाहे वे वास्तविक हो या कल्पित, सरसरी निगाह से देख ले।

यह समस्या कई सोपानो मे से गुजर चुकी है। एक सदी पहले यह बहुत कम डाक्टरो के सामने आती थी और यदि आती भी थी तो डाक्टर सिर्फ इतना ही कह सकता था कि केवल विवाहिता पत्नी को छोडकर पुरुष के लिए ब्रह्मचर्य नैतिक और मैथुन अनैतिक है (यद्यपि गुप्त रूप से उसे छूट दे दी जाती थी), जबकि स्त्रियो के सबध मे यह प्रश्न ही नही उठता था क्योकि उनकी यौन आवश्यकताओ को मान्यता नही मिली थी। इसके बाद, हममे से बहुत से लोगो के जीवन-काल मे ही नई सामाजिक दशाओ के उदय और स्त्रियो के प्रति कुछ न कुछ मुक्त दृष्टि-कोण होने से लोग डाक्टर के पास पहुचने लगे। साथ ही डाक्टर से यह माग की गई कि समस्त ससार के लिए वह इस सबध मे सामान्य सिद्धातो का उद्‌घोषण करे। इस माग से ब्रह्मचर्य के हानिरहित होने के सबध मे विविध प्रकार की अस्पष्ट धारणाओ का निर्माण हुआ, जिनका कुछ भी अर्थ नही निकलता था और जिन्हे ऐसे अर्थ मे भी प्रयुक्त किया जा सकता था जो उनके प्रतिपादको को अभीष्ट नही था। उदाहरण के लिए सतोष के साथ ऐसे लोग उन्हे उद्धृत कर सकते थे जो इस बात की वकालत करते है कि सन्तानोत्पत्ति के उद्देश्य के अलावा मैथुन नही करना चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि सम्पूर्ण जीवनकाल मे सिर्फ दो या तीन बार ही मैथुन करना चाहिए। इसमे सन्देह नही कि पेशियो और ग्रथियो की प्रणाली के उपयोग मे सयम आम तौर से स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नही है, इसी प्रकार विशिष्ट यौन पेशियो और ग्रथियो के उपयोग मे भी सयम समान रूप

से स्वास्थ्य के लिए लाभजनक है। लेकिन इस वात को खुलकर कहना डाक्टरो की मर्यादा के प्रतिकूल था और यौन विषयो-सवधी साधारण लोगो के अज्ञान और पूर्वाग्रहो के कारण नीमहकीमो, वगुलाभगतो और ढोगियो को अजीव-अजीव वाते कहने की छूट मिल गई थी। डाक्टर को पुरुषो और स्त्रियो की वास्तविक और वहुमुखी समस्याओ को हल करना पडता है और यह सिर्फ बधे-बधाए, गिने-गिनाए सूत्रो से नही हो सकता। अब यह बात स्वीकार की जाने लगी है और चूकि अव यौन नैतिकता के सबध मे प्रचलित विचार अपेक्षाकृत कम कट्टर है, यह सभव हो गया है कि सामने आने वाली समस्याओ पर विविध प्रकार से विचार किया जाए।

भूतकाल मे ब्रह्मचर्य की कठिनाइयो और खतरो का मूल्याकन वास्तविक से कम और अधिक दोनो ही प्रकार से किया गया है। एक तरफ तो ऐसे लोग थे जो यह कहते थे कि ब्रह्मचर्य की कठिनाइया और खतरे तुच्छ है। ये लोग नैतिकता के गुरु भार से दबे हुए थे और समझते थे कि उनकी नैतिकता ही दाव पर लगी हुई है। दूसरी तरफ ऐसे लोग थे जो कुछ तो इस उग्र दृष्टिकोण के विरुद्ध और कुछ प्राचीन परपरा के कारण दूसरे सीमात पर पहुच गए और घोषणा करने लगे कि उन्माद के विविध रूप और साथ ही ऐसी स्नायविक गडबडिया ब्रह्मचर्य के ही कारण होती है। ऐसा विश्वास करने का कोई आधार दिखलाई नही देता कि जन्मजात रूप से स्वस्थ व्यक्तियो मे सिर्फ ब्रह्मचर्य के ही कारण मानसिक विकार अथवा स्नायविक रोग हो जाए। ब्रह्मचर्य से रोग हो सकते है, इस विश्वास की उत्पत्ति कार्यकारण-सबध को गडबडाने से होती है। दूसरी तरफ जव कोई ऐसा आदमी पागल हो जाता है जिसने विना किसी रोक-टोक के अतिमैथुन किया है तो हमे यह कहने का अधिकार नही है कि उसके उन्माद का कारण यौन आवेग है। सन् १९०८ मे फ्रायड ने कहा था—"हमारे समाज के अधिकाश लोग शारीरिक वनावट की दृष्टि के आजन्म ब्रह्मचर्य के अयोग्य है, पर साथ ही वे यह वात भी जोड देते है कि ब्रह्मचर्य कष्टकर तभी होता है जब कि स्नायविक रोग की प्रवृत्ति रहती है और ऐसी हालत मे उससे अक्सर दुश्चितायुक्त स्नायविक रोग हो सकता है।" फ्रायड की यह बात हमेशा ध्यान मे रखनी चाहिए। उन्होने अपनी वाद की पुस्तक 'प्रारभिक व्याख्यान' मे लिखा है—"स्नायविक रोग के कारणो को खजोते समय ब्रह्मचर्य के महत्त्व का वास्तविक से अधिक मूल्याकन करने से वचना चाहिए। तृप्ति के अभाव और उससे सचित होने वाली जिजीविषा के कारण उत्पन्न रोगजनक दशाओं मे से वहुत थोडी ही ऐसी है जो विना किसी अडचन के प्राप्त हो सकने वाले यौन समागम से अच्छी हो सकती है।" फ्रायड ने कभी वास्तविक से कम मूल्याकन नही किया है, इसलिए उनका इस सवध मे यह कथन विशेष

महत्त्व का है। यहा लेवेनफेल्ड-वर्णित इस तथ्य का उल्लेख किया जा सकता है कि कैथोलिक पादरी अक्सर बहुत कम दशाओ मे ब्रह्मचर्य के कारण हानि उठाते है। जैसा कि लेवेनफेल्ड लिखते है––(स्मरण रहे कि लेवेनफेल्ड ने इस विषय का अध्ययन व्यापक अनुभव और विवेकपूर्ण भावना के आधार पर किया है) ऐसा सभवत इसलिए होता है कि उन्हे बचपन से ही अपने धधे के लिए प्रशिक्षित किया जाता है।

हमे यह हमेशा याद रखना होगा कि जीने की सारी कला अभिव्यक्ति और दमन के सूक्ष्म सतुलन मे निहित है क्योकि दमन का जो सीमित अर्थ कभी-कभी मनोविश्लेषक करते है उसे छोड दिया जाए तो व्यापक अर्थ मे दमन जीवन का उसी प्रकार से केद्रीय तथ्य है जिस प्रकार से अभिव्यक्ति। हम एक ही समय अन-वरत रूप से कुछ आवेगो का दमन करते है और कुछ अन्य आवेगो को व्यक्त करते है। दमन मे दड अतर्निहित ही हो, ऐसी बात नही है क्योकि दमन अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है। दमन विशेष रूप से सभ्यता का ही कोई दुर्भाग्यपूर्ण प्रभाव हो, ऐसा नही है। मानव-जीवन के आदिम सोपानो मे भी दमन उतने ही स्पष्ट रूप मे पाया जाता है। यहा तक कि जानवरो मे भी आसानी से उसका अस्तित्व देखा जा सकता है। इतनी स्वाभाविक प्रक्रिया मुख्यत हितकर ही हो सकती है, यद्यपि उससे अक्सर कुसतुलन की सभावना रहती है विशेषकर उसका उन लोगो पर बुरा प्रभाव पडता है जिनकी शारीरिक बनावट सामजस्ययुक्त सतुलन के कार्य के लिए सगठित नही है।

पर इसलिए इससे इन्कार नही किया जा सकता कि ब्रह्मचर्य की कठिनाइया फिर भी बहुत से स्वस्थ और कर्मठ व्यक्तियो के लिए बहुत वास्तविक होती है, यद्यपि उनमे न तो जीवन को कोई खतरा रहता है और न मस्तिष्क-विकृति का ही कोई ज्यादा खतरा है।[1] अतिब्रह्मचर्य से शारीरिक स्वास्थ्य-सम्बन्धी छोटी-मोटी गड-बडिया पैदा हो सकती है और मानसिक पक्ष मे बहुत अधिक दुश्चिन्ता उत्पन्न हो सकती है, साथ ही मैथुनिक दुरावेश के साथ बराबर सघर्ष जारी रह सकता है। जिससे एक हानिकर अति-अनुभूतिशीलता पैदा हो सकती है। यह दशा स्त्रियो मे अक्सर अतिलज्जा और दिखावे का रूप ले सकती है। उदाहरण के लिए एक सयम मे रहने वाला उच्चाकाक्षी विद्यार्थी अपनी समस्त शक्ति को अपने अध्ययन-कार्य मे

१ सभी अधिकारी विद्वानों ने इसे माना है। इस प्रकार एक सतर्क और सावधान लेखक नेके ने बीस साल से अधिक समय पहले लिखा था कि आज यौन विषयों का कोई भी अधिकारी विद्वान् यह नहीं मानता कि अतिब्रह्मचर्य के दुष्परिणाम नहीं होते। झगडा तो दुष्परिणामों की मात्रा और गुणों के बारे में है, जिसे नेके ने कभी भी गम्भीर नहीं माना।

से स्वास्थ्य के लिए लाभजनक है। लेकिन इस बात को खुलकर कहना डाक्टरो की मर्यादा के प्रतिकूल था और यौन विषयो-सबधी साधारण लोगो के अज्ञान और पूर्वाग्रहो के कारण नीमहकीमो, बगुलाभगतो और ढोगियो को अजीब-अजीब बाते कहने की छूट मिल गई थी। डाक्टर को पुरुषो और स्त्रियो की वास्तविक और बहुमुखी समस्याओ को हल करना पडता है और यह सिर्फ बधे-बधाए, गिने-गिनाए सूत्रो से नही हो सकता। अब यह बात स्वीकार की जाने लगी है और चूकि अब यौन नैतिकता के सबध मे प्रचलित विचार अपेक्षाकृत कम कट्टर है, यह सभव हो गया है कि सामने आने वाली समस्याओ पर विविध प्रकार से विचार किया जाए।

भूतकाल मे ब्रह्मचर्य की कठिनाइयो और खतरो का मूल्याकन वास्तविक से कम और अधिक दोनो ही प्रकार से किया गया है। एक तरफ तो ऐसे लोग थे जो यह कहते थे कि ब्रह्मचर्य की कठिनाइया और खतरे तुच्छ है। ये लोग नैतिकता के गुरु भार से दबे हुए थे और समझते थे कि उनकी नैतिकता ही दाव पर लगी हुई है। दूसरी तरफ ऐसे लोग थे जो कुछ तो इस उग्र दृष्टिकोण के विरुद्ध और कुछ प्राचीन परपरा के कारण दूसरे सीमात पर पहुच गए और घोषणा करने लगे कि उन्माद के विविध रूप और साथ ही ऐसी स्नायविक गडबडिया ब्रह्मचर्य के ही कारण होती है। ऐसा विश्वास करने का कोई आधार दिखलाई नही देता कि जन्मजात रूप से स्वस्थ व्यक्तियो मे सिर्फ ब्रह्मचर्य के ही कारण मानसिक विकार अथवा स्नायविक रोग हो जाए। ब्रह्मचर्य से रोग हो सकते है, इस विश्वास की उत्पत्ति कार्यकारण-सबध को गड़बडाने से होती है। दूसरी तरफ जब कोई ऐसा आदमी पागल हो जाता है जिसने बिना किसी रोक-टोक के अतिमैथुन किया है तो हमे यह कहने का अधिकार नही है कि उसके उन्माद का कारण यौन आवेग है। सन् १९०८ मे फ्रायड ने कहा था —"हमारे समाज के अधिकाश लोग शारीरिक बनावट की दृष्टि के आजन्म ब्रह्मचर्य के अयोग्य है, पर साथ ही वे यह बात भी जोड देते है कि ब्रह्मचर्य कष्टकर तभी होता है जब कि स्नायविक रोग की प्रवृत्ति रहती है और ऐसी हालत मे उससे अक्सर दुश्चितायुक्त स्नायविक रोग हो सकता है।" फ्रायड की यह बात हमेशा ध्यान मे रखनी चाहिए। उन्होने अपनी बाद की पुस्तक 'प्रारभिक व्याख्यान' मे लिखा है—"स्नायविक रोग के कारणो को खजोते समय ब्रह्मचर्य के महत्त्व का वास्तविक से अधिक मूल्याकन करने से बचना चाहिए। तृप्ति के अभाव और उससे सचित होने वाली जिजीविषा के कारण उत्पन्न रोगजनक दशाओ मे से बहुत थोडी ही ऐसी है जो बिना किसी अडचन के प्राप्त हो सकने वाले यौन समागम से अच्छी हो सकती है।" फ्रायड ने कभी वास्तविक से कम मूल्याकन नही किया है, इसलिए उनका इस सबध मे यह कथन विशेष

महत्त्व का है। यहा लेवेनफेल्ड-वर्णित इस तथ्य का उल्लेख किया जा सकता है कि कैथोलिक पादरी अक्सर बहुत कम दशाओ मे ब्रह्मचर्य के कारण हानि उठाते है। जैसा कि लेवेनफेल्ड लिखते है—(स्मरण रहे कि लेवेनफेल्ड ने इस विषय का अध्ययन व्यापक अनुभव और विवेकपूर्ण भावना के आधार पर किया है) ऐसा सभवत इसलिए होता है कि उन्हे बचपन से ही अपने धधे के लिए प्रशिक्षित किया जाता है।

हमे यह हमेशा याद रखना होगा कि जीने की सारी कला अभिव्यक्ति और दमन के सूक्ष्म सतुलन मे निहित है क्योकि दमन का जो सीमित अर्थ कभी-कभी मनोविश्लेषक करते है उसे छोड दिया जाए तो व्यापक अर्थ मे दमन जीवन का उसी प्रकार से केंद्रीय तथ्य है जिस प्रकार से अभिव्यक्ति। हम एक ही समय अनवरत रूप से कुछ आवेगो का दमन करते है और कुछ अन्य आवेगो को व्यक्त करते है। दमन मे दड अतर्निहित ही हो, ऐसी बात नही है क्योकि दमन अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है। दमन विशेष रूप से सभ्यता का ही कोई दुर्भाग्यपूर्ण प्रभाव हो, ऐसा नही है। मानव-जीवन के आदिम सोपानो मे भी दमन उतने ही स्पष्ट रूप मे पाया जाता है। यहा तक कि जानवरो मे भी आसानी से उसका अस्तित्व देखा जा सकता है। इतनी स्वाभाविक प्रक्रिया मुख्यत हितकर ही हो सकती है, यद्यपि उससे अक्सर कुसतुलन की सभावना रहती है विशेषकर उसका उन लोगो पर बुरा प्रभाव पडता है जिनकी शारीरिक बनावट सामजस्ययुक्त सतुलन के कार्य के लिए सगठित नही है।

पर इसलिए इससे इन्कार नही किया जा सकता कि ब्रह्मचर्य की कठिनाइया फिर भी बहुत से स्वस्थ और कर्मठ व्यक्तियो के लिए बहुत वास्तविक होती है, यद्यपि उनमे न तो जीवन को कोई खतरा रहता है और न मस्तिष्क-विकृति का ही कोई ज्यादा खतरा है।[1] अतिब्रह्मचर्य से शारीरिक स्वास्थ्य-सम्बन्धी छोटी-मोटी गडबडिया पैदा हो सकती है और मानसिक पक्ष मे बहुत अधिक दुश्चिन्ता उत्पन्न हो सकती है, साथ ही मैथुनिक दुरावेश के साथ बराबर सघर्ष जारी रह सकता है। जिससे एक हानिकर अति-अनुभूतिशीलता पैदा हो सकती है। यह दशा स्त्रियो मे अक्सर अतिलज्जा और दिखावे का रूप ले सकती है। उदाहरण के लिए एक सयम सेरहने वाला उच्चाकाक्षी विद्यार्थी अपनी समस्त शक्ति को अपने अध्ययन-कार्य मे

---

१ सभी अधिकारी विद्वानों ने इसे माना है। इस प्रकार एक सतर्क और सावधान लेखक नैके ने बीस साल से अधिक समय पहले लिखा था कि आज यौन विषयों का कोई भी अधिकारी विद्वान् यह नहीं मानता कि अतिब्रह्मचर्य के दुष्परिणाम नहीं होते। झगडा तो दुष्परिणामो की मात्रा और गुणो के बारे में है, जिसे नैके ने कभी भी गम्भीर नहीं माना।

लगा देना चाहता है, पर अतिब्रह्मचर्यजनित सघर्ष के कारण उसे बडी दुश्चिन्ता और मानसिक अवसाद का सामना करना पड सकता है। विविध कार्यो मे सक्रिय रूप से सलग्न नवयुवतिया भी इसी प्रकार अतिब्रह्मचर्यजनित सघर्ष के कारण पीडित रहती है और कभी-कभी वे उससे छुटकारा पाने के लिए अपने कार्य और शारीरिक कसरत की मात्रा को बहुत बढा देती है, पर अक्सर इससे उन्हे कोई चैन नही मिलता। ऐसा लगता है कि इस कारण से पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो को अधिक कष्ट मिलता है, पर ऐसा इसलिए नही होता कि स्त्रियो के लिए उदात्तीकरण विशेष रूप से कठिन है (जैसा कि फ्रायड का विश्वास है) या उनके यौन आवेग अधिक प्रबल है, बल्कि इसका कारण यह है कि शादीशुदा न होने पर भी पुरुष बाहर की स्त्रियो के साथ आसानी से यौन सम्बन्ध स्थापित करते आए है और अब भी कर लेते है, इसके अलावा निद्रावस्था मे सयमी पुरुषो को स्वत स्फूर्त स्खलन से परितृप्ति मिल जाती है, पर ऐसी स्त्रियो को जिन्हे मैथुनिक अनुभव नही होता, यौन आवेग के प्रबल होने पर भी सामान्यत निद्रावस्था मे इस प्रकार की परितृप्ति नही मिलती। अक्सर श्रेष्ठ स्त्रिया ही इस कारण सब से अधिक कष्ट उठाती है, पर वे ही उन स्त्रियो मे से है जो इस तथ्य को छिपाने के लिए सब से अधिक व्यग्र रहती है।[1]

इस सिलसिले मे डाक्टर कैथराइन डैविस ने एक प्रश्नावली जारी की थी—"क्या आप विश्वास करती है कि सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए

---

१. कई स्त्रिया जो इस तरह उग्र रूप से पीडित रहती हैं, मुझे पत्र लिखती रहती हैं। या तो वे किसी सुदूर स्थान से लिखती है या वे अपने वास्तविक नाम को छिपाकर लिखती है। एक ऐसी स्त्री ने मुझे बार-बार अपने सम्बन्ध में लिखा (वह अपने अनजाने में मेरे एक दोस्त से परिचित थी) जो काफी हद तक इस वर्ग की स्त्रियो का प्रतिनिधित्व करती है। यह स्त्री अधेड, हृष्ट-पुष्ट, सुविकसित और सुन्दर है। वह बहुत बुद्धिमती और साधन-सम्पन्न होने के कारण आत्मनिर्भर है। वह अक्सर विदेश में रहती है। उसका कभी भी किसी व्यक्ति से यौन सम्पर्क नही रहा, यद्यपि कुल मिलाकर उसका स्वास्थ्य अच्छा है, तो भी कुछ छोटी-मोटी गडबडियों से (विशेषकर सोलह साल की उम्र में एक मानसिक आघात से उसका मासिक स्राव बहुत घट गया था) उसकी यौन सक्रियता अस्वाभाविक सीमा तक बढ गई है। उसे लगातार कामेच्छा बनी रहती है और उसे दूर करने के लिए वह जो शारीरिक और मानसिक उपाय कर सकती है वे सब उपाय उसके शाश्वत तनाव को दूर करने में असफल रहते है। अपने चरित्र और संस्कारो के कारण उसके लिए यह असम्भव है कि वह किसी प्रकार के अनियमित या अनैतिक ढंग से यौन परितृप्ति प्राप्त करे। वह अपनी दशा का उल्लेख भी किसीसे नहीं कर सकती। इसके अलावा विवश होकर जब कभी मासिक धर्म के समय वह हस्तमैथुन का सहारा लेती है तो उससे उसे चैन तो मिलता नहीं, उल्टे ग्लानि होती है।

यौन समागम आवश्यक है ?" एक हजार से ऊपर स्त्रियो ने इसके उत्तर दिए थे। इन उत्तरो पर विचार करना एक दिलचस्प बात होगी। पर यह हमेशा ध्यान मे रखना चाहिए कि इन प्रश्नो के उत्तर शरीरशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक बातों पर आधारित नही रह सकते। हमे अपरिहार्य रूप से प्रचलित नैतिक, सामाजिक परम्परागत प्रभावो को मानकर ही चलना पडेगा। फिर भी यह जानना एक दिलचस्प बात होगी कि बीसवी सदी के प्रारम्भिक चरण की अमेरिकन स्त्रियो के इस विषय मे क्या गुप्त विचार थे। यह देखा गया कि ३८·७ प्रतिशत स्त्रियो ने (सख्या ३९४) इस प्रश्न के उत्तर मे हामी भरी। इनमे से कुछ ने जोर देकर, बडी सख्या ने कुछ शर्ते लगाकर और कुछ ने सन्दिग्ध रूप से इस बात को स्वीकार किया। शेष लगभग ६१ २ स्त्रियो ने (सख्या ६२२) 'न' मे उत्तर दिया। कुछ ने जोर देकर ऐसा कहा और कुछ ने सन्दिग्ध रूप से कहा। हामी भरने वाली कुछ स्त्रियों ने अपने उत्तर मे कुछ इस प्रकार की शर्ते लगाई थी—'विशेषकर पुरुषो के लिए' या 'मानसिक स्वास्थ्य के लिए', या 'जीवन को पूर्ण बनाने के लिए', 'कुछ विशेष प्रकारो के लिए'। जवाब मे 'नही' कहने वाली कुछ स्त्रियो ने अपने उत्तर मे ये बाते लिखी थी—'आवश्यक तो नही पर स्वाभाविक है', या 'पर वाञ्छनीय है', या 'पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य के लिए नही', 'नही, पर मुश्किल है', या 'नही, पर जो लोग उससे वचित रहते है वे कुण्ठित हो जाते है और उनमे झुर्रिया आ जाती है।' यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि यौन समागम आवश्यक नही मानने वाली स्त्रिया यानी (५९ ५%) आधे से अधिक स्त्रिया हस्तमैथुन करती थी। यह भी कोई आश्चर्य की बात नही है कि यौन समागम को स्वास्थ्य के लिए आवश्यक मानने वाली स्त्रिया भी एक बडे अनुपात मे (७६ प्रतिशत) हस्तमैथुन करती थी। यह स्वाभाविक ही है कि स्वीकृतिसूचक उत्तर देने वाली स्त्रियो के समूह मे ऐसी स्त्रियो का अनुपात दूसरे वर्ग की ऐसी स्त्रियो के अनुपात की अपेक्षा अधिक था जिन्हे यौन समागम के विषय मे जानकारी नही थी।

जो लोग अतिब्रह्मचर्य से पैदा होने वाली कठिनाइयो को छोटा करके दिखलाते है उनके लिए यह अच्छा होगा कि वे मरुस्थल मे रहने वाले ईसाई साधुओ के पैलेडियस रचित 'स्वर्ग' नामक पुस्तक मे वर्णित अनुभवो पर विचार करे। वे साधु तगडे और दृढसकल्प थे। वे सन्यास के आदर्शो के प्रति श्रद्धा रखते थे, साथ ही ऐसे आदर्शो को कार्यान्वित करने के लिए सम्भवत. सब से अनुकूल परिस्थितियो मे रहते थे और उनकी दिनचर्या इतनी कठोर थी कि वह हमारे लिए लगभग अकल्पनीय है। फिर भी यौन प्रलोभन से उन्हे जितना कष्ट होता था, उतना कष्ट दूसरी बात से नही होता था और यह कष्ट कुछ न कुछ मात्रा मे जीवन-पर्यन्त बना

रहता था ।

यहा इतना और बता दिया जाए कि इस प्रश्न पर विचार करते समय हम आसानी से किसी चली हुई बात को न मान ले । मै इस तथ्य का इसलिए उल्लेख करता हू कि प्राचीन तपस्वियो के अनुभवो को एक तरफ रख देने पर और वर्तमान समय पर विचार करने पर सावधानी के साथ की गई सभी जाचो से पता चलता है कि ऐसे लोगो का अनुपात, यहा तक कि डाक्टरो मे भी, वस्तुत बहुत ही कम है जो वास्तविक रूप से लगातार ब्रह्मचर्य के साथ अर्थात् किसी प्रकार की यौन सक्रियता की अभिव्यक्ति के बगैर रहते है ।[१] वास्तविक ब्रह्मचारियो का अनुपात तभी अधिक मालूम पडता है जब हम स्वाभाविक यौन परितृप्ति के अपूर्ण रूपो को जैसे स्त्रियो के साथ हसी-खेल करना आदि और उसकी विविध आत्ममैथुनिक अभिव्यक्तियो को न गिने । इस क्षेत्र मे एक अनुभवी डाक्टर रोलेडर का कुछ साल पहले विश्वास था कि जब हम इस विषय को व्यापक दृष्टि से देखते है तो लगता है कि ब्रह्मचर्य जैसी कोई चीज ही नही है । ऐसी वास्तविक दशाए जिनमे यौन लक्षण प्रकट नही हो पाते, अक्सर यौन आवेग की मन्दता की दशाए होती है । जो प्रकारभेद हमे दिखाई देते है उनका प्रमुख कारण राष्ट्रीय परम्पराओ मे अन्तर होना है, जिससे किसी देश मे लोग वेश्यागमन का सहारा लेते है, तो किसी और देश मे हस्तमैथुन का । इस बात पर डाक्टरो के दो दल है । इनमे से एक दल तो हस्तमैथुन की अपुरुषजनोचित आदत की कडी भर्त्सना करता है पर वह वेश्यागमन के प्रति तुलनात्मक रूप से सहिष्णु रहता है । जब कि दूसरा दल वेश्यागमन की खतरनाक और अनैतिक प्रथा की तो कडी निन्दा करता है, पर हस्तमैथुन के प्रति तुलनात्मक रूप से सहिष्णु रहता है । जब हम अतृप्त यौन सक्रियता की अभिव्यक्तियो जैसे स्थानिक जमाव, अनिद्रा, चिडचिडापन, सिरदर्द, मिरगी और स्नायविक दौर्बल्य का इलाज कराना या उन्हे कम करना चाहते है तो हम इन बातो को याद रखे तो अच्छा रहेगा । जब अतिब्रह्मचर्य के परिणामस्वरूप होने वाले कष्ट निश्चित रूप से मानसिक गडबडी की सीमा के पास पहुच जाते हैं तो अक्सर अन्य सहयोगी कारणो पर भी विचार करना जरूरी हो जाता है, और इस जगह पर पहुँचकर मनोविश्लेषको ने 'अवचेतन' के क्षेत्र मे कई भ्रामक मार्ग ढूढ निकालने की चेष्टा की है ।

---

१ कोलोन के मेरोव्स्की ने ६८ डाक्टरों से पूछताछ करके यह नतीजा निकाला कि सिर्फ एक ही डाक्टर ऐसा था, जिसने विवाह के पहले यौन समागम नही किया था । अंगरेजी-भाषाभाषी देशों में यह अनुपात और भी कम होगा, पर दूसरी तरफ आत्ममैथुनिक तरीकों को अपनाने वाले अधिक होगे ।

लेवेनफेल्ड ने यह पता लगाया कि चौबीस साल की उम्र तक पुरुषो को वहुत कम क्षेत्र मे ब्रह्मचर्य से कष्ट होता है और उसके वाद भी शायद ही उन्हे इस सीमा तक कष्ट होता है कि डाक्टरी सहायता की जरूरत पडे। खराब शारीरिक वनावट से ही ब्रह्मचर्य स्नायविक रोगो का कारण वन सकता है और जैसा कि फ्रायड, लेवेन-फेल्ड और अन्य लोगो ने देखा है, यह अवसर स्त्रियो और पुरुषो दोनो मे ही दुश्चिन्ता रोग का रूप ले लेता है।

जो भी हो, जैसा कि यौन क्षेत्र मे अक्सर होता है, इसका इलाज भी अधि-काशत आरोग्यशास्त्र के नियमो के पालन से होता है। सरल जीवन, सादा भोजन, शीतल जल से स्नान, विलासिता का अभाव, समस्त शारीरिक या मानसिक प्रवल उत्तेजनाओ से वचाव, सत्सग, मन को किसी अच्छे काम या विचार मे काफी समय तक लगाए रखना, खुली हवा मे यथेष्ट व्यायाम लेना आदि ही इसका इलाज है। पर यह याद रहे कि इलाज रोगी दशा होने के पहले शुरू होना चाहिए। एक भले घर मे पैदा हुए बालक का यदि ढग से पालन-पोषण किया जाए और यदि कोई अन्य प्रकार की अनिवार्य दुर्घटनाए न हो तो इसकी बहुत सम्भावनाए है कि बालक को यौन सम्बन्धी शिक्षा देने के वावजूद भी उसकी यौन चेतना काफी उम्र तक जागरित न हो। पर जव एक वार शारीरिक यौन आवेग अदमनीय रूप से चेतना के समक्ष उपस्थित हो जाते है, तो ये नियम उतने कारगर नही रहते जितना कि कभी-कभी उन्हे बताया जाता है। पर जो भी हो, हर हालत मे उनका अनुसरण करना अच्छा है और किसी-किसी समय वे यौन आवेग की क्रियाशीलता का दमन करने मे सफल भी होते हैं। पर उनसे हमे असम्भव नतीजो की आशा नही रखनी चाहिए। साधारण शारीरिक व्यायाम से कामेच्छा का दमन होना तो दूर रहा, उल्टे उससे अक्सर स्त्री और पुरुषो दोनो मे ही कामेच्छा उत्तेजित होती है और कामेच्छा तभी दबाई जा सकती है जव कि व्यायाम को इतनी अधिक मात्रा तक वढा दिया जाए कि व्यायामकारी थककर चूर हो जाए। उसी तरह मानसिक कार्य विशुद्ध रूप से सूक्ष्म ढग का होने पर भी यौन उत्तेजना उत्पन्न करने को वाध्य है। यह तो स्पष्ट है कि सामान्य आरोग्यशास्त्र के नियम शक्तिवर्धक होने के कारण यौन क्षेत्र मे भी शक्ति न वढाए, ऐसा नही हो सकता। हम ऐसी कोई व्यवस्था नही कर सकते जिससे शारीरिक प्रणाली मे तो शक्ति उत्पन्न हो, पर यौन प्रणालियो मे उसका प्रवाह अवरुद्ध हो जाए।

यह सच है कि हम यौन शक्ति को अन्य अधिक आध्यात्मिक प्रणालियो मे मोड सकते है, पर इस तरह यौन शक्ति का एक वहुत ही कम मात्रा मे उदात्तीकरण किया जा सकता है। फ्रायड वडे सुन्दर ढग से मनुष्य के शरीर की यौन शक्ति की

तुलना मशीनो से करते है, जिनमे लगाई हुई गर्मी की बहुत थोडी मात्रा काम मे आती है। निस्सन्देह हम ओषधियो का सहारा ले सकते है जिनमे ब्रोमाइडो का सामान्यत सब से अधिक प्रयोग किया जाता है और जो सब से अधिक कारगर भी है। इस प्रकार की दवाओ का उपयोग उन व्यक्तियो के लिए विशेष रूप से लाभ-दायक रहता है जो स्नायविक रूप से दुर्बल और अधिक उत्तेजनशील होते है और जिनकी यौन क्रियाशीलता यौन शक्ति के फलस्वरूप नही होती। स्वस्थ और स्वभाव से कामुक व्यक्तियो मे ब्रोमाइडो का प्रयोग तब तक बेकार रहता है जब तक उन्हे इतनी अधिक मात्रा मे न लिया जाए कि सामान्य रूप से सभी सूक्ष्मतर क्रियाए खत्म ही हो जाए। अनेक सुन्दर अभिव्यक्तियो मे समर्थ इस प्राकृतिक आवेग का उपचार करने का यह कोई सन्तोषजनक ढग नही है। हमे इस क्षेत्र मे अपनी शक्ति की सीमाओ को स्वीकार करना होगा। इसके अलावा उन कठिनाइयो को जो सामाजिक वातावरण के कारण अक्सर अपरिहार्य बन जाती है, सामने रखकर सीधी और एकदम स्थूल सलाह देने से बचना होगा। अच्छा तो यही होगा कि हम इन कठिनाइयो को हल करने की जिम्मेदारी खुद मरीज पर ही छोड दे।

सचमुच ही कुछ ऐसे डाक्टर भी है जो डके की चोट पर यह घोषणा करते है कि इस विषय मे हमे स्वय सीमाहीन जिम्मेवारियो को ग्रहण कर लेना चाहिए। उदाहरण के लिए हमारे सामने एक मरीज—एक कैथोलिक पादरी या नपुसक पति की स्त्री है, जो स्पष्टत अतिब्रह्मचर्य के फलस्वरूप स्नायविक रोगो से पीडित है। ऐसे डाक्टरो का कहना है कि हमारा यह परम कर्तव्य है कि हम इन व्यक्तियो को यौन समागम की सलाह दे। मै ऐसा नही समझता। यह तथ्य तो है ही कि ऐसा डाक्टर इस सम्बन्ध मे जो नुसखा दे रहा है वह उसकी शुद्धता की गारटी नही कर सकता। इसके अलावा यह बात भी लगी हुई है कि डाक्टर निजी तौर पर अपने पास आए हुए लोगो को जो अनैतिक सलाह दे रहा है वह उस सलाह के विरुद्ध है जो वह खुले तौर पर हर समय दिया करता है। एक तीसरी बात यह है कि मान लिया, ऐसी सलाह डाक्टर विशुद्ध चिकित्सा की दृष्टि से दे रहा है, फिर भी उससे उसकी सलाह लेने वाले व्यक्ति के जीवन मे और समाज के जीवन मे जो गडबडी और विक्षोभ उत्पन्न होगा उससे डाक्टर आखे नही चुरा सकता। जैसा कि पूर्वोक्त उदाहरणो मे बताया गया है, यदि ऐसी सलाह देकर एक डाक्टर ऐसा आचरण करता है जो उसके व्यवसाय की प्रतिष्ठा के विरुद्ध है, या उस सलाह से कोई स्त्री कष्टप्रद सामाजिक स्थिति मे फस जाती है तो यौन इच्छा को दबाने के लिए सघर्ष से पैदा होने वाले नतीजो की अपेक्षा ये नतीजे केवल स्वास्थ्य की दृष्टि से भी ज्यादा बुरे हो सकते है। इसमे

सिर्फ एक सघर्ष का स्थान दूसरा और शायद एक अधिक गम्भीर सघर्ष ले लेता है। डाक्टर के लिए अच्छा तो यही होगा कि जब वह इस विषय मे विशुद्ध रूप से डाक्टरी क्षेत्र के बाहर कदम बढाए तो वह स्पष्ट, व्यापक और निष्पक्ष ढग से सारी समस्याए मरीज के सामने रख दे और उन्हे हल करने की जिम्मेदारी मरीज पर ही छोड दे। सच तो यह है कि यह जिम्मेदारी सही तौर पर मरीज की ही है। यहा डाक्टर को उस जज का हिस्सा अदा करना है जो जूरी को मुकदमा सौप देता है। डाक्टर को मरीज के सामने परिस्थितियो को स्पष्ट कर देना चाहिए, पर उसके सम्बन्ध मे अपना फैसला नही सुनाना चाहिए। ऐसा करते समय मरीज को अपेक्षाकृत शान्त और अधिक बुद्धिसगत दृष्टिकोण मे ले आना चाहिए। शायद वह इस प्रकार मरीज को बिना समझे-बूझे जल्दी मे उस गाठ को काट डालने के प्रयत्न से वचा लेगा जिसको खोलना मरीज के लिए असम्भव जान पडता है।

अतिब्रह्मचर्य के दुष्परिणामो की परम्परागत दवा उपयुक्त विवाह है। यदि यह शादी अच्छी परिस्थितियो मे की जा सके तो सब से अच्छी बात है।

सहायक पुस्तक-सूची

वालिस वज—The Paradise of the Fathers .

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex, Vol VI

फ्रायड—'Civilized Sexual Morality and Modern Nervousness,' Collected Papers, Vol II.

के० बी० डैविस—Factors in the Sex-Life of Twenty-two Hundred Women

विवाह का औचित्य

विवाह का विवाह करने वालो अथवा उनके वच्चो पर बुरा असर हो सकता है, ऐसी शका उत्पन्न होने पर आजकल पहले की अपेक्षा विवाह के औचित्य या अनौचित्य के सम्बन्ध मे डाक्टरी सलाह अधिक ली जाती है। इसके अलावा ऐसी डाक्टरी सलाह आजकल अधिक गम्भीरता के साथ ली जाती है। इस वजह से यह जरूरी है कि सीधी-सादी वधी-वधाई और सतही सलाह देने से वचा जाए, जो किन्ही निश्चित परिस्थितियो मे वुद्धिरहित हो सकती है। इसलिए यथा-सम्भव अच्छी तरह से समझ-वूझकर और सभी पहलुओ से विचार करने के वा

ही सलाह देनी चाहिए । ऐसी सलाह जिस वैज्ञानिक सामग्री के आधार पर दी जा सकती है वह सामग्री बहुत सी दशाओ मे अभी तक अधूरी है । इसके अलावा इस सामग्री को एक करके सुलझाने का काम अभी हाल ही मे शुरू हुआ है। इसलिए अभी तो नही पर शायद निकट भविष्य मे यौन सम्बन्धो के सम्भावित परिणामो के सम्बन्ध मे अधिक निश्चयता के साथ भविष्यवाणी की जा सकेगी। इस प्रकार यह सम्पूर्ण विषय यदि सुदूर भविष्य का नही तो निकट भविष्य का ही अधिक है। जैसा कि इस प्रश्न का अध्ययन करती हुई करेन हार्नी ने यह नतीजा निकाला है कि इस समय मनोविश्लेषण भी वह आवश्यक तीक्ष्ण दृष्टि नही दे सकता जिससे कि शादी के बारे मे भविष्यवाणी की जाए। इसके अतिरिक्त यह विषय अधिकाश मे वर्तमान अध्याय के भी अन्तर्गत नही आता । पर कुछ बाते ऐसी है जिनके सम्बन्ध मे यहा कुछ जानकारी दी जानी चाहिए।

अक्सर ही ऐसा होता है कि कोई नवयुवक या नवयुवती किसी व्यक्ति-विशेष के साथ विवाह करने के निश्चय को प्रकट कर अपने मित्रो और रिश्तेदारो को दुश्चिन्ता मे डाल देती है यद्यपि यह शादी सुप्रजननशास्त्र के सिद्धान्तो के प्रतिकूल नही रहती, फिर भी स्पष्ट ही दृष्टिगोचर होता है कि यह शादी अनमेल है। इस सम्भावित रूप से भयकर शादी को तोडने के उद्देश्य से डाक्टर से प्रार्थना की जाती है और उससे कभी-कभी यह आशा भी की जाती है कि वह दूरदर्शिताहीन प्रेमी को पागल घोषित कर दे । यह तो रहा जाच का विषय, पर इस प्रकार की अधिकाश दशाओ पर यह कहा जा सकता है कि प्रेमी के वशानुक्रम मे यदि अल्पमात्रा मे कुछ स्नायविक दुर्बलता हो और यदि उसमे कुछ मानसिक कमजोरी भी हो तो यह कमजोरी शरीरवैज्ञानिक सीमाओ का इतना कम उल्लघन करती है कि इसके कारण इस आधार पर शादी का विरोध नही किया जा सकता। अवश्य रोमियो-जूलिएट जैसे प्रेमी-प्रेमिकाए जो शादी का विरोध करने वाली सामाजिक दीवारो को लाघते है, एक अस्थायी जोश के वश मे रहते है, पर वे पागल नही कहे जा सकते । हा, इस अर्थ मे वे पागल कहे जा सकते है जिस अर्थ मे वर्टन ने अपनी पुस्तक 'एनाटोमी आफ मेलान्कली' मे ढेर सारे तर्क देते हुए सिद्ध किया था कि सभी प्रेमी प्राय पागल होते है। अधिकतर दशाओ मे हमारा सावका ऐसे नवयुवक अथवा नवयुवतियो से पडता है जो अभी तक पूरी तौर से किशोरावस्था के तूफानी जोश और तनाव मे से नही निकल सके है तथा जिनके मानसिक सन्तुलन मे उदीयमान कामात्मक जीवन के विस्फोट से प्राय पूर्ण रूप से शरीरवैज्ञानिक गडवडी पैदा हो गई है। पर यह गडवडी अपने-आप थिरा जाती है, और दुवारा फिर कभी सिर नही उठाती। कभी-कभी एक विशिष्ट प्रकार की दशा पाई जाती है, जिसमे

एक ब्रह्मचारी चरित्रवान् नवयुवक का सयोगवश किसी वेश्या से घनिष्ठ सम्पर्क हो जाता है और वह उस वेश्या से शादी कर लेने का इरादा कर लेता है। ऐसी दशा मे यौन आवेग की अस्पष्ट पुकार उस स्त्री के उद्धार करने के विचार का रूप ले लेती है, जिसके सम्बन्ध मे वह नवयुवक समझता है कि उस स्त्री को अपने जीवन मे कभी सुअवसर ही नही मिला। जब एक पूर्ण परिपक्व और अनुभवी व्यक्ति स्थिति की गम्भीरता को समझते हुए जान-बूझकर अपनी पसन्द से वेश्या के साथ शादी करता है तो कई वार यह शादी सफल रहती है। पर जोश मे सामयिक रूप से अन्धे हो जाने का यह अर्थ नही है कि यह शादी सफल ही रहेगी। ऐसी दशाओ मे शादी को रोकने का सब से अच्छा तरीका यही है कि देर-दार की जाए। कडे विरोध से सिर्फ जोश मे वृद्धि ही होगी और कर्ता जल्दबाजी के कदम उठाएगा, जिससे यह भयानक शादी होकर ही रहेगी। मामले मे विलम्ब करने की युक्ति से और इसी वीच नवयुवक को अपनी प्रेमिका को देखने और समझने का पर्याप्त अवसर देने से उसे ऐसे रास्ते पर लाया जा सकता है कि वह अपनी प्रेमिका को कुछ-कुछ उसी रोशनी मे देख पाए जिसमे उसे उस प्रेमिक के दोस्त देखते है। ऐसी लडकी की दशा मे जो बिना समझे-बूझे उतावली मे शादी करने का इरादा कर रही है, यह अक्सर सम्भव हो सकता है कि उसे एक ऐसे बिल्कुल अलग वातावरण मे हटा दिया जाए जहा धीरे-धीरे वह नई दिलचस्पिया पा सके और जहा नए लोगो से उसका सम्बन्ध वढे। कभी-कभी एक नवयुवती अपने से नीची श्रेणी के किसी आकर्षक पुरुप से शादी करने का विचार करती है। इस प्रकार की शादी को कठोरता के साथ निरुत्साहित करना चाहिए, चाहे हम श्रेणी-भावना को कितना ही कम महत्त्व देते हो। वात यह है कि ऐसी शादी की व्यावहारिक रूप से सफल होने की वहुत ही कम सम्भावना रहती है और आगे चलकर ऐसे विचार रखने वाली स्त्री इस प्रकार की शादी तोडने के कारण कभी भी पश्चात्ताप नही करती। महलो मे पलने वाली राजकुमारी अपने किसान प्रेमी की स्त्री वनकर कभी भी सुखी नही रह सकती। आकस्मिक मूर्खतापूर्ण भावना के द्रुत परिणाम-स्वरूप जो शादिया होती है उनसे अक्सर एक के वाद एक करके इतने सर्वनाशी नतीजे निकलते है कि ऐसी दशाओ मे हमेशा यह औचित्यपूर्ण होता है कि विलम्ब-मूलक रोडे अटकाए जाए, यद्यपि यह भी सच है कि आख मे ओझल होने पर प्रेमी आदर्श सौन्दर्ययुक्त मालूम होने लगता है। और इस प्रकार निराश होने वाले प्रेमी सारी जिन्दगी यह विश्वास पोषण करते है कि इस तरह वे (पुरुष या स्त्री) पअने जीवन मे आनन्द से वचित किए गए। डिकेन्स तरुणावस्था मे अपनी मन-चाही लडकी द्वारा ठुकरा दिए गए थे इसलिए वे उसे पूर्ण नारीत्व का मूर्त रूप

मानते रहे और अपने उपन्यासो की नायिकाओं को भी उन्होने उसीकी आकृति के साचे मे ढाला। पर जब अन्तत उससे वाद को चलकर भेट हुई तो उससे उन्हे विरक्ति और घृणा पैदा हो गई। डिकेन्स का यह अनुभव एक ऐसा अनुभव है जो अपेक्षाकृत कम विख्यात व्यक्तियो के जीवन मे वार-वार आता रहता है।

ये वे विशेष कठिनाइया है जो अक्सर हमारी दृष्टि मे नही भी आ सकती। पर जब कभी शादी का प्रश्न उठाया जाता है तो किसी न किसी प्रकार की समस्या उठ खडी होती है। ऐसी समस्याए अब ज्यादा से ज्यादा डाक्टर के पास लाई जाती है। उन समस्याओ को यहा हम छू भर सकते है। ऐसे निश्चित और ठोस सूत्र दुर्लभ है जिनका सर्वत्र प्रयोग किया जा सके। प्रत्येक दशा पर अलग-अलग रूप से विचार करना होगा, और एक के लिए सब से लाभदायक और आवश्यक समाधान दूसरे के लिए सब से हानिकारक हो सकता है। यह सम्भव है कि भविष्य मे नागरिक जीवन के सभी महान् केन्द्रो मे ऐसी सस्थाए रहेगी जिनमे विवाह की विविध समस्याओ के बारे मे सलाह मिल सकेगी। ऐसी सस्थाओ मे वर्लिन की यौन सस्था को अग्रणी माना जा सकता है।

उम्र का स्वास्थ्य और वशानुक्रम, डाक्टरी परीक्षा, शादी के लिए तैयार रहना अथवा शादी के लिए तैयारी, विलम्ब से प्रजनन और शारीरिक अथवा मानसिक सामञ्जस्य इत्यादि के सम्बन्ध मे कितने ही प्रश्न उठते रहते है और इन्हीपर दाम्पत्य-सुख सबसे अधिक निर्भर रहता है।

दाम्पत्य-सुख, साथ ही सुप्रजनन के उद्देश्य को लेकर शादी किस उम्र मे की जाए, इस सम्बन्ध मे काफी मतभेद है और वर्तमान समय मे इसके लिए व्यापक आधार पर पर्याप्त सामग्री भी उपलब्ध नही है। फिलाडेल्फिया मे हार्ट और शील्ड्स ने गार्हस्थ्य न्यायालय मे आने वाले मामलो के द्वारा वैवाहिक सुख को नापकर यह नतीजा निकाला कि कम उम्र मे शादी करने का नतीजा अच्छा नही होता। पर जब कि फिलाडेल्फिया मे ही पैटर्सन ने यह देखा कि जब शादी बीस साल से कम उम्र मे ही होती है तब भी कठिनाइयो की सख्या वाद मे शादी करने वालो की अपेक्षा अधिक नही होती। डिकिन्सन और ल्यूरा बीम ने देखा कि ऐसी पत्नियो की शादी की उम्र, जिन्हे यह माना जा सकता है कि वे शादी के वाद विना किसी कठिनाई के सामञ्जस्य स्थापित कर लेती है, औसत से कुछ वर्ष ज्यादा होती है। साथ ही लोगो के ऐसे जोडो के जो तलाक दे देते है या अलग-अलग रहने लगते है, दाम्पत्य-काल पर विचार करने पर देखा गया कि कम उम्र मे शादी करने वालो का दाम्पत्य-जीवन सब से कम होता हो, ऐसी वात नही है। जो अपेक्षाकृत अधिक उम्र मे शादी करते है वे अपनी गहरी से गहरी आवश्यकताओ

को जानने और उचित निर्णय करने के सम्बन्ध मे सब से अच्छी स्थिति मे होते है, पर उसके साथ ही यह देखा जाता है कि उनमे अक्सर ऐसी मानसिक आदते और शारीरिक गडबडिया पैदा हो चुकी है जिनसे मानसिक सामञ्जस्य स्थापित करना मुश्किल हो जाता है। इसके विपरीत एक नवयुवती मानसिक रूप से अधिक सामञ्जस्य तो कर ही सकती है, साथ ही वह शारीरिक रूप से मैथुन और प्रजनन के लिए भी अधिक उपयुक्त होती है। साधारणत इस बात को समझा नही जाता। प्रश्न सिर्फ उम्र का ही नही, अपितु चरित्र, बुद्धि और अनुभव का भी है। सम्भवत इस समय शादी जितनी उम्र मे होनी चाहिए उतनी ही बल्कि अक्सर उससे बहुत ज्यादा उम्र मे होती है। बर्गडोर्फेर कम उम्र मे शादी करने का जोरदार समर्थन करते है, जब कि हागेन और मेक्स क्रिश्चियन यह निष्कर्ष निकालते हैं कि सुप्रजननशास्त्रीय दृष्टि से पुरुष को पचीस वर्ष की उम्र मे और स्त्री को उससे कम उम्र मे शादी कर लेनी चाहिए और जो कुछ भी दिक्कते बाद मे आती है, हिम्मत के साथ उनका सामना करना चाहिए। जर्मनी मे अब शादी की उम्र पुरुष के लिए २९ और स्त्री के लिए २५ के आसपास है । वहा कुछ सदियो पहले पुरुष के लिए शादी की उम्र १९ और स्त्री के लिए १५ साल से भी कम थी।

शादी चाहे जिस उम्र मे हो, यह विशेष रूप से वाञ्छनीय और आवश्यक समझा जाना चाहिए कि दाम्पत्य-सम्बन्धो और पितृत्व-मातृत्व की दृष्टि से स्त्री और पुरुष दोनो की पूरी तौर से डाक्टरी जाच हो। विवाह की बातचीत के प्रारम्भिक सोपान मे और इस प्रस्तावित विवाह के बारे मे मित्र-मण्डली को कुछ मालूम होने से पहले ही यह काम हो जाना चाहिए। नि सन्देह इस डाक्टरी जाच मे स्त्री के गर्भाशय आदि और पुरुष की जननेन्द्रिय तथा मूत्राशय आदि की परीक्षा होनी चाहिए। यह भी तर्क दिया जाता है कि विवाह के लिए ऐसे डाक्टरी प्रमाण-पत्र अनिवार्य होने चाहिए। इस दिशा मे कुछ प्रयत्न भी किए गए है। सुप्रजनन-शास्त्र के सभी पहलुओ के (जो यहा हमारा विचार्य विषय नही है) अलावा भी यह जाच इतनी वाञ्छनीय और आवश्यक है कि शादी के लिए इच्छुक किसी भी जोडे को यह जाच करा लेनी चाहिए और उसके कानूनन अनिवार्य होने की प्रतीक्षा नही करनी चाहिए।

शादी के लिए एक और भी आवश्यक प्रकार की तैयारी जरूरी है, जिसे जोडा खुद निजी तौर पर कर सकता है। इस तैयारी का अर्थ यह है कि जोडा अपने प्रस्तावित घनिष्ठतम सम्पर्क को दृष्टि मे रखकर स्वय अपनी जानकारी और भावनाओ की परीक्षा करे। वे एक-दूसरे को और अपनी शारीरिक बनावट और उनके कार्यो के

सम्बन्ध मे क्या जानते है और इन बातो के प्रति उनकी भावनात्मक प्रतिक्रियाए क्या है, इस सम्बन्ध मे दोनो को पूरी जानकारी होनी चाहिए। डिकिन्सन और ल्यूरा बीम के शब्दो मे यह अक्सर ही होता है कि—"नवयुवक पति अपनी पत्नी को इतना पवित्र मानता है कि उसके आन्तरिक यन्त्र पर विचार नही कर सकता या पत्नी भी स्वय को एक ठोस तने वाला पेड समझती है। शारीरिक रचना के सम्बन्ध मे कुछ लोगो का ज्ञान इतना कम होता है कि उसकी तुलना प्राचीन ईरानियो के अज्ञान से की जा सकती है।" सर्वोपरि यह भी विचार्य है कि विवाहित प्रेम मे घनिष्ठता के सम्बन्ध मे क्या भावनाए है ? ऐसे पति और पत्निया मौजूद है जिन्होने एकान्त मे एक-दूसरे का स्पर्श भी नही किया है। ऐसे भी पति और पत्निया है जो एकसाथ कभी स्नानागार मे भी नही गए क्योकि या तो पति को या पत्नी को किसी न किसी तरह की झिझक थी। पर तब तक कोई आपसी विश्वास या भरोसा नही हो सकता—वास्तविक शादी की बात तो दूर ही रही, जब तक कि दोनो मे सम्पूर्ण अन्तरगता न हो और वह अन्तरगता दोनो को ही अच्छी न लगे। जैसा कि कैथराइन डैविस ने लिखा है कि जो स्त्रिया किसी न किसी तरह से काफी तौर पर तैयार थी उनमे दाम्पत्य-सुख का प्रतिशत उन स्त्रियो की अपेक्षा बहुत अधिक है जो इस तरह तैयार नही रही।

अकेले यौन दृष्टि से ही इस पारस्परिक ज्ञान की आवश्यकता हो, सो बात नही है। विवाह यौन सम्बन्ध के अतिरिक्त और भी बहुत-कुछ है। आजकल बहुत सी शादिया होती है जिनमे यौन सम्बन्ध कभी नही होता, पर पूर्णरूपेण पारस्परिक ज्ञान होने पर ऐसे लोगो के सुख मे भी वृद्धि होती है। इस प्रकार के कई व्यक्तियो का स्वभाव ऐसा होता है जो स्वत चाहे जितने हिसाब से रहे, वे कभी एक-दूसरे के मनोनुकूल नही हो पाते। इस बात की जाच शादी के पहले ही कर लेनी चाहिए। शादी के बाद के लिए उसे टालने से खतरा हो सकता है। जोडे के लिए यह आवश्यक है कि वे काफी समय तक साथ रहे और जीवन की साधारण और साथ ही असाधारण और कठिन परिस्थितियो मे से गुजरे, ताकि वे एक-दूसरे की अपने प्रति होने वाली प्रतिक्रिया को तो जान ही ले, इसके अलावा वे दूसरो के प्रति होने वाली प्रतिक्रियाओ का भी निरीक्षण कर ले क्योकि पति-पत्नी की पारस्परिक प्रतिक्रिया शादी के बाद पहले के मुकाबले मे कुछ खराब ही होने की सम्भावना रहती है। चर्च ने यह मानकर बडी बुद्धिमानी दिखाई है कि ईसाई मठ मे बाकायदा भिक्षुणी का घूघट धारण करने से पहले स्त्री को उम्मीदवारी के सोपान से गुजरना पडता है, इसी प्रकार विवाह की वेदी का घूघट धारण करने से पहले उम्मीदवारी के सोपान से गुजरना जरूरी है। रहा यह कि उसे वास्तविक

यौन क्षेत्र के सम्बन्ध मे भी ले जाया जाए या नही, यह दूसरी बात है।

शादी के लिए अकेले स्वभाव का सामञ्जस्य ही आवश्यक नही है, पर स्वभाव के सामञ्जस्य का यह अर्थ नही है कि दोनो मे स्वभाव की एकरूपता हो, वल्कि यदि मेल खाए तो उसमे स्वभाव की भिन्नता भी आ जाती है। यह भी वहुत आवश्यक है कि भावी दम्पति की रुचि और दिलचस्पियो मे सामञ्जस्य हो। स्वभाव की भिन्नता जैसे एक अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का और दूसरा बहिर्मुखी प्रवृत्ति का हुआ, तो भी उनमे सामञ्जस्य हो सकता है और वे एक-दूसरे के पूरक हो सकते है तथा यह वात प्रतिक्रिया की समरूपता की अपेक्षा पति-पत्नी दोनो के ही लिए अपेक्षाकृत अधिक सन्तोषपूर्ण हो सकती है। पर पूर्णरूप से विवाहित ऐक्य के लिए रुचि और दिलचस्पियो मे आवश्यक रूप से समरूपता तो नही किन्तु सामञ्जस्य का रहना अनिवार्य है। इस प्रकार सगीत के प्रति अरुचि रखने वाले व्यक्ति की सगीतप्रेमी व्यक्ति के साथ आसानी से घनिष्ठता नही होती। राजनीतिक मतभेदो का पलडा हमेशा यौन सामञ्जस्य से सन्तुलित नही हो सकता। और जहा अत्यन्त स्पष्ट रूप से धार्मिक विश्वासो मे अन्तर हो (जैसे एक रोमन कैथोलिक मत का मानने वाला हुआ और दूसरा प्रोटेस्टेट मत का हुआ) तो निश्चित रूप से ऐसे विवाह को रोकना चाहिए। आज के युग की पत्नी, घर से वाहर क्या हो रहा है—इसके प्रति दिलचस्पी न रखने वाली, विशुद्ध रूप से एक घरेलू प्राणी नही है। और अव किसी ऐसे सुखी विवाह की आसानी से कल्पना भी नही की जा सकती जिसमे ससार के सामाजिक जीवन के सम्वन्ध मे चलने वाले महान् आन्दोलनो के प्रति दोनो मे सामान्य मतैक्य न हो। उनके वीच जो कुछ भी अन्तर हो, यह अपरिहार्य है कि वह अन्तर सिर्फ तरीके और ब्योरे तक ही सीमित रहे।

यह हमेशा याद रखना चाहिए कि विचार्य विवाह उचित है या अनुचित, इस पर सलाह देना एक ऐसी वात की भविष्यवाणी करने का प्रयत्न है जिसके सम्वन्ध मे पहले से निश्चित तौर पर जाना नही जा सकता। जोडा विशेषत यदि वह तरुण हो, तो वह जो आज है कल विलकुल वही नही रहेगा। जैसा कि एक्सनर वडे अच्छे ढग से कहते है—"मनोवैज्ञानिक विवाह यानी रचनात्मक वैयक्तिक सम्वन्ध के रूप मे विवाह साथियो के वीच की एक सिद्धि है और यह आवश्यक नही है कि शादी होते ही उसकी प्राप्ति हो जाए।" वह अक्सर एक वहुत ही धीमी गति से मिलने वाली सिद्धि होती है। ऐसे सम्वन्ध को, जिसे पूर्ण और गम्भीर अर्थ मे विवाह कहा जा सकता है, पाने की धीमी प्रगति मे कई साल लग सकते है। यह भी हो सकता है कि वह कभी प्राप्त न हो।

कई आदमी ऐसे होते है जिन्हे किन्ही व्यक्तिगत कारणो से शादी करने की सलाह नही दी जा सकती। दूसरो को वशानुक्रम और प्रजननशास्त्र की दृष्टि से प्रजनन की नही, पर शादी करने की अनुमति दी जा सकती है। ऐसी दशा मे गर्भ-निरोध का सब से अच्छा तरीका यही है कि पति की प्रजनन-शक्ति को नष्ट कर दिया जाए।

सहायक पुस्तक-सूची

मेयो फाउडेशन लेक्चर्स—1923-4, Our Present Knowledge of Heredity

लेनार्ड डार्विन—Eugenic Reform

के० बी० डैविस—Factors in the Sex Life of Twenty-two Hundred Women

डिकिन्सन तथा ल्युरा बीम—A Thousand Marriages.

श्रीमती हैवलाक एलिस—'A Novitiate for Marriage' The New Horizon in Love and Life

एक्सनर—The Sexual Side of Marriage

आर० एल० डिकिन्सन—Pre-marital Examination

लोपेज देल वैले—'Pre-Marital Medical Examination,' World's Health, Sept , 1927

विवाहित जीवन मे परितृप्ति

प्राचीन काल में विवाह को ईश्वर अथवा राज्य द्वारा निर्धारित पवित्र कर्तव्य माना जाता था। मोन्तेन्यि ने कहा था कि हम अपने लिए शादी नही करते। उन दिनो परितृप्ति का प्रश्न मुश्किल से ही उठ सकता था, यद्यपि यह मान लिया गया था कि इस निर्धारित कर्तव्य का पालन करने से सिर्फ अपवादस्वरूप और विकृत व्यक्तियो को छोडकर सभी को सुख प्राप्त होता है। इस दृष्टिकोण को धर्म और कला दोनो ही समान रूप से पवित्र मानते थे। प्रेम-सम्बन्धी विख्यात उपन्यासो की समाप्ति आजीवन दाम्पत्य-प्रेम की प्राप्ति के आशीर्वाद से होती थी, तथा ईसाई-धर्म रोमाटिक ढग से इस बात को मानने से इन्कार करता था कि उसका अन्त किसी दूसरे प्रकार से भी हो सकता है। आज इस प्रकार का दृष्टिकोण बाबा आदम

के जमाने का समझा जाता है। वास्तविक तथ्यो के अनुसार ऐसा होना अनिवार्य था, कुछ तो इसलिए कि पहले तथ्य किसी आवरण मे ढके हुए थे और कुछ इस-लिए कि अब परिस्थितिया अपेक्षाकृत जटिल हो गई है। आज बहुत से लोग इस मत के विरोध मे एकदम दूसरे छोर पर चले गए है और यह घोषणा करते है कि शादी मे मुश्किल से ही साधारण परितृप्ति और सुख मिल पाता है, उससे जीवन-पर्यन्त परमानन्द मिलना तो बहुत दूर की बात है।

सन् १६०८ मे फ्रायड ने घोषणा की कि—"अधिकाश विवाहो के भाग्य मे आत्मिक निराशा और शारीरिक वचना ही लिखी होती है।" उन्होने यह भी कहा कि —"शादी के बोझ को उठाने के लिए किसी लडकी को बहुत स्वस्थ होना चाहिए।" इसी बात के समर्थन मे अपेक्षाकृत कम प्रसिद्ध अगणित लेखको के वक्तव्य उद्धृत किए जा सकते है।

जो भी हो, यह ध्यान देने योग्य है कि इस प्रकार के सारे वक्तव्य वैयक्तिक विचारो को व्यक्त करते है, जिनपर वैज्ञानिक मामलो मे आम तौर पर विश्वास नही किया जा सकता। साथ ही ये वक्तव्य कभी आकडो द्वारा प्रस्तुत सामग्री पर आधारित नही होते। इसके अतिरिक्त दूसरे अनुभवी पर्यवेक्षको के वैयक्तिक विचारो के साथ भी उनका मेल नही बैठता। जैसा कि हमे मालूम है, पति-पत्नी और बच्चो के लिए शादी मे सामान्यत जो बुराइया होती है उन्हे अधिकाश रूप मे रोका जा सकता है, पर उन बुराइयो का होना असन्दिग्ध और लगभग सर्वत्र देखा जा सकता है। फिर भी जैसा कि एक्सनर ने बतलाया है कि शादी के बारे मे अनुचित रूप से निराशावादी होने की जरूरत नही है और यह निराशा और भी कम हो जाएगी यदि समाज तरुण व्यक्तियो के दृष्टिकोण मे इतनी ज्यादा गडबडी पैदा न करे और जब वे पहला कदम उठाए तो उस समय उन्हे गुमराह न करे। जैसा कि यही लेखक बडे अच्छे ढग से कहते है कि असन्तोष के अनुपात की अधिकता कोई निरवच्छिन्न बुराई नही है। इसका अर्थ यह है कि हमारे सामने आदर्श ऊचा है और उसे प्राप्त कर लेना एक महान् सिद्धि ही है। सचमुच ही यह एक ऐसी बात है जिसे लोग अक्सर भुला देते है। हमारी सभ्यता और सम्भवत किसी भी सभ्यता मे कोई भी विवाह अपने पूर्ण अर्थ मे एकबारगी सफल नही हो सकता। स्वय के और जिस साथी से शादी हो रही है, उसके सम्बन्ध मे समान रूप से जो असाधारण अज्ञान अक्सर पाया जाता है उसपर विचार करते हुए यदि सच्चे विवाह की प्राप्ति मे कोई कठिनाई न आए तो यह बडे आश्चर्य की बात होगी। नितान्त वैयक्तिक पक्ष मे भी (जैसा कि करेन हार्नी लिखती है) शादी के तीन पहलू है—(१) शारीरिक सम्बन्ध (२) मानसिक सम्बन्ध और (३) मिल-जुलकर जीवन का सामना करने

के लिए साहचर्यगत सम्बन्ध। यह प्राय अपरिहार्य है कि कम तैयारी से जो कठिनाइया होती है उन्हे जीतने मे बहुत ज्यादा समय लगे। पर यदि लगातार कोशिश की जाए और दम्पति हिम्मत हारकर बैठ न जाए तो शादी के बहुत साल बाद ही सही, अन्ततोगत्वा एक दिन सच्चे और वास्तविक विवाहित सम्बन्ध की सिद्धि प्राप्त हो जाएगी। यहा तक कि दाम्पत्य-सम्बन्ध के अपूर्ण रहने पर भी गहराई से देखने पर पता चलता है कि बहुत सी बाते क्षतिपूर्ति के रूप मे उपलब्ध हो जाती है और इसमे सन्देह नही कि अक्सर ही ऐसा होता है। इमर्सन का क्षतिपूर्ति-सम्बन्धी सिद्धान्त शादी के मामले मे जितना खरा उतरता है उतना किसी अन्य बात मे नही उतरता।

तथ्यो के सम्बन्ध मे पर्याप्त रूप से सही दृष्टिकोण प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि व्यापक क्षेत्र मे पद्धतिबद्ध रूप से जाच की जाए। इतने पर भी सम्भव है कि सिर्फ अस्पष्ट रूप से ही लगभग ठीक नतीजा निकले। बहुत से लोग, दूसरो की बात को तो जाने दीजिए, अपने तई भी यह मानने के लिए तैयार नही होते कि उनका विवाह असफल रहा है। इसके विपरीत दूसरे लोग विवाहित जीवन की तुच्छ पर अपरिहार्य चिन्ताओ और चिडचिडापन की अधिकता के कारण केन्द्रीय तथ्यो को भुला देते है। ये तथ्य तभी देखे जा सकते है, जब कोई तटस्थ भाव से अलग खडा हो जाए और अपने जीवन को सम्पूर्ण रूप से लेते हुए उसपर दृष्टि डाले। ये लोग ऐसी जगह असफलता मान लेने को तैयार हो जाते है जहा किसी दूसरे मुहूर्त मे वे महान् सफलता का दावा करेगे। इसके अलावा कठिनाई का एक और भी मूलभूत स्रोत है। बहुत से लोग विवाहित जीवन मे वाञ्छित सन्तोष के सम्बन्ध मे गलत धारणा रखते है। वे यह समझने मे असफल रहते है कि विवाह तो सम्पूर्ण जीवन का ही एक लघु रूप है और यदि विवाहित जीवन की सभी बाते सहज और आनन्ददायक हो तो विवाह ससार की एक कमजोर प्रतिमा होता। इस प्रकार के विवाहित जीवन मे वह गहरा सन्तोष नही मिल सकता जो ससार-सागर मे गोता लगाकर मोती बीनने वालो को मिल सकता है।

इसलिए कम से कम यह कोशिश तो करनी ही चाहिए कि यह प्रश्न आकडो पर आधारित हो, यद्यपि इससे भी पूरी तरह सही उत्तर शायद ही मिले। यह मानते हुए कि विवाहित जीवन मे कामात्मक सम्बन्ध बहुत बडा हिस्सा अदा करते है (यद्यपि इस कथन को कुछ हद तक सीमित अर्थ मे लेना चाहिए), कैथेराइन डैविस ने देखा कि एक हजार अनुमानत सहीदिमाग स्त्रियो मे से ८७२ स्त्रियो ने असन्दिग्ध रूप से यह स्वीकार किया कि उनका दाम्पत्य-जीवन सुखी था। ११६ स्त्रिया आशिक रूप से या पूर्ण रूप से दुखी थी, जिसका प्रमुख कारण असामञ्जस्य था।

जवाब न देने वाली स्त्रियो की सख्या सिर्फ १२ थी।

डिकिन्सन को स्त्रीरोगो से पीडित अपनी मरीजो मे, जिन्हे कैथेराइन डैविस की कर्त्रियो के बराबर सहीदिमाग नही माना जा सकता, सन्तुष्ट स्त्रियो का अनुपात अपेक्षाकृत कम मिला। वे निष्कर्ष निकालते है कि उनकी एक हजार मरीज स्त्रियो मे प्रति पाच स्त्रियो मे से तीन स्त्रिया परिस्थितियो के साथ सन्तुलन प्राप्त कर पाई थी, वह इस अर्थ मे कि उन्हे अपने विवाहित जीवन के सम्बन्ध से 'कोई शिकायत नही' थी। सगठन या रचना की दृष्टि से 'सन्तुलित' और 'कुसन्तुलित' स्त्रियो के इन दो वर्गों मे कोई विशेष रचनागत स्पष्ट अन्तर नही था। वे एक ही सामाजिक और आर्थिक स्तर की थी। उन दोनो ही वर्गों की लगभग दो तिहाई स्त्रियो ने किसी न किसी समय आत्ममैथुनिक प्रक्रियाओ का पर्याप्त अनुभव किया था। सन्तुलित स्त्रियो मे कुसन्तुलित स्त्रियो की अपेक्षा सन्तानो की सख्या कुछ ही ज्यादा थी। पर इन दो वर्गों मे जो प्रधान अन्तर था वह यह था कि सन्तुलित स्त्रियो का जीवन के प्रति दृष्टिकोण कुसन्तुलित वर्ग की अपेक्षा अधिक वस्तुपरक था, वे अपेक्षाकृत कम आत्मकेन्द्रित थी और मानसिक सघर्षो से कम पीडित थी। इतने पर भी उन्होने देखा कि कुसतुलित वर्ग की सौ पत्निया सामाजिक रूप से स्वस्थ थी और उनका शैक्षिक तथा आर्थिक स्तर औसत दर्जे से ऊचा था और कुछ खास दशाओ मे तो वे परिमार्जित थी और अच्छी पोशाक पहनती थी। कई क्षेत्रो मे वे सुन्दर और बुद्धिमती स्त्रिया थी। उनमे से १३ स्त्रियो का चरित्र तो निश्चित रूप से अवाछनीय ढग का था और १६ स्त्रियो की दशा गहरी गडबडी के पास पहुच गई थी। जो कुछ भी हो, सामाजिक या शैक्षिक स्थिति अथवा स्वास्थ्य की दृष्टि से उनमे और सन्तुलित वर्ग मे कोई बहुत अन्तर नही रहा, साथ ही व्यक्तित्व और वातावरण के सामान्य वाह्य तत्त्व एक जैसे थे। शादी के पहले आत्ममैथुनिक क्रियाओ की मात्रा भी लगभग एक सी थी और किसी भी हालत मे अकेले सेक्स से ही हमेशा कुसन्तुलन की शुरुआत होती रही, ऐसी बात नही। यह कुसन्तुलन अक्सर असगति के कारण होता था। 'मानसिक सघर्ष' की उपस्थिति या उसका अभाव इन दो वर्गो के बीच का प्रधान अन्तर था। यहा हमे मालूम होता है कि सन्तुलन का प्रश्न कितना जटिल है।

जी० वी० हैमिल्टन द्वारा जाचे गए मामलो की सख्या इससे कम थी, पर उसमे स्त्री और पुरुष दोनो ही सम्मिलित थे। उन्होने सौ विवाहित स्त्रियो और सौ विवाहित पुरुषो मे विवाहित जीवन मे सन्तोष की मात्रा मालूम करने के लिए व्यापक जाच की। उन्होने सुख को चौदह वर्गो मे वाटा और प्रत्येक व्यक्ति को उसे मिलने वाले नम्बरो के अनुसार उन वर्गो मे से किसी एक वर्ग मे रख दिया। उन्होने देखा कि पत्नियो की अपेक्षा पति निश्चित रूप से अधिक सन्तुष्ट होते है। सब से ऊचे वर्गो

मे (७ से लेकर १४ तक) सन्तुष्ट पुरुषो की सख्या ५१ और स्त्रियो की सिर्फ ४५ थी और निचले वर्गो मे उनकी सख्या क्रमश ४६ और ५५ वचती थी। हैमिल्टन लिखते है कि स्त्रियो के व्यक्तिगत सम्पर्क से उनपर जो निश्चित प्रभाव पडा है उससे यह नतीजा मिलता-जुलता है। उनकी यह धारणा है कि कुल मिलाकर स्त्रियो को पुरुषो की अपेक्षा अपने विवाह से गहरा असन्तोष रहता है।

यह नही कहा जा सकता कि इस निष्कर्ष मे कोई आश्चर्य की वात है। मेरा भी अनुभव इस निष्कर्ष से मिलता-जुलता है। कुछ हद तक स्त्रियो के इस असतोष का कारण विवाह के प्रति स्त्री और पुरुषो के अलग-अलग ढग के सम्वन्ध है। पुरुष की अपेक्षा स्त्री के लिए शादी अधिक महत्त्व रखती है क्योकि पति और वच्चो की देखभाल मे आवश्यक रूप से उसका वहुत समय लगता है। इसलिए यदि स्त्री मे निराशा की भावना रहती है तो वह निराशा अधिक गहरी होती है। पुरुष का घर और परिवार से अलगाव अधिक होता है क्योकि अक्सर उसके जीवन का बहुत वडा भाग घर के बाहर बीतता है। घर मे उसकी गतिविधि का वहुत थोडा हिस्सा होता है। घर तो उसके आराम करने की जगह भर है। इसके विपरीत स्त्री को अक्सर यह महसूस करना पडता है कि शादी ही उसका सम्पूर्ण जीवन है और इस तरह उसके अन्दर अधिक गहरी समस्याए पैदा होती है। इस तरह हम डिकिन्सन के उस सार्थक कथन के निकट पहुच जाते है कि सन्तुलित पत्नियो और कुसन्तुलित पत्नियो के बीच प्रधान अन्तर यही है कि पूर्वोक्त अधिक वस्तुपरक और मानसिक घात-प्रतिघातो से कम पीडित होती है। दूसरे शब्दो मे, सन्तुलित स्त्रिया औसत पतियो से अधिक मिलती-जुलती है।

पर पत्नियो मे विवाहित जीवन के प्रति अक्सर ही पाए जाने वाले असन्तोष का वास्तविक आधार भी है, यद्यपि यह असन्तोष ऊपर न होकर कमोबेश सतह से नीचा होता है। वह जीवन की नई और व्यापक मागो से सम्बन्धित है, जिसे स्त्रियो की नई पीढी अधिकाधिक अपना रही है। आधुनिक स्त्री यह मानने को तैयार नही है कि पुरुष की प्रधानता और परिवार मे उसके स्थान की गौणता अपरिहार्य है। स्त्रियो के लिए तो ससार के धार्मिक और सामाजिक पहलू वदल गए है और इस परिवर्तन को काफी हद तक सामाजिक और वैधानिक स्वीकृति भी मिल चुकी है। पर पुरुषो की परम्पराओ मे अधिक परिवर्तन नही हुआ है। इसलिए जब कोई स्त्री शादी करती है तो उसका सामना एक ऐसी त्रुटि से होता है जो स्वय उसके अदर मानसिक सघर्ष वन जाती है। इस तरह के पुरुषो के सम्पर्क से दूर रहकर वडी होने वाली, पुराने विचारो वाली परन्तु रोमाटिक प्रकृति की स्त्रिया और साथ ही अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक नवयुवतिया भी होती है जो मधुराका के समय ही

पहली बार पुरुष-स्वभाव का परिचय प्राप्त करती है और इस प्रथम परिचय मे ही एक ऐसा असन्तोष पाती है जो कभी भी पूरी तौर से दूर नही हो सकता।

जैसा कि मैने बतलाया था, विवाह के बारे मे असतोष का एक अन्य आधार है जो और भी गभीर है। विवाह की बाहरी व्यवस्था मे अभी हाल मे जो परिवर्तन हुए है उनमे अक्सर विवाह के आधारभूत तथ्यो को भुला दिया गया है। उनमे बाह्य तत्वो पर ही अधिक ध्यान दिया गया है और यह बतलाने की चेष्टा की है कि विवाहित जीवन मे सुख की प्राप्ति बाह्य व्यवस्था के एक सहज सतुलन पर निर्भर रहती है। इन सब के ऊपर वे इस तथ्य को भी भुला देते है कि सिर्फ उथली से उथली प्रकृति के लोगो को छोडकर, आत्मा मे इतनी गहराई से प्रविष्ट होने वाला सबध कष्ट और कठिनाई के बिना नही हो सकता। पुराने जमाने के लोग इस बात को खूब समझते थे। पर विवाह मे कष्टो की अपरिहार्यता-सबधी प्राचीन धारणाए आज सचमुच ही पुरानी पड गई है। पर वे नए रूपो मे मौजूद रहती है और जैसा रिश्ता होता है, उनकी प्रवृत्ति भी उसी प्रकार की होती है। जहा हम यह स्वीकार भी कर लेते है कि तलाक की अधिक से अधिक समानता होनी चाहिए वहा यह भी हो सकता है कि तलाक से कोई लाभ न हो। हम लगातार देखते रहते है कि लोग तलाक देते है, पर दूसरी शादी करने के बाद भी ज्यादा सुखी नही होते। ऐसे लोगो के विवाहित जीवन मे कोई त्रुटि नही थी, स्वय उनमे ही त्रुटि थी। विवाह-समस्या का एक सूक्ष्म और मार्मिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए कैसरलिग विवाह को 'अतर्ध्रुव तनाव' कहते है। इसमे दो केद्रबिदुओ की एकता होती है। एक तनाव से ही दोनो एकसाथ रहते है। अन्यत्र वे इस तनाव को दु खपूर्ण तनाव कहते है और यदि शादी के रिश्ते को अक्षुण्ण बनाए रखना है तो इस तनाव का अत नही किया जा सकता। इस प्रकार का रिश्ता स्वय जीवन का ही प्रतीक है और जैसा कि सामान्यत जीवन मे होता है, वह आनद के लिए अनिवार्य है। अतएव यहा हमारा उद्देश्य दु ख के लिए दु ख या कष्ट के लिए कष्ट या इसी तरह की ससार से विरक्ति की भावना पर ज़ोर देना नही है। जैसा कि कवि-पैगबर खलील जिब्रान बार-बार कहते है कि "दु ख और सुख अविभाज्य है। क्या वह प्याला जिसमे शराब भरी है, वही पात्र नही है जिसे कुम्हार ने आग मे तपाया था ?" खलील जिब्रान के यह बात कहने के बहुत पहले ही ज्ञानी मोन्तेन्यि ने अपने एक निबध 'वर्जिल की कुछ पक्तियो पर' (जिसमे बहुत सी स्मरण-योग्य उक्तिया भरी पडी है) लिखा था कि—"जिन मासपेशियो के सहारे हम रोते है उन्हीके द्वारा हम हँसते भी है।"

सहायक पुस्तक-सूची

आर० एल० डिकिन्सन तथा ल्यूरा बीम—A Thousand Marriages

जी० वी० हैमिल्टन—A Research in Marriage

के० बी० डैविस—Factors in the Sex Life of Twenty-two Hundred Women

एक्सनर—The Sexual Side of Marriage

हैवलाक एलिस—'The History of Marriage' Vol VII of Studies In the Psychology of Sex and Little Essays of Love and Virtue

काउंट केसरलिंग—'Correct Statement of Marriage Problem,' in The Book of Marriage

एकविवाह का मानदण्ड

पाश्चात्य सभ्यता मे वर्तमान समय तक सिर्फ एक विवाह की प्रथा ही शादी का वैध रूप माना गया है। सच तो यह है कि ज्यादातर यह बात एक स्वयसिद्ध सत्य के रूप मे मान ली जाती रही है। शायद ही कभी किसी आदमी ने इस मत-वाद को चुनौती दी हो या इसपर सन्देह प्रकट किया हो। चुनौती देने वाले आदमी को लोग यदि वहुत ही गया-गुजरा नही तो सनकी और घृणित खामख्याली व्यक्ति जरूर समझते थे। पर आज विवाह के रूपो से सम्बन्धित प्रश्नो को यह कहकर टाला नही जा सकता कि ये प्रश्न हमेशा के लिए धार्मिक, नैतिक, वैधानिक और सामाजिक नियमन से तय कर दिए गए है। आज एकविवाहप्रथा मे जो लोग मीन-मेष निकालते है वे सब के सब नगण्य व्यक्ति नही होते। अत जिसे भी मनो-विज्ञान मे दिलचस्पी है उसे इस बात के लिए तैयार रहना चाहिए कि वह एक-विवाहप्रथा-विषयक यौन सम्बन्धो पर चाहे जिस मत का पोषण करे।

जो आन्दोलन एकविवाहप्रथा पर तर्क करने के लिए शुरू हुआ था उसके अगुआ हिटन थे। इस वात को हुए पचास साल से अधिक हो गया है, लेकिन चालीस साल पहले तक हिटन के विचार प्रकाशित होकर ससार के सामने नही आ पाए थे। वात यह है कि हिटन ने तय किया था कि वे जव तक एकविवाहप्रथा के वारे मे पूरी-पूरी जानकारी हासिल न कर लेगे, तव तक अपनी आलोचना

प्रकाशित नही करेगे। पर पूरी जानकारी प्राप्त होने से पहले ही उनकी मृत्यु हो गई। वे कोई ऐसे आदमी नही थे जिन्हे विकृतमस्तिष्क अथवा खामख्याली कहकर उडा दिया जा सकता था। वे लदन के एक प्रसिद्ध डाक्टर और साथ ही दार्शनिक विचारक थे। उनका अपने समय की वैज्ञानिक प्रगति के साथ निकट-सम्वन्ध था और सामान्य सामाजिक प्रश्नो और जीवन के साथ के नित्य सम्पर्को मे उन्हे गहरी दिलचस्पी थी। वे अपने पीछे जो पाण्डुलिपियो के ढेर छोड गए है वे स्वरूपरहित और अव्यवस्थित है, पर उनसे एकविवाहप्रथा और उससे सम्बद्ध रूढिगत सामाजिक प्रणाली की उनके द्वारा की गई आलोचनाओ की सामान्य दिशा को समझना सम्भव है। उनका विचार था कि वास्तविक रूप से एकविवाह-प्रथा का अस्तित्व ही नही है और उनकी जानकारी के अनुसार पाश्चात्य देशो की अपेक्षा बहुविवाहवादी प्राच्य देशो मे वास्तविक रूप से एक विवाह के दायरे मे रहने वालो की सख्या अधिक है। उनका मत था कि जिस रूप मे एकविवाह-प्रथा आज प्रचलित है उस रूप मे वह अनिवार्यत एक स्वार्थी और असामाजिक सस्था है और वेश्यावृत्ति के अस्तित्व के लिए जिम्मेदार है। मनुष्य-जाति अभी सब तरह से इस प्रथा के लिए तैयार नही हुई थी कि उसने इस प्रथा को अपना लिया। वात यह है कि एक आदर्श को, चाहे वह कितना ही अच्छा क्यो न हो, समय से पहले ससार भर के लिए कानूनी रूप से लागू करना एक भूल है, यद्यपि एकविवाहप्रथा का उद्देश्य प्रकट रूप से तो प्रचलित उच्छृखलता से वचना था, पर नतीजा यह हुआ कि उससे जितनी उच्छृखलता फैली उतनी वहुविवाहप्रथा से भी न फैलती। इसलिए उन्हे लगता था कि हमारी विवाहप्रथा सडी-गली है और जल्दी से बिखरकर टूट रही है। उनका विश्वास था कि हममे समयानुसार क्षेत्र-विशेष मे परिवर्तनशील यौन प्रणाली की जरूरत है जो कट्टर और पथराई हुई न हो, वल्कि जव उचित जान पडे तो उसमे एक पुरुष को दो स्त्रियो के साथ सम्वन्ध स्थापित करने की अनुमति दी जाए, यद्यपि यह जरूरी है कि यह वात हमेशा मनुष्य-जाति के हित मे हो।

अभी-अभी और आधुनिक समय मे वही तो नही, पर उसके समान एक मत-वाद समय-समय पर सामने रखा जाता है। यह दूसरी वात है कि उसके आधार अक्सर हिंटन के आधारो से भिन्न होते है और उसमे शेषोक्त की एकाग्र प्रखरता मुश्किल से ही पाई जाती है। इसीके साथ यह भी वता देना चाहिए कि हमारी विवाहप्रथा मे वस्तुत कुछ सुधार भी हो चुके है। यदि हम उसकी वर्तमान दशा की तुलना हिंटन के समय की परिस्थितियो से करे तो हम देखेगे कि जिस दिशा मे हिंटन चाहते थे उस दिशा मे आज वहुत से परिवर्तन हो चुके है। तलाक देना

ज्यादा आसान हो गया है, स्त्रियो को अधिक सामाजिक और कानूनी स्वतन्त्रता मिल गई है, दोगलेपन को आजकल कम कडाई के साथ देखा जाता है, गर्भनिरोध के तरीको का ज्ञान अब विस्तृत हो गया है और सभी सभ्य देशो मे यह माना जाता है कि स्त्री-पुरुषो के वीच अधिक स्वतन्त्रता की जरूरत है।

पर इसी वीच एकविवाहप्रथा भी आज अपने नाम के वास्तविक और सही अर्थ मे पहले की अपेक्षा कही अधिक दृढता से स्थापित हो चुकी है। एकविवाह-प्रथा को लोचयुक्त बनाकर हम एक बडी हद तक विवाहप्रथा को उन दोषो से मुक्त कर देते है जो उसके कट्टर रूप मे रहते है।

यहा यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि एकविवाहप्रथा को गलत अर्थ मे लेने से भ्रम पैदा हुआ। उदाहरण के लिए यह कहा जाता है कि एक लिग के व्यक्ति दूसरे लिग के व्यक्तियो की अपेक्षा एकविवाहकारी होते है। विशेपत पुरुष वहुविवाह-कारी होते है, जबकि स्त्रिया एकविवाहकारिणी होती है। मच्ची वात कही जाए तो ऐसे सारे वक्तव्य बेसिरपैर के और अर्थहीन होते है। शुरु से ही यह स्पष्ट है कि चूकि स्त्री और पुरुष लगभग बराबर सख्या मे पैदा होते है (शुरू मे पुरुषो की सख्या अधिक थी) इसलिए सभ्य समाज की स्वाभाविक व्यवस्था का क्रम एक पुरुष के लिए दो पत्निया नही हो सकता और ऐसे समाजो मे भी जो वहुविवाहप्रथा को स्वीकार करते है, वह सिर्फ एक छोटे से धनीवर्ग तक ही सीमित रहती है। पर यह कहना गलत है कि हमारी सभ्यता मे कभी भी पुरुष (विरल अपवादो को छोडकर) दो पत्नियो की इच्छा कर सकते है, चाहे पत्निया एक ही घर मे रहे अथवा अलग-अलग घरो मे, इस प्रकार की कई बाते है जो ऐसी अवस्था को अधिकाश पुरुषो के लिए अनुचित और अवाछनीय बना देती है। एक स्त्री के लिए तो यह और भी अव्याव-हारिक है कि वह दो अलग-अलग पिताओ के दो परिवारो को चलाए, वह आव-श्यक रूप से एकपतिवादी होती है।

तथ्य तो यह है कि इस शब्द का प्रयोग अनुचित है। जो लोग तर्क करते है कि क्या स्त्रियो की अपेक्षा पुरुष मे वहुविवाह की प्रवृत्ति अधिक है, उन लोगो का आशय वस्तुत बहुगामी शब्द से ही होता है। दूसरे शब्दो मे वे ज्यादा शादिया नही वल्कि ज्यादा यौन स्वतन्त्रता चाहते है। यदि यह कहा जाए कि पुरुष स्वभाव से एकविवाहकारी है तो भी यह प्रश्न वना ही रहता है कि वह स्वभाव से एकगामी है या वहुगामी, और यदि यह तय होता है कि वह वहुगामी है तो उसका किसी भी अर्थ मे यह मतलव नही है कि वह वहुविवाहकारी है या वह उच्छृखल है (जिसका मतलव यह है कि उसमे भेदरहित यौन आकर्षण का भाव सन्निहित रहता है)। यह एक ऐसी स्थिति है जो पागलपन की विरल दशाओ को छोडकर नही पाई जाती।

इस प्रकार शब्दो के अज्ञतापूर्ण व्यवहार से कई बार निरर्थक बहसे उठ खडी होती है जिनका कोई आशय नही होता।

यह दिखलाई देगा कि प्राय सभी व्यक्ति-स्त्रिया और पुरुष एकविवाहकारी और बहुगामी होते है। कहने का अर्थ यह है कि वे सिर्फ एक स्थायी विवाह की इच्छा रखते है, पर वे यह नही समझते कि उनका यह रिश्ता उनके किसी एक या एक से अधिक व्यक्तियो के प्रति यौन आकर्षण रहने मे आडे आता है, यद्यपि इस प्रकार से उत्पन्न आकर्षण उस आकर्षण से भिन्न हो सकता है, जैसा वे स्थानीय साथी के लिए अनुभव करते है। इसके अलावा यह भी सम्भव है कि ऐसे आकर्षण को कमोवेश नियन्त्रण मे रखा जाए। इस मामले मे स्त्रियो और पुरुषो मे कोई अन्तर दृष्टिगोचर नही होता। स्त्रियो मे भी यह क्षमता होती है कि वे पुरुषो के समान एक से अधिक पुरुषो के प्रति स्नेह का अनुभव करे। यह दूसरी वात है कि उनके लिए यौन कार्य का अधिक गम्भीर महत्त्व होता है और इस कारण वे सह-जात रूप से पुरुषो की अपेक्षा यौन चुनाव मे अधिक परिमार्जित दृष्टिसम्पन्न और सुरुचि रखने वाली होती है और सामाजिक तथा अन्य कारणो से वे अपने स्नेह को प्रकट करने मे अथवा उसके आगे समर्पण करने मे पुरुषो की अपेक्षा कम स्पष्ट-वादिनी और अधिक सतर्क रहती है।

जो कुछ भी हो, जहा यौन आकर्षण के सब से अधिक पाए जाने वाले प्रकार से ऊपर वताई गई स्थिति मालूम पडती है, वहा इसके अगणित वैयक्तिक प्रकारभेद भी है। हमे यह नही मान लेना चाहिए कि यौन स्वरूप का एक विशेष प्रकार अपरिवर्तनीय रूप से दूसरे प्रकारो की अपेक्षा अधिक उच्च और अधिक सामाजिक महत्त्व का है। सोवियत रूस मे व्लोस्की ने स्त्रियो के दो प्रमुख वर्गो पर (अधिकतर शिक्षकाओ मे से) विचार किया है। इन दो वर्गो मे से वे एक को एकपतित्व के वर्ग की ओर, दूसरे को बहुपतित्व के वर्ग की सज्ञा देते है। पहले वर्ग की स्त्रिया गम्भीर रिश्ता सिर्फ एक ही आदमी से रखती है और दूसरे वर्ग की स्त्रियो मे कई पुरुषो से या तो एकसाथ या एक के वाद एक करके रिश्ता कायम रखने की प्रवृत्ति होती है, यद्यपि इन दो स्पष्ट वर्गो के वीच अवश्य ही कुछ वीच के वर्ग भी रहते है। व्लोस्की का कहना है कि एकपतित्व वर्ग की स्त्रिया न केवल व्यक्तिगत रूप से वल्कि सामा-जिक रूप से भी बहुपतित्व के वर्ग वाली स्त्रियो की अपेक्षा श्रेष्ठ होती है। बहु-पतित्व वर्ग की स्त्रिया अधिक अहवादी और हर समय अपनी वात आगे वढकर कहने वाली होती है, साथ ही स्नायविक रूप से कमजोर होती है। इसके विपरीत एकपतित्व के वर्ग की स्त्रिया, जो सख्या मे लगभग दुगनी है, अपेक्षाकृत कर्तव्य-परायण, सन्तुलित, अधिक कुशल सगठन करने वाली और सामाजिक सम्पर्को मे

अधिक सफल होती है। नि सन्देह ब्लोस्की के ये निष्कर्ष औसत स्त्रियो के बारे मे चाहे वे रूस की हो या रूस के बाहर की, सही उतरते है। पर हमे इतनी दृढता के साथ साधारणीकरण करने से बचना चाहिए। बहुपतित्व वर्ग मे ऐसी भी स्त्रिया है जिनके सम्बन्ध मे जितना ब्लोस्की स्वीकार करने को तैयार है उससे बहुत ज्यादा उसकी तारीफ मे कहा जा सकता है। ठीक इसी तरह से इन्ही निष्कर्षो को पुरुषो पर लागू किया जा सकता है।

यह कोई ऐसा विषय नही है जिसपर यहा हमारा अन्तिम निर्णय देना जरूरी है। सामाजिक नैतिकता से सम्बन्धित बातो मे लोग व्यक्तिगत रूप से अपने कार्यो की जिम्मेदारी खुद ही उठाने के लिए बाध्य है। पर यह वाञ्छनीय है कि एक मनोवैज्ञानिक को आज के समाज की मानसिक प्रतिक्रियाओ की जानकारी हो, जिसमे कि वह रहता है। इसमे सन्देह नही कि आज परिवर्तन की प्रक्रिया दिखलाई देती है, यद्यपि यह प्रक्रिया उतनी उग्र नही है जितनी उग्र उसे अकारण ही सर्वत्र भय देखने वाले लोग बताते है।

बहुविवाहप्रथा को कुछ लोग आज बहुत भय की दृष्टि से देखते है। पर इस समय तलाक देने की प्रवृत्ति मे निरन्तर वृद्धि होने के कारण एकविवाहप्रथा एक साथ न होकर एक के बाद एक करके होने वाली बहुविवाह की प्रक्रिया मे बदल रही है। दूसरे शब्दो मे, वह सुपरिचित एकविवाहप्रथा का ही एक विस्तृत रूप है। शेष लोगो के लिए वह कामात्मक स्नेह की विविधता की स्वीकृति मात्र है। हर पुरुष और हर स्त्री मे दूसरे व्यक्तियो के प्रति कमोवेश कामात्मक रूप से अतिरजित स्नेह रखने की क्षमता होती है, चाहे वह व्यक्ति अपने केन्द्रीय स्नेह के बारे मे कितना ही एकगामी हो। इस बात को आज हम पहले की अपेक्षा स्पष्ट रूप से स्वीकार करते है। इस प्रकार से जो सतुलन आवश्यक हो गया है उसके लिए समस्त सम्बन्धित व्यक्तियो का उदार और विशालहृदयपूर्ण दृष्टिकोण होना आवश्यक है। साथ ही एक-दूसरे का ध्यान रखना, न्याय की समानता का भाव और बाबा आदम के जमाने की ईर्ष्याप्रवृत्ति पर काबू पाना भी जरूरी है, ऐसा किए बिना कल्याणकारी सभ्य जीवन बिताना असम्भव है।

पर एकविवाहप्रथा अपने प्रमुख स्वरूप मे वही है और वही बनी रहेगी जिस रूप मे हमउसे हमेशा देखते आए है। यदि उसमे अपेक्षाकृत लोच पैदा किया जाए, उसे अधिक बुद्धियुक्त बनाया जाए, और उसकी विविध आवश्यकताओ को सहानुभूति-पूर्ण दृष्टि से देखा जाए तो विवाहप्रथा अपेक्षाकृत दृढ होगी, उसका अन्त होना तो दूर रहा।

हमे यह कभी नही भूलना चाहिए कि विवाह कामात्मक मेल से कुछ अधिक

भी है, जैसा कि वह अक्सर होता भी है । सच्चे अर्थ मे एक आदर्श विवाह मे न केवल कामात्मक सगति होती है, वल्कि वहुमुखी और निरन्तर गहरे होने वाले अकामात्मक स्नेहो का मेल, रुचि, भावनाओ और दिलचस्पियो की एकता, एक मिला-जुला जीवन, मातृत्व-पितृत्व मे हिस्सा लेने की सम्भावना और आर्थिक मेल भी सम्मिलित रहता है । जैसे-जैसे अन्य क्षेत्रो मे विवाहित जीवन के वन्धन मजबूत होते जाते है, तैसे-तैसे कामात्मक तत्त्व की प्रधानता कम होती जाती है । कामात्मक तत्त्व विलकुल समाप्त भी हो सकता है और फिर भी विवाहित जीवन का पारस्परिक गहरा प्रेम-भाव अवचलित वना रह सकता है ।

सहायक पुस्तक-सूची

वेस्टरमार्क—The History of Human Marriage

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex, Vols VI and VII

हैवल.क एलिस—Little Essays of Love and Virtue and More Essays of Love and Virtue

वी० एफ० कालवर्टन—The Bankruptcy of Marriage

श्रीमती हैवलाक एलिस—James Hinton A Sketch

प्रजनन का नियन्त्रण

कैसरलिग ने लिखा है कि उन लोगो को तो यही उचित होगा कि वे शादी से वचे और यौन सम्वन्ध के किसी अन्य रूप को अपनाए जो विवाह के सम्वन्ध को उसके मूलभूत अर्थ मे ग्रहण नही कर सकते ।

जो भी हो, इस समाधान के अलावा एक वात और है, जिसे सुप्रजननशास्त्र की दृष्टि से विचार करते समय सन्तान के होने वाले सम्भावित प्रकार के सम्वन्ध मे हमे हमेशा ध्यान रखना चाहिए । पहले विवाह और प्रजनन एक थे और उद्देश्य की दृष्टि से अविभाज्य थे । विवाह की अनुमति देने का मतलव था प्रजनन की अनुमति देना, प्रजनन के विरुद्ध सलाह देने का मतलव था शादी का निषेध करना, और इस प्रकार की सलाह का अर्थ यह था कि ऐसे लोगो से हमेशा के लिए उनके जीवन के सुख को छीन लिया जाए, साथ ही अप्रत्यक्ष रूप से वेश्यागमन या यौन परितृप्ति के अन्य अवाञ्छनीय साधनो को प्रोत्साहन दिया जाए । किसी भी सभ्य

देश के शिक्षित वर्गों में अब यह बात आवश्यक नही है। गर्भनिरोध—गर्भधारण से बचते हुए मैथुन करने के विविध तरीके (चाहे उन्हे औपचारिक रूप से सार्वजनिक स्वीकृति मिली हो या न मिली हो) इतने सामान्य हो गए हैं कि उनके औचित्य या अनौचित्य पर विचार करना व्यर्थ है। ऐसे देशो मे जो कानून से उसका निषेध करते हैं और ऐसे धर्मो के मानने वालो मे भी जो उसे स्वीकार नही करते, गर्भनिरोध काफी बडे पैमाने में प्रचलित है।

इस प्रकार अब हम विवाह की वाञ्छनीयता और प्रजनन की वाञ्छनीयता मे फर्क करते हैं। शेषोक्त बात मे न केवल जोडे के विशेष रूप से पति-पत्नी के सम्भावित हितो का प्रश्न निहित है, बल्कि होने वाली सन्तान के सम्भावित हितो का प्रश्न भी आ जाता है। नि सन्देह यह बडे फायदे की बात है कि अब इन प्रश्नो पर अलग-अलग विचार किया जा सकता है। पर यह भी नही कहा जा सकता कि उसके द्वारा कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। पहले से ही यह रिवाज रहा है कि कुछ गम्भीर परिस्थितियो मे भावी प्रजनन को बन्द करने के लिए ब्रह्मचर्य रखा जाए। शादी के आरम्भ मे ही यह चेतावनी देना इस बात को सिर्फ एक कदम आगे बढाना मात्र है। यह बात भली भाति ज्ञात है कि स्नायविक रोगग्रस्त व्यक्ति एक-दूसरे को आकर्षित करते है। लोगों के अपने समान स्वभाव के व्यक्तियो की ओर आकर्षित होने की सामान्य प्रवृत्ति का यह सिर्फ एक अग है। अब यह माना जाता है कि यह प्रवृत्ति विरुद्ध स्वभाव के व्यक्तियो के प्रति आकर्षित होने की प्रवृत्ति से अधिक प्रचलित है। पहले शेषोक्त प्रवृत्ति को ही सामान्य नियम का रूप मिला हुआ था। दूसरे शब्दो मे, विषमस्वभाव प्रेम की अपेक्षा समस्वभाव प्रेम अधिक प्रचलित है। विरुद्ध गुणो के लिए लालायित होना सिर्फ गौण यौन लक्षणो के क्षेत्र तक ही सीमित है। एक बहुत ही पुरुषस्वभावयुक्त पुरुष एक बहुत ही स्त्रीस्वभाव-युक्त स्त्री के प्रति आकर्षित होता है, और इसका विपरीत भी हो सकता है, पर एक सामान्य नियम के रूप मे इसे प्रतिपादित नही किया जा सकता।

शादी करने का निश्चय कर लेने वाले स्नायविक रोगग्रस्त व्यक्ति जब हमारे पास सलाह लेने के लिए आते है तब डाक्टरीं सलाह इस तथ्य से सम्बन्धित होती है। स्नायविक रोगग्रस्त व्यक्ति अक्सर अनुभूतिशील, बुद्धिमान् और परिमार्जित रुचि-सम्पन्न होता है और उसे स्नायविक रोगग्रस्त व्यक्ति मे ही एकसाथ मनोनुकूल गुण दिखाई देते है, उसके विपरीत स्वस्थ और स्वाभाविक व्यक्ति उसे जडबुद्धि और सुरुचिहीन दिखाई देते है और उनसे उसे चिढ होती है। उसी प्रकार सहीदिमाग व्यक्ति स्नायविक रोगग्रस्त व्यक्तियो के रुग्ण और सनकी मिजाज को असुविधा-जनक और आकर्षणरहित पाते हैं। इसलिए पाठ्यग्रन्थो मे दी गई यह आम सलाह

बहुत-कुछ बेकार है कि यदि स्नायविक रोगग्रस्त शादी करते है तो उन्हे शादी सिर्फ अच्छी वश-परम्परा के व्यक्ति से ही करनी चाहिए। यदि हम मेडेल द्वारा प्रतिपादित उत्तराधिकार-सम्बन्धी बातो को ध्यान मे रखे तो यह मालूम होगा कि यह बात सैद्धान्तिक रूप से भी सही नही है। पर उसके अव्यावहारिक होने का कारण यह है कि वह इस तथ्य की उपेक्षा कर जाती है कि स्वस्थ व्यक्तियो और रुग्ण व्यक्तियो के बीच कोई प्रबल आकर्षण नही रहता और इसकी अधिक सम्भावना नही है कि ऐसा मेल सन्तोषजनक सिद्ध हो। यहा तक कि आपस मे शादी करने वाले दो नि सन्दिग्ध स्नायविक रोगग्रस्त व्यक्तियो की दशा मे ये सम्भावनाए अधिक नही है। और ऐसे व्यक्तियो को यह सलाह दी जा सकती है कि वे अपने खुद के और अपने साथी के हितो की दृष्टि से शादी ही न करे, चाहे उनके लिए अविवाहित दशा मे यौन परितृप्ति की समस्या कितनी ही मुश्किल क्यो न हो। ऐसे व्यक्तियो को शादी करने की सलाह न देने के और भी ठोस कारण है, विशेषकर जब किसी एक साथी मे कोई यौन विच्युति इतनी अतिविकसित है कि दूसरा साथी उसे परितृप्त नही कर सकेगा। पर अपेक्षाकृत मामूली स्नायविक कमजोरी की दशाओ मे ये आपत्तिया उतनी बडी नही है और साथ ही आकर्षण इतना अधिक होता है कि इस बात की सम्भावना कम ही होती है कि शादी करने के विरुद्ध दी गई सलाह मान ली जाएगी। इस प्रकार की दशाओ मे प्रजनन और विवाह को अलग कर देना अनिवार्य हो जाता है।

आज न केवल वे व्यक्ति जो सन्तान की इच्छा नही करते है बल्कि वे व्यक्ति भी जो सन्तान चाहते है, सामान्यत गर्भनिरोध की जरूरत को स्वीकार करते है कारण यह है कि मा के और बच्चे के—दोनो के ही स्वास्थ्य और भलाई की दृष्टि से यह वाञ्छनीय है कि एक प्रसव के बाद दूसरे प्रसव के बीच का अन्तर सुनियोजित हो और एक बच्चे के जन्म के बाद कम से कम दो साल तक दूसरा बच्चा पैदा न हो। इसके साथ ही अनेक आर्थिक या अन्य प्रकार के उचित कारण है, जिनके कारण जल्दी शादी करने वाले व्यक्ति भी यह नही चाहते कि बच्चे जल्दी पैदा हो। इसलिए सन्तान, चाहे उसकी इच्छा जितनी प्रबल हो, ऐसे समय उत्पन्न होनी चाहिए जब उसके माता-पिता इसके आगमन और उसकी देखभाल के लिए पूर्ण रूप से तैयार हो। इसके अतिरिक्त अधिक सदस्य वाले परिवारो के दिन अब लद चुके। परिवार, राष्ट्र और जाति के हितो के लिए यह काफी है कि हर विवाहित जोडे मे औसतन दो से लेकर तीन तक बच्चे हो और सभ्यता की सफाई-सम्बन्धी आज की दशाओ मे उनके अन्तर्गत यह सख्या आबादी को उसी स्तर पर बनाए रखने के लिए पर्याप्त है। जब किसी ठोस कारण से गर्भ धारण की अनुमति नही दी जा सकती, जैसे मा का

गिरा हुआ स्वास्थ्य या माता या पिता मे कोई ऐसी वशानुक्रम की खराबी जिसे अगली पीढी मे जाने से रोकना चाहिए, तो ऐसी हालत मे कडाई के साथ गर्भ-निरोध का पालन अनिवार्य हो जाता है।

यहा हमारा उद्देश्य गर्भनिरोध की प्रणालियो पर विचार करना नही है। अब इस विषय पर व्यापक साहित्य उपलब्ध है, यद्यपि सर्वोत्तम पद्धतियो को लेकर मतभेद है, और सर्वोत्तम कही जाने वाली पद्धतिया भी (हम इसमे प्रजनन-शक्ति के अन्त कर देने को नही गिन रहे हं) हमेशा विश्वसनीय नही होती। सौभाग्य से बहुत से देशो मे तेजी के साथ गर्भनिरोध-केन्द्रो की स्थापना हो रही है और उनसे व्यावहारिक सहायता और परामर्श प्राप्त किया जा सकता है, जिसके न होने से अक्सर अधूरी जानकारी रखने वाले व्यक्ति अपने उद्देश्य मे असफल रहते है, यद्यपि इस सम्बन्ध मे सब से अच्छी जानकारी रखने वालो के लिए भी यह अक्सर मुश्किल होता है कि गर्भनिरोध की सफलता के लिए आवश्यक सावधानी का पूर्ण रूप से हर मौके पर पालन किया जाए।

यह सच है कि गर्भनिरोध के सब से प्रचलित और प्राचीन तरीके--स्तम्भित समागम मे (जिसे ओनान की पद्धति कहते है) किसी सामग्री की जरूरत नही होती और बिना सलाह के ही काम मे लाई जाती है। इस पद्धति पर पर्याप्त भरोसा भी किया जा सकता है। पर जितना कि कभी-कभी बतलाया जाता है उतना नुक-सानदेह न होने पर भी यह तरीका अक्सर असन्तोषजनक रहता है क्योकि ऐसा करने के लिए अधिकाश पुरुषो को अनुचित रूप से जल्दबाजी करनी पडती है, जो पति के लिए आनन्दरहित और पत्नी के लिए असन्तोषजनक है, जिसे बाद मे परि-तृप्ति की जरूरत हो सकती है।

स्तम्भित समागम से आम तौर से एक समस्या उपस्थित हो जाती है। सभी अधिकारी विद्वान् इसको गर्भनिरोध का सब से अधिक प्रचलित तरीका मानते है। इसमे सन्देह नही कि वह सब से प्राचीन भी है और बाइबिल के 'उत्पत्ति-प्रकरण' मे उसका इस रूप मे उल्लेख है कि गर्भाधान को रोकने के लिए ओनान ने उसका प्रयोग किया था। यह तरीका सब से अधिक प्रचलित इसलिए है कि यह सब से सरल है। पहले से उसके सोच-विचार करने की जरूरत नही है या उसकी तैयारी मे एक फूटी कौडी भी खर्च नही होती, पर इसमे सन्देह नही कि स्नायविक प्रणाली के कल्याण की दृष्टि से कभी-कभी यह तरीका खतरो से खाली नही होता। यह बिल-कुल सच है कि इतने व्यापक रूप से प्रचलित तरीके पर विचार करते समय, सिफ इतना कह देना ही काफी नही है कि वह अक्सर नुकसानदेह पाया गया है। पर यह स्पष्ट है कि एक अनुपात मे--चाहे वह अनुपात बडा हो या छोटा--स्त्रिया, पुरुष या

स्त्री-पुरुष दोनो मे ही स्नायविक असन्तुलन के रूप मे प्रकट होने वाली छोटी-मोटी स्नायविक गडवडियो का कारण स्तम्भित समागम मे ही ढूढा जा सकता है। यह समझना आसान है कि विशेष तौर पर स्त्रियो मे ऐसा क्यो होना चाहिए। पति इस वात का हमेशा ध्यान नही रखता कि उसकी पत्नी का भी पूर्ण मैथुन हो जाए और चूकि स्त्रियो मे पुरुषो की अपेक्षा पूर्ण मैथुन की प्रक्रिया स्वभावत धीमी है, इसलिए यह स्पष्ट है कि पति को इस वात का ध्यान न रहने से वह अक्सर पत्नी का पूर्ण मैथुन होने के पहले ही शिश्न को निकाल लेता है, और इस तरह पत्नी मे उग्र रूप से स्नायविक असन्तोष और चिडचिडेपन की दशा उत्पन्न हो जाती है। वीर्यपात के पहले ही पुरुष को शिश्न निकाल लेना पडता है। इसके साथ ही ऐसे क्षण मे जव चरमोत्कर्ष निकट आ गया हो, कार्य को आकस्मिक रूप से वन्द कर देने से उसे जो धक्का लगता है उससे कभी-कभी पुरुष को नुकसान हुए विना नही रह सकता। यह आवश्यक है कि हम इस तरीके पर अमल करने की सम्भावना के प्रति सजग रहे और जव यह देखे कि रोग के लक्षण दिखाई पड रहे है तो उसे बन्द करा दे। इसमे सन्देह नही किया जा सकता कि अधिकाश लोगो के लिए स्तम्भित समागम उपयुक्त नही है और उसके स्थान मे गर्भनिरोध का कोई और तरीका होना चाहिए। जव तक पति-पत्नी परस्पर सहानुभूति और सहयोग के साथ स्तम्भित समागम जारी रखे, पति को किसी प्रकार का धक्का अथवा भय न लगे और पत्नी को पर्याप्त रूप से मैथुनिक परितृप्ति हो, तभी तक स्तम्भित समागम ठीक है। यदि पत्नी को वहुत देर तक मैथुनिक रूप से इतना अधिक उत्तेजित किया जाए कि वह पूर्ण मैथुन के निकट पहुच जाए और फिर मैथुन किया जाए तो पत्नी को पूर्ण मैथुन की प्राप्ति हो सकती है।

आज वहुत से लोग इसके उल्टे तरीके 'करेस्सा' मैथुन के प्रतिपादक है। चाहे वह अन्तिम रूप से प्राप्त होने वाली पूर्ण परितृप्ति के साथ हो या न हो, और उसपर अमल करने वाले लोगो की भी एक वहुत वडी सख्या है, पर वह उतनी अधिक नही है जितनी कि स्तम्भित समागम करने वालो की है क्योकि उसपर चलना अपेक्षाकृत कठिन है। ओनीडा जाति उसपर सामान्य रूप से अमल करती थी, और वाद को चलकर डाक्टर एलिस स्टाकेम्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'करेस्सा' मे उसका प्रतिपादन किया। इसमे सन्देह नही किया जा सकता कि दीर्घ समय तक मैथुन करना स्त्री को वहुत प्रिय है और उससे जरा भी नुकसान नही पहुचता क्योकि वह पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रहती है और उसे यह छूट रहती है कि जितना भी चाहे समय लेकर पूर्ण परितृप्ति प्राप्त करे। जिन स्त्रियो ने इसका अनुभव किया है वे इसे पसन्द करती जान पडती है। जो भी हो, इस पद्धति को अमल मे लाने वाले

पुरुषो पर उसका क्या असर पडता है, इस सम्बन्ध मे कुछ शकाए उठाई गई है। इस विचार के लिए पर्याप्त कारण है कि कुछ दशाओ मे वहुत अधिक समय तक मैथुन करने से वे ही स्नायविक परिणाम (यद्यपि अक्सर अपेक्षाकृत कम मात्रा मे) हो सकते है जो स्तम्भित मैथुन से होते है। पर ऐसी दशाओ के एक वडे अनुपात मे निश्चत रूप से ऐसा नही होता। स्वस्थ और सुसन्तुलित स्नायविक प्रणाली वाले पुरुषो को छोडकर इस पद्धति को अमल मे लाना अक्सर आसान नही होता और यदि उसे बहुत ही ज्यादा अमल मे न लाया जाए तो कोई दुष्परिणाम नही होता।

या तो असावधानी के कारण या फिर अनुपयुक्त पद्धति को उपयोग मे लाने के कारण जब गर्भनिरोध का प्रयत्न असफल रहता है तो कभी-कभी एक गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो जाती है। पर इस अवस्था मे कुछ भी नही किया जा सकता। वैयक्तिक, सामाजिक या सुप्रजननशास्त्र की दृष्टि से भी गर्भपात चाहने वाली स्त्री को किसी प्रकार की सहायता देना एक दण्डनीय अपराध है। स्त्रिया क्वचित् ही इसके अवैध होने की बात को समझ पाती है। वे यह समझने मे असमर्थ रहती है कि यदि वे गरीब है तो उन्हे हानिकारक दवाइया लेकर गर्भ गिराने के लिए क्यो विवश किया जाता है, और यदि वे अच्छे-खासे सम्पन्न परिवारो की है तो (अग्रेज होने पर) आपरेशन कराने के लिए उन्हे विदेश जाने के लिए क्यो वाध्य किया जाता है। जब आजकल की अपेक्षा कानून के सुधार पर स्त्रियो का प्रभाव वढ जाएगा तो इसमे सन्देह नही है कि गर्भपात का निषेध करने वाले कानून मे सुधार होगा क्योकि उसके आधार अब पुराने पड गए है। इसके अलावा यह स्पष्ट रूप से मान लिया जाएगा कि यह एक वैयक्तिक प्रश्न है और कानून को उसमे दखल देने का कोई अधिकार नही है। यदि गर्भपात अनुचित है तो इस बारे मे सलाह देने का काम डाक्टर का है, पुलिस वालो का नही। इस दिशा मे सोवियत रूस और अन्य कई देशो मे आन्दोलन चल रहा है, यद्यपि वहा गर्भपात को बढावा नही दिया जाता तो भी जव तक गर्भनिरोध के बारे मे, जनता मे व्यापक रूप से जागृति नही होती और गर्भनिरोध की सुविधाए व्यापक रूप से उपलब्ध नही होती तव तक अस्पतालो मे उचित सावधानी के साथ डाक्टर गर्भपात कराते है।

गर्भधारण को रोकने के लिए इतनी अधिक सावधानी और सतर्कता की जरूरत है कि अव पिछले कुछ वर्षो मे इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक विशेष वैकल्पिक साथ ही अधिक विश्वास-योग्य पद्धति यानी प्रजनन-शक्ति को (पर मैथुनिक शक्ति को नही) नष्ट कर देने की पद्धति दिन-वदिन पसन्द की जा रही है। इस पद्धति से सभी खतरे दूर हो जाते है। अव वह पद्धति पुरुषो मे शुक्रवाहिनी नाडियो को और स्त्रियो मे डिम्बवाहिनी नाडियो यानी फेलोपियन नलिकाओ के एक खण्ड को काट-

कर और बाधकर आसानी से सम्पन्न की जाती है और इससे कोई हानि नही होती और न तो यौन ग्रन्थियो को हटाना ही पडता है। पर किसी मानसिक गडबडी के इलाज की पद्धति के रूप मे इसका महत्त्व सन्दिग्ध है और यदि उसे जबरदस्ती किया जाए तो उसके परिणाम मानसिक रूप से बहुत ही हानिकर हो सकते है। यदि उसे स्वेच्छापूर्वक गर्भनिरोध की एक पद्धति के तौर पर स्वीकार किया जाए तो उससे बडा फायदा दिखाई देता है। साथ ही ऐसा करने से उन सावधानियो की जरूरत नही रहती जिनको अधिकाश लोग उचित रूप से पसन्द नही करते।[1] यह कहने की जरूरत नही है कि प्रजनन-शक्ति नष्ट करने की पद्धति से हमेशा के लिए गर्भनिरोध हो जाता है, और इसलिए उसे बिना अच्छी तरह सोचे-समझे नही अपनाना चाहिए।

कभी-कभी कई डाक्टर भी ऐसा समझते है कि प्रजनन-शक्ति को नष्ट करने की पद्धति वर्तमान समय मे अवैध है। इस विश्वास का कोई ठोस आधार नही है। इगलैड मे 'सुप्रजनन-समाज' ने प्रजनन-शक्ति को नष्ट कर देने की पद्धति का और अधिक प्रसार करने के उद्देश्य से ससद् मे एक विधेयक रखने का प्रयत्न किया था। जो भी हो, उसका उद्देश्य उसे कानूनी बनाने का नही था (जैसा कि कुछ लोग अनुमान करते थे क्योकि उसपर तो अमल हो ही रहा है) बल्कि उसके फायदो को शारीरिक-मानसिक त्रुटियुक्त लोगो और गरीब वर्गो तक पहुचाना था। यह दु ख के साथ कहना पडता है कि उसके फायदो के बारे मे कुछ डाक्टर भी सन्देह करते है। पर इसमे कोई सन्देह नही किया जा सकता कि त्रुटिपूर्ण माता-पिताओ से उत्पन्न त्रुटिपूर्ण बच्चो का बिलकुल सही अनुपात चाहे जो हो, प्रजनन-शक्ति नष्ट करने की पद्धति यहा वैयक्तिक, सामाजिक और सुप्रजननशास्त्र की दृष्टि से सहायक हो सकती थी, यद्यपि इस तरह यह सम्भव नही था कि मानसिक रूप से अयोग्य तत्त्वो को आबादी से दूर किया जा सके। यह तो सिर्फ शुरुआत मात्र है। इस विषय के बारे मे इस समय भी व्यापक रूप से जागृति फैलाने की जरूरत है।

---

१ शुरू-शुरू की जिन दशाओं की मुझे जानकारी है उनमे एक मे अमेरिका के एक डाक्टर ने अपनी शुक्रवाहिनी नलिका का आपरेशन कराया था ताकि वे गर्भनिरोध की रोजमर्रे की सावधानियो से छुट्टी पा सकें, जिन्हे वे और उनकी पत्नी दोनो ही नापसन्द करते थे। डाक्टर का स्वास्थ्य अच्छा था और उनके कई बच्चे थे और उन्हें अब और ज्यादा बच्चो की चाह न थी। आपरेशन से उन्हें ज्यादा तकलीफ या असुविधा न हुई। और मामूली तरीके पर वे उस दिन भी अपने दफ्तर का काम करते रहे। आपरेशन का नतीजा उनके और उनकी पत्नी—दोनो के लिए सन्तोषजनक रहा। बहुत सालों के बाद जब मुझे उन लोगों का समाचार मिला, तब भी वे सन्तुष्ट थे। न तो आपरेशन से पुंस्त्व में कमी आई थी और न ही कामवासना में। इस मामले को अब हम टाटी के चाबुक के रूप में मान सकते है।

इसीकी तरह एक ग्राम समस्या यह है कि समागम कितनी जल्दी-जल्दी किया जाए। इस बात को लेकर परस्पर-विरोधी अनेक दृष्टिकोण बडी कट्टरता के साथ सामने रखे जाते है। कुछ व्यक्ति हर रात्रि को समागम करना स्वाभाविक और आवश्यक समझते हैं और कई साल तक इसपर अमल करते रहते हैं। प्रकट रूप से उनपर इसका कोई बुरा नतीजा नही होता। इसके विपरीत कुछ लोग यह कहते हैं कि सन्तानोत्पत्ति के अलावा कभी समागम नही करना चाहिए, जिसका अर्थ यह होगा कि सम्पूर्ण जीवन मे सिर्फ दो या तीन बार ही समागम किया जाए। ऐसे लोग यह भी तर्क करते है कि यही स्वाभाविक और नैतिक है। नि सन्देह यह सच है कि जानवरों मे मैथुन का एकमात्र उद्देश्य यही है, पर यह निश्चित करते समय कि मनुष्य के लिए क्या स्वाभाविक है और क्या अस्वाभाविक, हमे यह अधिकार नही है कि सुदूर अतीत के विकास की कडी मे स्थित जानवरो के लिए जो बात स्वाभाविक समझी जाती है, हम मनुष्यो के लिए भी उसे स्वाभाविक माने। हमें तो मानव-वर्ग के सामान्य यौन व्यवहार पर विचार करना है, जिससे किसी भी दशा मे यह परिलक्षित नही होता कि उसका उद्देश्य इतना सकुचित है कि यौन व्यवहार सिर्फ प्रजनन तक ही सीमित है, यद्यपि कुल मिलाकर (सामान्यत. किए जाने वाले अनुमान के विपरीत) अविकृत असभ्य जातिया सभ्य जातियो की अपेक्षा ब्रह्मचर्य का अधिक पालन करती है। पर यदि ऐसा नही होता तो भी निम्नतर जातियो की आदतो से हमारी आदतो का भिन्न होना बिलकुल सही है। निश्चित रूप से यौन अगो का विकास प्रजनन के लिए हुआ था, व्यक्ति की यौन परितृप्ति के लिए नही। पर यह भी उतना ही निश्चित है कि हाथो का विकास उदरपूर्ति के लिए हुआ था न कि पियानो या बिहाला बजाने के लिए। पर यदि व्यक्ति अपने अगो को ऐसे उद्देश्य मे लगाकर आनन्द और प्रेरणा प्राप्त करता है जिस उद्देश्य के लिए वे अग नही बनाए गए थे तो वह एक पूर्णत उचित और नैतिक कार्य करता है, चाहे हम उसे 'स्वाभाविक' कहना पसन्द करे या न करे। जो लोग निम्नतर जातियो का अनुकरण कर मैथुन को प्रजनन के 'स्वाभाविक' उद्देश्य तक ही सीमित रखने के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं उन्हे निम्नतर जानवरो का अनुकरण कर कपडे पहनना भी छोड देना चाहिए क्योकि वह भी अस्वाभाविक है। मनुष्य की कला उचित रूप से मनुष्य की गतिविधियो के अन्तर्गत समझी जा सकती है और कला प्रकृति के साथ कोई वास्तविक विरोध उत्पन्न नही करती।

"यह एक कला है
जो प्रकृति को सुधारती तो क्या बदलती है, पर
कला तो स्वय प्रकृति है।"

यदि सारे सन्दिग्ध मतवादो को एक तरफ रख दिया जाए तो यह मानना ही पडेगा कि मैथुन कितनी जल्दी-जल्दी हो—इसके वारे मे व्यावहारिक दृष्टिकोण से प्रकारभेद का दायरा बहुत व्यापक होता है, और प्रत्येक व्यक्ति की दशा मे यह ढूढना आवश्यक है कि प्रत्येक विशेष मामले मे जितनी जल्दी-जल्दी समागम करना दोनो के लिए सुविधाजनक होता है, और यदि इस मामले मे दोनो साथियो मे कुछ मतभेद हो तो उसे कैसे दूर किया जा सकता है। यह उपदेश कि सप्ताह मे दो वार समागम किया जाए, वहुत से लोगो के लिए अनुकूल हो सकता है, पर यह सव से अच्छा मालूम होता है कि सयम से होने वाले लाभो पर (सयम ब्रह्मचर्य से विलकुल अलग चीज है) और मैथुन को साधारण और वेजान रस्म-अदायगी मात्र वनाने से जो हानिया होती है उनपर जोर दिया जाए। कभी-कभी इस मामले मे नियम तोडने से भी फायदे होते है। असाधारण रूप से जल्दी-जल्दी समागम करने के वाद दीर्घ समय तक समागम न हो तो उसमे कोई वुराई नही, मासिकधर्म के वाद स्त्री की इच्छा के अनुसार आसानी के साथ अधिक समागम किया जा सकता है। चूकि स्त्री मे पुरुष की अपेक्षा कामेच्छा अनियमित और खामख्यालीपूर्ण होती है, इसलिए इस मामले मे स्त्री को ही नियम बनाने वाली समझना चाहिए और उसकी सुविधा के अनुसार कार्य करने मे पुरुष को लाभ ही है। पर एक वार यहा फिर से वता देना चाहिए कि किसी भी हालत मे वार-वार करके समागमो को वढाने की अपेक्षा यह निश्चित करना अच्छा है कि एक समागम के वाद दूसरा समागम उचित अर्से के वाद किया जाए। जल्दी-जल्दी मैथुन करने से समागम के शारीरिक और आत्मिक दोनो प्रकार के लाभ लुप्त हो जाते है। जव यौन समागम वहुत ही कम किया जाए तभी आनन्दातिरेक प्राप्त हो सकता है।

समागम को अक्सर जल्दी-जल्दी करने की आदत डालना इसलिए भी अवाछनीय है कि उससे विना समागम के अधिक समय तक रहना मुश्किल हो जाता है, जो कई वार किसी एक साथी की अनुपस्थिति, वीमारी या प्रसूति के वाद (एक महीना या छह हफ्ते) जरूरी हो सकता है। स्त्री की गर्भावस्था के वीच समागम का प्रश्न वडा कठिन है। इससे जो घरेलू कठिनाइया पैदा हो सकती है उन्हे ध्यान मे रखते हुए डाक्टर इस वारे मे सलाह देने से हिचकिचाता है। इसमे सदेह नही कि अधिकाश दशाओ मे मुख्य वात यह मालूम करना है कि गर्भपात की पूर्वप्रवृत्ति मौजूद है या नही। इस सवध मे प्रत्येक स्त्री की स्थिति मे फर्क होता है। कुछ गर्भिणिया ऐसी होती है कि यदि उनकी मौजूदगी मे छीक भर दिया जाए तो उनका गर्भपात हो जाता है। इसके विपरीत कुछ ऐसी होती है कि यदि उन्हे छठी मजिल की खिडकी से नीचे धकेल दिया जाए तो भी उनका गर्भपात नही होगा। जहा

गर्भपात की पूर्वप्रवृत्ति मौजूद रहती है, वहा यह अनिवार्य है कि पत्नी की गर्भावस्था मे ब्रह्मचर्य का पालन किया जाए। इसके अलावा हर हालत मे यह वाछनीय है कि गर्भावस्था के वाद के महीनो मे इस प्रकार की आदत डाली जाए। पर यह आवश्यक जान पडता है कि गर्भावस्था की सम्पूर्ण अवधि मे जव सयम रखने की सलाह दी जाए तो ऐसा खूव सोच-समझकर किया जाए। एक-दूसरे के साथ सहानुभूति रखने वाले और बुद्धिमान् दपति अपने-आप इस कठिनाई को दूर कर सकते है और ऐसी परिस्थितियो मे हस्तमैथुन की आदत पड जाने का भी वहुत खतरा नही है, पर जो डाक्टर गर्भावस्था के साथ यौन सयम का वधन लगा देता है वह कभी-कभी यह अनुभव कर सकता है कि उसने कुछ ऐसी दिक्कते पैदा कर दी है जिनको दूर करना उसके वश के वाहर है।

यहा हमारा प्रधान उद्देश्य प्रजनन-सबधी दशाओ का नियमन करना नही है और न यह विचार करना ही है कि एक स्वस्थ और सहीदिमाग दपति के लिए कितने बच्चे सारी दृष्टियो से हितकर होगे। यह व्यापक रूप से माना जाता है कि यदि शादी साधारण रूप से वहुत ज्यादा उम्र मे नही होती है तो शादी के वाद कुछ समय तक गर्भ न धारण करने दिया जाए। वर्तमान सामाजिक परिस्थितियो मे वह खतरा कम है। एक नवयुवती के लिए प्रसव करना उतना हानिकारक नही है जितना कि कुछ लोग अक्सर अनुमान करते है। इस प्रकार एडिनवर्ग की धात्रीशास्त्र-वेत्ताओ की सभा मे ८ जून १६३२ को भाषण देते हुए मिलर ने 'रायल मैटर्निटी हास्पिटल' मे १७ साल और उससे कम उम्र की लडकियो के १७४ प्रसवो के नतीजे वताए थे। इसमे स्वत स्फूर्त विना किसी कठिनाई के होने वाले प्रसवो की सख्या ८५ प्रतिशत थी। शिशु और स्त्री के योनिमुख का सही अनुपात न होने के कारण सिर्फ आठ दशाओ मे डाक्टरी सहायता की जरूरत पडी। मृत शिशुप्रसव और पैदा होते ही मरने वाले शिशुओ की सख्या ६ ५ प्रतिशत थी, जब कि अस्पतालो मे पैदा होने वाले सभी बच्चो के लिए यह सख्या ११ ८ प्रतिशत थी। अधिक उम्र की स्त्रियो को प्रथम प्रसव से वहुत ज्यादा कष्ट और खतरे रहते है। चाहे जिस उम्र मे वच्चो का पैदा होना शुरू हो, निश्चित रूप से यह वाछनीय है कि मा और वच्चो, साथ ही पिता और पति के हितो की दृष्टि से भी दो वच्चो के पैदा होने के वीच कम से कम दो साल का समय वीत जाए। मौजूदा परिस्थितियो मे परिवार और आवादी को कायम रखने के लिए सभी दृष्टियो से प्रति परिवार वच्चो की सख्या दो से लेकर तीन तक होना हितकर है। इससे पहले खराव सामाजिक परिस्थितियो और मृत्यु-सख्या अधिक होने के कारण अधिक सख्या की जरूरत पडती थी। जैसे-जैसे सामाजिक जागृति वढ़ती

जाएगी, सुप्रजननशास्त्र के सिद्धातो का प्रभाव उत्तरोत्तर वढेगा और कुछ परिवार छोटे होगे तथा कुछ परिवार उचित रूप से वडे।

वर्तमान परिस्थितियो मे कितनी जल्दी-जल्दी गर्भनिरोध-पद्धति पर अमल किया जाए, इसपर और प्रजनन के प्रति जो दृष्टिकोण है उसपर विचार करते समय एक और प्रश्न उठ खडा होता है। यहा हमे इस प्रश्न पर अतिम रूप से उल्लेख कर देना चाहिए। चूकि प्राय सभी गर्भनिरोध-पद्धतियो मे योनि को शुक्राणुओ के सपर्क से वचाना पडता है या हर हालत मे योनि से शुक्राणुओ को फौरन ही वाहर निकाल देना पडता है, इसलिए स्त्री को समागम से जो फायदे होते है इससे क्या उसमे कुछ कमी आती है?—इस प्रश्न के साथ सब से पहले तो यह सवाल उठता है कि क्या योनि और गर्भाशय मे शुक्राणुओ को जज्व करने की ताकत होती है? इस प्रश्न पर कभी-कभी गर्भनिरोध के वे विरोधी वहुत जोर देते है जो गर्भनिरोध के मतवाद पर हमला करने के लिए हमेशा चोखे हथियारो की तलाश मे रहते है। मूत्राशय की तरह, जिसमे सुई से जहर डालने से कुछ ही मिनट के भीतर जानवर मर जाते है, योनि की दीवारो मे भी जज्व करने की ताकत है। पर इसके पहले लोग अक्सर ही इसे मानने से इन्कार करते थे, जैसा कि रोलेडर ने किया था। पर तब से इस सबध मे परिस्थिति वहुत वदली है। जी० डी० राविन्सन और लोयसर ने सन् १९२५ मे अपने-अपने देशो मे खोज करने पर यह तथ्य निकाला कि स्त्री की योनि कुछ दवाइयो को जैसे पोटेशियम, आयोडाइड और सोडियम सेलिसिलेट को द्रुत गति से जज्व करेगी और कुनेन और गन्ने की शक्कर को देर से जज्व करेगी। मूत्र मे इन जज्व किए गए द्रव्यो की उपस्थिति से इस वात को प्रमाणित किया जा सकता है। लोयसर ने यह स्थापित किया कि पारदीय क्लोराइड और आयोडीन इस सबध मे सब से जल्दी जज्व होने वाले पदार्थ है, पर कुछ द्रव्य कठिनाई से जज्व होते है या विलकुल ही जज्व नही होते। स्वास्थ्य और उम्र के अनुसार यह शक्ति घटती वढती है। एक स्वस्थ युवती वडी तेजी मे जज्व करेगी। इसके आगे यह भी दिखलाया जा चुका है कि शुक्राणु वास्तविक रूप मे जज्व हो जाते है। वे रक्त मे खमीर पैदा कर सकते है और साफ दिखलाई देने वाले तौर पर अडकोष के प्रोटीडो को तोड सकते है। सन् १९१३ मे वियना मे ई० वाल्डस्टाइन और आर० एक्लर ने खरगोशो पर प्रयोग कर यह सिद्ध किया। वाद को चलकर सन् १९२१ मे वियना मे डिटलर ने मादा खरगोशो के रक्त मे वीर्य का इजेक्शन देने का प्रयोग किया और यह सिद्ध कर दिया कि उसमे मादा खरगोशो मे मैथुन के वीर्य मे गर्भधारण की क्षमता नही रह गई।

पुरुषवस्तु विविध ग्रन्थियो—प्रोस्टेट ग्रन्थि और काउपर ग्रन्थि—के क्षरणो के

मिश्रण से बनती है। कोलब्रुग्गे ने बहुत पहले यह सवाल किया था कि क्या समागम की तुलना पुरुषवस्तु के इजेक्शन से की जा सकती है। अधिक उपयुक्त रूप मे आर्थर थामसन ने यही प्रश्न सन् १९२२ मे इस रूप मे रखा था—क्या उर्वर-किरण के विशिष्ट कार्य के अलावा वीर्य पहुचाने की प्रक्रिया से स्त्री मे कोई परिवर्तन होता है ? क्या स्त्री पर समागम के लाभदायक नतीजे, समागम के कार्यगत परिणाम और उसके फलस्वरूप उत्पन्न आनन्दातिरेक से नही, वल्कि वीर्य के अन्तर्गत द्रव्यो से होने वाली शारीरिक उत्तेजना से होते है ? शेपोक्त प्रश्न और भी स्पष्ट है।

इस प्रश्न का उत्तर देने मे जो सशय है उसका कारण यह है कि मानसिक परिणामो को सम्भावित शारीरिक परिणामो से अलग करना मुश्किल है। बहुत पहले सन् १८९६ मे ल्सोथ और प्रग्ल ने एर्गोग्राफ यन्त्र पर कार्य किया और ग्लिसरीन की सहायता से बाहर से आए हुए सुझावो के प्रभाव को हटाने के लिए नियन्त्रित निरीक्षण किया। इससे उन्हे यह निष्कर्ष निकालने का आधार मिल गया कि अण्डकोष स्फीतिजनित निर्यास का उद्दीपनकारी और अवसाद दूर करने वाला परिणाम होता है। वान् डि वेल्डे की इस कथित गवाही के अलावा भी कि मैथुन के बाद कुछ समय तक सास मे वीर्य की गन्ध आती है, हम यह निश्चित रूप से विश्वास कर सकते है कि समागम मे वीर्य स्वाभाविक रूप से जज्ब हो जाता है। मुझे याद है कि लडकपन मे मैने एक जर्मनभिक्षु के बारे मे पढा था, जो सूघकर व्यभिचार करने वाली स्त्री को पहचान सकता था।

इस बात को एकदम बहुत आसानी के साथ मान लेना गलत-सा है कि यदि इस प्रकार वीर्य का जज्ब होना सम्भव है तो समागम के लाभदायक परिणामो का कारण वही है। इस सन्देहरहित तथ्य से और भी बल मिला है कि गर्भनिरोध की पद्धति के द्वारा मैथुन करने पर हमेशा ही ये लाभदायक परिणाम नही होते। जो कुछ भी हो, यहा यह मालूम होगा कि मुख्य प्रश्न तो यह है कि समागम सतोपजनक था या नही। इसमे लेशमात्र भी सन्देह नही हो सकता कि वीर्य के साथ सम्पर्क न होने पर भी समागम पूर्णत. आनन्ददायक और सुपरिणामसहित हो सकता है। स्वय वीर्य से कई फायदे हो सकते है, पर उन्हे पाने के दूसरे तरीके भी है और गर्भनिरोध के सभी तरीको मे वीर्य के साथ सम्पर्क न होता हो, ऐसी बात नही है। गर्भनिरोध के साधन के रूप मे प्रजननशक्ति को नष्ट कर देने के अनेक लाभो मे से एक लाभ यह भी है कि उसमे वीर्य को शरीर मे जज्ब होने की पूरी आजादी रहती है। जैसा कि किलिक मिलार्ड ने निरीक्षण किया है कि बहुत सी स्त्रिया तथा माताए, जो कई बच्चो के भार से दबी हुई है, इन अतिरिक्त लाभो को

वडी खुशी के साथ छोड देगी ताकि वे आगे अधिक प्रसवो और सन्तानोत्पादन की मुसीवत से बच सके, और इसके साथ ही अपने पति को भी तृप्त कर सके।

सहायक पुस्तक-सूची

जी० बी० हैमिल्टन—A Research in Marriage

आर० एल० डिकिन्सन—A Thousand Marriages

मार्गरेट सांगेर—The New Motherhood

माइकेल फील्डिग—Parenthood Design or Accident ? A Manual of Birth Control

जे० एफ० कूपर—Technique of Contraception

एम० सी० स्टाप्स—Contraception . Its Theory, History and Practice

ए० कोनिको—Contraception

Some More Medical Views on Birth Control, edited by Norman Haire

कार सान्डर्स—The Population Problem

लैन्सलाट हागबेन—Genetic Principles in Medicine and Social Science

लेनार्ड डार्विन—Eugenic Reform

गोसने तथा पापेनो—Sterilization for Human Betterment

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex, Vol VI, and More Essays of Love and Virtue

The Eugenics Review

The Journal of Social Hygiene

सन्तानहीन विवाह की समस्या

कुछ विवाहित जोडे ऐसे होते है जो परिपक्व रूप से अच्छी तरह विचार करने के बाद फैसला कर लेते है कि उनके लिए सब से अच्छा यही है कि स्थायी रूप मे जीवन-पर्यन्त अथवा अस्थायी रूप से कुछ समय तक सन्तान न पैदा करे। कुछ जोडे ऐसे भी होते है जिनके सन्तान नही होती, पर जो सन्तान की इच्छा रखते है और

समुचित कारणो से यह आशा करते है कि डाक्टरी इलाज या आपरेशन कराने से वे अपनी इच्छा को पूरा कर सकेगे। पर यदि हम इन दोनो प्रकार के जोडो को छोड दे तो भी कुछ जोडे ऐसे रह जाते है जिनको इस बात का निश्चय हो चुका है कि उनके कभी सन्तान नही होगी, इतने पर भी उन्हे सन्तान की लालसा बनी रहती है, ऐसी हालत मे वे क्या करे ?

सचमुच ही यह समस्या बहुत कम अवसरो पर उठती है। यदि सन्तान की प्रबल इच्छा है तो यह अत्यन्त वाञ्छनीय है कि विवाह के पहले स्त्री और पुरुष किसी और बात के लिए नही तो सिर्फ इसी बात के लिए डाक्टरी जाच करा ले कि सफलतापूर्वक गर्भधारण करने और जन्म देने की समुचित सम्भावना है कि नही। जो भी हो, इस परीक्षा से सम्भावना से अधिक और किसी बात की आशा नही की जा सकती क्योकि कई मामले ऐसे होते है जिनमे बच्चे का मुह देखने के लिए लालायित जोडे को कोई सन्तान नही प्राप्त होती, और बाद मे जब स्त्री और पुरुष तलाक देकर अन्य पुरुष और अन्य स्त्री से विवाह करते है तो दोनो को सन्तान हुई। ऐसी दशाओ से भी गर्भधारण करने मे रुकावटे हो सकती है, जो शादी के पहले मालूम नही हो सकती थी या उनके बारे मे पहले से अनुमान नही किया जा सकता था और जो बाद मे मालूम पडती है। इस समस्या के चार सम्भावित समाधान है और इन सब मे उनका मानसिक पक्ष भी है—

(१) **परिस्थिति को स्वीकार करना**—बहुतो के लिए यही समाधान सब से अच्छा साबित हो सकता है। जहा प्राय सभी लोग और निश्चित रूप से सभी स्त्रिया किसी न किसी समय सन्तान की इच्छा करती है, वहा यह इच्छा हर हालत मे हमेशा स्थायी नही होती। यह महसूस होने लगता है कि जीवन मे और चीजे भी है। साथ ही यह भी मान लिया जाता है कि इस समय सन्तानो की कमी से दुनिया मिट नही जाएगी। यह भी हो सकता है कि जीवन के लिए जो उद्देश्य और रास्ता चुना जाए उसमे इतना व्यस्त और डूबा रहना पडे कि सन्तान-पालन के भाग को उठाना किसीके लिए और विशेष तौर पर एक स्त्री के लिए सम्भव न होगा। बात यह है कि यदि मातृत्व को पूरी तौर से निभाया जाए तो वह स्वय जीवन के कुछ वर्षो तक एक ऐसा धन्धा होता है जिसमे रात-दिन डूबे रहना पडता है। शायद इस प्रकार के धन्धे मे सभी को रुचि नही होती या फिर उनमे वशानुगत रूप से असन्तोषजनक बनावट का सज्ञान भाव मौजूद रहता है, जिसे वश चलाकर अगली पीढी मे पहुचाना उचित न होगा। पर बहुत सी दशाओ मे वात्सल्य के सहजात का उदात्तीकरण हो सकता है, मातृत्व के सहजात को सामाजिक कार्यो की दिशा मे मोडा जा सकता है। ऐसी सन्तान के,

जो शायद दुनिया का या खुद अपना भी भला न कर सके, शारीरिक रूप से माता-पिता बनने की जगह यह सम्भव है कि इस प्रकार से प्रयुक्त शक्ति को निश्चित कल्याण के मार्ग मे लगा दिया जाए। इन तरीको से बहुत सी स्त्रियो को प्रसिद्धि और साथ ही सन्तोष भी मिला है और उन्होने बहुत सी महत्त्वपूर्ण सेवाए की है।

(२) **तलाक दे देना**—यह व्यवस्था ऐसे जोडो के लिए उचित हो सकती है जो सन्तानोत्पादन को ही सब से अधिक महत्त्व देते है, पर इस सम्बन्ध मे जो कानूनी दिक्कते आडे आती है उन्हे यदि छोड भी दिया जाए तो भी यह कोई ऐसा समाधान नही है जिसका हमे स्वागत करना चाहिए। यह सम्भव है कि कोरे सिद्धान्त के तौर पर तो तलाक की सुविधा की प्रशसा की जाए, पर साथ ही तलाक को अमल मे लाने की निन्दा की जाए। इसके अलावा दूसरी शादी पहली शादी के मुकाबले मे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण होने के साथ ही ऐसा हो सकता है कि उससे भी सन्तान न हो। इससे भी आगे अच्छे से अच्छे अर्थ मे भी, तलाक जीवन के सब से महत्त्वपूर्ण वैयक्तिक मामलो मे असफलता की स्वीकृति है और बुरी से बुरी हालत मे भी सम्भवत साथियो के बीच ऐसे बन्धन बने रहते है जिन्हे सिर्फ इसलिए महत्त्वहीन नही कहा जा सकता कि बच्चे नही हुए। यदि ऐसे व्यक्तियो को जो साधारणत सन्तान न होने के कारण तलाक देना चाहते है, पूरी-पूरी सचाई मालूम हो जाए तो वे उल्टा यह चाहने लगते है कि उन्हे तलाक दे दिया जाए, क्योकि वे अपने-आपमे सगति का अभाव पाते है। इसलिए उनके लिए सन्तान न होने की समस्या वस्तुत वृहत्तर समस्या का एक हिस्सा मात्र है।

(३) **बच्चा गोद लेना**—यह एक ऐसा समाधान है जो सब से पहले हमारे सामने आता है और सही ढग पर किया जाए तो प्रशसनीय रूप से सफल रहता है। जब से इगलैड मे उसे कानूनी तौर पर जायज मान लिया गया है, तब से उसका महत्त्व और भी बढ गया है। इससे विवाहित सम्बन्ध टूटता नही है, पर सम्भवत मजबूत ही होता है और एक बच्चा मिल जाता है। सिर्फ शारीरिक रूप से जन्म देने के अर्थ मे छोडकर बाकी सब अर्थो मे पत्नी ऐसे बच्चे की सच्ची मा बन सकती है। इसमे सामाजिक सेवा का भी तत्त्व निहित रहता है क्योकि ऐसे बच्चे के सामने सुखी भविष्य की उचित सम्भावना बढ जाती है, जो शायद अन्यथा न केवल अपने माता-पिता के लिए बल्कि खुद अपने और समाज के लिए भी भार साबित होता। बहुत सी सुखी और बुद्धिवादी जीवन बिताने वाली स्त्रियो के लिए भी यह उपाय एक अकथनीय वरदान और सुख का अनवरत स्रोत साबित हुआ है।

गोद लेने की सफलता के लिए कुछ सावधानी करनी चाहिए। बच्चा बहुत कम

उम्र मे ही गोद लिया जाए। साथ ही उसके सौपे जाने का कार्य भी निरवच्छिन्न और सम्पूर्ण हो। स्वास्थ्य और वशानुक्रम का प्रश्न मुख्य है। वच्चे के माता-पिता और पूर्वजो के बारे मे जानकारी की उपेक्षा करने का नतीजा कडवा हो सकता है। किसी भी बच्चे को तब तक गोद नही लेना चाहिए जव तक उसके इतिहास के सब जानने योग्य तथ्यो पर डाक्टर की सहायता से सावधानीपूर्वक विचार न कर लिया जाए।

(४) **नियोग द्वारा सन्तानप्राप्ति**—सब समाधानो मे यह सव से मुश्किल है। कभी-कभी ऐसा करने का विचार किया जाता है, पर सिर्फ अपवादस्वरूप परिस्थितियो मे ही उसे कार्यान्वित किया जा सकता है। कठिनाई इस तथ्य से होती है कि इसके लिए तीन व्यक्तियो की स्वीकृति की जरूरत पडती है और इन तीनो मे से प्रत्येक व्यक्ति इस बात को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखने के लिए बाध्य है, और ये तीनो ही महसूस करते हैं कि वे एक ऐसा कार्य कर रहे है जिसे उनका समाज नापसन्द करता है। इसका सन्तोषजनक रूप से सम्पादन इतना दुर्लभ है कि इस समाधान पर विचार करना वेकार है और ऐसा करने की सलाह देना भी व्यर्थ ही है।

यह सच है कि इस समाधान मे दो प्रकारभेद भी हो सकते है—एक तो वह, जिसमे पत्नी पति से बिना पूछे ही इस मामले को अपने हाथ मे लेती है। यह समाधान पूर्ण रूप से निन्दनीय है, और दूसरा समाधान कृत्रिम रूप से वीर्य पहुचाने का है जो सब से अधिक व्यावहारिक है। इसमे अक्सर असफलता मिली है और उससे स्पष्टत अरुचिकर बाते पैदा होती हैं। पर यह उपाय व्यावहारिक है और समय-समय पर सफलतापूर्वक सम्पन्न भी किया गया है। हाल मे डाक्टर वान् डि वेल्डे ने उसकी तकनीक पर तर्कपूर्ण विचार प्रस्तुत किए है।

सहायक पुस्तक-सूची

वान् डि वेल्डे—Fertility and Sterility in Marriage

नपुंसकता और मैथुनिक शीतलता

यौन आवेग की शक्ति और उसके प्रथम वार प्रकट होने तथा अन्तिम रूप से उसके लुप्त होने की उम्र मे, विभिन्न क्षेत्रो मे वहुत भेद होते है। इस वात मे मानव (उच्चतर जातियो के कुछ वनमानुपो को छोडकर) प्राय सभी मानवेतर-

जातियो से भिन्न है, जिनमे यौन आवेग का प्रजनन-शक्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। प्रजनन मे उपयोग के बिना उनमे यौन आवेग बहुधा रहता ही नही।

बाल्यावस्था मे कामभावना अक्सर नही रहती। हा, वह जननेन्द्रिय के अतिरिक्त अन्य रूपो मे रह सकती है। जब बाल्यावस्था मे कामभावना सुप्त होती है और आसानी से प्रकट नही होती उस समय भी शारीरिक तथा मानसिक दोनो क्षेत्रो मे कामभावना की अभिव्यक्ति साधारण स्वस्थ बच्चो मे होती रहती है, कम से कम यह अभिव्यक्ति इतनी विरल नही है कि उसे अस्वाभाविक समझा जाए। इसी प्रकार जीवन के दूसरे छोर अर्थात् बुढापे मे भी मानसिक क्षेत्र के यौन जीवन की कोई निश्चित सरहद नही है। स्त्रियो मे यौन आवेग हमेशा तो क्या, अक्सर ही रजोनिवृत्ति के साथ लुप्त नही होता और पुरुषो मे तो काफी उम्र ढल जाने पर भी कामवासना ही नही बल्कि रति-शक्ति तक बनी रहती है।

यौन आवेग की शक्ति और प्रबलता के बारे मे भी इसी तरह के प्रकारभेद है। यदि हम उसकी प्रबलता को इस बात से नापे कि यूरोपीय देशो के युवको का निद्रावस्था मे वीर्यस्खलन कितनी जल्दी-जल्दी होता है तो हमे मालूम होगा कि कुछ लोगो का ऐसा स्खलन सप्ताह मे दो से लेकर तीन बार तक होता है, फिर भी इससे उनपर किसी प्रकार का गम्भीर क्लान्तिजनक परिणाम नही होता। अन्य लोगो का इस प्रकार से वीर्यस्खलन महीने मे एकाध बार होता है, और कुछ व्यक्तियो मे तो यह बात होती ही नही है। यदि हम उसे एक बार फिर इस बात से नापे कि यौन सम्पर्कयुक्त जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति समागम कितनी जल्दी-जल्दी करते है तो हमे पता चलेगा कि कुछ दशाओ मे लोग लगातार कई वर्ष तक आदतन हर रात को समागम करते है और फिर भी यह नही दिखलाई देता कि इससे उन्हे किसी तरह की हानि पहुची है। अन्य दशाओ मे लोग महीने मे एक बार से अधिक समागम करने को समझते है कि क्षति हो रही है। जिसे हम समुचित रूप से स्वास्थ्य की सामान्यत अच्छी दशा मान सकते है उसमे भी वैयक्तिक प्रकारभेद व्यापक होते है और इस बारे मे कोई सामान्य नियम निर्धारित नही किए जा सकते।

जो कुछ भी हो, पुरुषो मे पूर्ण यौन अनुभूतिहीनता या जीहेन के अनुसार अनेडोनिया या यौन शीतलता या सापेक्ष मैथुनिक शीतलता और यौन उत्तेजना के प्रति उदासीनता इतनी अधिक पाई जाती है कि यही कहना पडता है कि उसका लोगो को सही अनुमान नही है। कुछ दशाओ मे तो यह दशा सचमुच मे वास्तविक होने की अपेक्षा सिर्फ ऊपरी होती है और उसकी वजह अक्सर यौन आवेग मे एक अस्वाभाविक और अस्वस्थ दिशा की, विशेष रूप से अतृप्त समलैंगिक मैथुनिक

आवेग की उपस्थिति होती है। बहुतसी दिशाओं मे यह हो सकता है कि मैथुनिक शीतलता अतिहस्तमैथुनजन्य क्लान्ति का परिणाम मात्र हो। इसके सिवाय वह अन्य दशाओ मे दूसरी शारीरिक अथवा मानसिक गतिविधियो के बहुत बढ जाने से हो सकती है, जिनमे शरीर की सारी अतिरिक्त शक्ति खप जाती है, यद्यपि हमे यह स्वीकार करना पडेगा कि इनमे से कुछ दशाओ मे यौन आवेग शुरू से ही शिथिल रहा है। अन्य लोगो मे मैथुनिक शीतलता किसी न किसी प्रकार से अल्प विकास के होने और उसके बाद के बाधित विकास के कारण होती है।

हमारी सभ्यता मे जीवन की जरूरतो को पूरा करने के लिए कठोर परिश्रम करना पडता है। साथ ही यौन आवेग का विकास भी अस्वाभाविक दशाओ के अन्तर्गत होता है। इन दोनो तरह की परिस्थितियो के मेल से अक्सर समागम करने लायक रति-शक्ति, चाहे वह निरवच्छिन्न रूप से हो या साक्षेप रूप से, लोगो मे उपलब्ध नही होती। हैमिल्टन ने हमारे समाज के सबसे सभ्य कहे जाने वाले लोगो मे जाच की थी, उन्होने देखा कि सिर्फ ५५ प्रतिशत पति और ३८ प्रतिशत पत्निया अपनी रति-शक्ति को स्वस्थ और स्वाभाविक मानती थी। इस जाच के दौरान मे कुछ स्त्रियो और पुरुषो ने अनिर्णयात्मक उत्तर दिए थे, फिर भी यह निश्चित है कि तुलनात्मक रूप से ऐसे स्त्री-पुरुषो का अनुपात अधिक था जो यह समझते थे कि उनकी रति-शक्ति उससे कम है जितनी कि उन्हे स्वभावत होनी चाहिए। साथ ही ऐसे लोगो का अनुपात कम था जो यह समझते थे कि उनमे अधिक रति-शक्ति है। यह परिणाम सामान्यत इस प्रचलित विश्वास के विरुद्ध है कि स्त्री और पुरुष दोनो की प्रवृत्ति अपने यौन गुणो को बढा-चढाकर बतलाने की होती है। यह भी उल्लेखनीय है कि जो पति यह सोचते थे कि उनकी स्त्रिया अल्परति-शक्तियुक्त है उनकी सख्या, और उन पत्नियो की सख्या जो यह सोचती थी कि उनके पति अल्परतिशक्तियुक्त है, लगभग बराबर ही थी। इसके आगे हैमिल्टन को यह भी मालूम हुआ कि ४१ प्रतिशत पत्नियो ने यह स्वीकार किया कि उन्हे रति-शक्ति प्राप्त करने मे कठिनाई होती थी या हुई थी, जब कि २४ प्रतिशत पत्निया (यह याद रहे कि वे आवश्यक रूप से उन पतियो की पत्निया नही थी जिनकी जाच की गई थी) अपने पतियो की रति-शक्ति को त्रुटियुक्त मानती थी। जो भी हो, यहा यह ध्यान देने योग्य है कि ऐसे पतियो और पत्नियो का अनुपात, जो यह समझते थे कि उनकी रति-शक्ति औसत से कम है, उन्हीका विवाह मामूली रूप से लेकर अधिक सन्तोषजनक रहा। सचमुच ही यह अनुभव सामान्यत पाया जाता है। जो लोग विवाह को सिर्फ यौन रिश्ते के रूप मे देखते है और कल्पना करते है कि विवाहित सुख के लिए बहुत अधिक मात्रा मे मैथुनिक

क्रियाशीलता की जरूरत है, उन्हे यह बात खास तौर पर ध्यान मे रखनी चाहिए। स्त्रीरोगो की जाच करते समय डिकिन्सन को, परोक्ष रूप से ही सही, उनके पतियो के विषय मे जानकारी हो गई थी। और इस परोक्ष जानकारी के अनुसार उन्हे मालूम हुआ कि इन पतियो मे से लगभग ६ प्रतिशत नामर्द थे।

हमे यह बात हमेशा ध्यान मे रखनी चाहिए कि यौन भावना की अति और उसकी त्रुटिया दोनो ही नपुसकता पैदा करने मे योग दे सकती है। कुछ लोगो के मन मे शादी को लेकर भारी आतक छाया रहता है, ऐसा कुछ तो इस कारण होता है कि उन्हे अपनी रतिशक्ति मे सन्देह रहता है। इसलिए यह एक महत्त्वपूर्ण बात है और इसपर समुचित विचार होना चाहिए। अपनी रतिशक्ति पर सन्देह से सम्बन्धित यह आतक शादी से बिल्कुल सम्बन्धित न होते हुए भी या उस दशा के बाद के सोपानो मे भी हो सकता है। किसी न किसी कारण से होने वाला रति-शक्ति का अभाव पुरुषो मे अनुमान से कही ज्यादा पाया जाता है। सचमुच ही ऐसे विवाहो की सख्या कम नही है जिनमे इसके कारण कभी यौन सम्बन्ध होता नही है, पर ऐसे जोडो का सुख औसत जोडो के सुख से हमेशा कम होता हो, यह बात नही है। पर यह सन्देह कि वह एक हद तक नपुसक है (यद्यपि उसकी जैसी रतिशक्ति को पाने के लिए दूसरे लोग असफल प्रयत्न करते रहते है), औसत पुरुष के मन मे इतनी भारी दुश्चिन्ता पैदा कर देता है कि वह उसे दूर करने के लिए कोई भी इलाज कराने को तैयार हो जाता है और अक्सर नीम-हकीमो के जाल मे फस जाता है, जो इसी घात मे रहते है तथा उसके आतक का फायदा उठा-कर अपना उल्लू सीधा करते है। अत्यन्त भावात्मक दबाव की दशा के अन्तर्गत अस्थायी रूप से रतिशक्ति का अभाव हो सकता है, पर इसका कोई गम्भीर महत्त्व नही। स्नायविक रूप से कमजोर और अनुभवशून्य लोग विशेष रूप से इसमे पड जाते है। मोतेन्यि ने बहुत पहले ही कल्पना की शक्ति पर जो निबन्ध लिखा था उसमे उन्होने यह बतला दिया था कि किस प्रकार नपुसकता सिर्फ भय के ही कारण होती है और बडी बुद्धिमानी के साथ उन्होने सुझाया था कि किस प्रकार भय को निढाल करने की प्रवीण युक्तियो से रतिशक्ति को सम्पूर्णत फिर से प्राप्त किया जा सकता है।

जो कुछ भी हो, कुछ दशाओ मे रतिशक्ति की त्रुटि स्नायविक प्रणाली द्वारा वातावरण से प्राप्त की गई बातो पर आधारित होती है। दूसरे शब्दो मे, हमारा वास्ता मानसिक नपुसकता से नही, पर स्नायविक दौर्बल्ययुक्त नपुसकता से पडता है। रतिशक्ति के ऐसे दोषो के कारण आम तौर पर अतिसयम, हस्तमैथुन, अतिमैथुन आदि है। इनके सिवाय सभ्यता की परिस्थितिया सामान्य स्नायविक

उत्तेजनशीलता के कारणस्वरूप होती है, उद्दीपक भाव के और प्राप्त उत्तेजनाओ के समक्ष बहुत जल्दी प्रतिक्रिया करने की आदत बन जाती है, जिसका नतीजा यह होता है कि मैथुनिक क्षेत्र मे कामोद्दीपन की प्रक्रिया ह्रस्व हो जाती है, और स्खलन भी शीघ्र हो जाता है। ये दोनो बाते सन्तोषजनक रूप से मैथुनिक कार्य को सम्पन्न करने मे बाधक होती है।

मै फ्रायड तथा दूसरे लोगो की इस बात से सहमत हू कि शीघ्रस्खलन बहुत ही अधिक पाया जाता है, यद्यपि मै लेवेनफेल्ड के इस मत से सहमत नही हू कि ७५ प्रतिशत दशाओ मे शीघ्रस्खलन हस्तमैथुन के कारण होता है। इसमे सन्देह नही कि किसी एक निश्चित अनुपात मे हस्तमैथुन महत्त्वपूर्ण हिस्सा अदा करता है, पर कभी-कभी बहुत ही अधिक मात्रा मे हस्तमैथुन करने पर भी रतिशक्ति पर कोई गम्भीर परिणाम नही होते। साथ ही हस्तमैथुन इतना अधिक पाया जाता है कि प्रत्येक दशा मे जब हम उसे किसी बात का कारण बतलाते है तो हमे बहुत सावधानी के साथ ही ऐसा करना चाहिए। साधारणत हमे विकृत स्नायुगत रतिशक्तिहीनता को कुछ अश मे तो द्रुत और अनुभूतिशील प्रतिक्रियाओ की विशिष्ट अभिव्यक्ति मानना चाहिए, जो शहरी जीवन की आधुनिक परिस्थितियो मे स्वाभाविक है (स्त्रियो मे यह अवधि के पूर्व ही प्रसव की प्रवृत्ति के रूप मे लक्षित होती है) और इसे हम कुछ अश मे किशोरावस्था मे और उसके बाद की अवस्था मे अतृप्त वासना के परिणाम के रूप मे मान सकते है, जिससे दीर्घकाल तक कामोत्तेजना तो बनी रहती है पर उसके बाद स्वाभाविक परितृप्ति हस्तमैथुन के बाद भी नही होती और नतीजा यह होता है कि स्खलन के रक्तवाहक यन्त्र मे खराबी आ जाती है।

अधिकाश दशाओ मे रतिशक्ति सिर्फ सापेक्ष रूप से त्रुटियुक्त रहती है। शिश्न न्यूनाधिक रूप से पूर्णत दण्डायमान होता है, और उसके बाद स्खलन होता है, यद्यपि ऐसा अत्यन्त द्रुत गति से होता है। कर्ता को यह मालूम नही भी हो सकता है कि इसमे कोई खराबी है। पर इसमे सन्देह नही किया जा सकता कि पुरुष की रतिशक्ति की यह त्रुटि एक बडी हद तक स्त्रियो मे पाई जाने वाली मैथुनिक शीतलता के लिए जिम्मेदार है।

चाहे अस्थायी मानसिक नपुसकता के कारण हो, या वास्तविक रूप से शिथिल बनाने वाली दशाओ के कारण हो, जब इस शक्ति का अभाव अपेक्षाकृत निरवच्छिन्न होता है तो कर्ता अक्सर सशकित यहा तक कि हद से ज्यादा सशकित हो जाता है। स्नायविक आतक का यह असर होता है कि पुरुष अपनी रतिशक्ति के बारे मे लगातार चिन्तित रहता है और लगातार उसे उद्दीप्त करने की चेष्टा करता

है तथा यदि वह अविवाहित है तो कई बार लगातार वेश्याओ के पास जाता है और उसे हाथ मलकर रह जाना पडता है।[1]

इस प्रकार हमे इन दशाओ के दो वर्ग मिलते हैं—एक तो मानसिक नपुसकता का वर्ग और दूसरा जिसे शायद अभी भी स्नायविक नपुसकता का वर्ग कहा जा सकता है। पहले वर्ग मे स्खलन का यन्त्र तो ज्यो का त्यो रहता है, पर मानसिक तनाव के कारण उसका कार्यान्वित होना अवरुद्ध हो जाता है; इसलिए इसका इलाज सिर्फ इतना ही है कि कर्ता के सशयो और सन्देहो को निर्मूल कर मानसिक तनाव को हटा दिया जाए। विकृत स्नायविक दशा मे स्खलन का यन्त्र अवरुद्ध नही होता, पर इसके विपरीत वह न्यूनाधिक रूप से अपेक्षाकृत शिथिल हो जाता है और इलाज की आशाजनक सम्भावना कम होती है, यद्यपि अक्सर यह पूर्णत. सम्भव है कि यदि खराब यन्त्र को पूरे तौर से बिलकुल अच्छा नही भी किया जा सके तो किसी भी हालत मे खराबी के नतीजो को घटाकर उससे होने वाली हानि की मात्रा घटाई जा सकती है। इन सब दशाओ मे मुख्य बात तो यह है कि मरीज के मानसिक आतक का शमन कर दिया जाए, उसके विचारो को यौन-सम्बन्धी विषयो से हटाकर दूसरी दिशाओ मे मोड दिया जाए और यह देखा जाए कि वह आरोग्यशास्त्र के अनुसार चलता है। यहा पर दवाओ पर विचार करने का प्रश्न नही उठता और बहुप्रचारित होने पर भी उनका महत्त्व गौण है। ऐसा देखा गया है कि कुछ दशाओ मे कुछ दवाए लाभदायक होती हैं, पर यह सन्देह बना रहता है कि इन दवाओ का रोग की अवस्था पर शारीरिक दृष्टि से पर्याप्त रूप से कोई शमनात्मक प्रभाव होता है या नही। साथ ही अति-उत्तेजनशीलता पहले से ही मौजूद है तो कुचला जैसी दवाइयो के सेवन से उनकी यौन प्रणाली पर और सामान्यत' मेरुदण्ड पर प्रबल उत्तेजनात्मक प्रभाव होने और एक पुष्टिदायक दवा के रूप मे उनका महत्त्व होने के बावजूद भी उनसे फायदा नही होता, उलटे नुकसान ही होता है। मरीज को समागम की चेष्टा करने से और विशेषकर वेश्याओ के साथ समागम करने का प्रयत्न करने से मना कर देना चाहिए। विशेषकर इन दशाओ मे

---

१ यह कहने की जरूरत नहीं है कि यदि कोई संयमी और सुरुचिसम्पन्न पुरुष एक वेश्या के साथ समागम करने में मैथुनिक रूप से अक्षम होता है तो इससे कोई बात प्रमाणित नहीं होती। मोल एक आदमी की दशा का उल्लेख करते हैं जिसने पहले कभी समागम नहीं किया था। विवाह करने के पहले वह एक मित्र की सलाह पर यह मालूम करने के लिए एक वेश्या के पास गया कि वह रतिशक्तियुक्त है या नहीं। वह बिलकुल नपुंसक निकला, पर उसने शादी कर ली और वह अपनी पत्नी के साथ पूर्ण रूप से रतिशक्तियुक्त साबित हुआ।

उत्तेजनशीलता के कारणस्वरूप होती हैं, उद्दीपक भाव के और प्राप्त उत्तेजनाओ के समक्ष बहुत जल्दी प्रतिक्रिया करने की आदत बन जाती है, जिसका नतीजा यह होता है कि मैथुनिक क्षेत्र मे कामोद्दीपन की प्रक्रिया ह्रस्व हो जाती है, और स्खलन भी शीघ्र हो जाता है। ये दोनो बाते सन्तोषजनक रूप से मैथुनिक कार्य को सम्पन्न करने मे बाधक होती हैं।

मैं फ्रायड तथा दूसरे लोगो की इस बात से सहमत हू कि शीघ्रस्खलन बहुत ही अधिक पाया जाता है, यद्यपि मैं लेवेनफेल्ड के इस मत से सहमत नही हू कि ७५ प्रतिशत दशाओ मे शीघ्रस्खलन हस्तमैथुन के कारण होता है। इसमे सन्देह नही कि किसी एक निश्चित अनुपात मे हस्तमैथुन महत्त्वपूर्ण हिस्सा अदा करता है, पर कभी-कभी बहुत ही अधिक मात्रा मे हस्तमैथुन करने पर भी रतिशक्ति पर कोई गम्भीर परिणाम नही होते। साथ ही हस्तमैथुन इतना अधिक पाया जाता है कि प्रत्येक दशा मे जब हम उसे किसी बात का कारण बतलाते हैं तो हमे बहुत सावधानी के साथ ही ऐसा करना चाहिए। साधारणत हमे विकृत स्नायुगत रतिशक्तिहीनता को कुछ अश मे तो द्रुत और अनुभूतिशील प्रतिक्रियाओ की विशिष्ट अभिव्यक्ति मानना चाहिए, जो शहरी जीवन की आधुनिक परिस्थितियो मे स्वाभाविक है (स्त्रियो मे यह अवधि के पूर्व ही प्रसव की प्रवृत्ति के रूप मे लक्षित होती है) और इसे हम कुछ अश मे किशोरावस्था मे और उसके बाद की अवस्था मे अतृप्त वासना के परिणाम के रूप मे मान सकते हैं, जिससे दीर्घकाल तक कामोत्तेजना तो बनी रहती है पर उसके बाद स्वाभाविक परितृप्ति हस्तमैथुन के बाद भी नही होती और नतीजा यह होता है कि स्खलन के रक्तवाहक यन्त्र मे खराबी आ जाती है।

अधिकाश दशाओ मे रतिशक्ति सिर्फ सापेक्ष रूप से त्रुटियुक्त रहती है। शिश्न न्यूनाधिक रूप से पूर्णत दण्डायमान होता है, और उसके बाद स्खलन होता है, यद्यपि ऐसा अत्यन्त द्रुत गति से होता है। कर्ता को यह मालूम नही भी हो सकता है कि इसमे कोई खराबी है। पर इसमे सन्देह नही किया जा सकता कि पुरुष की रतिशक्ति की यह त्रुटि एक बडी हद तक स्त्रियो मे पाई जाने वाली मैथुनिक शीतलता के लिए जिम्मेदार है।

चाहे अस्थायी मानसिक नपुसकता के कारण हो, या वास्तविक रूप से शिथिल बनाने वाली दशाओ के कारण हो, जब इस शक्ति का अभाव अपेक्षाकृत निरवच्छिन्न होता है तो कर्ता अक्सर सशकित यहा तक कि हद से ज्यादा सशकित हो जाता है। स्नायविक आतक का यह असर होता है कि पुरुष अपनी रतिशक्ति के बारे मे लगातार चिन्तित रहता है और लगातार उसे उद्दीप्त करने की चेष्टा करता

है तथा यदि वह अविवाहित है तो कई बार लगातार वेश्याओ के पास जाता है और उसे हाथ मलकर रह जाना पडता है।[1]

इस प्रकार हमे इन दशाओ के दो वर्ग मिलते हैं—एक तो मानसिक नपुसकता का वर्ग और दूसरा जिसे शायद अभी भी स्नायविक नपुसकता का वर्ग कहा जा सकता है। पहले वर्ग मे स्खलन का यन्त्र तो ज्यो का त्यो रहता है, पर मानसिक तनाव के कारण उसका कार्यान्वित होना अवरुद्ध हो जाता है, इसलिए इसका इलाज सिर्फ इतना ही है कि कर्ता के सशयो और सन्देहो को निर्मूल कर मानसिक तनाव को हटा दिया जाए। विकृत स्नायविक दशा मे स्खलन का यन्त्र अवरुद्ध नही होता, पर इसके विपरीत वह न्यूनाधिक रूप से अपेक्षाकृत शिथिल हो जाता है और इलाज की आशाजनक सम्भावना कम होती है, यद्यपि अक्सर यह पूर्णत. सम्भव है कि यदि खराब यन्त्र को पूरे तौर से बिलकुल अच्छा नही भी किया जा सके तो किसी भी हालत मे खराबी के नतीजो को घटाकर उससे होने वाली हानि की मात्रा घटाई जा सकती है। इन सब दशाओ मे मुख्य बात तो यह है कि मरीज़ के मानसिक आतक का शमन कर दिया जाए, उसके विचारो को यौन-सम्बन्धी विषयो से हटाकर दूसरी दिशाओ मे मोड दिया जाए और यह देखा जाए कि वह आरोग्यशास्त्र के अनुसार चलता है। यहा पर दवाओ पर विचार करने का प्रश्न नही उठता और बहुप्रचारित होने पर भी उनका महत्त्व गौण है। ऐसा देखा गया है कि कुछ दशाओ मे कुछ दवाएं लाभदायक होती हैं, पर यह सन्देह बना रहता है कि इन दवाओ का रोग की अवस्था पर शारीरिक दृष्टि से पर्याप्त रूप से कोई शमनात्मक प्रभाव होता है या नही। साथ ही अति-उत्तेजनशीलता पहले से ही मौजूद है तो कुचला जैसी दवाइयो के सेवन से उनकी यौन प्रणाली पर और सामान्यत मेरुदण्ड पर प्रबल उत्तेजनात्मक प्रभाव होने और एक पुष्टिदायक दवा के रूप मे उनका महत्त्व होने के बावजूद भी उनसे फायदा नही होता, उलटे नुकसान ही होता है। मरीज को समागम की चेष्टा करने से और विशेषकर वेश्याओ के साथ समागम करने का प्रयत्न करने से मना कर देना चाहिए। विशेषकर इन दशाओ मे

---

१. यह कहने की जरूरत नहीं है कि यदि कोई सयमी और सुरुचिसम्पन्न पुरुष एक वेश्या के साथ समागम करने में मैथुनिक रूप से अक्षम होता है तो इससे कोई बात प्रमाणित नहीं होती। मोल एक आदमी की दशा का उल्लेख करते हैं जिसने पहले कभी समागम नहीं किया था। विवाह करने के पहले वह एक मित्र की सलाह पर यह मालूम करने के लिए एक वेश्या के पास गया कि वह रतिशक्तियुक्त है या नहीं। वह बिलकुल नपुसक निकला, पर उसने शादी कर ली और वह अपनी पत्नी के साथ पूर्ण रूप से रतिशक्तियुक्त साबित हुआ।

दीर्घ प्रतीक्षा और धुकुर-पुकुर की अवस्था सफल समागम के लिए बहुत ही खराव है और समस्त अति-एकाग्र मानसिक कार्य और परेशानिया तथा चिन्ताए समागम की सफलता मे वाधक है। एक समझदार और व्यवहारकुशल स्त्री इस वारे मे डाक्टर की सब से बडी मदद कर सकती है। इस सिलसिले मे रूसो के प्रसिद्ध मामले से हमे कुछ शिक्षा मिल सकती है। वह शारीरिक और मानसिक रूप से अति-अनुभूतिशील और उत्तेजनाशील था। उसकी भावनाए स्पर्श मात्र से ही सम्पूर्ण रूप से सजग हो जाती थी और उसके यौन आवेग मे यह अत्यन्त उग्र स्नायविक उत्तेजनशीलता प्रतिफलित होती थी। किसी वेश्या या किसी ऐसी स्त्री के साथ जिसके प्रति वह तीव्र वासना का अनुभव करता था, वह मैथुनिक रूप से असफल रहता था। पर रूसो प्रकट रूप से थेरेस के साथ समागम करने ने सफल रहता था जो शान्तिपूर्वक और स्थायी रूप से उसकी सहचरी वनकर रहती थी। ईमानदारी के साथ रूसो यह विश्वास करता था (यदि वह सही था) कि वह अनेक बच्चो का पिता था। जिस चीज से भी कामोत्तेजनशीलता घटती है वह इन उत्तेजनशील दशाओ मे लाभदायक है। इस तरह ऐसा हो सकता है कि दीर्घ काल तक ब्रह्मचर्य रखने के बाद प्रथम वार समागम करते समय शीघ्रस्खलन हो जाए, पर दूसरे समागम का नतीजा स्वाभाविक हो सकता है। नि सन्देह दो समागमो के बीच का यह अन्तर वैयक्तिक यौन बनावट के अनुसार अलग-अलग होता है। जहा किसी एक पुरुष को एक समागम के वाद दूसरा समागम करने के लिए तैयार होने मे आधा घटे से भी कम समय लगता है, वहा दूसरे व्यक्ति को कई दिन भी लग सकते है। यह भी सलाह देना चाहिए कि बिस्तरे पर पडते ही समागम करने का प्रयत्न न किया जाए और कुछ समय तक सो लेने या आराम कर लेने के वाद या वडे तडके समागम किया जाए, जो कुछ विद्वानो की राय से इस काम के लिए सर्वोत्तम समय है। मानसिक शान्ति और वैज्ञानिक रूप से आरोग्यशास्त्र के सिद्धान्तो का पालन करने से इन दशाओ के परिणाम सन्तोषजनक हो सकते है।

इससे सूचित होता है कि अधिकाश मे यौन अक्षमता वैयक्तिक और सामाजिक सामजस्य का विषय है। अधिकाश दशाओ मे यदि कर्ता के भिन्न लिंग के सदस्यो के साथ स्वाभाविक और हितकर सम्बन्ध रहे तो उसे अपने से भिन्न लिंग के किसी मनोनुकूल व्यक्ति के साथ सगतियुक्त सामजस्य स्थापित करने मे कोई कठिनाई या अक्षमता नही होगी और यौन रूप से वाछनीय व्यक्ति के निकट जाते समय स्नायविक आतक, अनर्थक भीरुता या आक्रमणात्मक यौन शीतलता की प्रवृत्ति प्राय नही रहेगी। इसलिए हमारा यह विश्वास उचित है कि यौन अक्षमता एक वडी हद तक अपूर्ण सामाजिक सामजस्य की एक विशेष अभिव्यक्ति है। हमे

मानसिक शारीरिक वनावट-सम्बन्धी तत्त्वो की उपेक्षा नही करनी चाहिए जो उदाहरण के लिए समलैंगिक मैथुनिक प्रवृत्ति से युक्त हो सकते है और न हमे शारीरिक त्रुटियो या दुर्वलताओ की उपेक्षा करनी चाहिए जिनके लिए शल्यचिकित्सा की जरूरत है। पर एक अच्छा डाक्टर भी स्वय स्वीकार करता है कि उसके यथाशक्ति सव-कुछ कर देने के वाद भी करने के लिए वहुत-कुछ वाकी रहता है, जिसे मनोवैज्ञानिक और मनश्चिकित्सक ही कर सकते है।

हमारा यह विश्वास उचित जान पडता है कि यौन आवेग कभी इतना अशक्त और शिथिल नही रहता कि वह अनुकूल परिस्थितियो मे कुछ अश मे कभी-कभी भी न प्रकट हो सके। क्राफ्ट एविंग ने स्वीकार किया था कि अत्यन्त विरल दशाओ मे पूर्ण यौन अक्षमता रहती है, पर वे इसके प्रमाण मे अपने निरीक्षण के आधार पर किसी भी दशा को सामने नही रख सके। उन्होने सिर्फ लग्रान्द-सोले की (जिसमे वीर्य-स्खलन भी होता था) और हैमड की (जिसमे सक्रमणकालीन रूप से शिश्न दडायमान होता था) दशा का उल्लेख किया था। इसमे सदेह नही कि इन दशाओ मे अत्यधिक मात्रा मे अल्प-अनुभूतिशीलता विशेप रूप से प्रकट थी, पर जो निश्चित यौन अभिव्यक्तिया उनमे दिखलाई देती थी उन्हे ध्यान मे रखकर हम यह स्वीकार नही कर सकते कि वे पूर्ण रूप से सक्रिय यौन अनुभूतिहीनता के उदाहरण है। क्या स्त्रियो मे भी सपूर्ण यौन अनुभूतिहीनता हो सकती है, यह वात भी उतनी ही सन्दिध जान पडती है। सचमुच इसमे सन्देह नही किया जा सकता कि अल्प-अनुभूतिशीलता या यौन शीतलता (जैसा कि उसे अक्सर कहा जाता है) उनमे वहुत अधिक पाई जाती है और अनुमान लगाया गया है कि लगभग ७० प्रतिशत स्त्रियो मे मैथुनिक शीतलता रहती है। पर मुझे यह नही मालूम कि यह अनुमान किस आधार पर लगाया गया है। ऐसे ऊटपटाग कथनो को एक तरफ रख देना चाहिए। हैमिल्टन ने प्रशिक्षित वर्ग की जिन १०० विवाहिता स्त्रियो की जाच की थी उनमे से सिर्फ एक की ही दशा को इस अर्थ मे वास्तविक मैथुनिक शीतलता कहा जा सकता था कि उस स्त्री मे यौन वासना और यौन भावना का अभाव वना ही रहा। हा, इसके अलावा इनमे कुछ स्त्रिया ऐसी भी थी जो सिर्फ आत्ममैथुनिक या समलैंगिक उद्दीपक भावो से ही प्रभावित हो सकती थी। अपने ग्रथ 'एक हजार विवाह' मे हैमिल्टन वतलाते है कि मैथुनिक शीतलता को स्थायी दशा अथवा निश्चित रूप से जन्मजात दशा नही समझना चाहिए। उसके वहुत से कारण होते है; जैसे स्वास्थ्य, स्वभाव, शिक्षा, आदते (जिसमे अज्ञान और आत्ममैथुनिक चेष्टाए भी सम्मिलित है), पति की मैथुनिक क्षमता का नाकाफी होना आदि। वे लिखते ह कि जो स्त्रिया आत्ममैथुन करती है वे सव से अधिक शीतल होती है, पर

यदि बारीकी से देखा जाए तो आत्ममैथुनिक वर्ग की स्त्रिया शीतल नही होती और वे केवल उन यौन उद्दीपनो के प्रति बहुत अधिक अनुभूतिशील हो सकती है जो उनके स्वभाव के अनुकूल होते है।

स्त्रियो को मैथुनिक शीतल मानने का दायित्व स्त्रियो पर कम और पुरुषो पर अधिक है। यह हर समय स्पष्ट रहता है कि जहा पुरुष मे यौन आवेग का स्वत-स्फूर्त और क्रियात्मक विकास होता है, वहा स्त्रियो मे चाहे यौन आवेग कितना ही प्रबल हो, उसका विकास प्रच्छन्न रूप से और कमोवेश अर्धचेतन रूप से होता है और उसकी क्रियात्मक अभिव्यक्ति को पहले-पहल जगाना पडता है। हमारे समाज मे यह सारा कार्य सामान्यत पति का है। यह उसका ही काम है कि वह अपनी पत्नी को यौन जीवन मे दीक्षित करे और उसे ही यह प्रयत्न करना होगा कि उसकी पत्नी की मैथुनिक आवश्यकताए सचेत हो जाएं। यदि वह अपने अज्ञान, पूर्वाग्रह, अधैर्य, या दूरदर्शिता के अभाव के कारण अपना स्वाभाविक हिस्सा अदा करने से चूक जाता है तो उसकी पत्नी किसी प्रकार की त्रुटि न रहने पर भी मैथुनिक रूप से शीतल समझी जा सकती है। हम जिस युग से अभी-अभी निकले है उसमे समस्त यौन-विषयक जानकारी को दबाया जाता था या उसे विचार योग्य नही माना जाता था जिससे पुरुष एक बडे अनुपात मे अच्छे प्रेमी बनने के अयोग्य थे और इसका यह नतीजा होता था कि स्त्रिया एक बडे अनुपात मे मैथुनिक रूप से शीतल बनी रहती थी।

इस तरह इस बात के अनेक कारण है कि सभ्य जगत् की परिस्थितियो मे स्त्रिया क्यो शीतल होती है। इन परिस्थितियो मे स्त्री-पुरुष दोनो मे ही यौन विषयो के प्रति गहरा अज्ञान, बुरी शिक्षा, झूठी लज्जा और सम्पर्क का अस्वाभाविक रूप से शुरू होना अनिवार्य है। पर जब यह कहा जाता है कि स्त्रियो मे निरवच्छिन्न रूप से आम तौर पर यौन अनुभूतिहीनता पाई जाती है तो यह याद रखना जरूरी है कि स्त्रियो मे यह प्रश्न पुरुषो की अपेक्षा कठिन और जटिल है। इसके अतिरिक्त स्त्रियो हमे जिजीविषा और समागम से प्राप्त होने वाले आनद मे प्रभेद करना पड़ेगा। समागमजन्य आनद के अभाव मे भी जिजीविषा मौजूद रह सकती है, और जब दोनो का ही अभाव हो तो भी यह नही कहा जा सकता कि यौन अनुभूतिहीनता मौजूद है। शायद यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि हैमिल्टन ने यह देखा था कि पूर्ण मैथुन की दृष्टि से अपेक्षाकृत घटिया क्षमता की स्त्रिया एक बहुत बडे अनुपात मे (लगभग ५५ प्रतिशत) अपनी यौन वासना को औसत से ऊंचे दरजे की मानती थी। इस तरह की दशाए पाई जाती है जिनमे एक स्त्री एक के बाद एक करके अनेक पुरुषो के साथ मैथुनिक रूप से शीतल रहती

है, पर अत मे शायद अधेड उम्र के ही उत्तरार्ध मे उसका यौन आवेग जागरित हो जाता है। यदि यौन आवेग की अभिव्यक्ति समागम के साथ कभी प्रकट न भी हो तो भी उसकी अभिव्यक्ति दूसरे रूपो—सिर्फ यौन विच्युतियुक्त क्रियाओ मे ही नही, बल्कि यौन उत्तेजना के उन केन्द्रो को उभाडने के माध्यम से हो सकती है जो स्त्रियो मे पुरुषो की अपेक्षा बहुत अधिक है और अधिक सीमा तक उत्तेजित किए जा सकते है।

इस प्रकार किसी स्त्री मे यौन अनुभूतिहीनता मौजूद है या नही, यह कहना पुरुष की अपेक्षा बहुत अधिक कठिन है। किसी विशेष दशा मे हम सिर्फ इतना ही कह सकते है कि हम अभी तक यह नही खोज पाए है कि उस स्त्री के यौन आवेग की अभिव्यक्ति किस रूप मे होती है या भविष्य मे होगी। यहा तक कि ओटो एडलर भी, जिनका विश्वास था कि स्त्रियो मे यौन अनुभूतिहीनता पाई जाती है, जब अतिम रूप से उसका प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए 'विशुद्ध मनोयौन अनुभूतिहीन' स्त्री को खोजने लगे तो उन्हे एक ऐसी स्त्री मादाम-द-वारेन्स का सहारा लेना पडा जो उनके जन्म के सौ साल पहले ही मर चुकी थी और जिसका कोई डाक्टरी इतिहास उपलब्ध नही था। इसके सिवाय उन्होने रूसो के वर्णन पर विश्वास कर लिया था, जो किसी भी हालत मे चतुर प्रेमी नही था। इसके अतिरिक्त उन्होने श्री वारेन्स के इस लिपिबद्ध वक्तव्य की उपेक्षा की कि उसकी पत्नी हिस्टीरिया-ग्रस्त थी। जैसा कि हमे मालूम है, इस दशा से यौन आवेग के कई सूक्ष्म रूपातर हो सकते है, जिन्हे एक ब्योरेवार डाक्टरी इतिहास के अभाव मे नही खोजा जा सकता। स्त्रियो पर पूर्णयौन अनुभूतिहीनता का आरोप लगाते समय हमे बहुत सतर्क रहना चाहिए। कभी इस तरह की दशा मौजूद भी थी या नही, इसमे सदेह है।

सभ्य जगत् की परिस्थितियो के अन्तर्गत यौन अति-अनुभूतिशीलता की दशा यौन अनुभूतिहीनता की अपेक्षा सामान्यत कही ज्यादा पाई जाती है और उसके समान ही अधिकाश रूप मे इन परिस्थितियो के कारण होती है। सभ्यता यौन उत्तेजना तो बढाती है, पर साथ ही उसको व्यक्त करने के रास्तो मे रोडे अटका देती है। पूर्वराग के दौरान मे किसी सीमा तक अति-अनुभूतिशीलता का होना स्वाभाविक है। इस काल मे वह जानवरो मे उनके अत्यधिक उत्तेजित रूप मे प्रकट होती है, और मनुष्य मे लगातार अपनी प्रेयसी के सुखद पक्षो को लेकर कल्पनिक उडाने भरने मे। ब्रह्मचर्य के फलस्वरूप भी अवसर अति-अनुभूतिशीलता उत्पन्न होती है और ऐसे पदार्थो और कार्यों से कामोत्तेजना हो सकती है जिनका यौन क्षेत्र से कोई स्वाभाविक यौन सम्बन्ध नही है। जब अतियौन अनुभूतिशीलता

इन सीमाओ का अतिक्रमण कर जाती है तो वह अस्वाभाविक और विकृत वन जाती है और प्राय विकृत स्वाभाविक दशाओ से सम्वद्ध रहती है।

अस्वाभाविक यौन अति-अनुभूतिशीलता का अर्थ हरगिज यह नही है कि जननेन्द्रिय की शक्ति अधिक है। अपरिमित रति-शक्तियुक्त व्यक्ति या जैसा कि वेनेडिक्ट ने कहा था—यौन पहलवान मे अति-अनुभूतिशीलता नही होती। उसमे ताकत के साथ-साथ विश्रामयुक्त आनन्द की भावना होती है, और अति-अनुभूतिशीलता मे यह भावना नही होती। अति-अनुभूतिशीलता मे रति-शक्ति की अधिकता मुख्यत दिखावा मात्र है, यद्यपि रतिशक्ति का पात्र अक्सर धोखे मे आ जाता है। अति-अनुभूतिशीलता कमजोरी का द्योतक है न कि ताकत का।

यौवनोद्‌गम के पहले तथा बुढापे मे अस्वाभाविक यौन अति-अनुभूतिशीलता हो सकती है। कई तरह की यौन विच्युतियो का अध्ययन करने पर ऐसा मालूम होगा कि अति-अनुभूतिशीलता का इनकी वनावट मे एक महत्त्वपूर्ण भाग है। वात यह है कि अस्वाभाविक यौन उत्तेजना मे ही अति-अनुभूतिशीलता की वह अस्वाभाविक अवस्था उत्पन्न होती है जिसमे यौन विपरीतता की सम्भावना पैदा हो जाती है। यदि यौन अति-अनुभूतिशीलता की अवस्था मौजूद है तो भिन्न लिग के व्यक्तियो से सम्बन्ध रखने वाली कोई भी चीज, यहा तक कि ऐसी अयौन वस्तु या क्रिया जो किसी भी तरह यौन वस्तुओ या क्रियाओ से मिलती है, कामोद्रेक करती है और कामभावना जागरित होती है। शरीर का कोई भी भाग, व्यक्ति से अलग किया हुआ वस्त्र, कोई भी असाधारण रुख या बैठने, खडे होने, लेटने आदि का ढग चाहे वह यौन लक्ष्य से कितना भी दूर हो, जन्तुओ यहा तक कि कीडो-मकोडो का मैथुन, प्रकृति या कला मे कोई भी ऐसी चीज जिससे लिगदड, योनि-छिद्र या मैथुन की व्यजना होती हो, ऐसी हालत मे सभी महज यौन प्रतीक वन जाते है जैसा कि वे साधारण रूप से भी हो सकते है, पर इस अस्वाभाविक अवस्था मे इतनी छोटी-छोटी बातो से कामोद्रेक हो जाता है। ऐसी साधारण यौन अनुभूतिशीलता की अवस्थाओ मे व्यक्ति को स्वतन्त्रता नही होती और मनमाने ढग से हर इगित से कामोद्रेक होता है। इस प्रकार से वह जमीन वनती है जिसपर विशेष ढग की अतिशयता जड पकड सकती है और पनप सकती है, यद्यपि अतिशयताए मामूली तौर से इस प्रकार से उत्पन्न नही होती। यह वता दिया जाए कि यौन अति-अनुभूतिशीलता छद्म वेश मे यहा तक कि व्यक्ति के सक्रिय योगदान के विना भी रह सकती है। अतिलज्जा के रूप मे भी कई वार यौन अति-अनुभूतिशीलता प्रकट हो जाती है। यौन वातो के सम्वन्ध मे अतिभय साथ ही अतिप्रेम दोनो समान रूप से यौन अति-अनुभूतिशीलता के सूचक ह। यौन अति-अनुभूति-

शीलता है तो अस्वाभाविक और स्नायविक रोगो के साथ इसका सम्बन्ध समझा जा सकता है, फिर भी यह किसी भी हालत मे अनिवार्य रूप से पागलपन की अभिव्यक्ति नही है। अति-अनुभूतिशीलता सयत की जा सकती है तथा यह छिपाई जा सकती है तथा यह कमोवेश इच्छाशक्ति के नियन्त्रण मे भी रहती हे । अति मात्रा मे हो, साथ ही परिचालक तथा आवेगमय उपादान अधिक हो जाए तो ऐसा मालूम होता है कि सयम की शक्ति नष्ट हो गई। अतिमात्रा मे होने पर पुरुप तथा स्त्री अतिकामुक हो जाते है।

सहायक पुस्तक-सूची

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex, Vol III, 'The Sexual Impulse in Women.'

हैमिल्टन—A Research in Marriage.

डिकिन्सन—A Thousand Marriages.

स्टीकेल—Frigidity in Woman.

यौन पवित्रता

जव हम सयम की वात करते है तो हमारे मन मे एक नकारात्मक अवस्था होती है, जिसका अर्थ यह है कि एक प्राकृतिक आवेग का दमन सूचित है। ऐसे दमन के अक्सर कारण होते है। ये कारण भी वहुधा निम्न कोटि के यानी आवेग के वाहर तथा उसके विरुद्ध होते है । इसीलिए ऐसा हो सकता है कि यह नुकसान पहुचाए। यह अपने मे कोई पुण्यकर्म नही हो सकता, यद्यपि यह दूसरे उद्देश्यो के फलस्वरूप उत्पन्न हो सकता है, जिन्हे पुण्यकर्म कहा जा सकता है या जिनका सम्वन्ध पुण्यकर्मो से वताया जा सकता है । फ्लोबेर ने इस सम्वन्ध मे एक दिल-चस्प वाद-विवाद करते हुए अपने एक पत्र मे जार्ज सैंड को यह लिखा था कि सयम का प्रयास अच्छी चीज है, सयम खुद मे अच्छी चीज नही है । पर पवित्रता की सतह विलकुल भिन्न है।

पवित्रता मे आवश्यक रूप से सयम या मन को मारना नही आ जाता। कभी-कभी पवित्रता पूर्ण ब्रह्मचर्य के अर्थ मे लिया जाता है, पर इस शब्द के इस अप-प्रयोग को प्रोत्साहन देना वाञ्छनीय नही है, वल्कि इसकी परिभाषा यौन क्षेत्र मे आत्मनियन्त्रण के रूप मे की जाए तो अच्छा रहेगा। दूसरे शब्दो मे, यद्यपि कभी-कभी इसमे सयम आ जाए, पर इसमे इन्द्रिय-तृप्ति भी रहती है। इसका सार यह

है कि मानसिक आवेग को हम एक सामञ्जस्ययुक्त तथा ऐच्छिक ढग के अन्दर ग्रहण करते हे। इस प्रकार यह एक नकारात्मक अवस्था न रहकर एक क्रियात्मक गुण हो जाता है। मैने एक बार चोरी से सुना कि एक चौदह साल की लडकी एक हमउम्र लडकी से कह रही है, "तुमने आत्मनियन्त्रण नही सीखा।" इसपर दूसरी लडकी ने कहा, "यह जरूरी नही है।" तव पहली लडकी वोली, "यह जरूरी तो नही है, पर ऐसा करना अच्छा रहता है।"

पहली लड़की वाद के जीवन मे आसानी से यह समझ जाएगी कि पवित्रता क्या है। यह यौन क्षेत्र मे सयम की अभिव्यक्ति है जिसे ग्रीक 'शोफरोसायिनी' या मानसिक स्वस्थता कहते हैं।

पवित्रता एक ऐसा गुण है जो सब तरह के मत-मतान्तरो और धर्मो से स्वतन्त्र है। यह सच है कि समार के विभिन्न भागो मे प्रचलित धर्मो मे काम पर रोक लगाई गई है। दूसरे शब्दो मे इसका अर्थ यह है कि कुछ वताई हुई हदो के वाहर यौन कार्य करना पाप माना गया है। ईसाई तथा अन्य धर्मो के लिए ऐसा चिन्तन अनिवार्य था, पर विशुद्ध मानवीय आधार पर भी पवित्रता वरावर एक गुण रहा है और है।

ससार के कई भागो मे असभ्य जातियो के वच्चो को मैथुन का खेल खेलने यहा तक कि मैथुन करने की पूरी छूट रहती है, इसका अर्थ यह है कि यौन कार्यो पर कोई सैद्धान्तिक ढग का निषेध नही है, पर ज्यो ही वच्चे जवान हो जाते हैं, त्यो ही आदिम मत मे भी सेक्स के प्रति एक नए रुख यानी नियन्त्रण की भावना उत्पन्न होती है। निम्न सस्कृति के लोगो मे यौन कार्य कई तरह की सीमाओ मे बधे हुए हैं, जो ईसाइयो के अगम्य-गमन तथा व्यभिचार-सम्बन्धी निषेधो के अलावा हैं। एक बडी हद तक ये सीमाए सेक्स को उच्च मर्यादा देती हैं, ऐसा केवल इससे खतरे का डर दिखाकर दूर रहने का उपदेश देकर ही नही, वल्कि यह भी वताया जाता है कि कब यह हितकर है। साथ ही इसकी अभिव्यक्ति को पवित्र त्योहारो से सयुक्त कर दिया जाता है। यह नियन्त्रण तथा सदाचार की सीमाओ के अन्दर नियन्त्रित प्रयोग ही पवित्रता है। हम देखते हैं कि असभ्य हालत मे भी समाज की वनावट मे यह चीज आ चुकी है। निम्नतर तथा उच्चतर जातियो मे व्यवहारो के कई ताने-वाने ऐसे दृष्टिगोचर होते हैं जो एक हद तक उद्‌भट होने पर भी उनसे व्यवहार को उच्चता प्रदान की जाती है और उन्हे साधारण रूप से या परम्परागत रूप से पवित्रता से सम्वद्ध माना गया है। काले ने इस सम्वन्ध मे वताया है, "फिर भी आदिम समाज के व्यवहारशास्त्र मे इन व्यवहारो के कारण, चाहे उनकी व्याख्या मे साधारण तरीके से कुछ भी कहा गया हो, जीव-

वैज्ञानिक तथ्यो के साथ बडी हद तक सामाञ्जस्य-स्थापना की चेष्टा दृष्टिगोचर होती है। रहा यह कि उन व्यवहारो की आम तौर से जो व्याख्या पेश की जाती है उसकी उपयोगिता इस बात मे है कि उसने मनुष्य के नमनीय स्नायविकस्व को आत्मनियन्त्रण, बुद्धिमत्तापूर्ण जीवनयापन और सार्वजनिक रूप से वैयक्तिक और सामाजिक कुशलता बढाने मे मदद दी है।" क्राले ने यह भी दिखलाया है कि यदि इन व्यवहारो को बहुत दूर तक ले जाया जाए तो बिखराहट की प्रवृत्ति आ जाती है, पर मुख्य प्रक्रिया जारी रहती है। इसके सामने उद्देश्य यह है कि "बहुत से प्रयोगो के बाद धीरे-धीरे, पर निश्चित रूप से उस आदिम प्राकृतिक पवित्रता का वैज्ञानिक विकास होने लगता है जिसके साथ मनुष्य के यौन इतिहास का आरम्भ हुआ था।"

यह मौलिक तथ्य अतियो के कारण घपले मे पड जाता है। क्राले ने इन अतियो का उल्लेख किया है। बात यह है कि धर्मो तथा सामाजिक परम्पराओ ने कई बार पवित्रता की धारणा को अति की हद तक पहुचा दिया है। हाल की शताब्दियो मे हमारी अपनी सभ्यता मे इसका अच्छा प्रमाण मिलता है। जब पवित्रता महज एक मजबूरी से लादे हुए सयम मे परिणत हो जाती है तो यह न तो प्राकृतिक रह जाती है न यह कोई गुण होती है और न यह हितकर होती है। इसका आवश्यक चरित्र ध्यान से ओझल हो जाता है। तब इसे अप्राकृतिक करार देकर इसका विरोध शुरू होता है और यह एक गए-गुजरे धर्म या हवा निकाली हुई राजनैतिक शासन-पद्धति के पुछल्ले के रूप मे दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार से हम देखते है कि सेक्स के क्षेत्र मे प्राचीन यौन विधिनिषेधो के ह्रास के कारण कई बार दूसरी अति तक लोग पहुचने लगे है जो समान रूप से अप्राकृतिक और अवाछनीय है। यानी लोग उच्छृ खलता तथा व्यभिचार को एक आदर्श के रूप मे लेने लगते है, भले ही वे उसे कार्यरूप मे परिणत करे या न करे।

जब इस प्रकार से पवित्रता का पलडा कभी भयकर रूप से इधर और कभी उधर झुक जाता है तो दोनो पलडो मे सन्तुलन लाने के लिए बहुत समय लगता है, क्योकि जब पलडा एकाएक एक तरफ झुक जाता है तो दूसरी तरफ जोरो के साथ उछलता है। हम सोवियत रूस मे यह कठिनाई देख सकते है। प्राचीन रूस मे परम्परागत विधिनिषेध बहुत थे और सतह के नीचे व्यभिचार का बोलबाला रहता था, इस प्रकार दोनो की अपनी-अपनी प्रतिक्रिया होती थी। क्रान्ति के कारण जो सर्वबन्धनमुक्ति आई उसका तात्कालिक नतीजा मुख्यत उच्छृ खलता के अनुकूल रहा। अभी तक कुछ हद तक पलडा इसी तरफ झुका हुआ है और जो लोग रोकथाम तथा नियन्त्रण को बुर्जुआ गुण मानते है उनमे यही भावना है।

पर इस समय मुख्य प्रवृत्ति उच्छृखलता के विरुद्ध है। साम्यवादी दल का एक सदस्य राजनैतिक गलतियो के कारण साथ ही निजी जीवन के यौन चरित्र के कारण दल से निकाला जा सकता है। वहा की परिस्थिति १८वी सदी के कैल्विनवादी जेनेवा की तरह है क्योकि रूसी मार्क्सवाद कैल्विनवाद की ही तरह कठोर और रूखा है। रूस के सम्वन्ध मे एक लेखक ने लिखा है—"हलकापन, दुराचार, व्यभिचार, बलात्कार (जिसमे एक के वाद एक जल्दी-जल्दी कई शादिया करना भी आ जाता है) बुरी दृष्टि से देखे जाते है और इस प्रकार कार्य करने वाले लोग दल से इसलिए निकाल दिए जाते है कि ऐसे व्यवहार से दल के सामाजिक उद्देश्यो का हनन होता है।"

इस प्रकार किसी दिशा मे वहुत अधिक झुक जाना एक ऐसे गुण का दुर्भाग्यपूर्ण अपरूप है, पर इससे उस गुण का महत्त्व घट नही जाता। यौन कार्य को ओजस्वी रूप से चालू रखने के लिए ही इस गुण की आवश्यकता नही है, बल्कि मानवीय मर्यादा के लिए भी पवित्रता आवश्यक है। इसके अलावा सुन्दर रूप से प्रेम करने के लिए यह आवश्यक है कि सेक्स के सिहद्वार मे प्रवेश करने के लिए ऐसे हाथो से दरवाजे खोले जाए जिनमे किसी तरह का कलक लगा न हो और साथ ही यह याद रखा जाए कि जो कुछ करना है जीवन के उदात्त उद्देश्यो को स्मरण रखकर करना है।

सहायक पुस्तक-सूची

ए० ई० क्राले—art 'Chastity,' Hastings' Encyclopœdia of Religion and Ethics

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex, Vol VI chap V, 'The Function of Chastity.'

मार्गरेट मीड—Growing Up in New Guinea

मालिनोव्स्की—Sex and Repression in Savage Society

रजोनिवृत्ति

रजोनिवृत्ति या अन्तिम रूप से मासिकधर्म वन्द हो जाने के समय को सन्धि-काल माना गया है। इस समय स्त्री के जीवन मे वहुत सगीन मनोवैज्ञानिक परि-वर्तन होते है, पर उतने नही जितने कि पहले समझे जाते थे। अव इस सम्वन्ध मे विचार दूसरी ही दिशा मे पहुच गए है। वहुत से डाक्टरो का अव यह कहना है कि

सन्धिकाल पर तरह-तरह के रोगो की जिम्मेदारी डालना महज एक सनक है और कोई भी ऐसा रोग नही है जिसका रजोनिवृत्ति से प्रत्यक्ष रूप से सम्वन्ध हो।

फिर भी इसमे सन्देह नही कि स्त्री के मनोवैज्ञानिक जीवन मे यह एक वहुत वडी घटना है, जिसका असर उसके पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन पर पडता है। यौवनोद्गम के साथ सतानोत्पादन के युग का आरम्भ हुआ था, और रजोनिवृत्ति से उसका अन्त हो जाता है।

रजोनिवृत्ति, सन्धिक्षण या जीवनसन्धि ये वे नाम है जो कि एक ही अर्थ मे प्रयुक्त होते हैं और यह ३५ से लेकर ५५ तक किसी भी उम्र मे आ सकता है। पर वहुधा ४५ से ५० के वीच मे ही सन्धिक्षण आता है और २ या ३ साल मे पूर्णता प्राप्त कर लेता है। आकडो से मालूम होता है कि ४० साल पहले जिस उम्र मे सन्धिक्षण आता था, अव उससे ५ साल वाद सन्धिक्षण आता है। क्षरण-ग्रन्थियो की कार्यकरी क्रिया से साथ ही स्वयगतिक स्नायविक पद्धति मे जो परिवर्तन होते है उसके साथ इसका सम्वन्ध जुडा हुआ है। इसके फलस्वरूप कुछ भावगत, रक्तचाप-सम्वन्धी तथा स्नायविक लक्षण दिखाई पडते है जिनमे धडकन, चेहरे आदि का लाल हो जाना कुछ ऐसे लक्षण है जो विशेष रूप से असुखकर हैं। इन लक्षणो का उद्भव रक्तचाप वढने के कारण नही वल्कि उस चाप मे परिवर्तन के कारण होता है। यहा पर हमे इन परिवर्तनो के सम्भव प्रारम्भिक कारणो पर जाने की जरूरत नही है। मेरानान ने वहुत पहले से रजोनिवृत्ति के सम्वन्ध मे एक सिद्धान्त पेश किया, जिसका सार यह था कि कई क्षरणग्रन्थियो से इसका सम्वन्ध होता है। उन्होने वताया कि मौलिक रूप से इसका सम्वन्ध डिम्वाशय, थायरायड तथा सुप्रारेनल से और दोयम दर्जे पर इसका सम्वन्ध मस्तिष्क की पिट्यूटरी ग्रन्थि से होता है। फिट्सगिवन ने वतलाया कि प्रजननेन्द्रियो के स्वत -स्फूर्त ह्रास के कारण ऐसा होता है जिससे जीवविष उत्पन्न होता है और उसके फलस्वरूप चेहरे का लाल पड जाना आदि लक्षण दिखाई पडते हैं। यदि ये लक्षण प्रवल हो जाए तो गर्भाशय को निकालकर उन्हे हटाया जा सकता है, पर चेहरे का लाल पड जाना तथा उससे मिलते-जुलते लक्षण गर्भाशय-वीमारी के कारण रजोनिवृत्ति से पहले की उम्र मे निकाल दिए जाने पर भी प्रकट होते है, इसलिए यह मत कुछ सन्दिग्ध ही जचता है।

यद्यपि रजोनिवृत्ति के समय कुछ भावगत तथा शारीरिक गडवडिया लगभग अनिवार्य है, फिर भी कई स्त्रिया यहा तक कि अस्थिर प्रवृत्तियुक्त स्त्रिया इस परिवर्तनकाल को विना किसी गम्भीर कष्ट के पार कर जाती है। हा कुछ स्त्रियो के क्षेत्र मे एक हद तक शारीरिक या मानसिक गिरावट दृष्टिगोचर होती है।

जहा तक मानसिक पहलू का सम्वन्ध है, स्त्री जव यह समझ लेती है कि उसके प्रयत्न करने पर भी यह टला नही और अव वह जवान नही रह गई है तो उसके मन पर इसकी गहरी छाप पडती है। उसे ऐसा भासित होता है कि सन्तान-धारण की क्षमता समाप्त होने के साथ-साथ यौन जीवन की समाप्ति हो गई, पर वात विलकुल ऐसी नही है। अवश्य इस घटना से स्त्री यह जानकर चौक पडती है कि अब जीवन का मुख्य भाग उसके हाथ से निकल गया। इस प्रकार से कई वार ऐसा देखा जाता है कि उसकी यौन क्रियाए बढ जाती है, कई वार ऐसा भी होता है कि वह किसी नए पुरुष को अशोभन ढग से आकृष्ट करने तथा उससे प्रेमनिवेदन करने की चेष्टा करती है। अविवाहित स्त्रिया जो सम्मानपूर्ण ढग से परम्परागत जीवन बिता चुकी है, उनमे भी इस प्रकार की प्रवृत्तिया दृष्टिगोचर हो सकती है। उनमे जब ऐसी प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है तो साथ ही साथ अधिक मात्रा मे मानसिक असन्तुलन दिखाई पडता है। इस प्रकार की अभिव्यक्तिया सुपरिचित है, पर उनकी अधिकता के सम्बन्ध मे अक्सर अतिरजित वाते कही जाती है।

फिर भी हमे यह मानना पडेगा कि रजोनिवृत्ति के समय यौन तथा मानसिक क्षेत्र मे कई प्रकार की गडबडिया, जैसे वासना की अत्यधिकता जिसे प्रजनन की आखिरी लौ कह सकते है, दिखाई पडती है। उसके साथ ही कई तरह की खाम-ख्यालिया और सन्देहशीलता प्रकट होती है। कुछ क्षेत्रों मे तो यौन आवेग-सम्बन्धी वास्तविक विच्युतिया दिखलाई पडती है। विवाहित स्त्रियो मे परिस्थिति इससे और जटिल हो जाती है कि ये वे दिन होते है, जब कि पति महोदय की यौन शक्ति घटने लगी है और पत्नी के प्रति उसका प्रेम थिराकर शातिमय प्रेम का रूप धारण कर चुका होता है, और अब जब कि वह एकाएक जोशखरोश के साथ आगे बढती है तो वह उसे सन्तुष्ट नही कर पाता। इसका फल यह होता है कि चीजे दूसरी दिशा मे चल निकलती है और ईर्ष्या का वातावरण पैदा हो जाता है। इस प्रकार से मानसिक क्षेत्र मे कई तरह के अवाञ्छनीय रगढग आगे आते है और शारीरिक क्षेत्र मे भी यन्त्रणादायक कष्ट का वोलबाला हो जाता है। पर पति-पत्नी दोनो के क्षेत्र मे जव स्थिति कुछ गम्भीर हो जाए तो यह समझना चाहिए कि इसका प्रत्यक्ष सम्वन्ध रजोनिवृत्ति से नही है, वल्कि ऐसी प्रवृत्तियो का मुक्त हो जाना है जो पद्धति मे अव तक प्रसुप्त थी।

यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि इस प्रकार के लक्षण रजोनिवृत्ति मे अन्तर्निहित नही है, और यह समझने के वजाय कि जीवन का अन्त हो रहा है कई नई वाते शुरू हो जाती है जो अच्छी क्षतिपूर्ति कही जा सकती है। डब्ल्यू० जे० फील्डिग का कहना है—"असख्य स्त्रियो मे सन्धिक्षण के वाद सफलताओ का सिह-

द्वार खुल जाता है। स्वस्थ स्त्रियो मे रजोनिवृत्ति के फलस्वरूप यौन आकर्पण घटने का भी कोई कारण नही दिखाई पडता। सच तो यह है कि कई स्त्रिया ५० साल की उम्र मे २५ साल की उम्र से अधिक आकर्षक हो जाती है और यदि वर्षो के साथ-साथ व्यक्तित्व का विकास हुआ है तो वे ६० साल की उम्र मे ३० साल की उम्र से मनोमोहक हो सकती है।"

होफ्सटेटर का कहना है कि रजोनिवृत्ति के बाद स्त्रियो मे पुरुषो की कई शारीरिक विशेषताए दिखाई पडने लगती है। वे कहते है—"उनमे पुरुषो की आदते, विचार के ढग, स्पष्टता, वस्तुवादिता, सूक्ष्म न्याय की भावना, सहिष्णुता, व्यापारिक योग्यता, साधारण सामाजिक तथा राजनैतिक योग्यता दृष्टि-गोचर होती है।" पर इन्हे मासिकधर्मोत्तर जीवन के सम्भव मानसिक गुण मानते हुए भी पुरुषोचित कहना उचित न होगा। यह गुण अयौन है और पुरुषो मे भी कोई अधिक सुलभ नही है। कई दम्पतियो मे यह देखा गया है कि पत्नी की रजो-निवृत्ति के बाद ही विवाह सुखकर और सामञ्जस्यपूर्ण साहचर्य का लक्ष्य प्राप्त कर पाता है। कई बार यह सम्बन्ध भाई और बहिन के सम्बन्ध की याद दिला सकता हे। इस उम्र मे स्त्रियो मे बौद्धिक कार्यकलाप बढ जाता है, इसमे सन्देह नही, और कई विशिष्ट स्त्रियो के क्रियात्मक जीवन का सूत्रपात सन्तान-धारण की क्षमता के अन्त होने के बाद ही होता है, ऐसा कहा जा सकता है। हा, कई स्त्रिया ऐसी होती है जो उस समय अपनी बढी हुई कर्मशक्ति का उपयोग अपने बड़े लडको तथा विशेषकर अविवाहित और घर के दायरे मे रहने वाली लडकियो के काम मे दखल देने मे खर्च करती है। यह उपद्रव कई बार इतना बढ जाता है कि जीवन नष्ट हो जाते है। ऐसे समय सद्भावनापूर्ण किन्तु दृढ विद्रोह की जरूरत पडती है क्योकि यदि कष्ट अनिवार्य ही है तो बडे-बूढे ही तकलीफ उठाए न कि तरुण-तरुणिया। पर जो स्त्रिया सन्तुलित ढग से चलने की आदी है वे अपने पोतो और पोतियो मे दिलचस्पी लेती है और मातृत्व की मुक्त कर्मशक्ति को बृहत्तर सामा-जिक जगत् मे लगाती है। कहना न होगा कि बाहरी जगत् मे विस्तृत नैतिक तथा अन्य कार्यों के लिए अन्तहीन गुजाइश है।

पुरुषो मे रजोनिवृत्ति के ढग का या उसके समतुल्य कोई समय आता है कि नही, इसपर बहुत मतभेद है। यदि आता है तो वह बहुत अस्पष्ट है। बात यह है कि शुक्राणु-क्षरण के कार्य का कोई अन्त परिलक्षित नही हुआ है। यह बहुत बडी उम्र तक यहा तक कि एक रिपोर्ट के अनुसार १०३ साल की उम्र मे भी अव्याहत पाया गया है। फिर भी पुरुष के जीवन मे कई ऐसे समय आते है जब एकाएक चेतना मे मोड आ जाता है और उसका असर बहुत गडबडीपूर्ण होता है। कुर्ट मेडेल

ने जब से इस बात पर ध्यान दिलाया, तब से पुरुषो मे रजोनिवृत्ति के तुल्य किसी समय की बात को लोगो ने काफी माना है, यद्यपि क्राफ्ट एविंग तथा दूसरे लोगो ने इसे स्वीकार नही किया। प्राचीनकाल मे भी ६३ साल की उम्र मे एक महान् सन्धिक्षण माना जाता था, फिर भी हम कडाई के साथ 'पुरुष की रजो-निवृत्ति' नही कह सकते। इस आधार पर मेरानान ने *सन्धिक्षण शब्द* को तरजीह दी है, जिससे एक आभ्यन्तरिक विकास की बात सूचित होती है। इसका केन्द्र स्थायी रूप से उस विन्दु को माना जाता है जब सक्रिय यौन जीवन या तो लुप्त हो जाता है या उसमे बहुत कमी आती है। केन्द्र मानने पर भी इसे वह धुरी नही माना जा सकता जिसपर कि चक्र घूमता है। इसका जीववैज्ञानिक आधार तो यह है कि स्नायविक क्षरण-ग्रन्थियो की प्रक्रियाओ के कारण रतिशक्ति मे ह्रास होता है। विभिन्न लोगो ने इसका विभिन्न समय माना है। केनेथ वाकर ने इसे ५५ से ६० के बीच, रैंकिन ने ५७ से ६३ के बीच, मैक्स मार्कस ने ४५ से ५५ के बीच, यहा तक कि ४० पर माना है। कई हालतो मे मै तो कहूगा कि मैथुन मे ह्रास ३८ साल की उम्र मे ही घटित होता है। तब पुरुष एकाएक यह अनुभव करता है कि उसकी शक्ति के विस्तार की सीमा आ गई है, यहा तक कि तुलनात्मक रूप से शक्ति घट रही है, जिसका प्रतिफलन यौन क्षेत्र मे भी होता है। इस प्रकार पुरुष एकाएक खिन्न होकर यह अनुभव करने लगता है कि वह अब जवान नही है और बूढा हो चला है। यदि पुरुष इस बात को बढती हुई उम्र के साथ जान पाए तो उसके फलस्वरूप यौन क्रिया बहुत जोर से बढ सकती है, साथ ही अहकार और हृदयहीनता बढ सकती है, जिससे यौन क्रिया की अभिव्यक्ति और खुलकर होती है। कुल मिलाकर देखा जाए तो इसे हितकर माना जा सकता है क्योंकि उससे विशेषकर उदासीनता से अतिभावुकता की विपत्तियो से छुटकारा मिल जाता है, पर साथ ही इसके अपप्रयोग भी हो सकते है, वह इस प्रकार कि यदि यौन क्षेत्र मे बहुत कार्यशीलता बढ गई तो उससे खतरा पैदा हो सकता है। कुछ अस्वाभाविक लोगो के क्षेत्र मे लिगादि-प्रदर्शन की इच्छा, किशोर लडकियो के प्रति आकर्षण या कई बार समलैंगिक मैथुन का मोड लेकर (इसे विलम्वित समलैंगिकता कहेगे) लडको के प्रति यौन आकर्षण पैदा हो सकता है। प्रसिद्ध जर्मन उपन्यासकार टामस मान ने 'Der Tod ın Venedıng' नामक पुस्तक मे इसीको अपना विषय वनाया है। इसके सम्वन्ध मे उन्होने खुद ही कहा है कि उसमे उन्होने पुरुष के विकृत सन्धिक्षण का चित्रण किया है। हिर्शफेल्ड का कहना है कि यह लक्षण विशेपकर अविवाहित पुरुषो तथा विधुरो मे और मैक्समार्कस का कहना है कि यौन दृष्टि से अनुपयुक्त लोगो मे पाया जाता है।

पुरुष के इस सन्धिक्षण के वृहत्तर मानसिक पहलू का प्रतिफलन यह होता है कि उसमे तरुणसुलभ आक्रमणात्मकता तथा साहस का अभाव हो जाता है और सामाजिक तथा राजनैतिक दकियानूसीपन की ओर प्रवृत्ति होने लगती है, जो आम तौर से बुढापे के लक्षण मानी जाती है, फिर भी कई लोग इस प्रवृत्ति से अपवादात्मक रूप से बच जाते हैं, ऐसा भी देखा गया है।

कुल मिलाकर पुरुष के जीवन का सन्तानोत्पादन का पहलू स्त्रियो के तत्सबधी जीवन से कम निविड होता है, इसलिए स्वाभाविक रूप से पुरुष का सन्धिक्षण कुछ स्पष्ट होता है और तुलनात्मक रूप से कम महत्त्व रखता है। फिर भी इस समय पुरुषो मे कई छोटे-मोटे अप्रिय मानसिक गुण, जैसे—चिडचिडापन, कमीना-पन, कजूसी आदि दिखाई पडते हैं जो स्त्रियो मे भी उसी युग मे दीख पड सकते हैं। साथ ही जीवन के प्रति एक विस्तृत और शान्त दृष्टिकोण भी दिखाई पड सकता है, पर मानसिक परिवर्तन अधिक भीतरी इसलिए होते हैं कि पुरुष घर से बाहर के जगत् मे अधिक क्रियाशील होता है। जैसा कि रैंकिन ने लिखा है, जीवन को एक नया मोड मिल सकता है यद्यपि इस धरातल पर उसकी कार्यशीलता घट जाती है। उच्चाकाक्षाए सयत होती हैं और जीवन के प्रति दृष्टिकोण और निखरता है।

सहायक पुस्तक-सूची

एफ० एच० ए० मार्शल—The Physiology of Reproduction.

जी० मेरानान—The Climacteric.

केनेथ वाकर—'The Accidents of the Male Climacteric', British Medical Journal, 9th Jan 1932.

डब्ल्यू० जे० फिल्डिंग—Sex and the Love-Life.

डब्ल्यू० गैलिकन—The Critical Age of Women

अध्याय | ७

प्रेमकला

यौन आवेग के साथ प्रेम का संबंध

विवाह पर विचार करने के कई तरीके है। बहुत रूखे-सूखे और सूक्ष्म प्राथमिक ढग पर यह कहा जा सकता है कि विवाह कानून द्वारा स्वीकृत यौन मिलन है। सभ्य समाज मे विवाह देश की प्रचलित नैतिक रीति-नीति (नीति या सदाचार आवश्यक रूप से रीति-नीति ही है) का ही एक जटिल अश है। उस हालत मे विवाह एक ठेका है, बल्कि जैसा कि मैक्स क्रिश्चियन ने कहा है, "यह न केवल यौन सबध कायम करने तथा उसे जारी रखने का ठेका है, बल्कि यह आर्थिक तथा मानसिक आधारो पर अवलबित एक सच्चे सामूहिक जीवन का भी ठेका है। इसके साथ ही कुछ नैतिक (यानी सामाजिक) कर्तव्य भी है। फिर भी और अतरग रूप से देखा जाए तो यह दो ऐसे व्यक्तियो का स्वतन्त्रतापूर्वक एकत्रीकरण है जो एक-दूसरे से मेल खाते है, ताकि वे प्रेम की विविध अभिव्यक्तियो को एक अनियन्त्रित क्षेत्र के अदर स्वच्छन्दतापूर्वक काम मे ला सके।"

मामूली तौर पर यौन आवेग की किसी अभिव्यक्ति का जब प्रशसात्मक रूप से उल्लेख करना होता है तो उसे प्रेम कहते है। कहना न होगा कि यह बिलकुल गलत है। हमे काम या शारीरिक यौन आवेग तथा प्रेम यानी दूसरे आवेगो के साथ मिले हुए उस आवेग को अलग करके देखना है।

काम और प्रेम के फर्क के सबध मे सब से अच्छी परिभाषा क्या है, इस विषय मे विद्वानो मे मतभेद है। हा, यह कहा जा सकता है कि जो भी परिभाषा की गई है उसमे उन दोनो के प्रभेद के किसी एक भाग पर जोर दिया गया है। मोटे तौर पर प्रेम काम और मित्रता का एक समन्वय कहा जा सकता है, पर यदि इस सारे मामले को शरीरविज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो हम फोरेल के साथ यह कह सकते है कि मस्तिष्क के केन्द्रो के ज़रिए से अभिव्यक्त यौन सहजात को प्रेम कहते है या कैंट के साथ हम कह सकते है कि प्रेम उस यौन आवेग को कहते है जो समय-समय पर प्रकट होने वाले कामोच्छ्वास के बधन से मुक्त हो चुका है और कल्पना

की सहायता से स्थायी बना दिया गया है। फिस्टर ने प्रेम की विभिन्न परिभाषाओ पर एक लम्बा अध्याय लिखने के बाद यह उपसहार निकाला है कि प्रेम की परिभाषा यह है कि वह एक आकर्षण तथा आत्मसमर्पण की भावना है, जो एक आवश्यकता से उत्पन्न हुई है और जिसका पात्र ऐसा है जिससे तृप्ति प्राप्त करने की आशा है। यह परिभाषा अपूर्ण है और यही बात सब परिभाषाओ के सबध मे कही जा सकती है।

दृश्यमान रूप से प्रेम अपने सब से विकसित रूपो मे बिलकुल ही परार्थपर आवेग मालूम होता है, पर इसकी उत्पत्ति अहमिकापूर्ण आवेग से होती है, और जब इसके फलस्वरूप सपूर्ण आत्मबलिदान करना पडता है, तब भी उसमे अहमिकापूर्ण परितृप्ति का उपादान रहता है। अन्य विद्वानो के साथ फ्रायड ने भी प्रसिद्ध ग्रथ 'प्रारभिक व्याख्यान' मे इस अहमिकायुक्त प्रारभ पर जोर दिया है। उन्होने तो लगभग उसी समय अन्यत्र यह कहा था कि प्रेम प्राथमिक रूप से नार्किससवादी है। हा, इसके साथ ही वे यह मानते थे कि प्रेम बाद को चलकर अपने प्रारभ से अलग हो जाता है। विशेष रूप से यौन उपादान को अलग रखते हुए भी फ्रायड तथा दूसरे लोगो का यह कहना है कि मा ही बच्चे की प्रथम वास्तविक प्रेमपात्री होती है, यद्यपि बाद को चलकर ऐसे व्यक्तियो मे, जो स्नायविक रूप से विकृत नही है, यह प्राथमिक पात्र पृष्ठभूमि मे रह जाता है और दूसरे प्रेमपात्र स्वाभाविक रूप से प्रमुखता के साथ आगे आते है।

यौन आवेग यद्यपि प्रारभ मे मुख्यत. अहमिकापूर्ण है, पर प्रेम मे विकसित होते हुए वह सज्ञान रूप से परार्थपर हो जाता है। सच तो यह है कि स्वस्थ तथा स्वाभाविक अवस्थाओ मे इसके यौन विकास के प्रारभ से ही परार्थपर उपादान रहते है। जानवरो मे भी यदि प्रेमपात्र के लिए ख्याल और चिता न हो तो प्राक्क्रीड़ा अकृतकार्य हो जाती है और मैथुन हो नही पाता। पर प्रेम के विकास के साथ-साथ यह परार्थपर उपादान सज्ञान और बहुत अधिक विकसित हो जाता है, यहा तक कि अह वृत्ति का बिलकुल लोप जाता है।

जिस प्रक्रिया से प्रेम का विकास होता है उसे द्वयात्मक कहा जा सकता है। आशिक रूप से यह सारे शरीर मे यौन आवेग के विकिरण से होता है, जिससे वह दीर्घतर स्नायविक चक्कर लेता है और ऐसे इलाको को तब तक निमज्जित करता रहता है जब तक कि यौन आवेग अपने लक्ष्य को जल्दी से और बिना बाधा के प्राप्त न कर ले। पर आशिक रूप कारण यह है कि यौन आवेग कमोवेश मिलते-जुलते मानसिक उपादानो के साथ घुल-मिल जाता है।

पूर्ण यौन विकास के बाद ही प्रेम ऐसे मिलते-जुलते आवेगो से पुष्ट होता है

जिसे वात्सल्य कहेगे। उसके बाद स्त्री का यौन प्रेम बच्चो के प्रति स्नेह तथा धैर्य की भावना से और पुरुष का यौन प्रेम उनकी रक्षा करने और उनपर पहरा देने की भावना के साथ मिल जाता है। इस प्रकार से यौन प्रेम विवाह-बधन मे आकर समाज के ढाचे का अग बन जाता है और यदि उसकी अभिव्यक्ति और ऊचे गई तो यह धर्म तथा कला के आवेगो के साथ मिश्रित हो जाता है। इस क्षेत्र मे स्त्रिया अक्सर अग्रदूत रही है। लतूरनो ने यह दिखलाया है कि ससार के बहुत से भागो मे प्रेम-सबधी कविता के सृजन मे स्त्रियो ने प्रमुख भाग लिया है और कई बार ऐसा मालूम होता है कि उन्होने प्रेम पर एकाधिकार जमा लिया है। इस सबध मे यह बता दिया जाए कि आदिम जातियो मे प्रेम के कारण आत्महत्या मुख्यत स्त्रियो मे ही पाई जाती है।

फिर भी यह याद रखा जाए कि असभ्य जातियो मे काम का प्रेम के रूप मे विकास बहुत दूर तक नही हुआ है; केवल यही नही, सभ्य जातियो मे भी बहुत कम लोगो मे इसका उस रूप मे विकास हुआ है। सारे ससार मे काम सुपरिचित है और इसके लिए सब भाषाओ मे शब्द भी है, पर प्रेम सारे ससार मे परिचित नही है और कई भाषाओ मे इसके लिए कोई शब्द नही है। प्रेम प्राप्त करने मे अकृत-कार्यता कई बार अद्‌भुत और अप्रत्याशित होती है। दूसरी तरफ हम यह देखते है कि ऐसी जगह यह प्राप्त है जहा इसकी कोई आशा नही थी। कुछ जीव-जन्तुओ मे विशेषकर चिडियो मे यौन आवेग आदर्शीभूत होता है, जैसे कि कई बार जब हम यह देखते है कि जोडे मे से एक के मर जाने पर दूसरी चिडिया भी मर जाती है, तो इसे निरा यौन आवेग कहकर टाल नही सकते, बल्कि यह साफ मानना पडता है कि उस आवेग के साथ जीवन के दूसरे उपादानो का इतनी हद तक गठबधन हो चुका है कि वैसा अत्यत सभ्य मनुष्यों मे भी दुर्लभ है। कई असभ्य जातियो मे प्रेम की कोई मौलिक धारणा नही पाई जाती और अमरीका की 'नहुआ' जाति की तरह उनमे इसके लिए कोई प्राथमिक शब्द नही है। दूसरी तरफ प्राचीन पेरूवासियो की भाषा 'किचुआ' मे प्यार करना यानी उनकी भाषा मे 'मूने' क्रिया के ६०० रूप है।

ब्रिन्टन ने बहुत दिन पहले यह कहा था कि अमरीका की कुछ आदिम जातियो की भाषा मे प्रेमवाचक शब्दो से उसकी धारणा को व्यक्त करने के चार तरीके मालूम होते है: (१) आवेग को प्रकाश मे लाने वाली स्फुट ध्वनिया, (२) समता या समरूपतावाचक बाते, (३) मिलनवाचक बाते, (४) इच्छा, वासना, तृष्णावाचक बाते। ब्रिन्टन आगे कहते है कि आर्य-भाषाओ के बृहत् परिवार मे जो प्रेमवाचक शब्द है उनमे से अधिकाश मे ये

भाषा-भाषी लोग योन प्रेम की धारणा को विकसित करने मे पिछडे हुए रहे पर अमरीकावासी 'माया' जाति के लोग आर्यो की आदिसस्कृति से इस मामले मे आगे निकल गए और उनमे प्रेम के आनन्द को व्यक्त करने वाला एक मौलिक शब्द था, जिसकी अन्तर्गत वस्तु विशुद्ध रूप से मानसिक थी।

ग्रीको मे भी यौन प्रेम का आदर्श देर से ही विकसित हुआ। ग्रीको मे सच्चा प्रेम लगभग हमेशा समलैगिक था। प्राचीन ग्रीस के आयोनियन गीतकार स्त्री को सुख का साधन और परिवार की प्रवर्तक समझते थे। थियोगनिस ने शादी की तुलना पशुपालन से की है। एल्कमैन ने स्पार्टा की सुन्दरियो की प्रशसा के पुल बाधते हुए उन्हे स्त्री-लौडे बताया है। ईशीलस ने तो एक पिता के सम्बन्ध मे यह लिखा है कि वह यह मानता है कि यदि स्वतन्त्र छोड दी जाए तो उसकी लडकिया दुराचरण करेगी। सोफोक्लीस की रचना मे यौन आवेग का कही पता नही है और यूरिपिडीज की रचना मे स्त्रिया ही प्रेम करती है। ग्रीस मे तुलनात्मक रूप से बाद के युग तक यौन प्रेम को बुरा समझा जाता था और इसका दरजा इतना गिरा हुआ था कि सार्वजनिक रूप से न तो इसपर बातचीत हो सकती थी न इसका चित्र आदि दिखाया जा सकता था। ग्रीस मे नही बल्कि बृहत्तर ग्रीस मे पुरुष स्त्रियो मे दिलचस्पी लेते देखे जाते है और सिकन्दर के युग मे आकर विशेषकर ऐस्क्ले-पीयाडिस मे जैसा कि बेनेके ने बताया है स्त्रियो के प्रति प्रेम जीवन-मृत्यु का मामला समझा जाता था। इसके बाद से रोमाटिक ढग का यौन प्रेम यूरोपीय जीवन मे दिखाई पडता है। गेस्टन पैरिस ने ठीक ही कहा है कि ट्रिस्ट्रम वाली कैल्टिक कहानी के साथ-साथ यह अन्त मे आकर ईसाई यूरोपीय कविता-जगत् मे मनुष्य-जीवन के एक मुख्य बिन्दु तथा चरित्र की एक प्रधान परिचालक शक्ति के रूप मे प्रकट होता है। पर साधारण यूरोपीय जनता मे अभी तक प्रेम-सम्बन्धी रोमाटिक धारणाओ का प्रवेश नही हुआ और वह प्रेम और मैथुन के कार्य मे कोई फरक नही देख सकती।

जब अन्ततोगत्वा प्रेम-सम्बन्धी धारणा का पूर्ण विकास हुआ तो यह एक बहुत ही विस्तृत और जटिल भावावेग बन गया। कामुकता अपने सब से अच्छे रूप मे भी अब महज बहुत से अन्य उपादानो मे से एक सयुक्त उपादान रह गया। हरबर्ट स्पेन्सर ने अपनी 'मनोविज्ञान के सिद्धान्त' नामक पुस्तक मे प्रेम को नौ पृथक् और महत्त्वपूर्ण उपादानो मे विश्लेषित किया है · (१) काम का शारीरिक आवेग, (२) सौन्दर्य-भावना, (३) लगावट, (४) प्रशसा-भाव और सम्मान, (५) वाहवाही की इच्छा, (६) आत्ममर्यादा, (७) सापत्तिक भावना, (८) वैयक्तिक बाधाओ से छुटकारा होने के कारण मिली हुई कार्य-सम्बन्धी स्वतन्त्रता,

(९) सहानुभूतियो का उन्नयन। अन्त मे वे कहते हैं—"यह मनोवेग एक विशाल सयुक्त आवेग मे निमज्जित हो जाता है, जिसमे लगभग वे सभी औपादानिक उत्तेजनाए आकर मिल जाती है जिनकी सामर्थ्य मनुष्य मे हे।" इस व्यापक विश्लेषण मे भी पहले उल्लिखित प्रेम के उस उपादान को छोड दिया गया है जो वात्सल्य पर निर्भर है, फिर भी वह एक महत्त्वपूर्ण उपादान है। वात यह हे कि जव दाम्पत्य-सम्बन्ध मे विशेप रूप से यौन उपादान पृष्ठभूमि मे रह जाता है, उस समय पत्नी-प्रेम और इससे भी अधिक पति-प्रेम सन्तान-प्रेम का ही एक रूप वन जाता है। प्रेम के सभी विश्लेषणो से यह ज्ञात होता है, जैसे कि क्राले ने कहा है—"प्रेम की परिभाषा उतनी ही कठिन है जितनी कि जीवन की परिभाषा है और इनमे दोनो के कारण एक से है। अपने सभी रूपो मे प्रेम बहुत वडा हिस्सा अदा करता है। यह हिस्सा अगर किसीसे घटकर है तो जीने के सहजात से ही घटकर है। इसमे परिवार के सभी महत्त्वपूर्ण उपादान समा जाते हैं। यह वह शक्ति है जिससे परिवार कायम रहता है, केवल यही नही। इसीके अन्तर्गत जो सहमानव के प्रति प्रेम है उसीकी बदौलत किसी नस्ल या जाति के सव सदस्य जुडे रहते है।"

प्रेम पर इस सक्षिप्त विचार मे ही यह पता लग जाता है कि कोई भी व्यक्ति, वह चाहे कितना भी सतही चिन्तक हो, यह कहने की हिमाकत नही कर सकता कि प्रेम का सम्बन्ध एक ऐसे रोमाटिक भ्रम से है जिसे हम चाहे तो अवज्ञा की दृष्टि से देख सकते है। प्रेम को यह भी कहकर कोई विश्लेषक टाल नही सकता कि यह घृणा का ही एक परिवर्तित रूप है। साथ ही यह भी सत्य है, जैसा कि इबसेन ने कहा है, "किसी भी शब्द मे आज के दिन इतना झूठ और बेईमानी नही भरी है जितना कि 'प्रेम' इस छोटे से शब्द मे।" फिर भी स्थिति यह है कि जिस भावना के लिए यह शब्द है वह मौजूद है। प्रेम शब्द का जितना ही अधिक अपप्रयोग होता है, यह स्पष्ट है कि वह उतना ही मूल्यवान है क्योकि सोना, हीरा और ऐसी कीमती चीजो के ही तरह-तरह के अनुकरण बनते है जो रगो, पेस्टो और घटिया चीजो आदि के रूप मे दिखाई देते हैं। अपर या अपर की इच्छा के बिना स्व की धारणा नही की जा सकती और हम अपर को या अपर द्वारा उत्पन्न आवेगो को तव तक हटा नही सकते जब तक कि पहले हम स्व को ही हटा न दे। इसलिए सच्ची वात तो यह है कि प्रेम जीवन मे अन्त प्रविष्ट है और यदि प्रेम एक भ्रान्ति है तो जीवन भी एक भ्रान्ति है।

जब हम इससे आगे वढकर यह सोचते है कि कैसे प्रेम का सम्वन्ध नस्ल और व्यक्ति से है और उसके सामने जो लक्ष्य है वह न केवल प्राकृतिक है वल्कि आध्यात्मिक है तो ऐसा मालूम होता है जैसा कि बायस गिब्सन ने कहा था—"यह वह

महान् साधन है जिसके द्वारा परिवर्तन और विस्तार होता है, जो सारे जीवन का अन्तिम कल्याण है।" इसलिए यह कहा गया है कि प्रेम बृहत्तम कल्याण है और कल्याण प्रेम है या जैसा कि प्राचीन ईसाई पत्र-लेखक ने अपने ढग से कहा था—ईश्वर प्रेम है।

सहायक पुस्तक-सूची

वेस्टरमार्क—History of Human Marriage; ib The Origin and Development of the Moral Ideas

हैवलाक एलिस—'Sex in Relation to Society,' Studies in the Psychology of Sex, Vol. VI

एडवर्ड कारपेंटर—Love's Coming of Age

एलेन की—Love and Marriage

वायस गिब्सन और ए० ई० क्राले—Articles, 'Love' and 'Primitive Love,' in Hastings' Encyclopoedia of Religion and Ethics

फ्रायड—Introductory Lectures on Psycho-Analysis

आस्कर फीस्टर—Love in Children and Its Aberrations

प्रेम एक कला क्यों है ?

वायस गिब्सन ने प्रेम की परिभाषा करते हुए इसे एक भावुकता तथा मनोवेग कहा है। इस प्रकार से प्रेम-सम्बन्धी विविध दृष्टिकोण सामने आ जाते हैं। प्रेम चाहे भावुकता हो या मनोवेग, यह भाव-जीवन का एक स्थायी और जटिल सगठन है, पर भावुकता के रूप मे यह अधिक बौद्धिक, परिमार्जित तथा सूक्ष्म है और मनोवेग के रूप में यह बहुत तगडी किस्म की भावुक जटिलता है। ए० एफ० सैन्ड ने मनोवेग की परिभाषा करते हुए इसे भावो तथा इच्छाओ की एक सगठित पद्धति बताया है। दूसरे शब्दो मे, यह भावुकता की पद्धति से कुछ और भी है। प्रत्येक आवेग के साथ-साथ एक प्रकार के आत्मनियन्त्रण की पद्धति भी उदित होती है, रहा यह कि यह किस प्रकार की आन्तरिकता से काम करता है; यह दूसरी बात है। पर जिस तरह भी काम करे, आत्मनियन्त्रण की भावना से इसकी निविडता कमोबेश असरदार तरीके से नियमित होती है। इसका चरित्र पद्धतिगत होने तथा इसमे एक करने वाला सिद्धान्त निहित होने के कारण प्रेम के आवेग को स्थायी,

नियामक, विस्तृतिकारक और गहरी बुद्धिमत्ता मे पगा हुआ कहा जा सकता है। इसके स्वाभाविक विकास के लिए (यहा आकर हम उस दिशा मे जाते है जिससे हमारा यहा विशेष सम्बन्ध है) आवश्यक शर्त यह है—जैसा कि वायस गिब्सन ने आगे कहा है—अपने पात्र मे आनन्द आवश्यक है, भले ही उस आनन्द वाली शर्त के कारण अनिवार्य रूप से उसमे यन्त्रणा और कष्ट की सम्भावना भी पैदा हो जाए। बात यह है कि ये भाव परस्पर से सयुक्त और परस्पर मे अन्त प्रविष्ट है। इस प्रकार आनन्द के साथ दु:ख प्रेम के मनोवेग को बल पहुचाता है। इस जटिलता और विस्तार के कारण ही प्रेम महान् और अनोखे रूप मे सब मनोवेगो मे प्रधान हो जाता है।

फिर भी हम इस बिन्दु पर विस्तृत अर्थ मे प्रेम का पूर्ण अर्थ स्पष्ट नही कर सके। प्रधान मनोवेग महज बृहदीकृत अहमिका, दूईक्स की अहमिका है और इसलिए वह चाहे जितनी प्रशसनीय हो, फिर भी वह साधारण अहमिका से न तो ऊचा उठाने वाली है और न दृष्टि का विस्तार करने वाली है। इस अर्थ मे प्रेम कर्मशक्ति के उत्पादन का एक साधन हो सकता है, पर यदि दोनो कर्मशक्ति-उत्पादक साथी इसे महज एक-दूसरे पर खर्च करे तो वह बहुत-कुछ नष्ट हो जाता है। प्रेम उन महान् वस्तुओ मे है जिससे जीवन जीने योग्य हो जाता है, पर जैसा कि बर्टेन्ड-रसेल ने बहुत सही ढग से कहा है कि दो व्यक्तियो का प्रेम इतना सीमित है कि वह स्वय मे अच्छे जीवन का मुख्य उद्देश्य नही हो सकता। ऐसे उद्देश्य होने चाहिए जो युगल या जोडी से निकलकर बाहर के महान् जगत् को यहा तक कि भविष्य को भी समेट ले और ऐसे उद्देश्यो की ओर अपनी दिशा रखे जो कभी प्राप्त नही किए जा सकते और हमेशा विशालतर हो रहे है।—"जब प्रेम इस प्रकार के किसी अनन्त उद्देश्य से जुड जाता है, तभी उसमे वह गहराई और गम्भीरता हिलोरे लेने लगती है जिसकी कि उसमे सम्भावना है।" प्रेम की एक प्राथमिक शर्त यह है जिसे नीतिवादीगण भी मानते है, भले ही वे कुछ ब्यौरे छोड जाएं कि उसके पात्र मे आनन्द की भावना होनी चाहिए। यही पर प्रेमकला का प्रश्न उठता है।

अभी कुछ ही समय पहले तक कला के रूप मे प्रेम पर विचार का न तो मनोविज्ञान के गुटको मे कोई स्थान था और न सदाचार की पुस्तको मे। यह विषय कवियो के लिए छोडा हुआ था, और कवि इस बात से खुश ही थे कि यह विषय अभी तक अवैध समझा जाता था। प्राचीन कवि ओविड ने जब प्रेमकला पर अपनी प्रसिद्ध काव्यकृति प्रस्तुत की, जो प्रसिद्ध होने के साथ ही कुख्यात भी समझी जाती थी, वह १५ सदियों तक उसी रूप मे चालू रही और जब ईसाइयत का उदय हुआ तब भी यही स्थिति रही। यौन प्रेम का सामाजिक रूप से अथवा साहित्य में उल्लेख

करना उचित, सुरुचिसम्मत या नैतिक नही समझा जाता था, जब इसका किसी प्रकार से उल्लेख होता था तो इसे केवल कर्तव्य के रूप मे दिखाया जाता था। यह कई बार कहा जाता है कि आधुनिक काल के लिए प्रेमकला का प्रथम आविष्कार फ्रास मे १२वी शताब्दी मे हुआ, फिर भी यह एक अवैध कला ही रही।

आज परिस्थिति एकदम भिन्न है। अब आम तौर से प्रेम को कला समझना उचित माना जाता है और नीतिवादीगण भी इसके इस स्वरूप के समर्थन मे पीछे नही है। वे इस बात को मानते हैं कि विवाह मे सतता या सतीत्व कायम रखने के लिए यथेष्ट बडा उद्देश्य नही है, और दाम्पत्य की नीव को गहरा बनाकर प्रेम के आधार को विस्तृत करना तथा उन उद्देश्यों को विस्तृत करना जो पारस्परिक स्नेह को आकर्षक बनाते हैं, मानो सदाचार को बल पहुचाना है। हमें यहा सदाचार से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध नही है, पर हम इसके दावो को किसी न किसी रूप मे मान्यता देने के अधिकारी तो है ही।

इस कला को आधुनिक सभ्यता मे कुछ दिनो से स्वीकृति दी गई है। आम्ब्रोआ पारे शल्यविद्या के बहुत बडे अग्रदूत थे। उनका कहना था कि मैथुन के पहले काफी हद तक प्रेमक्रीडा करना वांछनीय है। उसके बाद फिर्ब्रिगेर ने विवाह में यौन आरोग्यशास्त्र-विषयक अपने ग्रन्थ मे यह लिखा है कि चिकित्सक मे इतनी योग्यता होनी चाहिए कि वह अपने रोगी को दाम्पत्य-मिलन की तकनीक की शिक्षा दे। जब हम फिर एक बार फ्रास मे लौटते है जो पहले-पहल प्रेमकला से विशेष रूप से सम्बद्ध माना गया है, तो हम देखते है कि १८५९ मे डा० जील्स गीयो ने अपनी पुस्तक Breviaire de l'Amour Experimentale मे बहुत अच्छी तरह प्रेम-कला-सम्बन्धी मुख्य बातो का विवरण दिया। बहुत दिन बाद को १९३१ मे उस पुस्तक का अग्रेजी मे 'विवाहित प्रेमियो के लिए अनुष्ठान' नाम से आशिक रूप से अनुवाद हुआ।

इस प्रसंग मे हम स्त्रियो मे यौन आवेग की विशेषता, विशेषकर उनमे जो यौन शीतलता या उदासीनता होती है उसपर विचार करेगे। यह समझा जाता है कि स्त्रियो मे यह बहुत आम है, बात यह है कि इस बात को मानकर ही प्रेमकला का विकास हो सकता है क्योकि इसके द्वारा स्त्री मे प्रेमेच्छा पैदा की जाती है। और केवल स्त्री मे ही क्यो, सारे जन्तु-जगत् मे यह देखा जाता है कि प्राक्क्रीडा एक कला के रूप मे प्रचलित है।

यह माना गया है कि यौन उदासीनता से घर मे अशान्ति होती है, स्त्री को कष्ट मिलता है, पति निराश होता है, और निराश होने के कारण वह अन्यत्र अधिक सुखकर सम्बन्ध खोजने के लिए दौड पडता है। ऐसे क्षेत्रो मे देखा जाता

है कि यौन मिलन के लिए उचित मात्रा मे इच्छा नही है या जब यौन मिलन होता भी है तो उससे उचित मात्रा मे सुख नही मिलता। कभी-कभी तो दोनो बाते एकत्र दीख पडती है। दोनो मे से कोई भी त्रुटि हो तो प्रेमकला से वह त्रुटि ठीक हो सकती है।

यौन क्षेत्र मे जीववैज्ञानिक क्रीडा मे स्त्री साधारण रूप से निष्क्रिय या सूक्ष्म-क्रिय भाग अदा करती है, और सभ्य स्त्रियो मे यह तुलनात्मक निष्क्रियता न केवल प्रकृति से बल्कि हमारी परम्पराओ से और बढ जाती है। मौलिक दृष्टि से देखा जाए तो यह सिद्धान्त गलत है कि यौन क्रिया मे पुरुप सक्रिय है और स्त्री निष्क्रिय। फिर भी इस प्रकार के विचार आम तौर से प्रचलित होने से पुरुपो और स्त्रियो मे बहुत भारी मनोवैज्ञानिक फर्क के लिए गहरी जमीन तैयार हो जाती है, इस बात को लोग भूल जाते है। डगलस ब्रायन ने इस बात को दिखलाया है कि पुरुषो और स्त्रियो मे यौन तनाव विपरीतधर्मी तथा पूरक होने के कारण दोनो मे भावनाए तथा प्रतिक्रियाए भी भिन्न होती है। उत्तेजित शिश्न से आगे-पीछे हटने की क्रिया, कर्मशीलता, प्रभुत्व आदि की भावना तथा उत्तेजित योनि से प्राप्ति, निष्क्रिय रूप से अधीनता की स्वीकृति इत्यादि की भावना उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दो मे, इन्ही बातो मे पुरुपत्व और स्त्रीत्व का सार आ जाता है। इसके साथ ही उक्त विद्वान् यह कहते है कि मैथुन के सोपान के पहले प्राक्क्रीडा के सोपान मे पुरुष और स्त्रियो द्वारा मैथुन मे अदा किए जाने वाले हिस्से कुछ हद तक बदल जाते है; पुरुप को कुछ हद तक अधीन तथा स्त्री को कुछ हद तक सक्रिय होने की जरूरत पडती है। स्त्रियो मे यौन केन्द्र अधिकसख्यक और अधिक फैले हुए है, इसलिए यह आवेग बहुत आसानी से दूर तथा अचेतन या अर्धचेतन मार्गो से तृप्त हो जाता है। इसके साथ ही यह भी बात जुडी हुई है कि प्राचीन परम्पराओ ने स्त्रियो को यौन आवेग की अभिव्यक्तियो को घृणित तथा पापमय करके दमन करना सिखाया। इसीका नतीजा यह है कि स्त्रियो मे यौन आवेग धरातल के नीचे चला जाता है, और वहा रहकर दूर तथा अक्सर अचेतन या अर्ध चेतन मार्गो से तृप्ति प्राप्त करता है। फ्रायड ने इसी महान् तथ्य को पकड लिया। स्त्रियो मे यह यौन विशेषता होने पर भी ऐसा सोचने का कोई कारण नही है कि साधारण अवस्था मे स्त्री यौन रूप से उदासीन होती है। सभ्य जातियो मे जो गरीब होते है उनमे भी (कुछ घरेलू नौकरो की बात छोड दी जाए जो अब भी कृत्रिम अवस्थाओ मे घरेलू जानवरो की तरह रहते है) कोई बूढी कुमारिया यानी अविवाहित नौक-रानिया नही होती और उससे यह मालूम होता है (यद्यपि इससे प्रमाणित नही होता) कि स्त्रियो के यौन आवेग मे कोई त्रुटि नही है। पर सभ्य जातियों में प्रकृति, कला,

परम्परा, सदाचार और धर्म के सम्मिलित प्रभाव के कारण स्त्रिया जब कुछ हद तक ज्यादा उम्र मे पत्नी बनकर आती है तो वे अपने दाम्पत्य मिलन के लिए एक हद तक अयोग्य होती है, तिसपर यदि वर महोदय मे कला या चतुरता का अभाव हो तो उसे कष्ट मिलेगा, उसमे घृणा पैदा होगी या कम से कम इतना तो हो ही जाएगा कि वह उदासीन रहेगी।

अवश्य ही स्त्री मे ही इस अवस्था के लिए विविध स्थितिया होती है जिन-पर प्रत्यक्ष रूप से ध्यान देने की जरूरत है। कई बार हस्तक्रिया तथा समलैंगिक मैथुन के कारण स्वाभाविक मैथुन कठिन या घृणोत्पादक हो चुकता है। सम्भव है कि यौन अग अव्यवस्थित हालत मे शायद अवहेला के कारण और भी खराब हालत मे हो। कई बार योनि मे अतिसकोच की प्रवृत्ति होती है। ऐसी अवस्था मे स्त्री-रोग-विशेषज्ञ की सहायता लेनी चाहिए। कई बार तो सहायता लेते ही स्वाभाविक यौन भावनाए जल्दी से और सन्तोषजनक रूप से विकसित हो जाती है और पूर्ण मैथुन सभव होता है। पर स्त्रियो मे यौन उदासीनता या सुखानुभूतिहीनता को आरोग्य करने का प्रधान हिस्सा साधारणत. पतियो पर ही होता है। रहा यह कि वह भी इस प्रकार की चिकित्सा करने की योग्यता हमेशा रखता ही हो, यह बात भी नही है। ऐसा मालूम होता है कि अब भी बाल्जाक के उस कथन मे बहुत कुछ सत्य है कि इस मामले मे पति की हालत वही होती है जो ओराग ऊटाग बन्दर के हाथ मे बेहाला देने पर होती है। बेहाला मे सुखानुभूति नही रहती, पर यह शायद बेहाला का दोष नही है। इससे यह नही कहा जा रहा है कि पति सज्ञान रूप से या जान-बूझकर पाशविक होते है। हा, कई बार पति महोदय जानकारी न होने से या दाम्पत्य-कर्तव्य समझकर पशुवत् आचरण कर सकते है। पर कई बार उसकी अकुशलता मे स्त्री के प्रति न्याय करने की वास्तविक इच्छा रहती है। इसमे सब से दु खकर बात यह है कि अधिकाश क्षेत्रो मे वही पति गवारू आचरण करता है जो इसलिए गवारू है कि वह धर्मात्मा और उच्च विचार का रहा है—विवाह से पहले ब्रह्मचारी रहा है और उसने स्त्रियो की प्रकृति या आवश्यकताओ के सम्बन्ध मे जानने की चेष्टा नही की है। इसके साथ ही यह भी सही है कि सब से सुखी विवाह यानी आजीवन प्रेम-सम्बन्ध के विवाह कई बार ऐसे दो व्यक्तियो मे हुए है जो परस्पर के अलावा किसी-को नही जानते थे। पर यह मासूमियत एक दुधारी तलवार है, और कई बार इसकी काट भिन्न तरह की होती है।

जब काट भिन्न तरह की होती है तब कई बार ऐसा हो जाता है कि ब्रह्मचर्य से रहने वाला आदमी विवाह के बाद देखता है कि उसने अपने घरेलू सुख तथा पत्नी के सुख का हनन कर लिया है। यहा यह बता दिया जाए कि जिस व्यक्ति की

विवाहपूर्व यौन अभिज्ञताए वेश्यागमन तक सीमित रही है, उसमे भी वाञ्छनीय किस्म की योग्यता नही आती, वह या तो विचारहीन भोडेपन से वर्ताव करता है या वह अपनी पत्नी की पवित्रता के सम्बन्ध मे अतिरजित धारणाए रखता है, जिससे दाम्पत्य-जीवन मे गडवडी पैदा हो सकती है।

यह मानना पडेगा कि पति का कार्य अक्सर बहुत कठिन होता है। यह कठिनाई इस बात से और भी बढ गई है कि सभ्यता की हालतो मे स्त्री आपात दृष्टि से बडी उम्र तक ब्रह्मचारिणी रहने के बाद शादी करने लगी है। नतीजा यह है कि स्त्री की यौन शक्ति बराबर उत्पन्न होती रही, जो किसी न किसी रूप मे काम आती रही। इस दौरान मे उसमे कई तरह की आदते पैदा हो चुकी है और उसकी दिनचर्या बन गई है, उसकी सारी स्नायविक पद्धति एक विशेष रूप मे ढलकर कडी पड़ चुकी है। सेक्स के शारीरिक पहलू का जहा तक सम्बन्ध है, अब यौन अंग-प्रत्यग अपनी स्वाभाविक क्रियाओ और प्रतिक्रियाओ का निर्वाह नही कर पाते। स्वभाव आदि बन चुकने की कठिनाइया अधिक उम्र मे मैथुन मे दीक्षित होने से कम कठिन नही है। यह समझना गलत है कि किशोरावस्था मैथुन के लिए प्रतिकूल अवस्था है और इसमे किसी न किसी प्रकार का नियम मे व्याघात होता है, इसके विपरीत सारे प्रमाण यह बताते है कि वयस्क स्त्री के मुकाबले मे किशोरी स्त्री मैथुन मे दीक्षित होने की अधिक योग्यता रखती है। यौन मिलन मे विलम्ब प्राकृतिक तथ्यो पर निर्भर नही है, बल्कि सभ्यता की परम्पराओ के कारण ही ऐसा होता है। यह सही है कि प्रकृति ने प्राणिशास्त्रीय विकास के दौरान मे वयस्कता मे विलम्ब किया है, पर उसका यह उद्देश्य यौवनोद्गम को अधिक उम्र मे लाकर पूरा होता है और मनुष्य-जाति मे यौवनोद्गम देर से होता है। सभ्यता की माग यह है कि यौन मिलन और भी देर मे हो, पर इसको कार्यरूप मे परिणत करते हुए हम ऐसी बहुत सी कठिनाइया मोल ले लेते है जिनका केवल कला ही प्रतिकार कर सकती है।

इस प्रकार से यह निश्चित सत्य है कि हम पुरुष के यौन जीवन का तभी नियमन कर सकते है जब स्त्री के यौन जीवन पर विचार कर ले। पर इसी तरह यह तथ्य भी और अधिक सत्य है कि यदि हम यौन दिशा मे स्त्री के मनोवैज्ञानिक जीवन को समझना चाहते है तो हमारी एक आख हर समय पुरुष पर बनी रहनी चाहिए। स्त्री के यौन जीवन को समझना क्यो जरूरी है, इसके कई कारण है, जिनमे सब से बडा कारण यह है कि स्त्री का यौन जीवन पुरुष के यौन जीवन पर निर्भर होता है। अन्य कारणो पर पहले ही रोशनी पड चुकी है, पर प्रेमकला का यौन मनोविज्ञान मे क्या महत्त्व है, इसको समझने के लिए हमे उन्हे याद रखना चाहिए। पहली बात तो यह है कि यद्यपि यह बार-बार कहा जाता है और इस कथन मे कुछ सत्य भी है

कि इस मामले मे स्त्री ही प्रभुत्व करती है और पुरुष उसके हाथ मे महज एक खिलौना होता है, पर यह जड की बात नहीं है। बात यह है कि हम प्राणिशास्त्र की दृष्टि से जिस शृंखला की एक कडी है उसमे यौन विषयो मे पुरुष ही अधिक क्रियाशील रहता है और स्त्री अपेक्षाकृत निष्क्रिय पात्री होती है। शरीर-विज्ञान की दृष्टि से न सही, शारीरिक क्रिया की दृष्टि से पुरुष देने वाला है और स्त्री लेने वाली है। मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध मे अनिवार्य रूप से यह बात प्रतिफलित हुए बिना नही रह सकती। यद्यपि परिस्थितियो की भिन्नता के अनुसार इसमे कुछ रद्दोबदल हो सकता है, फिर भी प्रकृति का साधारण ढाचा वही बना रहता है।

दूसरी बात यह है कि प्राकृतिक जान्तविक सम्बन्ध के अलावा ज्ञात सारे इतिहास की हमारी परम्पराए यौन क्षेत्र मे पुरुष की प्रधानता तथा इस विश्वास पर आधारित है कि यदि स्त्री का एकमात्र नही तो मुख्य कार्य यही है कि वह सतान की गर्भधारिणी है। वह इस हिस्से को अदा करते समय जो कामपूर्ण व्यवहार करती है वह कमोबेश अवैध गौण क्रीडामात्र है। हमारी सारी सामाजिक सस्थाएं पुरुष की प्रधानता तथा इस साधारण विश्वास पर बढी तथा स्थापित हुई है कि विवाह मे पुरुष कानूनी रूप से प्रधान होता है और स्त्री को कोई कानूनी दायित्व नही होता। यह तो विवाह की बात हुई, पर विवाह के बाहर भी हम यह मानकर चलते है कि वेश्यावृत्ति एक स्वीकृत प्रथा है और उसका उद्देश्य पुरुष की कथित आवश्यकताओ की पूर्ति है न कि स्त्री की। हम जानते है कि इन सारी बातो मे सामाजिक मत तथा कानून बदल रहे है, पर प्राचीन सस्थाएं और उनसे भी अधिक उन्हीमे जड रखने वाली भावनाए तथा मत धीरे-धीरे ही बदल सकते है और परिवर्तनकाल मे होते हुए भी हम भूतकाल से बहुत अधिक प्रभावित है।

उसके अलावा एक महत्त्वपूर्ण बात यह है, जो पहले की बातो से ही उत्पन्न होती है, यद्यपि उसका सम्बन्ध स्त्री के मनोवैज्ञानिक क्षेत्र से अधिक अन्तरग है। लज्जा यानी प्राकृतिक लज्जा जो निम्नतर प्राणियो मे भी कमोबेश मौजूद है, और बनावटी लज्जा जो सामाजिक फैशन पर निर्भर है और जिसे आसानी से बदला जा सकता है, विशेष रूप से स्त्री के ही गुण है। यहा यह दिखाने का स्थान नही है कि यह ऐसा ही है या इस वक्तव्य को विभिन्न रूप से परिवर्तित करने पर तथा इसमे बहुत से 'यदि' और 'किन्तु' जोडने पर ही वह असली सत्य प्रकट होता है। मुख्यत: यह सन्दिग्ध नही है और प्राकृतिक अवस्था मे स्त्री जिस प्रकार आम तौर से यौन कार्यो मे और भी निष्क्रिय भाग लेती है उससे घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। हमारी सामाजिक परम्पराओ ने इसे और भी बल पहुचाया। लज्जा को किस हद तक बदला जा सकता है यह उन सस्थाओ की बढती हुई सख्या से पता लगता है जो

वाद को लेकर चलती है, जिनमे पुरुष और स्त्रियां विलकुल नगी हालत मे विना किसी झिझक के सामाजिक रूप से मिलते हैं। हमारी परम्पराओ मे जो तब्दीलिया हो रही है उनसे अभी तक कोई विशेष असर नही पैदा हुआ। सच तो यह है कि उनके कारण स्त्रियो मे चेतना के अभिव्यक्त तथा सुप्त उपादानो मे एक असामञ्जस्य सा पैदा हो गया है। स्त्री जिन वातो को भीतर ही भीतर अनुभव करती है तथा चाहती है उन्हे वह जानने के लिए स्वतन्त्र है, पर वह साधारण रूप से इन भावनाओ तथा इच्छाओ को मुक्त करके अभिव्यक्त नही कर सकती। नतीजा यह है कि आज हममे वहुत सी ऐसी स्त्रिया मौजूद हैं जो निश्चित रूप से जानती है कि वे क्या चाहती हैं, पर साथ ही वे यह भी जानती है कि यदि वे उन वातो को स्पष्ट कर दे तो उससे उन्ही पुरुषो मे जो उस ज्ञान को चाहते है, विकर्षण नही तो गलतफहमी पैदा होगी। इस प्रकार हम हर हालत मे पुरुषो मे ही पहुच जाते हैं।

ऊपर कही हुई बातो से यह प्रकट होता है कि स्त्रियो के यौन जीवन के सम्वन्ध मे हमारे सामने दो भिन्न और कई अर्थो मे परस्परविरुद्ध आदर्श हैं। हमारी सभ्यता मे एक प्राचीन दृष्टिकोण यह है, जिसके अनुसार स्त्रियो के यौन जीवन मे मातृत्व केन्द्रीय तथ्य है। यह तथ्य तो ऐसा है जिसे हम अस्वीकार नही कर सकते, पर उस धारणा के अनुसार यह भी तो है कि इसके बाहर जो कुछ भी यौन क्षेत्र मे आता है उसमे वह पुरुष के अधीन है। यह समझा जाता है कि जिन बातो से मातृत्व का कार्य आगे बढता है उनके अलावा स्त्रियो मे कोई यौन आवेग (यदि हो भी तो) नही होते। इस मत के अनुसार स्त्री प्राकृतिक रूप से एकगामिनी होती है और पुरुष घर तथा शिशु से बधा न होने तथा उसका मानसिक दायरा विस्तृत होने के कारण प्राकृतिक रूप से बहुगामी है। इसलिए स्त्री के लिए यौन समस्या बहुत सरल और स्पष्ट है जव कि पुरुष के लिए वह जटिलतर है। यही प्राचीन काल से लेकर लगभग इस युग तक हितकर और प्राकृतिक सिद्धान्त समझा जाता था, चाहे वास्तविक तथ्य इनसे मेल खाए या न खाए। एक सौ साल से कुछ कम हुए कि अग्रेज शल्य-चिकित्सक ऐक्टन ने एक पुस्तक लिखी, जो गत शताब्दी के अन्त तक यौन प्रश्नो पर एक आदर्श पुस्तक समझी जाती थी। उन्होने उस ग्रन्थ मे यह लिखा कि स्त्रियो के सम्वन्ध मे यह समझना कि उनमे यौन भावना होती है एक वहुत ही नीचतापूर्ण निन्दा है। लगभग इसी समय एक अन्य ऊचे दरजे के चिकित्सा-सम्वन्धी ग्रथ के रूप मे स्वीकृत पुस्तक मे यह लिखा गया कि केवल कामुक स्त्रिया ही पति के आलिगन मे सुख के शारीरिक चिह्न प्रदर्शित करती हैं। और मजे की वात यह है कि यह असम्भव ढग की मूर्खतापूर्ण उक्तिया साधारण रूप से मान्य थी।

आज हमारे सामने एक दूसरा ही आदर्श है, जिसमे केवल स्त्रियो और पुरुषो

को समान करके देखने की इच्छा ही नही वल्कि प्राकृतिक तथ्यो के अनुसार सारी वाते देखने की इच्छा प्रतिफलित है। यहा हम जिस क्षेत्र की वात कर रहे है उसके वाहर भी हम पहले की तरह स्त्रियो और पुरुषो मे कोई भेदभाव स्वीकार नही करते। हा, हम ऐसी भिन्नताओ को स्वीकार करते है जो सचमुच मौलिक और असख्य है, पर वे सूक्ष्म भिन्नताए है। उनको स्वीकार करने का अर्थ दो तरह की मानवीय प्रकृतियो की स्वीकृति नही है। मानवीय प्रकृति एक ही है, उसमे प्रवृत्तिया कुछ अलग है। पुरुष मे ये प्रवृत्तिया एक दिशा मे परिवर्तन और स्त्री मे दूसरी दिशा मे परिवर्तन की ओर ले जाती है, फिर भी मानवीय प्रकृति मे अनिवार्य रूप से वे ही विशेषताए रहती है।

हम पहले ही उस पुरानी उक्ति का उल्लेख कर चुके है जिसका वार-वार उल्लेख किया जाता है कि पुरुष वहुगामी है और स्त्री एकगामी। हम यह भी देख चुके कि यह पुरानी उक्ति कहा तक सत्य है। वात यह है कि प्रकृति मे जो स्थिति है उसके अनुसार स्त्री के क्षेत्र मे यौन मिलन का अधिक गम्भीर परिणाम होता है, इसलिए साथी चुनने मे स्त्री अधिक सावधानी वरतती है। यह प्रभेद हमेशा स्पष्ट रहा। फिर भी थोडी सी स्त्रिया ऐसी है जो मातृत्व के प्रति उदासीन होने के कारण औसत पुरुष की तरह आसानी से यौन सम्वन्ध स्थापित कर सकती है, जब कि आम तौर पर स्त्रिया पुरुषो की तरह विविधता पसन्द करती है और यदि उनसे अच्छी तरह नही तो उन्हीकी तरह एकसाथ दो व्यक्तियो से प्रेम कर सकती है। अन्य क्षेत्रो की तरह इस क्षेत्र मे स्त्रियो और पुरुषो मे वहुत कडे और तगडे प्रभेद करने का तरीका एक मिनट भी ठहर नही सकता, यद्यपि इसकी प्रवृत्ति अभी नष्ट नही हुई है। लडकियो के भी अपने भाइयो की तरह वाप होते है और पुरुष की प्रकृति से स्त्री की प्रकृति मे भले ही कितने ही छोटे-मोटे प्रभेद हो, वे उन्ही मौलिक मानवीय प्रकृति को उत्तराधिकारसूत्र में प्राप्त करते है। असल मे दो प्रकृतियो का सवाल नही है, यह जो विरोध है यह दो आदर्शो का विरोध है जो सस्कृति के दो अलग सोपानो के वीच है। आज के परिवर्तनकाल मे हम इन्ही आदर्शो के सघर्ष को देख रहे है।

इसीलिए यह उचित है कि हम स्त्री-सम्वन्धी यौन स्थिति का वडे पैमाने पर वहुत ही नपा-तुला तथा साख्यिक अध्ययन करे, ऐसा करते समय हम पुरुषो के साथ तुलनात्मक रूप से स्वस्थ या विशेष वर्ग की स्त्रियो का अध्ययन करे। महज दिलचस्प आम ढग के वक्तव्य, मनोवैज्ञानिको तथा दूसरे लोगो के कठमुल्लापन से भरे हुए साधारणीकरण जो अनिवार्य रूप से उनके कुसस्कारो तथा वक्तव्य देने वाले के सीमित तजरवो के रग मे होते है, अव कोई महत्त्व नही रखते और सौभाग्य

से अब ऐसे वक्तव्यो की कोई जरूरत भी नही है । अब विभिन्न वर्ग के निश्चित आकड़े एकत्रित किए जा रहे हैं। सच तो यह है कि अब वे प्राप्त होने लगे हैं और इस प्रकार हमारे सामने कैथराइन बी० डैविस, आर०एल० डिकिन्सन और जी०वी० हैमिल्टन आदि योग्य प्रशिक्षित लोगो के द्वारा एकत्रित मूल्यवान् आकडे है।

प्रश्न यह है कि स्त्रियो मे जो अधिक निष्क्रियता दिखाई पडती है, क्या उसका अर्थ यह है कि कोई मौलिक भावनागत पार्थक्य है या भौतिक दृष्टि से जरूरते कुछ अलग है । हैमिल्टन, डैविस और डिकिन्सन ने इस विषय की अच्छी तरह थाह लेने के लिए एक सुविधाजनक मापदण्ड यह बनाया कि तुलनात्मक रूप से किस परिमाण मे पुरुषो और स्त्रियो मे यौन आवेग की आत्ममैथुनिक अभिव्यक्तिया प्रचलित है । जब कोई पुरुष या स्त्री कोई आत्ममैथुनिक कार्य करता है तो हम भले ही यह विश्वास करने से अस्वीकार करे कि यह आवेग बहुत ही दुर्धर्ष था, फिर भी हमे मानना पडेगा कि सक्रिय यौन इच्छा मौजूद थी। शोधकर्ताओ ने जो आकडे प्रस्तुत किए है उनमे जैसा कि हम आशा करते है, फर्क है और हमे यह याद रखना चाहिए कि उन लोगो ने जिनपर प्रयोग किए वे किसी भी तरह पूछे गए प्रश्न का उत्तर देने के लिए मजबूर नही थे और वे कई बार उसका कोई उत्तर न देकर आगे बढ जाते थे।

इस प्रकार उत्तर न देने वालो से यह आशा की जाएगी कि स्त्रियो का ही अनुपात अधिक होगा। इसलिए यह अर्थपूर्ण है जैसा कि तीसरे अध्याय मे बताया गया है कि उन लोगो ने अक्सर सक्रिय आत्ममैथुन करना स्वीकार किया। इस प्रकार डिकिन्सन को मालूम हुआ कि सब वर्गों की ७० प्रतिशत स्त्रिया यथेष्ट यौन आवेग अनुभव करती थी और साधारणत वे आत्ममैथुन भी करती थी। कैथराइन डेविस ने एक हजार अविवाहित कालेज की स्नातिकाओ पर शोध करके यह पता लगाया कि जिन लडकियों ने प्रश्न का उत्तर दिया उन लोगो ने यह माना कि वे हस्तक्रिया करती थी; इनमे से आधी ने यह माना कि वे अब भी ऐसा करती है। "अब भी करने वाली लडकियो का स्वास्थ्य उन लडकियो की तुलना मे जो ऐसा करना छोड चुकी है या जो इस तरफ कभी बढी ही नही, अधिकतर प्रतिशत बहुत अच्छा पाया गया। बात यह है कि तगडा स्वास्थ्य ही तगडे यौन आवेग मे पुष्पित और पल्लवित होता है।"

हैमिल्टन ने औसत से अधिक हैसियत तथा योग्यता रखने वाले विवाहित लोगो के सम्बन्ध मे जाच की और वे इस नतीजे पर पहुचे कि २६ प्रतिशत स्त्रियो ने निश्चित रूप से कहा कि उन्होने कभी हस्तमैथुन नही किया और उन्होने स्त्रियो मे यह प्रवृत्ति पाई (जिसे मैंने भी बहुत दिनो से देखा है) कि स्त्रिया बचपन के बाद भी
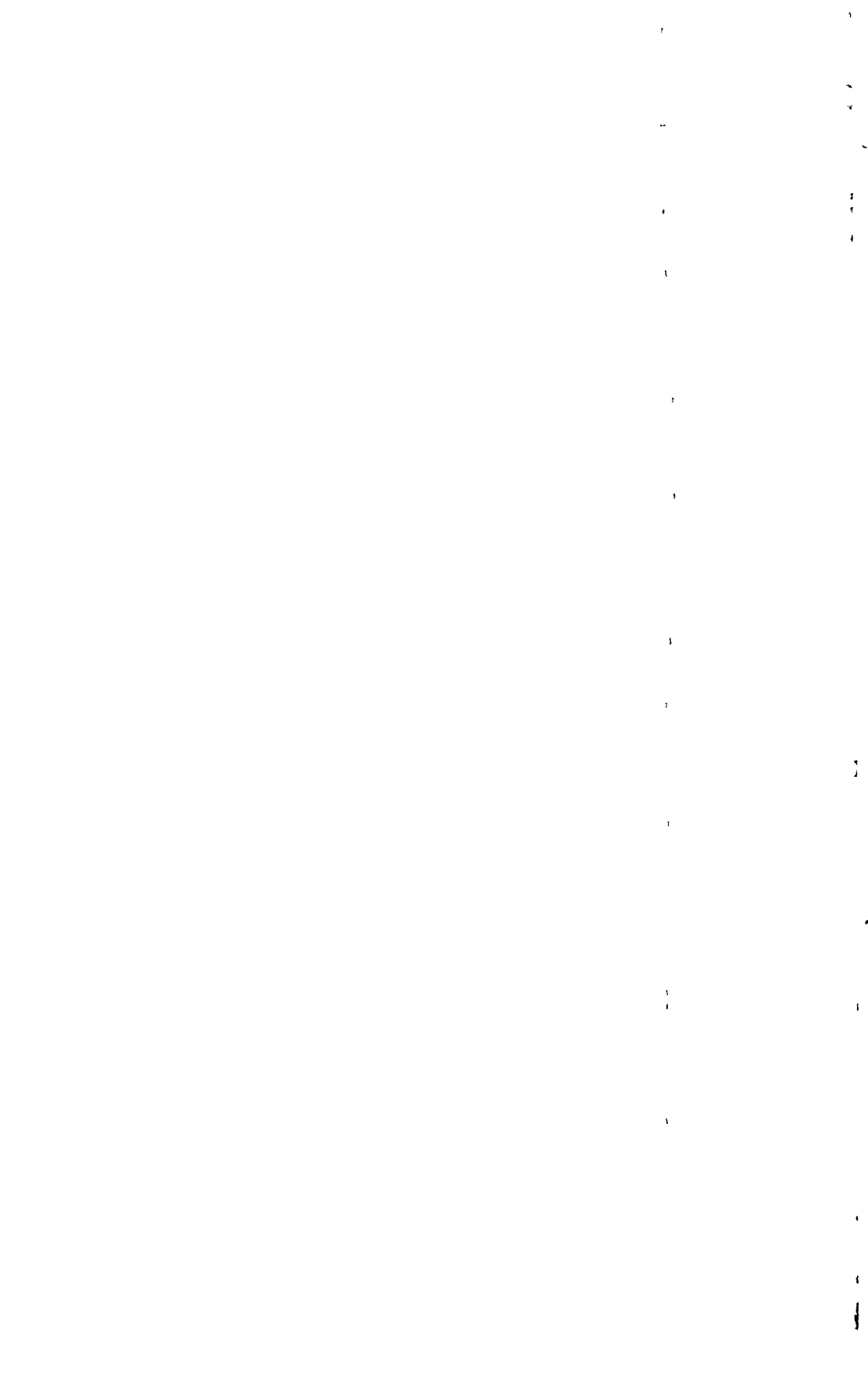
मूल लेखक | हेवलॉक एलिस
अनुवादक | मन्मथनाथ गुप्त
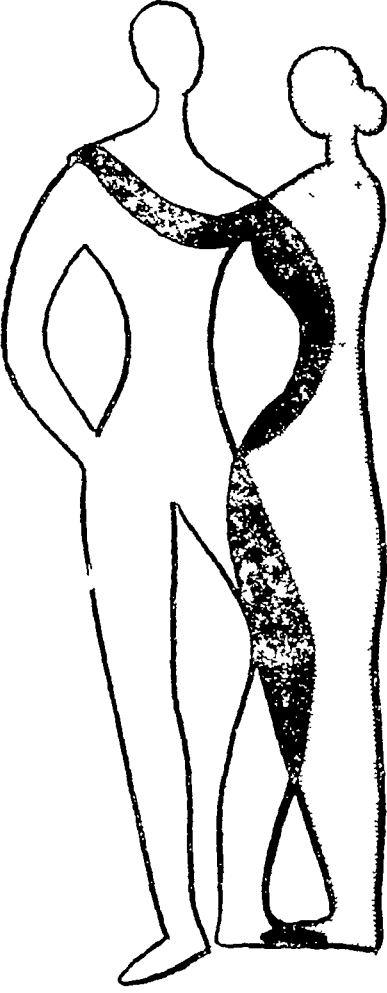
यौन मनोविज्ञान

PSYCHOLOGY OF SEX
का हिन्दी अनुवाद

एण्ड सन्ज़, दिल्ली ६

मूल्य : आठ रुपये
प्रथम संस्करण : मई, १९५९
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दि

भूमिका

मेरी सात जिल्दों वाली पुस्तक 'सेक्स के मनोविज्ञान के सम्बन्ध में अध्ययन'[1] के पाठकों ने अक्सर मुझसे यह कहा है कि यौन मनोविज्ञान की सक्षिप्त भूमिका के रूप मे एक छोटी सी पुस्तक की आवश्यकता है। यह कहा जाता है कि साधारण डाक्टर तथा डाक्टरी के छात्रों पर यो ही पुस्तको का बहुत बड़ा बोझ लदा रहता है, इसलिए उनके लिए एक ऐसे अतिरिक्त विषय पर जो अनिवार्य नहीं है, लम्बे-चौड़े ग्रन्थ पढ़ना सम्भव नही है। मानसिक तथा सामाजिक दृष्टि से यौन विषय-सम्बन्धी ज्ञान सब के द्वारा महत्त्वपूर्ण और केन्द्रीय स्वीकृत हो चुका है कि यदि आज का डाक्टर इस सम्बन्ध में ज्ञान नहीं रखता तो वह ज्ञान जबरदस्ती उसे प्राप्त करना पड़ता है। उसके पूर्ववर्तियो की तरह अब परम्परागत रूप मे न तो उसे इस विषय के अस्तित्व की ही अवज्ञा करने की जरूरत है और न उसे डरने की आवश्यकता है कि यदि उसने इसे स्वीकार किया तो वह गुस्ताख या अशोभन समझा जाएगा। इसके अलावा साधारण शरीर-विज्ञान तथा रोगविज्ञान के सम्बन्ध मे ज्ञान रखना ही आज बहुत अयथेष्ठ समझा जाएगा।

मेरे अपने विचार इन विचारो से मेल खाते है। मैंने बल्कि यह अनुभव किया है कि इस विन्दु पर चिकित्साशास्त्र-सम्बन्धी शिक्षा में एक ऐसी शून्यता दृष्टिगोचर होती है जो बिलकुल ही शोचनीय है। जब मै अर्ध-शताब्दी पूर्व डाक्टरी पढ़ रहा था तो उस समय सेक्स के मनोवैज्ञानिक पहलुओ का कोई पता नही था। स्त्री-रोग-सम्बन्धी मेरे शिक्षको के निकट स्वास्थ्य या रोग में सेक्स की प्रक्रियाएं बिलकुल ही भौतिक थीं। वे लोग अपनी शिक्षा में एक ही ऐसी बात कहते थे जिसे किसी रूप में मनोवैज्ञानिक कहा जा सकता है। वह यह कि वे गर्भनिरोध के विषय में बहुत कड़ी चेतावनी देते रहते थे। यह बात मुझे इसलिए याद है कि यह अपनी तरह की एक ही बात थी। यह समझा जा सकता है कि तब से बहुत प्रगति हुई है। पर यह प्रगति यत्र-तत्र ही हुई है। पर मेरे सामने ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिससे मै यह कह सकूं कि किसी देश में प्रगति बहुत विस्तृत रूप से या स्पष्ट हुई है। २५ साल से कुछ कम समय हुआ जब फ्रेंकिल ने यह कहा था कि अधिकांश स्त्रीरोगवेत्ता व्यावहारिक रूप से यौनता के सम्बन्ध में बहुत कम ज्ञान रखते है, और वान्-डि-वेल्डे का कहना है कि

---

1 'Studies in the Psychology of Sex'.

भूमिका

मेरी सात जिल्दों वाली पुस्तक 'सेक्स के मनोविज्ञान के सम्बन्ध में अध्ययन'[1] के पाठकों ने अक्सर मुझसे यह कहा है कि यौन मनोविज्ञान की संक्षिप्त भूमिका के रूप में एक छोटी सी पुस्तक की आवश्यकता है। यह कहा जाता है कि साधारण डाक्टर तथा डाक्टरी के छात्रों पर यों ही पुस्तकों का बहुत बड़ा बोझ लदा रहता है, इसलिए उनके लिए एक ऐसे अतिरिक्त विषय पर जो अनिवार्य नहीं है, लम्बे-चौड़े ग्रन्थ पढ़ना सम्भव नही है। मानसिक तथा सामाजिक दृष्टि से यौन विषय-सम्बन्धी ज्ञान सब के द्वारा महत्त्वपूर्ण और केन्द्रीय स्वीकृत हो चुका है कि यदि आज का डाक्टर इस सम्बन्ध में ज्ञान नहीं रखता तो वह ज्ञान जबरदस्ती उसे प्राप्त करना पड़ता है। उसके पूर्ववर्तियो की तरह अब परम्परागत रूप से न तो उसे इस विषय के अस्तित्व की ही अवज्ञा करने की जरूरत है और न उसे डरने की आवश्यकता है कि यदि उसने इसे स्वीकार किया तो वह गुस्ताख या अशोभन समझा जाएगा। इसके अलावा साधारण शरीर-विज्ञान तथा रोगविज्ञान के सम्बन्ध में ज्ञान रखना ही आज बहुत अयथेष्ठ समझा जाएगा।

मेरे अपने विचार इन विचारों से मेल खाते हैं। मैंने बल्कि यह अनुभव किया है कि इस बिन्दु पर चिकित्साशास्त्र-सम्बन्धी शिक्षा में एक ऐसी शून्यता दृष्टिगोचर होती है जो बिलकुल ही शोचनीय है। जब मैं अर्ध-शताब्दी पूर्व डाक्टरी पढ़ रहा था तो उस समय सेक्स के मनोवैज्ञानिक पहलुओ का कोई पता नहीं था। स्त्री-रोग-सम्बन्धी मेरे शिक्षकों के निकट स्वास्थ्य या रोग में सेक्स की प्रक्रियाएं बिलकुल ही भौतिक थीं। वे लोग अपनी शिक्षा में एक ही ऐसी बात कहते थे जिसे किसी रूप में मनोवैज्ञानिक कहा जा सकता है। वह यह कि वे गर्भनिरोध के विषय में बहुत कड़ी चेतावनी देते रहते थे। यह बात मुझे इसलिए याद है कि यह अपनी तरह की एक ही बात थी। यह समझा जा सकता है कि तब से बहुत प्रगति हुई है। पर यह प्रगति यत्र-तत्र ही हुई है। पर मेरे सामने ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिससे मैं यह कह सकूं कि किसी देश में प्रगति बहुत विस्तृत रूप से या स्पष्ट हुई है। २५ साल से कुछ कम समय हुआ जब फ्रेंकिल ने यह कहा था कि अधिकांश स्त्रीरोगवेत्ता व्यावहारिक रूप से यौनता के सम्बन्ध में बहुत कम ज्ञान रखते है, और वान्-डि-वेल्डे का कहना है कि

---

1 'Studies in the Psychology of Sex'.

अधिकांश लोगों के लिए यह अब भी सही है, यद्यपि उसके कुछ सम्मानजनक अपवाद हैं। चिकित्सा-शास्त्र के आज के छात्रों से मुझे ऐसा मालूम होता है कि उन्हें सेक्स की मानसिक भौतिक प्रक्रियाओं में असन्तुलन की प्रवृत्ति तथा उनकी सफाई के सम्बन्ध में कोई शिक्षा नही दी जाती। चिकित्सा-शास्त्र के हमारे विद्यालयों में अभी तक पुराने संस्कारों का बोलबाला है, और अधिकांश रूप में आज के डाक्टरी छात्रों के साथ उसी प्रकार के अवाञ्छनीय सम्मान के साथ काम लिया जाता है जैसा कि एक शताब्दी पहले के स्कूली लड़कों के साथ किया जाता था, जिन्हें कई बार वनस्पतिशास्त्र जैसे यौन विषय में शिक्षा देना कुरुचिपूर्ण समझा जाता था।

बड़ी उधेड़बुन के बाद मैंने यह लघु ग्रंथ प्रस्तुत किया है, जो इस समय पाठक के सामने प्रस्तुत है। यह शायद बताने की जरूरत नही है कि न तो यह दावा है कि इस पुस्तक के कारण पहले की मेरी बृहत्तर पुस्तक अनावश्यक हो गई और उसकी कोई जरूरत नहीं रही और न तो यह कहा जा सकता है कि मेरे बृहत्तर ग्रन्थ बल्कि ग्रन्थो का यह कोई संक्षिप्त संस्करण है। कई बार यह कहा गया है कि उन बड़ी जिल्दो में सेक्स के रोगग्रस्त पहलू पर ही विचार किया गया है। यह एक गलती है। मैं बल्कि यह दावा कर सकता हूं कि मेरे अध्ययन में पहले के इस विषय के अध्ययनों के मुकाबले मे यह विशेषता है कि सेक्स के स्वाभाविक और स्वस्थ लक्षणो पर ही अधिक ध्यान दिया गया है। इस पुस्तक में भी वही दृष्टिकोण कायम रखा गया हैं, यद्यपि मुझे जो तजरबा प्राप्त हुआ है वह आंशिक रूप से अस्वस्थ लोगो से प्राप्त हुआ है (जो बहुत दूर-दूर से आए हुए थे), फिर भी मेरा ज्ञान मुख्यतः स्वस्थ और स्वाभाविक पुरुषों और स्त्रियों और उनके दैनिक जीवन में उठने वाली समस्याओ के ज्ञान पर आधारित है। इसीके साथ मैंने बराबर यह दिखाना चाहा है कि स्वस्थ और अस्वस्थ लोगो में कोई स्पष्ट सीमारेखा नही है। सभी स्वस्थ लोग किसी न किसी दिशा में कुछ न कुछ अस्वस्थ होते हैं और सभी अस्वस्थ व्यक्ति स्वस्थ व्यक्तियो के द्वारा अनुभूत मौलिक आवेगो के द्वारा ही परिचालित होते हैं।

यह सही तौर पर कहा गया है कि "वैज्ञानिक जिज्ञासा का लक्ष्य प्रयोगात्मक रूप से द्रष्टव्य लक्षणों का गाणितिक प्रतीकवाद की सहायता से स्पष्टीकरण है।" पर हम इस क्षेत्र में इस लक्ष्य से बहुत दूर हैं। इस क्षेत्र मे हम पहले सोपान पर हैं, पर यह सोपान बहुत ही आवश्यक और लाभजनक है क्योंकि इसमें यौन मनोविज्ञान को प्राकृतिक इतिहास का एक विभाग माना गया है।

इसलिए मैं इस बात के लिए कोई सफाई नहीं देना चाहता कि यह पुस्तक संक्षिप्त होने के साथ ही सरल है। इस रूप में यह चिकित्साशास्त्र के पाठकों और छात्रों तक अधिक अच्छी तरह पहुंच सकती है, जिनके लिए यह मुख्यतः लिखी

गई है। कुछ ऐसी मोटी बातें हैं जिनका ज्ञान सब को होना चाहिए। जो लोग इसके आगे जाना और उन समस्याओं पर पूरी जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं जो हमारे सामने पड़ी हैं, मैंने उनके लिए मार्गदर्शन किया है, और यह तो स्पष्ट ही है कि इस प्रकार के आरम्भिक लघु ग्रंथ में उन बातों पर पूर्णरूप से विचार नहीं हो सकता।

ये समस्याएं बहुत विस्तृत है। एक प्रमुख जर्मनी स्त्रीरोगविशेषज्ञ मैक्सहर्श ने अभी हाल ही में यौन विज्ञान के सम्बन्ध मे कहा है कि यह आरोग्यशास्त्र की अधिकांश शाखाओं से इस अर्थ में भिन्न है कि उसकी कोई स्पष्ट सीमाएं नहीं हैं। इसके केन्द्रबिन्दु से न केवल किरणें चिकित्साशास्त्र के सारे विभागो में फैलती हैं, बल्कि वे बहुत से पड़ोसी इलाकों में भी पहुंचती हैं और इनमे से कुछ ऐसी हैं जिनका चिकित्साशास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका सम्बन्ध सारी मानवीय संस्कृति से है। परम्परा और रीति-नीति का उद्‌भव भी इन्हींसे होता है। इसपर सदाचार तथा धर्म का असर पड़ता है। इस संबंध में हम सर जानरोज ब्रेडफोर्ड के उस मन्तव्य को याद रख सकते हैं कि विस्तृत अर्थ मे चिकित्साशास्त्र मनुष्य का प्राकृतिक इतिहास है।

इस प्रकार इस क्षत्र में असरदार तरीके से प्रवेश करने के लिए बहुत जटिल अभिज्ञता, विशेष प्रशिक्षण तथा वैयक्तिक प्रवृत्ति चाहिए। यह आज एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें बहुतेरे ऐसे लोग कदम रखते है जिनकी खोजे फलप्रद नही होतीं। यदि कोई इस क्षेत्र में प्रवेश करता है तो वह दूसरो के लिए किसी उपयोगी बात का पता लगाएगा ही, इस सम्बन्ध में सन्देह किया जा सकता है। मैंने बहुत साल तक इस उधेड़बुन में बिता दिए कि मै मार्गदर्शक के रूप में कोई लघु ग्रंथ प्रस्तुत करूं या नही, फिर भी मै यह नहीं कह सकता कि मैंने बहुत लम्बे अर्से तक प्रतीक्षा की।

मैं यह और बताऊंगा कि ऐसे बहुत से लोग है जो मुझे पथ-प्रदर्शक के रूप में स्वीकार करने से पहले यह जानने की इच्छा रखेंगे कि मनोविश्लेषण के प्रति मेरा रुख क्या है; क्योंकि यह वह सिद्धान्त है जिसपर अभी तक नहीं तो कुछ दिन पहले तक यौन मनोविज्ञान से सम्बद्ध प्रश्नो पर इतने वाद-विवाद रहे हैं। इसलिए मैं बिना किसी मीन-मेख के फौरन बता दूं, जैसा कि इस पुस्तक से यथासमय स्पष्ट हो जाएगा कि पहल से ही मेरा रुख सहानुभूतिपूर्ण रहा, यद्यपि यह सहानुभूति इतनी नहीं रही कि मैं उस सिद्धान्त का अनुगामी समझा जाऊं। 'अध्ययन' नामक पुस्तक की पहली जिल्द १८९८ में प्रकाशित हुई थी। अंगरेजी मे वह पहली पुस्तक थी जिसमें फ्रायड के अध्ययनो का प्रारम्भिक परिणाम बताया गया था, बाद को फ्रायड ने जो शोध किए उनके प्रति भी मेरा वही रुख रहा कि मै हमेशा मित्रतापूर्ण रहा, पर अक्सर आलोचना भी कर लेता था। जो लोग भी यह पुस्तक पढ़ें, मैं उनसे यह विनति करूंगा

कि वे फ्रायड की 'मनोविश्लेषण पर प्रारम्भिक व्याख्यान' पुस्तक अवश्य पढ़ें क्योंकि वह एक जिल्द में प्राप्त मनोविश्लेषण-सम्बन्धी साहित्य में न केवल सब से प्रामाणिक है, बल्कि शायद सब से अच्छी पुस्तक भी है। जो लोग साधारण सिद्धान्त के विरुद्ध भी हैं, वे भी इसमें ज्ञान और अभिज्ञतापूर्ण बातें पाएंगे। यदि इससे भी छोटी पुस्तक पढ़नी हो तो अर्नेस्ट जोन की मनोविश्लेषण-सम्बन्धी छोटी पुस्तक पढ़ी जाए, जो बहुत योग्यता के साथ लिखी गई है। हिली, ब्रोनेर और बावर्स ने 'मनोविश्लेषण का रूप तथा अर्थ' नाम से एक सरल तथा पक्षपातहीन वर्णन लिखा है। फ्रायड मनोविश्लेषण के क्षेत्र में गुरु हैं, पर जिन लोगो ने इन्हे छोड़कर अपना मार्ग ग्रहण किया है उनकी भी हम सर्वथा अवज्ञा नही कर सकते। उनमे अनगिनत पहलुओं से पूर्ण मनुष्य के मन के किसी न किसी पहलू पर अच्छी जानकारी है और मनमाना उञ्छवृत्तिवाद छोडकर भी हम प्रत्येक में से वह ठोस बात ले सकते हैं जो इनमें प्राप्त है।

प्रत्येक विभाग के अन्त में सहायक पुस्तकों की जो सूची दी गई है वे सब की सब अंगरेजी की है, जिससे कि वे अधिक लोगों के लिए वास्तविक रूप से सहायक हो सकें। कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ केवल दूसरी भाषाओ में विशेषकर जर्मन में ही उपलब्ध है। जो पाठक दूसरी भाषाओ का ज्ञान रखते हैं, उन्हें इस पुस्तक में दिए हुए हवालो से उन भाषाओ के सेक्स-सम्बन्धी साहित्य का पता पाने में कठिनाई नहीं होगी।

मैं यहां यह भी बता दूं कि इस परिचयात्मक लघु ग्रंथ को प्रस्तुत करने में मैंने एक पूर्वप्रकाशित पुस्तक 'स्नायविक और मानसिक रोगों की आधुनिक चिकित्सा' के अपने लिखे हुए 'यौन समस्याएं' नाम के अध्याय का उपयोग किया है। उक्त पुस्तक के सम्पादक डा० विलियम ए० व्हाइट तथा डा० स्मिथ जेलीफ हैं और उसके प्रकाशक हैं ली एंड फेबीगेर। उस अध्याय का उपयोग करने की अनुमति देने के कारण मैं उक्त सम्पादको तथा प्रकाशक का आभारी हूं। इसी प्रकार से डाक्टर अलबर्ट मोल की जर्मन पुस्तक 'यौन विज्ञान का गुटका' तथा डा० ए० मारी की फ्रेंच पुस्तक 'रोगग्रस्त मनोविज्ञान का अन्तर्राष्ट्रीय ग्रन्थ' में मैंने क्रमशः 'स्वाभाविक यौन आवेग' तथा 'मनोरोगयुक्त कामुकता' पर जो अध्याय लिखे थे उनका भी उपयोग किया है। अन्त में यहां केवल इतना बता देना रहता है कि इस क्षेत्र में यौन मनोविज्ञान से मेरा मतलब 'यौन आवेग के मनोविज्ञान' से है न कि दोनों लिंगों के विभिन्न मनोविज्ञान पर कुछ लिखना है; उसपर तो मेरी पुस्तक 'पुरुष और स्त्री' में अच्छी तरह विचार किया गया है।

—हैवलॉक एलिस

१९३८ के संस्करण की भूमिका

इस संक्षिप्त ग्रन्थ के प्रकाशन के बाद बहुत थोड़ा ही समय गुजरा है। इस बीच में जो नई बातें हुई है, उनसे ग्रन्थ में किसी गम्भीर परिवर्तन की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। सच तो यह है कि हम यह आशा ही नही कर सकते कि सेक्स के मनोवैज्ञानिक पहलू में उस प्रकार की द्रुत उन्नति होगी जैसे जीव-विज्ञान, रसायन-शास्त्र या प्रजनन-विद्या के क्षेत्र में हो सकती है। इसलिए मैं यहां केवल इस बात पर अपनी खुशी जाहिर करने तक ही अपने कर्तव्य को सीमित रखूंगा कि इंगलैंड तथा संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के चिकित्सकों तथा साधारण पाठकों मे इस पुस्तक का हार्दिक स्वागत हुआ है।

मनोविश्लेषण के विभिन्न मत-मतान्तरों में यौन समस्या के सम्बन्ध में बहुत ही भिन्न दृष्टिकोण दिखाई पड़ते हैं, फिर भी उन सब ने हमारी पुस्तक का बिना किसी प्रकार के मतभेद के स्वागत किया है, यह बहुत ही हर्ष की बात है। विभिन्न मत-मतान्तरो के सम्बन्ध में मेरा यह रुख रहा है कि जिस मत में जो भी बात मूल्यवान् हो, वह ले ली जाए। परस्परविरुद्ध विचारसरणियो के प्रतिपादको को यह रुख बहुत पसन्द नहीं आएगा। फिर भी उन्होंने इस पुस्तक का स्वागत किया, यह बहुत ही बड़ी बात है। स्वनामधन्य स्वर्गीय डाक्टर एडेर ने फ्रायडीय मत के मुख्य मुखपत्र 'इंटरनेशनल जनरल ऑफ साइकोएनालेसिस' में इस पुस्तक की बहुत जोर से प्रशंसा की और सभी प्रधान विषयों पर लगभग पूर्ण सहमति प्रकट की। दूसरी तरफ ऐडलेरीय मत का मुख्य मुखपत्र 'इंटरनेशनल जनरल ऑफ इन्डिविजुअल साइकालाजी' मे मेरे ग्रन्थ की जो आलोचना प्रकाशित हुई, उसमे वैज्ञानिक वस्तु-वादिता के साथ-साथ सहानुभूतिपूर्ण अन्तर्दृष्टि की प्रशंसा की गई। हां, आलोचक ने इस सम्बन्ध में मेरी मौलिक गलती बताई कि मैंने चलते हुए उस प्राचीन कहावत को उद्धृत किया था कि मनुष्य वही है जो उसका सेक्स है, जब कि मेरे आलोचक के अनुसार मुझे कहना यह चाहिए था कि मनुष्य का सेक्स वही है जो वह है। मैं यह बता दूं कि इस प्रकार कहने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। चाहे किसी प्रकार से भी बात कही जाए, असली वक्तव्य यह है कि मनुष्य का यौन स्वभाव उसका अन्तरंग और अनिवार्य भाग है, और किसी भी प्रकार उसके प्रति उदासीनता नहीं बरती जा सकती।

जब कि हमारे आलोचकों के विरोधी मन्तव्य भी इतने निर्दोष हैं, तो मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि मैं पूर्ण विश्वास के साथ यह लघु ग्रंथ पेश कर सकता हूं जो मेरे मतानुसार जीवन की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दिशा के अध्ययन का भूमिकात्मक पथ-प्रदर्शक है।

—हैवलॉक एलिस

अनुवादक की भूमिका

यौन विषयो की चर्चा करते हुए और उनपर लिखते-पढ़ते हुए मुझे एक युग हो गया। यह बताने की आवश्यकता नही है कि मै यह मानता हूं कि यौन विज्ञान वैयक्तिक जीवन को सफल बनाने का एक बहुत बड़ा साधन है। इसके साथ ही यौन विज्ञान के अध्ययन से कला तथा साहित्य के कई गुप्त स्रोतो का भी पता लगता है, यद्यपि इसके साथ ही हमें इस विचार से बचना होगा कि कला का एकमात्र उद्गम-स्थल सेक्स है।

कुछ हद तक अप्रासंगिक होते हुए भी मै यह बता दूं कि बीस एक साल पहले मै क्यों इस विषय के गम्भीर अध्ययन की ओर आकृष्ट हुआ। जब जेल की चहारदीवारियों में बन्द रहते हुए बहुत साल व्यतीत हो गए और क्रान्तिकारी जोश की वह उग्रता नहीं रही जो जेल के बाहर थी, तब मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मै तथा मेरे अन्य क्रान्तिकारी साथी मन के अधिकारी होने के सिवा एक-एक शरीर के भी अधिकारी है, जो कई बार मन की लगाम को तोड़कर दौड़ पड़ता है। इसके अतिरिक्त उन्हीं दिनों मै कहानी और उपन्यास-रचना की ओर बढ़ा, इसलिए मनुष्य के मन को अच्छी तरह समझना और उसमें गोते लगाना जरूरी हो गया। फिर तो मै इस विषय पर उपलब्ध विराट् साहित्य पढ़ गया। जेल में रहने के कारण समय की कोई कमी तो थी नही।

मुझे यह स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि इस सम्बन्ध में मैंने जितना साहित्य पढ़ा उसमे फ्रायड और हैवलॉक एलिस का साहित्य सब से अधिक सहजबोध्य था। यों तो फ्रायड को अपने क्षेत्र का कोलम्बस कहा जा सकता है, क्योंकि उन्होने एक नए जगत् का आविष्कार किया, पर हैवलॉक एलिस की सेवा यह थी कि उनकी पुस्तको से केवल उनके विचारों की ही नहीं बल्कि इस क्षेत्र में कार्य करने वाले दूसरे लोगों के विचारो की भी एक हद तक जानकारी प्राप्त होती है। उस दृष्टि से देखने पर यदि कोई व्यक्ति एक ही पुस्तक पढ़ने का समय निकाल सके तो उससे हैवलॉक एलिस की इस पुस्तक की सिफारिश करनी ही उचित होगी।

मैंने अपनी लिखी हुई 'यौन जीवन' तथा 'सेक्स का स्वभाव' नामक पुस्तको में यह दिखलाया है कि सभी क्षेत्रों में न तो फ्रायड से, न हैवलॉक से और न इस क्षेत्र के अन्य विद्वानो से पूर्ण रूप से सहमत होना सम्भव है, क्योकि इनकी विचार-पद्धति में यह दोष है कि ये व्यक्ति को निरवच्छिन्न व्यक्ति के रूप में ही अधिक

लेते हैं, सामाजिक प्राणी के रूप में कम। इसके अलावा इन महान् लेखकों में ऐतिहासिक परिप्रेक्षण का भी सम्पूर्ण अभाव है। वे इस सीधे-सादे ऐतिहासिक तथ्य की कोई व्याख्या किए बिना ही सारी आलोचना करते हैं कि क्या कारण है कि पहले यौथ विवाह था और उससे धीरे-धीरे एकविवाह की उत्पत्ति हुई। फिर उसमें भी निखार आ रहा है। मैं यहां और ब्योरे में नहीं जाऊंगा, मैं इस ओर भी दृष्टि आकर्षित नहीं करूंगा कि इन विद्वानों के बाद बहुत से नए तथ्य सामने आए हैं। सबकुछ कह-सुन लेने पर भी हैवलॉक एलिस का ग्रन्थ एक अत्यन्त मूल्यवान् ग्रन्थ है, जिसे सब को विशेषकर नौजवानों और नव-युवतियों को अवश्य पढ़ना चाहिए। कलाकारों और साहित्यकारों के लिए तो यह अध्ययन और भी आवश्यक है।

दो शब्द अनुवाद के बारे में। पुस्तक बहुत ही वैज्ञानिक है, इसलिए उसके अनुवाद में काफी दिक्कत आई। पीछे कठिन तथा नए शब्दों की एक सूची भी जोड़ दी गई है।

इस अनुवाद में मेरे मित्र श्री भुवनेश्वरीप्रताप श्रीवास्तव एम० ए० की बहुत सक्रिय सहायता रही, जिनका मैं आभारी हूं। बार-बार प्रतिलिपि तैयार करने में उनकी तथा श्री सुशीलकुमार श्रीवास्तव की हमें सहायता मिली।

१६०, खैबरपास होस्टल
दिल्ली-८

मन्मथनाथ गुप्त

विषय-सूची

विषय-प्रवेश

आजकल यौन मनोविज्ञान के प्रति, चाहे वह सही दिमाग वाले लोगो का मनोविज्ञान हो, चाहे विकृतमस्तिष्क लोगो का, साथ ही यौन आरोग्य-शास्त्र के प्रति साधारण लोगो मे जो दिलचस्पी और आकर्षण देखा जाता है, वह वर्तमान शताब्दी से पहले अकल्पनीय था। आज के युवक को अक्सर यौन विषय-सम्बन्धी साहित्य की वहुत अच्छी जानकारी होती है। आजकल की युवती भी जिज्ञासा की भावना से इन विषयो का परिचय विना किसी झिझक अथवा लज्जा के दिखावे के प्राप्त करती है। उसकी दादी को अपने जमाने मे इस प्रकार की जानकारी अत्यन्त दूषित जान पडती। अभी-अभी कुछ साल पहले तक अक्सर यौन-विषयक वैज्ञानिक शोध-कार्य को यदि कुरुचिपूर्ण नही तो हर हालत मे अहितकर प्रवृत्ति का द्योतक माना जाता था। पर अब हवा बिलकुल वदल गई है और वर्तमान समय मे यौन मनोविज्ञान के शोधकर्ताओ और यौन आरोग्य-शास्त्र के प्रचारको को वैयक्तिक और सामाजिक नैतिकतावादियो से ही वहुत अधिक समर्थन मिलता है।

कुछ समय पहले तक डाक्टर और चिकित्सक इस आन्दोलन के विस्तार मे सक्रिय भाग नही लेते थे। यद्यपि यह सच है कि लगभग एक शताब्दी पूर्व पहले-पहल जर्मनी और आस्ट्रिया और वाद को चलकर अन्य देशो के डाक्टर ही इस क्षेत्र मे अग्रदूत वन गए, पर ये लोग अपने सहव्यवसायियो द्वारा सन्देह की दृष्टि से देखे जाते थे। पहले यौन मनोविज्ञान तथा यौन आरोग्य-शास्त्र डाक्टरी प्रशिक्षण का कोई अङ्ग स्वीकृत नही था। सचमुच देखा जाए तो यौन शरीर-विज्ञान के विषय मे भी यही वात सत्य है। वीस साल से कुछ समय पूर्व ही एफ० एच० ए० मार्शल द्वारा लिखित यौन शरीर-विज्ञान की जो पहली पुस्तक प्रकाशित हुई थी, उसे वास्तव मे वैज्ञानिक और व्यापक कहा जा सकता है।

जिस तरह कालेजो मे पढाई जाने वाली पाठ्य-पुस्तको मे यौन शरीर-रचना और यौन शरीर-शास्त्र की उपेक्षा की जाती रही, ठीक उसी तरह चिकित्सा-शास्त्र के ग्रन्थो मे यौन मनोविज्ञान की उपेक्षा की गई, मानो यह कार्य प्राणिजीवन का

कोई अङ्ग ही न हो। इसका नतीजा यह होता रहा कि इन विषयो पर जानकारी, जो कई क्षेत्रो मे बीमारी को ठीक-ठीक समझने के लिए बहुत ही आवश्यक है, डाक्टरो की अपेक्षा मरीजो को अधिक रही। डाक्टर प्राय. इस दिशा मे झूठी परम्पराओ और बाबा आदम के जमाने के पूर्वाग्रहो के शिकार होते थे। कुछ लोग तो इन विषयो पर चुप्पी साधे रखने के लिए धर्म और नैतिकता का भी पल्ला पकडते है। ऐसे लोग यह भूल जाते है कि चर्च के ही एक महान् नेता ने अपने कट्टर दृष्टिकोण के बावजूद यह कहा था कि जिसकी सृष्टि करते समय विधाता को लज्जा नही आई, उसके सम्बन्ध मे कहने मे हमे लज्जा का अनुभव क्यो हो?

यौन विकृति के मामले मे, जिसका उल्लेख अक्सर भय के साथ विच्युतियो के रूप मे किया जाता था, इस अज्ञान का परिणाम अधिक गम्भीर हो सकता है। जहा तक यौन गडबडियो का प्रश्न है, अनेक बार मरीज यह शिकायत करते मिलते है कि डाक्टर या तो उसकी विशेष कठिनाइयो को समझते ही नही अथवा उन्हे वे महत्वहीन कहकर उडा देते है या फिर उनके साथ पापी, दुष्ट और शायद घृणा का पात्र मानकर व्यवहार करते है। इसमे सन्देह नही कि डाक्टर के विषय मे मरीज की इस प्रकार की चेतना के कारण बहुत से डाक्टर यहा तक कि बहुत अनुभवी डाक्टर भी फतवा दे देते है कि यौन गडबडिया अत्यन्त विरल है और मुश्किल से ही उनके साथ वास्ता पडता है।

यह नि सदेह दावा किया जा सकता है कि इस प्रकार अस्पष्ट ढग से ही सही, एक तगडी स्वाभाविकता के आदर्श का झडा बुलन्द रखकर और आदर्श से किसी तरह च्युत होने के विषय मे सुनने से भी इन्कार कर डाक्टर अपने मरीज को सही रास्ते पर चलने की उत्तेजना और प्रेरणा देता है। पर यहा यह बता दिया जाए कि इस दिशा मे मानसिक स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्य से भिन्न नही है। रोगी को उसका स्वास्थ्य फिर से लौटाने के लिए उसकी विकृत दशा की सही और बुद्धिमत्तापूर्ण जानकारी अत्यन्त आवश्यक है। जब तक हमे यह मालूम न हो कि मरीज इस समय किस स्थिति मे है, तब तक हम उसका इलाज कैसे कर सकते है? इसके अलावा मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र मे शारीरिक स्वास्थ्य की अपेक्षा एक बडी सीमा तक स्वाभाविक परिस्थितियो का दायरा बहुत व्यापक होता है। इसके अलावा हमे यह निश्चित करने के लिए कि व्यक्ति-विशेष की सामान्य अवस्था का स्वरूप क्या है, उसकी मानसिक तथा यौन बनावट किस तरह की है, यह भली भाति जानना चाहिए। नही तो हम उसे ऐसे रास्ते पर ले जा सकते है जो दूसरो के लिए तो सही हो, पर उसके लिए वास्तव में अहितकर तथा विकृत हो।

मानसिक तथा यौन विकृतियो के विषय मे आम तौर पर सूत्ररूप मे दी जाने

कई वार पुरुषो की तुलना मे अधिक उम्र मे इस कार्य को करती है। यह देखा गया है कि २५ साल की उम्र के बाद केवल १% पुरुष इसके शिकार होते है जब कि ६% स्त्रिया इस उम्र के बाद इसकी शिकार होती है । और कई बहुत मजेदार तथ्य सामने आए। यह देखा गया कि लोगो को यह काम सिखाया नही गया जैसा कि आम तौर से विश्वास किया जाता है । पुरुष और स्त्रियो के अधिकाश क्षेत्रो मे यह मालूम हुआ कि उन्होने खुद-बखुद यह काम सीखा था। यह भी अर्थपूर्ण है कि १७% पुरुषो तथा ४२% स्त्रियो ने विवाह के वाद हस्तमैथुन करने की वात स्वीकार की है । जिन स्त्रियो ने विवाह के बाद अक्सर ऐसा करने की वात स्वीकार की है उनकी सख्या उसी प्रकार के पुरुषो के बरावर है। शोध से पता लगता है कि विवाहित पुरुषो मे यह टेव कुछ अधिक पाया जाता है । इसका मतलव यह हुआ कि विवाहित पुरुषो मे यह काम उसी समय चालू होता है जव कि वे घर से दूर होते है या इस किस्म का कोई बाहरी कारण होता है, पर विवाहित स्त्रियो मे इसका प्रचलन इस कारण पाया गया है कि उनमे विवाह से असन्तोष अपेक्षाकृत अधिक मात्रा मे पाया जाता है। इस सम्वन्ध मे यह भी जानने योग्य है कि पुरुषो मे ऐसा विश्वास करने वालो का अनुपात स्त्रियो से अधिक है जो यह समझते है कि यह कार्य शारीरिक या मानसिक रूप से हानिकर है।

ऊपर गिनाए गए तीन शोधकर्ताओ मे हैमिल्टन ही एकमात्र अन्वेषक थे जिन्होने लोगो से सीधे-सीधे यह पूछा कि तुम किस हद तक विवाह से खुश हो। इस प्रकार पतियो मे अधिक सन्तोष होता है या पत्नियो मे, इसका तुलनात्मक शोध वे ही कर पाए। उन्होने जिन लोगो मे जाच की उनमे पतियो और पत्नियो की सख्या वरावर थी और शोध का तरीका भी दोनो क्षेत्रो मे एक जैसा रहा। उन्होने विवाह से सन्तोष को १४ सोपानो मे विभाजित किया था । जब शोध का सारा परिणाम वर्गीकृत किया गया तो मालूम हुआ कि ५१% पतियो को सन्तोप का सातवा उच्चतम सोपान प्राप्त हुआ था, जबकि ४५% स्त्रियो को ही यह अवस्था प्राप्त हुई थी। स्त्रियो को एक वर्ग के रूप मे लिया जाए तो वे तुलनात्मक रूप से विवाह के मामले मे अत्यन्त निराश हुई थी। कैथराइन डैविस ने भी इस परिणाम का समर्थन किया, यद्यपि वह इस सम्वन्ध मे प्रत्यक्ष रूप से तुलनात्मक शोध नही कर सकी । पत्नियो ने उन्हे वताया कि उनके पति कई वार विवाह से खुश थे, जवकि स्वय पत्नी विवाह से खुश नही थी। मैने भी अमेरिका तथा इगलिस्तानी विवाहो पर शोध किए है। वे शोध इतने सन्तोषप्रद नही थे, फिर भी जो परिणाम निकला वह उल्लिखित परिणामो से मेल खाता था। प्रभेद उतना अधिक नही है, पर इतना तो है ही कि पकड मे आए।

यह दिन-ब-दिन स्पष्ट होता जा रहा है कि स्त्रियों का कोई विशिष्ट यौन मनोविज्ञान नही होता। साधुओ तथा भिक्षुओ ने यह गलत धारणा उत्पन्न की थी, और उसे खतम करते-करते बहुत समय लग गया है। स्त्रियो और पुरुषों मे भिन्नता है और वह हमेशा रहेगी। जब तक पुरुषो और स्त्रियो का शरीर पृथक् रहेगा, तब तक उनका चिन्तन भी कुछ न कुछ अलग रहेगा, पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह भिन्नता महत्त्वपूर्ण नही है। अब हम जानते है कि स्त्रियो और पुरुषो की यौन बनावट वही है और यह पुरानी धारणा कि स्त्रियो के सम्बन्ध मे इस प्रकार सोचना गलत है, हमे बिलकुल ऊल-जलूल मालूम होती है।

हम यह भी देखते है कि स्त्रियो के यौन जीवन को मुख्यत परम्परागत अज्ञान तथा भूतकाल के कुसस्कारो के कारण ज्यादा हानि उठानी पडती है। विवाह मे कहा तक सन्तोष मिला, इस प्रश्न पर स्त्रियो ने पुरुषो से अधिक असन्तोष का प्रदर्शन किया है। पुराने जमाने मे तो यह कहा जाता था कि पुरुषो ने स्त्रियो की भलाई के लिए उदारता से विवाह-प्रथा का प्रवर्तन किया, पर स्त्रीरोग-सम्बन्धी प्रमाणो से कुछ दूसरी ही बात मालूम होती है। डिकिन्सन ने १७५ ऐसे मामलो के विषय मे लिखा है जिनमे स्त्रियो को मैथुन से कमोबेश कष्ट मिलता था और उन्होने १२० ऐसे मामलो के सम्बन्ध मे लिखा जिनमे यौन उदासीनता किसी हद तक पाई जाती थी, यानी मैथुन लगभग कष्टकर था। पतियो के क्षेत्र मे इस तरह की किसी स्थिति का पता नही है। हा, यह कहा जा सकता है कि कई क्षेत्रो मे पत्नी से असन्तोष होने के कारण पुरुष उस हद तक नपुसक हो जाता है। पर, यह एक बिलकुल नकारात्मक स्थिति है। कुल मिलाकर स्त्रियो मे अधिक असुविधा है, इसमे सन्देह नही।

कहा तक स्त्रियो की यह असुविधा वस्तुस्थिति के कारण है और कहा तक ऐसी परिस्थितियो के कारण है जिनपर हम नियन्त्रण कर सकते है? कुछ-कुछ दोनो बाते है। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि साधारण परिस्थितियो मे स्त्रिया यौन सम्बन्ध के प्रति मनोवैज्ञानिक तथा शरीर-वैज्ञानिक दृष्टि से कम सन्तुलन प्राप्त कर पाती है। यह एक प्राकृतिक असुविधा है, पर इसे प्रकृति से ही दूर किया जा सकता है। हमारे सामने जो समस्या है वह यह है कि यह आशिक रूप से प्राकृतिक असुविधा पहले के युगो की तुलना मे अधिक पाई जाने लगी है। डा० डैविस ने जिनपर जाच की, उनमे से एक स्त्री ने अपने कष्टकर तजरबो का ब्योरा देते हुए कहा—"पतियो को और शिक्षा क्यो न दी जाए?"

ये कष्टकर तजरबे किस प्रकार के है, इसका कुछ आभास हमे उन उत्तरो से मिल सकता है जो विवाहित स्त्रियो ने विवाह के प्रति पहली प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए

बताया, 'मनोरंजन हुआ', 'आश्चर्य हुआ', 'स्तम्भित रह गई', 'निराश हुई', 'डर गई', 'गुस्सा आया', 'अपने को भाग्य पर छोड दिया', 'मानसिक धक्का लगा', 'दिल बैठ गया'। १७३ ने तो यह कहा—'हमने इसे अनिवार्य मानकर ग्रहण किया।' स्वाभाविक रूप से इस प्रकार के उत्तर देने वाली स्त्रियो मे ऐसे लोगो की सख्या अधिक थी जो विना जाने-बूझे कि विवाह का क्या अर्थ है, उसमे कदम रख चुकी थी। अन्त मे हम वही पहुचते है जहा से हमने शुरू किया था।

पहले के जमाने मे सतह पर ही सही, एक यौन सन्तुलन हो जाता था, क्योकि स्त्रियो को अपने जमाने के जीवन के साथ तालमेल रखते हुए यह शिक्षा दी जाती थी कि वे विवाह से क्या पा सकती है और क्या आशा कर सकती है। इसके विपरीत हाल के जमाने मे यदि उन्हे कोई सही या गलत शिक्षा मिली तो उन्हे ऐसी शिक्षा मिली कि वे विवाह से ऐसी वातो की आशा करे जो उन्हे मिलती नही है। दूसरे शब्दो मे स्त्रियो की स्थिति तथा उनके प्रत्येक कार्यक्षेत्र मे एक नीरव क्रान्ति होती रही है। यह कार्यक्षेत्र वहुत विस्तृत है, और उनका सम्वन्ध प्रत्यक्ष यौन क्षेत्र से नही है, फिर भी उस आवेग पर उसका असर तो पडता ही है। पुरुषो की स्थिति तथा कार्यक्षेत्र मे इस प्रकार की कोई क्रान्ति नही हुई है और इसलिए यौन सन्तुलन का अनिवार्य अभाव रहा है। हम यह तो आशा नही कर सकते, न चाह सकते है कि स्त्री-जीवन मे होने वाली क्रान्ति के असरो का निराकरण हो जाए, इसलिए वर्तमान समय की यौन परिस्थिति ऐसी है जिसपर पुरुषो को ही प्रयत्न करना है। नवयुग की पत्नी के सामने पति को भी नवयुग का वनकर आना पडेगा।

जैसा मैने कई वार इस ओर ध्यान दिलाया है कि सव जीवन ही कला है। ऐसे लोगो ने इस वक्तव्य का विरोध किया है जो कला के साथ सौन्दर्यानुभूति को गड-वडा देते है जो विलकुल ही दूसरी वात है। सव सृजन तथा कृति कला की तरह है। यह किसी मनुष्य के क्रिया-कलाप तक ही सीमित नही है और शायद सारी प्रकृति के विषय मे ही यह वात अज्ञात रूप से सही है। सच्ची वात तो यह है कि जीवन कला है, यह उक्ति विलकुल रोजमर्रे की मामूली वात हो जानी चाहिए। ऐसा हो भी जाता यदि ऐसे लोग इससे इन्कार न करते और उदासीनता के साथ इसकी अवहेलना न करते, जो इसे मानने का दावा भी करते है। जो परिस्थिति है उसे देखते हुए यही कहने को जी चाहता है कि यदि जीवन कला है तो अधिकाश रूप मे यह एक वुरी कला है।

जीवन का शायद कोई भी क्षेत्र ऐसा नही है जिसमे वक्तव्य को इस रूप मे सशोधित करना पडता है, जैसे प्रेम का क्षेत्र है। यह अक्सर कहा जाता है कि मादा

के मुकावले मे नर मे ही प्राकृतिक अवस्था मे कला के लिए तुलनात्मक रूप से तगडा आवेग पाया जाता है, और इसमे सन्देह नही कि कई प्राणिवर्गो मे ऐसा ही दृष्टि-गोचर होता है। चिडियो के विषय मे सोचते ही पता लगेगा कि यह बात कितनी सत्य है। पर इस प्रकार का साधारणीकरण प्रेम के क्षेत्र मे आधुनिक मनुष्य पर लागू है, ऐसा हैमिल्टन, डैविस और डिकिन्सन के शोधो से नही ज्ञात होता। यह वहुत दु ख की वात है क्योकि प्रेम यौन सम्वन्ध का मानसिक पहलू होने के कारण स्वय जीवन ही है। इसके विना, जहा तक कि हम लोगो का सम्वन्ध है, जीवन की ही समाप्ति हो जाएगी। आज हम प्रेमकला के तिरस्कृत, अवहेलित तथा गर्हित समझे जाने के वहुत से धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा सौन्दर्य-शास्त्र-सम्वन्धी कारण दे सकते है। हम आज यह भी देख सकते है कि यह कथित धार्मिक कारण आदि कितने छिछोरे थे। कहना न होगा कि प्रेमकला की उन्नति के लिए इस वात को समझना वहुत जरूरी है। हम जानते है कि प्रेमकला की स्थिति उन्नत हो रही है, पर अभी उसकी उन्नति सभी क्षेत्रो मे सही ज्ञान पर आधारित नही है। कुछ लोगो ने तो सारी समस्याओ का समाधान इस प्रकार कर लिया कि उसे महज एक दिनचर्या के अग के अन्तर्गत कर लिया। नतीजा यह है कि वे उस-पर खाना-पीना या नाच अथवा टेनिस की तरह मनोरजन से अधिक ध्यान देना उचित नही समझते। ऐसा उन्होने वुद्धिहीन सहजात के कारण नही किया जैसा कि कभी किया जाता था, वल्कि सिद्धान्त के नाम पर किया है। ऐल्डस हक्सले जीवन तथा प्रेम मे आधुनिक फैशनो के एक वहुत तीक्ष्ण और वुद्धिमान् समालोचक है, उन्होने रावर्ट वर्न्स का अनुकरण करते हुए सही ढग पर कहा है—"यो ही विना किसी आवेग के, ठडे ढग से यौन परितृप्ति से वढकर कोई भयकर वात नही हो सकती। जव हल्केपन के साथ कामतृप्ति की जाती है तो उसके फल-स्वरूप प्रेम आवश्यक रूप से ठडा हो जाता है और उसमे कुछ दम नही रहता।" इसके अलावा यदि हम प्रेम की इस प्रकार वुरी गत कर देते है तो उसके वाद तो पुरुष और स्त्री मे सन्तुलन की समस्या को सुलझाने का प्रश्न ही नही आता। जिस युग मे हम यौन कार्य को महज एक कर्तव्य समझकर करते थे, चाहे हम उसके दौरान मे कुछ भावुकता और रोमास भी पैदा करते, हम प्रकृति से वहुत दूर थे, पर हम यदि इसे दिनचर्या का एक अग वना लेते है या इसे एक मनोरजन मात्र समझ लेते है तो भी हम प्रकृति से दूर रह जाते है। केवल सभ्य मानव मे ही नही, वल्कि यदि हम स्तनपायी जानवरो के नीचे की सृष्टि मे प्रकृति के शरीर-वैज्ञानिक तथ्यो मे उतर जाए तो भी हम देखते है कि यह एक ऐसा कार्य है जिसके करने हुए साधारण स्तर से प्रतिरोध का सामना करना पडता है और पूर्ण सन्तोष के साथ इसे

करने के लिए आवेग और कला की आवश्यकता होती है। यदि हम किसी न किसी वहाने इस अनिवार्य तथ्य को न माने तो उसका नतीजा यह होता है कि हमे कष्ट मिलता है।

इसके आगे वढने पर हम प्रेमकला के आरोग्य-सम्बन्धी महत्त्व पर जोर देने के लिए वाध्य होते है। प्राचीन काल मे न केवल इस प्रकार जोर देना असम्भव था, बल्कि लोग इस विचार को कतई समझ नही पाते थे। इस सम्बन्ध मे प्रेमकला की अवहेलना की जा सकती थी या वह तिरस्कृत हो सकती थी क्योकि न तो उस जमाने मे स्त्रियो की काम-सम्बन्धी आवश्यकताओ पर कभी विचार किया जाता था और न तो हम उस प्रचलित विचार से मुक्ति पा सकते थे कि पतियो की प्रेम-सम्बन्धी आवश्यकताए चुपचाप विवाह के वाहर तृप्त हो सकती थी। अव इन दोनो मामलो मे हमारा रुख वदल चुका है। अव हम यह मानने लगे है कि स्त्रियो के भी प्रेम-सम्बन्धी वे ही अधिकार है जो पुरुषो के है, साथ ही हम यह भी मान रहे है कि वर्तमान समय की तरह एकविवाह को नाममात्र का न रखकर उसे अतिम रूप से वास्तविक वनाना है। इस प्रकार से प्रेमकला की चर्चा एकविवाह के अनुशीलन से अच्छेद्य रूप से वधी हुई है क्योकि इसके विना हमारी वर्तमान धारणाओ के अनुसार कोई भी विवाह सन्तोषजनक नही हो सकता। स्थिति तो यह है कि प्रेमकला मे कमी न होने पर भी विवाह मे वहुत सी कठिनाइया पैदा हो सकती हैं।

अपनी सूक्ष्मतम तथा सुन्दरतम अभिव्यक्तियो मे प्रेमकला पुरुष या स्त्री के अत्यन्त अन्तरग व्यक्तित्व का प्रकाश है। पर इसके निम्नतर सोपानो मे यह यौन स्वास्थ्य-विद्या का ही एक प्रसारित रूप है, और इस दृष्टि से यह उस डाक्टर के दायरे मे आ जाता है जिससे दाम्पत्य-जीवन मे उठने वाली कई कठिनाईपूर्ण स्थितियो पर सलाह देने के लिए कहा जा सकता है। यौन स्वास्थ्य-विद्या के प्रतिपादक अव भी प्रेमकला को अक्सर अवहेलना की दृष्टि से देखते है पर यह रुख चल नही सकता और सच तो यह है कि तेजी से इस रुख का अत हो रहा है। अव यह कहना सम्भव नही है कि प्रेमक्रीडा तथा मैथुन के सारे तरीको के सम्वन्ध मे ज्ञान प्रकृति से ही प्राप्त होता है। जैसा कि पाजे ने वहुत पहले ही वता दिया, यह निश्चित है कि सभ्य लोगो को शिक्षा के द्वारा इसका ज्ञान देना पडता है। यह और वता दिया जाए कि यह वात वहुत वडी हद तक असभ्य जातियो के सम्वन्ध मे भी सही है और कई जातियो मे तो इन मामलो का ज्ञान जीवन मे गम्भीर रूप से प्रवेश करने के लिए वाकायदा दिया जाता है। इसके अलावा अक्सर लोग इस वात को भूल जाते है कि जो जातिया प्राकृतिक अवस्था मे रहती है उनमे अक्सर प्राक्-क्रीडा पर वहुत ध्यान दिया जाता है और मैथुन के वहुत से तरीके प्रचलित होते

है । ये दोनो बाते बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । मैथुन के पहले प्राक्क्रीडा का दीर्घ होना शारीरिक दृष्टि से जरूरी है, जिससे कि यौन उत्तेजन पूर्ण हो। इसी प्रकार से मानसिक दृष्टि से भी यह जरूरी है क्योकि इसके बिना वास्तविक विवाह के लिए आवश्यक प्रेम का आदर्श उपादान विकसित नही हो सकता । प्रेमकला की सफलता के लिए इस बात को भी मानना जरूरी है कि मैथुन के बहुत से तरीके हो सकते है और ये तरीके पापपूर्ण विच्युतिया होने के बजाय विचित्र प्रकारो के स्वस्थ मानवीय दायरे मे आते है क्योकि अक्सर ऐसा देखा जाता है कि जब एक तरीके से पूर्ण तृप्ति नही होती तब दूसरा तरीका अधिक सफल होता है । कई बार सालो के प्रयोग के बाद वे स्थितिया तथा तरीके प्राप्त होते है जिनसे स्त्री के लिए मैथुन सुखकर या कम से कम सहनीय हो जाए । स्त्रियो मे पाई जाने वाली उदासीनता के अधिकतर मामलो मे, प्राक्क्रीडा पर उचित ध्यान तथा सही आसन आदि के प्रयोग से अधिकाश गडबडी लुप्त हो जाती है ।

अब हम यह समझने लगे है कि डाक्टर उन बातो की अवज्ञा नही कर सकता । स्त्री की पूर्ण यौन परितृप्ति प्रजनन का एक अग है क्योकि यह समझना गलत है कि इस कार्य मे उसका भाग सम्पूर्ण रूप से निष्क्रिय है । पहले की पुश्त के एक प्रसिद्ध स्त्री-रोग-विशेषज्ञ मैथ्यूस डकन ने गर्भाधान को निश्चित बनाने के लिए स्त्री की यौन परितृप्ति को आवश्यक बताया और किश तथा अन्य अधिकारी विद्वानो ने बाद को चलकर इस मत का अनुमोदन किया । जब हम यह देखते है कि हजारो बच्चे मा की पूर्ण यौन परितृप्ति के सुख के बिना ही ससार मे आए है तो इस सिद्धान्त पर कुछ सन्देह होने लगता है, पर किश ने यह मालूम किया कि बाझपन अक्सर उन स्त्रियो मे होता है जो मैथुन मे सुख प्राप्त नही करती । उन्होने बाझपन के ३८% मामलो मे स्त्री का सुख न मिलना पाया, पर उन्होने यह नही बताया कि यह औसत रूप मे किस हद तक मौजूद है ।

जिस प्राथमिक तथ्य पर इस प्रसग मे बार-बार ध्यान आकर्षित किया गया है वह यह है कि हर बार मैथुन करने के पहले प्राक्क्रीडा एक प्राकृतिक बल्कि अनिवार्य मगलाचरण सा है । साधारण रूप से इस मामले मे पुरुष को ही उस समय आगे बढकर क्रियाशील होना पडता है जब वह समझता है कि सही मुहूर्त आ चुका है । बात यह है कि यह आशा नही की जा सकती कि स्त्री पुरुष को इसकी सूचना दे । यहा यह बता दिया जाए कि यदि स्त्री अधिक क्रियाशील भाग ग्रहण करे तो यह कोई अस्वाभाविक बात नही है और सच तो यह है कि स्त्री एकदम निष्क्रिय रहे तो चाहे जितनी ऊची प्रेमकला हो, वह काम नही दे सकती । यदि विशुद्ध शारीरिक दृष्टि से देखा जाए तो जिस समय प्राक्क्रीडा के फलस्वरूप स्त्री की जननेन्द्रिय

सुखानुभूति के कारण ग्रन्थिगत क्षरण से आर्द्र हो जाए, उसी समय मैथुन सुखकर होता है। ऐसा न होने पर मैथुन आसान नही होता, इसलिए क्षरित द्रव के स्थान पर कई कृत्रिम चीजे इस्तेमाल की जाती है। अव्वल तो इसकी जरूरत नही होनी चाहिए, पर यदि हो तो उनका इस्तेमाल होना चाहिए।

सभ्यता मे अक्सर इन वातो पर कम ध्यान दिया जाता है, पर कम 'आगे वढी हुई' जातियो मे यह वात अच्छी तरह समझी जाती है। इस प्रकार ब्रिटिश न्यूगिनी के मेलानेशिया मे साथी या साथिन चुनने मे वडी स्वतन्त्रता रहती है वशर्ते कि प्रचलित टोटेम (पशु-पक्षी-प्रतीक) और रक्तजनित सम्वन्धो का ख्याल रखा जाए। वहां कई महीनो तक अन्तरगता रहने के वाद ही शादी का प्रश्न उठता है। कई क्षेत्रो मे एक रिवाज यह है कि लडका रात भर लडकी के साथ आलिगनवद्ध होकर उसके शरीर के ऊपरी हिस्से का लाड करते हुए सो सकता है। फिर भी वहुत कम क्षेत्रो मे यौन सम्वन्ध होता है, और यदि होता है तो शादी हो जाती है। कहना न होगा कि इस पद्धति मे कामकला के प्राथमिक सिद्धान्त अन्तर्निहित है।

मैथुन के पहले प्राक्क्रीडा मे यह प्राकृतिक भी है और वाञ्छनीय भी कि भगाकुर को छुआ जाए, दवाया जाए तथा उसको सहलाया जाए क्योकि स्त्रियो मे पहले से ही यह अग यौन अनुभूति का मुख्य केन्द्रस्थल होता है। कई वार मनोविश्लेषक यह कहते है कि किशोरी के लिए यह वात सत्य है और यौवनोद्गम के साथ यौन अनुभूति साधारण अवस्था मे भगाकुर से योनिगह्वर मे स्थानान्तरित हो जाती है। पता नही, इस धारणा की उत्पत्ति कहा से हुई। ऐसा मालूम होता है कि अध्ययनकक्ष मे इस लालवुझक्कडी का उद्भव हुआ। कुछ भी हो, स्त्रियो के सम्वन्ध मे जरा भी वास्तविक ज्ञान से यह अज्ञान दूर हो सकता था। भगाकुर यौन अनुभूति का स्वाभाविक केन्द्रस्थल है और वह इसी रूप मे यदि एकमात्र केन्द्रस्थल नही तो मुख्य केन्द्रस्थल के रूप मे कायम रहता है। मैथुन के आरम्भ के साथ-साथ योनिगह्वर का सुखकेन्द्र के रूप मे परिणत होना स्वाभाविक है पर इस सम्वन्ध मे स्थानान्तरण की वात करना गलत है। डिकिन्सन की तरह प्रामाणिक स्त्रीरोगविशेषज्ञ का यह वहुत सही कथन है कि अधिकाश स्त्रियो को भगाकुर के क्षेत्र मे दवाव पडने से ही पूर्ण परितृप्ति होती है और यह विलकुल स्वाभाविक है।

मैथुन मे आसन के सम्वन्ध मे यह समझा जाता है कि इसका एक ही आसन है, जिसमे स्त्री चित लेटी होती है और वाकी सब आसन पापपूर्ण नही तो अप्राकृतिक जरूर है। पर यह गलत है। मानवीय इतिहास के एक खास अध्याय मे या किसी एक जाति मे यदि कोई रिवाज हो तो उसे दूसरे युगो तथा दूसरी जातियो के लिए नियम नही मान लेना चाहिए। मैथुन के उपलब्ध चित्रो में जो सब से पुराना

चित्र है वह पुराप्रस्तर-सोलुट्रियन युग का है, और डोरडोनी मे पाया गया है। उसमे पुरुष चित लेटा हुआ और स्त्री बैठी हुई दिखाई गई है। वर्तमान युग मे विभिन्न जातियो मे तरह-तरह के आसन प्रचलित है। वान् डे वेल्डे का कहना है कि यूरोपियो मे पतिगण इस बात को बिलकुल नही समझते कि दाम्पत्य-शय्या की एकरसता विभिन्न प्रकार के आसनों से दूर की जा सकती है, और यदि वे इसे समझ भी जाएं तो वे तैश मे आकर इसे कामुकतापूर्ण करार देकर दूर कर देते हैं। इस सम्बन्ध मे और भी गम्भीर बाते हैं। प्रश्न केवल आसन बदलकर नयापन लाने का नही है, बल्कि कई क्षेत्रो मे तो मामला बहुत ही दूसरे ढग का होता है। कुछ स्त्रियो के लिए कई बार प्रचलित आसन कठिन और असहनीय हो जाते हैं, जबकि दूसरे और शायद अप्रचलित आसन आसान और सुखकर हो सकते हैं।

यदि यौन सम्बन्धो को विस्तृत अर्थ मे पर शारीरिक दायरे के अन्दर ही लिया जाए तो यह हमेशा याद रखना चाहिए जिससे कि दोनो पक्षो को आनन्द तथा तृप्ति मिले। वह अच्छा और सही है और सब से अच्छे अर्थ मे भी स्वाभाविक है बगर्ते कि (जैसा कि सहीदिमाग और स्वस्थ लोगो मे नही होगा) किसीको कोई नुकसान न पहुचाया जाए। लिग-चुम्बन तथा योनि-चुम्बन इस प्रकार के सम्पर्कों मे गिनाए जा सकते हैं। इसके लिए अक्सर स्वत स्फूर्त रूप से ऐसे लोगो मे भी आवेग उत्पन्न होता है जिन्होने इनके सम्बन्ध मे कभी सुना नही है। कमजोर स्नायु वाले तथा विवेकयुक्त व्यक्ति अक्सर ऐसा पूछा करते है कि यौन परितृप्ति का यह और वह तरीका गलत और हानिकर है या नही ? कई बार जब लोग स्वत.-स्फूर्त रूप से ऊपर बताई गई बातो को अपनाते है तो उन्हे एक धक्का-सा लगता है और ऐसा मालूम होता है कि उन्होने कुछ असुन्दर बात कर दी। ऐसे लोग यह भूल जाते है कि मैथुन के जो स्वीकृत तरीके हैं वे भी मुश्किल से ही सुन्दर कहे जा सकते हैं। लोग यह नही समझते कि प्रेम का एक ऐसा क्षेत्र है जिसमे विज्ञान या सौन्दर्य-शास्त्र के निर्जीव तथा बाल की खाल निकालने वाले दृष्टिकोण अप्रासगिक है, जब तक कि उनका सम्पर्क और भी विशिष्ट रूप से मानवीय भावो के साथ हो। इस मामले मे जो लोग महज स्वरूप पर जान देते हैं उनका उद्देश्य अच्छा होने पर भी वे अज्ञ होते है, इस कारण वे गडबडा जाते हैं, उन्हे हम शेक्सपियर के उस ज्ञान-गर्भ वाक्य की याद दिला देना चाहते है—"प्रेम अधिकतर ज्ञान के साथ वार्ता करता है और ज्ञान प्रियतम प्रेम के साथ।"

हैमिल्टन ने जिन १०० विवाहित स्त्रियो पर शोध किया वे बिलकुल स्वस्थ और सहीदिमाग होने के साथ ही अच्छी सामाजिक हैसियत वाली थी। उन्हे यह मालूम हुआ कि उनमे से १२ को लिग-चुम्बन, योनि-चुम्बन या दोनो का तजरबा

रहा है। पर किसी भी क्षेत्र मे कोई वुरा नतीजा नही देखा गया। हैमिल्टन ने इस-पर बुद्धिसगत रूप से यह उपसहार निकाला है कि प्रेमक्रीडा मे कोई भी बात मनोवैज्ञानिक रूप से निषिद्ध नही है, बशर्ते कि कुछ बाते न हो, जिनमे से सब से महत्त्वपूर्ण वात यह है कि शारीरिक ढाचे को कोई नुकसान न हो और कोई गम्भीर अपराध करने की प्रतिक्रिया वाद को दोनो मे से किसीके मन मे न आए। यह बात महत्त्वपूर्ण है। हैमिल्टन ने यह लिखा है कि उन्हे कुछ सरल व्यक्तियो की वात मालूम है जो इस प्रकार की 'विच्युतियो' का मजा लेते रहे क्योकि उन्हे मालूम नही था कि दूसरे लोगो को यह वात कितनी भयकर और आपत्तिजनक मालूम होती है। जब मालूम हुआ तो उन्हे एकाएक यह विश्वास हो गया कि वे वहुत घृणित और गर्हित कार्य करते रहे है, इसलिए उनमे गम्भीर मानसिक गडबडी का सूत्रपात हुआ। उससे यह अच्छी तरह पता चलता है कि इन मामलो मे स्वस्थ विचार प्रचारित करने की कितनी जरूरत है। डिकिन्सन की तरह बुद्धिमान् तथा तजरबेकार स्त्री-रोग-विशेषज्ञ का यह कहना है कि स्त्री को यह आश्वासन देना चाहिए कि कामवासना के पूरे दायरे मे कोई भी वात ऐसी नही है जो आध्यात्मिक प्रेम के उच्चतम आदर्शों के साथ असामञ्जस्यपूर्ण हो, और व्यवहार की पूर्ण पारस्परिक अन्तरगता पति और पत्नी मे सही है।

इस सरल उपक्रमणिका मे हमसे यह आशा नही की जा सकती कि हम प्रेम-कला पर व्योरेवार विचार करे, पर इतना तो वता ही देना चाहिए कि यह कला केवल प्रेम के शारीरिक पहलुओ तक सीमित नही है। यह एक कला है और उस हालत मे भी कठिन है जिस हालत मे कि दैहिक प्रेम का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है या यह पृष्ठभूमि मे चला गया है या जब दैहिक सम्बन्ध होते ही नही हैं। आदर्शो के सम्बन्धो मे मौलिक एकता स्थापित होने पर भी वैयक्तिक स्वतत्रता को मानकर चलना पडेगा, साथ ही यह समझना पडेगा कि रुचि तथा प्रवृतियो की भिन्नता है। हर समय परस्पर का ध्यान रखना पडेगा। यह मान लेना पडेगा कि दूसरे मे जो दोप तथा कमजोरिया है वे अपने मे भी है। कभी न कभी ईर्ष्याजनक वाते किसी न किसी रूप मे सामने आएगी, ऐसी हालत मे उसपर विजय प्राप्त करनी पडेगी, यद्यपि ईर्ष्या प्रकृति मे अन्तर्निहित सी है। यौन प्रवृत्ति के सकीर्ण दायरे के वाहर इस प्रकार की न जाने कितनी ही कठिनाइया है। इन कठिनाइयो मे सन्तुलित व्यवहार करना, चाहे वे कठिनाइया कितनी वडी हो, कामकला का एक अग है। यदि इनमे से किसी भी क्षेत्र मे अकृतकार्यता हुई तो वह दुख का कारण हो सकती है और सम्भव है कि उससे जीवन की सारी कला मे ही कमजोरी आ जाए।

दाम्पत्य जीवन का अर्थ क्या है, इसे उसकी समग्रता मे समझने के लिए हमे

दाम्पत्य-सम्बन्ध के विषय मे एक विस्तृत दृष्टिकोण अपनाकर ही चलना है, यह तो साफ ही है। सारी बातो मे सन्तोष और तृप्ति वैयक्तिक कल्याण के लिए अनिवार्य है। ऐसा होने पर दोनो रोग से बचे रहते है। इसके अलावा इसका सामाजिक महत्त्व भी कम नही है क्योकि सन्तुलित व्यवहार यह सूचित करता है कि दोनो के इस बन्धन के चिरस्थायी होने की सभावना है।

१६०८ मे फ्रायड ने यह कहा था कि चिकित्सक का काम यह नही है कि वह सुधार के प्रस्ताव लेकर सामने आए। अब यह धारणा बहुत पुरानी समझी जाती है, जैसा कि स्वय फ्रायड ने बाद को चलकर समझ लिया, ऐसा जान पडता है क्योकि तब से उन्होने जीवन के वृहत्तर प्रश्नो पर चिन्तन किया है। आज हम इस बात को खुले तौर पर कह सकते है (यद्यपि यह एक तरह से चिकित्सा की आदिम धारणा को उलट देना होगा) कि अब चिकित्सको का काम यह नही है कि वे बुराइयो को सुरक्षित रखे ताकि वे उसमे टीमटाम कर सके। आरोग्य-शास्त्र के प्रत्येक विभाग मे और अब अन्त मे चलकर उनमे से सब से अन्तरग विभाग मे हमारा यह कार्य है कि जीवन को इस प्रकार सतुलित करे कि यदि सम्भव हो तो ये बुराइया पैदा ही न हो। जिस क्षेत्र पर हम विचार कर रहे है, उस क्षेत्र का यह तकाजा है कि चिकित्सक विस्तृततर ज्ञान प्राप्त करे और कुशाग्र बुद्धि से काम ले।

सहायक पुस्तक-सूची

जूल्स गेयट—A Ritual for Married Lovers (Part translation of Breviaire de l' Amour Experimental by Gertrude M. Pinchot)

हैवलाक एलिस—'The Art of Love', Studies in the Psychology of Sex, Vol VI, also Vol III

हेलेना राइट—The Sex Factor in Marriage

वान् डे वेल्डे—Ideal Marriage

ऐक्सनर—The Sexual Side of Marriage.

डब्ल्यू० एफ० रोबी—The Art of Love

आर० एल० डिकिन्सन—Premarital Examination as Routine Preventive Gynecology.

डगलस ब्रायन—'Bisexuality', International Journal of Psycho-Analysis, April, 1930

किश—Sexual Life of Woman.

सी० जी० सेलीमन—The Melanesians of British New Guinea.

उपसंहार

यौन आवेग की गतिशील प्रकृति

सभ्य सामाजिक जीवन की साधारण अवस्थाओ मे तीन ऐसी धाराए है जिनके जरिए यौन शक्ति परिचालित की जा सकती है (१) हम सारी ऊपरी अभिव्यक्तियो से बचकर यौन आवेग की अपनी गतिशील शक्ति को–चाहे जिस मार्ग मे, जिधर भी वह जाए–स्वाभाविक या अस्वाभाविक, बिखरने दे सकते है। (२) हम सामयिक या महज यदा-कदा होने वाले यौन सम्बन्धो से सन्तुष्ट रह सकते है। वेश्यागमन इनमे से एक अतिपरिचित रूप है। (३) हम विवाह कर सकते है यानी हम यौन सम्बन्ध का एक तरीका अपना सकते है जिसका उद्देश्य यह है कि हो सके तो यह सम्बन्ध स्थायी हो और यौन सम्बन्धो से परे दूसरे सम्बन्ध उत्पन्न हो। कोई चाहे किसी धर्म या नैतिक सिद्धान्त का मानने वाला हो या यही क्यो, वह चाहे धर्म या नैतिक सिद्धान्त न माने, फिर भी इसमे सन्देह नही कि बच्चे न होते हुए भी तीसरी स्थिति को अपनाने पर ही जीवन सब से अधिक ऐश्वर्यशाली हो सकता है और उसमे गहराई आ सकती है। इस प्रकार से यह मार्ग सब से अच्छा है, पर साथ ही यह एक कठिन मार्ग है। हम इस पुस्तक के दौरान मे देख चुके है कि जो लोग स्नायविक रोग से पीडित है केवल वे ही नही बल्कि स्वस्थ व्यक्तियो के लिए भी यौन कार्यकलाप खतरे से खाली नही है। इसका आशिक कारण यह है कि दूसरे आवेगो के मुकाबले मे यौन आवेग तुलनात्मक रूप से देर मे पूर्ण विकसित होता है, यद्यपि इसका प्रारम्भ बहुत पहले ही होता है, और इसका आशिक कारण यह है कि इस आवेग की प्रकृति बहुत जबरदस्त होती है। एक आशिक कारण यह भी है जो अन्य कारणो से किसी प्रकार कमजोर नही है कि धर्म, नीतिशास्त्र, कानून और परम्परा ने यौन क्षेत्र मे बहुत कडे नियम बना रखे है। इस क्षेत्र मे हर समय बहुत सजग और बुद्धिमत्तापूर्ण ढग मे सफाई तथा आरोग्य के नियमो को बरतना चाहिए। यह इसलिए और भी जरूरी है कि जब इस सम्बन्ध मे कोई

त्रुटि होती है तो ऐसी स्थितिया पैदा हो जाती है जिनको वश मे लाना हर समय डाक्टर की सामर्थ्य से वाहर होता है। हमे यह समझना चाहिए कि यौन आवेग भीतर से उत्पन्न होने वाले शक्तिशाली खमीरो से उत्पन्न होने वाली एक शक्ति है जो ऐसे अनन्त, स्वस्थ और रोगग्रस्त, स्वाभाविक और अस्वाभाविक स्वरूप धारण कर सकती है जो यौन रूप मे विलकुल पहचान मे नही आते। इन्हे हम कुछ हद तक नियन्त्रित या नियमित कर सकते हैं, पर इन्हे दमित करना हमारे वश की वात नही है। अव तक यौन आवेग के सम्वन्ध मे इस प्रकार की क्रान्तिकारी धारणा अस्पष्ट रूप से ही थी। अर्ध शताव्दी पहले ऐनस्टी ने वाद को चलकर न्यूरस्थिनिया नाम से परिचित रोग की व्याख्या करने मे कुछ ऐसी बाते कहीं, जेम्स हिन्टन ने विशेपकर इसके नैतिक पहलुओ को विकसित किया। आत्ममैथुन की धारणा मे यह अन्तर्निहित है, फ्रायड ने अनन्त सूक्ष्म रूपो मे इसपर विवेचन किया है।

मैंने यौन कर्मशक्ति को तगडे खमीरो से उत्पन्न एक शक्ति के रूप मे कहा है। यह अस्पष्ट है। यदि हम इसकी पहले से अधिक स्पष्ट रूप मे व्याख्या करना चाहे तो हम ऐसा कह सकते हैं कि काममय व्यक्तित्व का मस्तिष्क, क्षरण-ग्रन्थियो की पद्धति तथा स्वयचालित स्नायु-यन्त्र के त्रिभुजात्मक मिलन पर निर्भर है। स्वयचालित स्नायु-यन्त्र की वात प्रमुखता के साथ सामने नही आई, पर यहा इसका महत्त्व वता देना जरूरी है। इसमे हजम कराने वाली, रक्त को परिचालित करने वाली, सास वाली, पेशाव वाली पद्धतिया एव क्षरण-ग्रन्थिया तथा उनकी गैंगलि-योनिक स्नायविक पद्धतिया आ जाती हैं। इस प्रकार से यह यन्त्र उस प्रक्रिया को नियन्त्रित करता हे जिसे जीवन की मौलिक क्रिया कहा जा सकता है। केम्फ ने व्यवहार की नियामक शक्ति के रूप मे स्वयचालित पद्धति के महत्त्व पर वहुत जोर दिया है। उनका कहना है कि यह यन्त्र परिस्थितियो के अनुसार ग्रहण करने वाली तथा वचाव करने वाली वृत्तियो को काम मे लाता है। जव आदिम स्वयचालित पद्ध-तियो से युक्त प्राणी तनाव की परिस्थिति मे पड जाते थे तो वे अपनी रक्षा करना चाहते थे, और जव वे अपनी रक्षा कर पाते थे तो उनके ये तनाव वाद को उत्पन्न होने वाले उच्चतर प्राणियो मे सचरित हो गए। इस प्रकार से भीतर-भीतर होने वाली क्रियाओ के कार्य-कारणो तथा मानसिक रूप मे होने वाले कार्य-कारणो को हम एक पक्ति मे रखकर यह समझ सकते है कि किस प्रकार से व्यक्ति एक इकाई के रूप मे काम कर रहा है।

इन वातो को समझ जाने पर हम ज्ञान तथा इच्छाओ की धारणा को और अच्छी तरह समझ जाते है। इसे हम जिजीविषा या लिबिडो कहना पसन्द करेंगे। इसे शोपेनहावेर की भाषा मे इच्छाशक्ति भी कहा जा सकता है, जिसका हवाला यौन

आवेग के दार्शनिक दिया करते हैं । कार्लाइल ने बहुत पहले ही लिखा था—"शायद सब से पहले जिस प्रख्यात देवता की बात सुनाई पडती है, वह है भगवती इच्छा जिसका कि ग्रिम नामक जर्मन वैयाकरणिक ने पता लगाया है।"

फ्रायड ने १९१२ से लेकर बराबर अपनी अननुकरणीय सुन्दर भाषा मे उन विविध परिस्थितियो का वर्णन किया है जिनमे यौन जीवन की कठिनाइयो से स्नायविक गडबडी पैदा हो सकती है। उनकी व्याख्या बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योकि मनोविश्लेषण-सम्बन्धी जो अनेक विवादग्रस्त सिद्धान्त है उनमे स्वतन्त्र रूप से उनकी व्याख्या विद्यमान है। फ्रायड स्वय मानते थे कि जो विशेष मामले डाक्टर के सामने जाच के लिए उपस्थित होते है उनका मामलेवार वर्गीकरण सन्तोपजनक नही कहा जा सकता क्योकि विभिन्न समयो मे एक ही मामला बिलकुल भिन्न परिस्थितियो को प्रतिफलित कर सकता है, बल्कि कुछ हद तक तो एक ही साथ भिन्न स्थितियो को प्रतिफलित करता है। हा, इस वर्गीकरण से एक लाभ होता है, वह यह है कि इन स्थितियो का ज्ञान हो जाता है । इस प्रकार चार टाइप सामने आते हैं। (१) स्नायविक गडबडी का सब से सरल और बहुतायत से पाया जाने वाला कारण यह है कि प्रेम मे प्रत्याख्यान का सामना हुआ हो । सब लोग एक न एक हद तक इसके शिकार होते हैं। पात्र तब तक बिलकुल स्वस्थ होता है जब तक कि बाहरी जगत् के एक वास्तविक पात्र (या पात्री) मे उसकी प्रेमेच्छा परितृप्ति होती है। वह तभी स्नायविक रोगी हो जाता है जबकि वह बिना उपयुक्त क्षतिपूर्ति के इस पात्र से वचित किया जाता है। ऐसी हालत मे यौन आवश्यकताओ की अपरितृप्ति के बावजूद स्वास्थ्य कायम रखने की दो सम्भावनाए हैं, या तो मानसिक तनाव व्यावहारिक जगत् मे कार्य करने की ओर परिचालित हो और अन्ततोगत्वा वास्तविक कामपरितृप्ति हो, या यदि इस प्रकार के सन्तोष का त्याग कर दिया जाए तो निरुद्ध वासनाओ का ऐसी कर्मशक्ति मे उदात्तीकरण हो जो कामेतर लक्ष्य की ओर परिचालित हो। इस प्रक्रिया मे एक सम्भावना यह है, जिसे सी० जी० युड अन्तर्मुखिता कहते हैं, यानी निरुद्ध यौन आवेग उदात्तीकृत होने के बजाय वास्तविक परितृप्ति की धाराओ से हटकर काल्पनिक धाराओ मे प्रवाहित हो, जहा वह स्वप्नेच्छाओ के सृजन मे व्यस्त हो जाए । (२) दूसरे टाइप के व्यक्ति बाहरी जगत् के किसी ऐसे परिवर्तन के कारण नही, जिसके कारण परितृप्ति का मार्ग छोडकर त्याग का मार्ग अपनाना पडे, बल्कि बाहरी जगत् मे तृप्ति-प्राप्ति करने के अपने भीतरी प्रयासो से ही रोगग्रस्त हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति उन आन्तरिक कठिनाइयो को जिन्हे कि वह वास्तविक जगत् के साथ अपने को सतुलित करने मे अनुभव करता है तथा यौन परितृप्ति, जिसके लिए वह अभी तक अयोग्य

है, प्राप्त करने के स्वाभाविक तरीके को पा जाने के प्रयास मे अव्यवस्थित हो जाता है। (३) तीसरा टाइप उन लोगो का है जिनमे विकास के निरोध के कारण तरह-तरह की गडवडिया उत्पन्न होती हैं। सच पूछा जाए तो यह टाइप दूसरे टाइप का ही उग्र रूप है और उसपर अलग विवेचन करने का कोई सैद्धान्तिक कारण नही है। उसकी यौन तृप्ति ऐसे वचकाना उद्देश्यो से बधी होती है जो अब उसके विकास के सोपान से तालमेल नही खाते और इस प्रकार से उन पुराने पडे हुए वचकाने आवेगो पर रोकथाम करने के प्रयास मे एक सघर्ष की उत्पत्ति होती है। बात यह है कि ये वचकाने आवेग अब भी सिर उठाकर तृप्ति का मार्ग खोजते रहते हैं। (४) चौथे वर्ग मे वे व्यक्ति आते हैं जो पहले स्वस्थ थे, पर बाद को चलकर (यद्यपि इस बीच मे बाहरी जगत् के साथ उनके सम्बन्ध मे कोई परिवर्तन नही आया है) रोगग्रस्त हो जाते हैं। और भी ध्यान से जाच करने पर यह मालूम होता है कि ऐसे क्षेत्रो मे जीववैज्ञानिक कारणो से, जैसे यौवनोद्गम या रजोनिवृत्ति के फलस्वरूप यौन वासना की मात्रा मे कुछ परिवर्तन हुआ है। केवल इतने ही से स्वास्थ्य का सन्तुलन बिगड जाता है और स्नायविक रोग उत्पन्न हो जाता है। बाहरी कारणो से यौन आवेग को निरुद्ध करने से रोग की हालत पैदा हो जाती है। ऐसे क्षेत्र मे यौन वासना की मात्रा मापनीय तो नही है, गडवडी इस कारण होती है कि तुलनात्मक रूप से परिवर्तन हुआ है और तुलनात्मक रूप से परिवर्तित इस मात्रा के सघर्ष मे व्यक्ति भारग्रस्त हो जाता है।

यद्यपि इस प्रकार के सूक्ष्म विश्लेषणात्मक वर्गीकरण को चिकित्सा-शास्त्र की दृष्टि से वस्तुगत रूप से सही नही कहा जा सकता, फिर भी उसमे सुविधाजनक रूप से वे भिन्न-भिन्न स्थितिया आ जाती हैं जिनपर हम विचार करते रहे हैं। इससे वे दिशाए मालूम हो जाती हैं जिनपर स्नायविक तथा मानसिक क्षेत्र की विभिन्न यौन गडवडियो का इलाज हो सके और इससे भी अधिक यौन जीवन के आरोग्य-शास्त्र का पता लगता है।

व्यक्ति का गठन चाहे कितना स्वस्थ हो, यौन जीवन की अनिवार्य कठिनाइया तथा परिस्थितियो मे होने वाले बाहरी और भीतरी परिवर्तनो के प्रति निरन्तर होने वाले सतुलनो के कारण उस प्रकार की कठिनाइया हो जाती हैं जिनपर हम विचार कर चुके हैं। यदि उत्तराधिकारसूत्र से कुछ रोगग्रस्त प्रवृत्ति प्राप्त हुई हो तो कठिनाइया और भी वढ जाती हैं। यौन आवेग एक शक्ति है और कुछ हद तक एक अपरिमेय शक्ति है और इस शक्ति को परिचालित करने के सम्बन्ध मे मनुष्य का सघर्ष—जब कि मनुष्य और यह शक्ति बराबर परिवर्तित हो रही है, साथ ही जिन परिस्थितियो मे वे क्रियाशील रहती हैं वे भी परिवर्तित हो रही हैं—सतत

से पूर्ण है। यहा तक कि जब आवेग स्वाभाविक है और हर हालत मे स्वाभाविक रहना चाहता है तब भी ये खतरे सामने आते है।

उस हालत मे परिस्थिति जटिल हो जाती है जब कि आवेग अस्वाभाविक होता है। अस्वाभाविक से यहा मतलब यह है कि मात्रा अत्यधिक हो या आवेग अनुचित मार्गो मे प्रवाहित हो। जब यह निश्चित रूप से अस्वाभाविक और कभी-कभी रुग्ण हो सकने वाला स्वरूप प्राप्त कर लेता है तो आफत आती है। आवेग भी उसी हद तक हो सकता है जिस हद तक कि यौन आवेग का ऐसा होना सम्भव है।

यह अब तक अच्छी तरह स्पष्ट हो गया होगा कि हम सेक्स शब्द या जिसे फ्रायड लिबिडो या जिजीविषा कहते है उसकी सही परिभाषा किए बगैर ही चल रहे है, फिर भी यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि ज्यो-ज्यो हम इस शब्द का परीक्षण करते है त्यो-त्यो यह विस्तृत होता जाता है। स्वय फ्रायड बराबर जिजीविषा की विस्तृततर धारणा का प्रतिपादन करते रहे। उनके कुछ भूतपूर्व शिष्य और मनोविश्लेषक सेक्स के आवेग के दायरे को इतना घटा देते है कि उसमे साधारण रूप से समझी जाने वाली धारणा का बिलकुल निराकरण हो जाता है। इसी प्रकार से एफ०एल० वेल्स कामात्मक के स्थान पर हेडोनिक यानी सुखात्मक (हेडोन शब्द का अर्थ ग्रीक भाषा मे 'सुख' है) और आत्मकामात्मक या आत्ममैथुनिक शब्द की जगह आत्मसुखात्मक शब्द की सिफारिश करते है। सिरिल बर्ट के अनुसार जिजीविषा का यह विस्तार मनोविज्ञान की साधारण प्रवृत्ति के मुताबिक है। अब मनोविज्ञान मे उन अन्तर्निहित प्रवृत्तियो का जिन्हे हम अपने इतर प्राणी पूर्वपुरुषो से उत्तराधिकारसूत्र मे प्राप्त करते है, एक ही जीवन-आवेग के महज विशिष्ट रूप समझे जाते है। मैक्डूगल ने सहजातो-सम्बन्धी अपने सीमित विचार को अब विस्तृत कर दिया है, अब वे उन्हे सब जीवित प्राणियो को सजीवित करने वाले महदुद्देश्य के अग के रूप मे एकीभूत करने के लिए लगभग तैयार है। उनके अनुसार इस महान् उद्देश्य के लक्ष्य की हम बहुत अस्पष्ट रूप से धारणा और वर्णन इस रूप मे कर सकते है कि जीवन को चिरस्थायी बनाना और उसकी वृद्धि करना है।

इस सम्बन्ध मे यह जानना दिलचस्प है कि युड ने पहले के फ्रायडीय बिलकुल यौन अर्थयुक्त जिजीविषा के अर्थ का जो विस्तार किया और जिसके कारण उसकी बडी आलोचना हुई, वह वास्तव मे आवेग या वासना के मौलिक प्राचीन अर्थ मे प्रत्यावर्तन मात्र था। इस प्रकार से यह शोपेनहावेर की इच्छा या बर्गसो के 'एला-वीताल' या जीवनवृत्ति के साथ एक पक्ति मे है। बर्ट ने इस प्रकार से इसकी व्याख्या यो की है कि सब सहजातो मे आने वाली सामान्य सज्ञानात्मक शक्ति है। यदि हम सहजात शब्द का प्रयोग करे तो यह बता दिया जाए कि सहजात को

भाव के मुकाबले मे अधिक आदिम तथा मौलिक मानना ही उचित होगा, न कि जैसा कई बार किया जाता है, भावात्मक गुणो को सहजात के केन्द्रीय भाग के रूप मे समझा जाए। गार्नेट के साथ हम शायद ऐसा कर सकते है कि जहा सहजातो का सामना है, वहा हम अपने को भावात्मक पद्धतियो के सामने न समझकर सज्ञानात्मक पद्धतियो के सामने समझे। यह सयुक्त आवेग मौलिक सज्ञान सम्बन्धी है।

१९१८ मे फ्रायड ने यह सुझाव रखा था कि जीवन मे जो सहजात्मक घटक है वह मन के उस तलदेश-स्थित भाग का उत्पत्ति-केन्द्र बन सकता है जिसे वे अवचेतन के रूप मे इतना प्रभावशाली मानते है। यह एक आदिम तरह की मानसिक क्रिया होगी, जिसपर मानवीय बुद्धि की परत चढी हुई है, जो इतर प्राणियो मे प्राप्त होने वाले सहजात्मक ज्ञान से मिलती-जुलती है। फ्रायड के अनुसार अवदमन का अर्थ इस सहजात्मक सोपान मे प्रत्यावर्तन है और मनुष्य को अपनी नई प्राप्तियो का दाम स्नायविक रोग की कर्जदारी के खाते मे नाम लिखाकर चुकाना पडता है।

इस प्रकार से हम अभिव्यक्ति और अवदमन के उस छन्दयुक्त सन्तुलन मे पहुचते है जो हमारे सभ्य जीवन का इतना प्रमुख भाग है और सभ्य जीवन ही क्यो, मनुष्येतर प्राणी मे भी यह देखा जा सकता है। जैसा कि मैंने पहले ही बता दिया, अपने विशेष तजरबो के अनुसार मनोरोगविश्लेषकगण अक्सर इसमे स्नायविक गडबडी की सम्भावना को ही मुख्य रूप से देखते है।

यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि स्वस्थता के दायरे मे और स्वस्थ शरीर मे अभिव्यक्ति और अवदमन की क्रीडा हितकर और अहानिकर होती है, बल्कि यह धूप-छाह जीवन के विकसित स्वरूप के लिए आवश्यक है, ऐसा समझना गलत है बल्कि सत्य का अपलाप है कि अवचेतन हमेशा या यहा तक कि अक्सर सचेतन जीवन के साथ सघर्ष करता है। निस्सदेह वह व्यक्ति बहुत अभागा है जिसका अवचेतन हर समय उसके सचेतन जीवन से तालमेल नही खाता। थोडा सोचने पर यह मालूम होगा कि उसमे से अधिकाश के लिए स्थिति इस प्रकार नही होती। इस सम्बन्ध मे हम स्वप्नो का हवाला दे सकते है जिसमे अवचेतन की सब से परिचित अभिव्यक्ति होती है। अधिकाश स्वस्थ व्यक्ति यह मानेगे कि हमारे सचेतन जागरित जीवन के भावो तथा तथ्यो को ही स्वप्न मे उच्चतर सौन्दर्य तथा कोमलता के साथ प्रतिफलित देखा जाता है। पर स्वप्नो मे कई बार छिपे हुए असामञ्जस्यो की भी अभिव्यक्ति होती है। इसके साथ ही उनमे हमे अपने सचेतन और अवचेतन जीवन मे मौजूद और अकल्पित सामञ्जस्यो का सब से अच्छा प्रमाण मिलता है, हममे यह प्रवृत्ति होती है कि हम अक्सर स्वप्नो के सतही पहलुओ को देखते है और उनके गुप्त और अधिक अर्थपूर्ण अन्तर्गत वस्तु से वचित रह जाते है।

वाली परम्परागत सलाहे इन आधारो पर ही अधिकाश रूप मे निशाने पर न वैठने वाली, यहा तक कि हानिकारक सिद्ध होती है। उदाहरण के लिए यौन रूप से विकृतमस्तिष्क लोगो को विवाह के लिए जो सलाह दी जाती है, उसपर यह वात लागू होती है। निश्चित रूप से कई क्षेत्रो मे यह सलाह वहुत उपयुक्त होती है। पर सम्पूर्ण रूप से जानकारी प्राप्त किए विना और व्यक्ति की ठीक-ठीक स्थिति जाने वगैर सलाह देना खतरे से खाली नही है। सच तो यह है कि यह चेतावनी मनोयौन क्षेत्र मे दी जाने वाली सभी सलाहो पर खरी उतरती है। यौन जीवन सम्पूर्ण व्यक्ति मे परिव्याप्त होता है, और मनुष्य की यौन वनावट उसकी सामान्य वनावट का एक अग है। इस उक्ति मे वहुत कुछ सचाई है कि मनुष्य वही है जो उसका सेक्स है। जव तक इस वात को ध्यान मे न रखा जाए, यौन जीवन के पथ-प्रदर्शन और नियत्रण के वारे मे कोई भी उपयोगी सलाह नही दी जा सकती। सच तो यह है कि कोई भी मनुष्य अपनी यौन प्रकृति को समझने मे गलती कर सकता है। सम्भव है कि वात केवल इतनी हो कि वह केवल प्रत्येक युवसुलभ[1] एक सामयिक सोपान से गुजर रहा हो, जिससे होकर वह अन्तत स्वस्थ और स्थायी परिस्थिति मे पहुचेगा। वह किसी वेजा प्रतिक्रिया के कारण अपने स्वभाव की किसी गौण मनोवृत्ति को प्रमुख मनोवृत्ति के रूप मे समझने की गलती कर सकता है, क्योकि हम सव विविध मनोवृत्तियो से वने है, और यौन रूप से स्वस्थ मनुष्य वह है जो अक्सर किन्ही असामान्य अथवा विकृत मनोवृत्तियो पर नियत्रण रखता है। तथापि मुख्य रूप से किसी मनुष्य की यौन वनावट व्यापक गहराई तक गई हुई और एक वडी हद तक सामजस्ययुक्त होती है। साथ ही हमे वनावट-सम्वन्धी अर्थात् व्यक्ति को जो वात जन्म से ही मिली है, और जो उसकी वनावट का अग है और अर्जित यानी जिसे व्यक्ति वातावरण के प्रभाव से ग्रहण करता है, के वीच व्यवधान निर्धारित करते समय सतर्क रहना चाहिए। हमे यह मानना ही पडेगा कि एक ओर तो अर्जित की जडे उससे अधिक गहरी है जितनी गहरी कभी समझी जाती थी, और दूसरी ओर गठनात्मक अर्थात् वनावट-सम्वन्धी तत्त्व इतना सूक्ष्म और अस्पष्ट होता है कि वह पकड मे नही आता। लोग अक्सर भूल जाते है कि अधिकाश रूप मे दोनो प्रकार के तत्त्व सम्मिलित रहते है। अनुकूल जमीन पाकर ही जीवाणु सक्रिय होते है। दूसरे क्षेत्रो के समान यहा भी अकेले वीज या अकेली जमीन के कारण नही, वल्कि दोनो के सयोग से ही परिणाम निकलता है। यहा

---

१ 'युवसुलभ' में युवकसुलभ और युवतीसुलभ दोनों अभिप्रेत हैं। आगे इस पुस्तक में 'युव' शब्द का इसी रूप में प्रयोग किया जायगा—अनुवादक

तक कि एक ही परिवार के बच्चो मे भी मेडेल द्वारा प्रतिपादित उत्तराधिकार-सिद्धान्त अलग-अलग प्रकार के बीजों को सक्रिय बना देते हैं। लदन के बाल-निर्देशन क्लीनिक के सचालक ने हाल मे बतलाया है कि किस प्रकार एक ही बात पर जोर देने से एक बच्चा चोर और दूसरा असामान्य रूप मे झेपू हो जाता है।

इस ज्ञान का नतीजा यह होता है कि डाक्टर सोच-समझकर भी मनोयौन विषयो पर जो सलाह देता है, उसकी सीमाए मालूम हो जाती है, यहा तक कि वह जो निर्देश देता है, उसकी भी सीमाए बध जाती है। सिर्फ पोषक वृत्ति से ही यौन मनोवृत्ति की तुलना की जा सकती है, पर पोषक वृत्ति की अपेक्षा यौन मनोवृत्ति पर उपचार का स्वास्थ्यदायक प्रभाव बहुत कम क्यो होता है, इसका एक और भी कारण है । निश्चित रूप से यौन मनोवृत्ति अपनी सीमाओ के भीतर, जितना लोग मानने को तैयार है उससे कही बडी हद तक यदि चाहा जाय तो निर्देशित और नियत्रित की जा सकती है । पर यौन मनोवृत्ति पोषक वृत्ति की अपेक्षा बहुत बडे अश मे धर्म, नैतिकता और सामाजिक रूढियो अथवा प्रथाओ के परम्परागत प्रभावो के कारण कुछ दिशाओ मे ही फैल पाती है, कुछ रास्ते तो उसके लिए बिल्कुल ही बन्द रहते है। कुछ डाक्टर ऐसे भी है जिनका कथन है कि इन प्रभावो की उपेक्षा करनी चाहिए। उनका तर्क है कि सामाजिक प्रथाओ अथवा नैतिकता से डाक्टर का कोई सरोकार नही है। उसे तो मान्यताओ अथवा नैतिकता के उपदेशो की परवाह किए बगैर ही यह देखना है कि उसके मरीज के लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा, और उसीके अनुसार मरीज को सलाह देनी है। जो भी हो, इस कार्य-प्रणाली मे दूरदर्शिता का अभाव है। इससे अनेक भद्दी स्थितिया और गडबडिया पैदा हो जाती है। कई बार उत्पन्न गडबडिया उस बुराई से कही अधिक बुरी होती है जिसका वह इलाज करना चाहता था। बात यह है कि पोषक वृत्ति से यौन मनोवृत्ति इस अर्थ मे भिन्न है कि उसकी स्वाभाविक तृप्ति के लिए एक अन्य व्यक्ति को भी सम्मिलित होना पडता है । इसलिए वह प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक और नैतिक दायरे मे आ जाती है। किसीको भी यह अधिकार नही है, और न किसीको यह सलाह ही दी जा सकती है कि वह अपना भला किसी ऐसी कार्य-प्रणाली मे करे जिससे दूसरो का नुकसान हो। यदि सच-मुच कहा जाए तो व्यापक और बुद्धि-सगत आधार पर मरीज़ की भलाई किसी ऐसी कार्य-प्रणाली मे नही हो सकती जिससे उसके निकट सम्पर्क मे रहने या आनेवाले व्यक्तियो को हानि उठानी पडे अथवा उसके विश्वास और विवेको का हनन हो। कोई भी बुद्धिमान् डाक्टर इन विचारो की उपेक्षा नही कर सकता, भले ही वह [illegible] क्यो न [illegible] चुका हो कि उसके द्वारा दी जाने वाली सलाह

केवल रूढियो पर आधारित नही होगी। ये विचार वास्तविक और वहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं और परम्परागत सामाजिक अट्टालिका से ग्रथित हैं, जिसमे हम सव रहते हैं। अनगिनत मामले ऐसे भी है जिनमे इन वातो के कारण डाक्टर के लिए अपनी मनोयौन चिकित्सा-प्रणाली निर्धारित करते समय विशुद्ध रूप से प्राणि-शास्त्र द्वारा वताई हुई दिशाओ का अनुसरण करना असम्भव हो जाता है। अक्सर चिकित्सक को यह अनुभव होता है कि उसके समक्ष प्रस्तुत दशाए व्यापक रूप से किन्ही ऐसे उपकरणो के कारण हुई हैं जिनपर उसे कोई नियत्रण प्राप्त नही है। ठीक इसी तरह का अनुभव उसे तव होता है जव वह उन मरीजो के लिए कुछ नही कर पाता जिनकी वीमारी सीमा से वाहर श्रम करने और अपर्याप्त पुष्टि के कारण है और यह अपर्याप्त पुष्टि भी कैसी कि जो उनकी सामाजिक परिस्थितियो मे अपरिहार्य है।

साथ ही यह वतला देना वाञ्छनीय है कि जहा मरीज की नैतिक स्थिति की उपेक्षा नही की जा सकती, वहा नैतिक स्थिति को सर्वथा दृढ और अपरिवर्तनीय समझना भूल होगी। सदाचार शाश्वत नही, वल्कि निरन्तर परिवर्तनशील है। कई ऐसी वाते जो आज नैतिक समझी जाती हैं और सव परिस्थितियो मे जिन्हे करने की छूट है, वे ही आज से पचास साल पहले अनैतिक समझी जाती थी और तव उन्हे करने की खुले रूप से छूट नही थी। नैतिक स्थिति मे होने वाले परि-वर्तन के अनुसार आज प्रख्यात डाक्टर, अपने पूर्ण उत्तरदायित्व को समझकर, यौन विषयो पर जो सलाह प्रकाशित करते हे, उसे वे आज से कुछ साल पहले निजी तौर पर भी देने का साहस नही कर सकते थे। समाज-कल्याण-कार्यो मे अपने द्वारा किए जाने वाले महान् योगदान के प्रति जागरूक डाक्टर समस्त जनता का चिकित्सा-सम्वन्धी सलाहकार होने की हैसियत से, सदाचार के इस परिवर्तन मे हिस्सा वटाता है। किन्तु उसे सदैव प्रत्येक मरीज की विशेष स्थिति को ध्यान मे रखना चाहिए।

ऊपर की वातो मे यह निष्कर्ष निकालना एक गम्भीर भूल होगी कि यौन मनोरोग दुरारोग्य समझे जाए अथवा यह समझा जाए कि वे एक ऐसे क्षेत्र मे आते हैं जिनके वारे मे डाक्टर को सोचना नही चाहिए। इसके विपरीत यौन मनो-रोग वाले मामले ठीक मानसिक क्षेत्र के होने के कारण, अप्रत्यक्ष रूप से पडने वाले प्रभावो से भी प्रभावित हो सकते हे। इन अप्रत्यक्ष प्रभावों का रोग के शारीरिक पहलुओ पर, जैसे हद से ज्यादा परिश्रम, पुष्टि की अल्पता आदि पर, जो डाक्टर की पहुच के वाहर होते हैं, कोई प्रभाव नही पडता। अनेक अवसरो पर डाक्टर को यह देखकर वडा आश्चर्य होता है कि ऐसे मामलो मे, जिन्हे वह निराशापूर्ण

समझता था, मरीजो को फायदा रहा और उन्होने बडी सचाई के साथ उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। ऐसा सदैव डाक्टर द्वारा दिए गए सुझाव के परिणामस्वरूप नही होता है, वल्कि विपरीत गुणयुक्त और समान रूप से स्वाभाविक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप होता है। फ्रायड ने इसीको प्रारम्भ से ही अपनी मनोविश्लेषण-पद्धति का आधार वनाया था, यानी चेतना के दमित तत्त्वो को सतह पर लाना और दमन द्वारा उत्पन्न तनाव को दूर करना। डाक्टर आत्म-दोष-स्वीकरण की इस प्रक्रिया मे अपनी वुद्धि और सहानुभूति के द्वारा केवल भाग ही नही, सक्रिय भाग लेता रहता है और एक विकृत अवस्था दूर हो जाती है। भले ही इतना यौन स्वास्थ्य वनाने के लिए पर्याप्त न हो, परन्तु आत्म-दोष-स्वीकरण निश्चित रूप से उसे कम हानिकारक वना देता है, साथ ही यह सम्पूर्ण मानसिक जीवन को कुछ अश तक उचित रूप से सन्तुलित कर देता है। आत्म-दोष-स्वीकरण और दोष-क्षालन की यह धार्मिक प्रक्रिया कैथोलिक धर्म मे वहुत कुछ विकसित है।[1] यह पद्धति उसी मनोवैज्ञानिक आधार पर टिकी है और नि सन्देह इससे हितकारी परिणाम निकलते है। यह ध्यान देने योग्य है कि वहुत से व्यक्ति यह सन्देह करते है कि उन्हे अपने डाक्टर से वुद्धिमत्तापूर्ण सहानुभूति नही मिलेगी, इस कारण वे यौन गडवडियों से आत्म-दोष-स्वीकृति के जरिए छुटकारा पाने के लिए अपने पादरी के पास, चाहे वह छोटा-वडा कैसा भी क्यो न हो, जाते हैं, क्योकि पादरी का काम ही यह है कि शरण मे आए हुए को ढाढस वधाए। धार्मिक कार्यों से यहा तक सम्मोहन और इसी प्रकार सुझाव आदि देना मनोरोग-चिकित्सा-प्रणाली का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है, जो सही तौर पर डाक्टरी के ही अन्तर्गत है और विलक्षण तौर से यौन मनोवैज्ञानिक क्षेत्र मे सहायक होता है। यह फ्रायड की ही विशेष गरिमा है कि (चाहे उनका सिद्धान्त स्वय उन्हीके हाथो मे तथा दूसरो के हाथो मे पडकर जो भी रूप ग्रहण कर चुका हो।) उन्होने वहुत पहले ही मनोरोग-चिकित्सा के इस विशेष क्षेत्र को जान लिया और चित्रकला तथा मूर्तिकला से अपनाई गई इस उपमा मे पहचाना कि मनोवैज्ञानिक चिकित्सा केवल रोगी के मन के अन्दर कुछ डालकर ही नही वल्कि कुछ वाहर निकालकर अनावश्यक रोकथाम और दमन को दूरकर अपना कार्य कर सकती है और इस तरह मानसिक ताने-वाने के स्वस्थ सम्वन्धो को लौटा सकती है।

सहायक पुस्तक-सूची

एफ० एच० ए० मार्शल—The Physiology of Reproduction

एस० फ्रायड—Introductory Lectures on Psycho-Analysis

---

१. लेखक को बौद्ध धर्म का पता नहीं था, यह स्पष्ट है—अनुवादक

अध्याय | २

सेक्स का जीव-विज्ञान

सेक्स का भौतिक आधार

प्रजनन जीवित शरीरो का आदिम और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अगो का आधार-भूत कार्य है। उसका यन्त्र बहुत अधिक जटिल है और अभी तक पूर्ण रूप से समझ मे नही आ पाया है। वह आवश्यक रूप से सेक्स से सम्बद्ध नही है और न सेक्स आवश्यक रूप से प्रजनन से ही सम्बन्धित है। तथापि यौन यन्त्र तथा उसके साथ सम्बन्धित गौण यौन लक्षणो का पूर्ण विकास शरीर के साधारण विकास के समान युग्मको अथवा प्रजनन-कोशो—स्त्री द्वारा प्रदत्त डिम्बाणु और पुरुष द्वारा प्रदत्त शुक्राणु—की अक्षुण्णता पर निर्भर है। सारी प्रजनन-क्रिया एक दिन की क्रिया नही बल्कि यह प्रक्रिया उर्वरित अण्डे को जन्म देने मे तथा बाद मे चलकर उस उर्वरित अण्डे के विकास के दौरान मे बराबर चालू रहती है और उसपर यह कार्य निर्भर रहता है। श्रेष्ठ से श्रेष्ठ अधिकारी व्यक्ति भी यौन प्रवृत्ति की व्याख्या करने मे हिच-किचा जाते है, तथापि हर हालत मे प्रारम्भ से ही वह पहले-पहल अपेक्षाकृत अस्पष्ट गोनाडकोश के जनक क्रोमोसोमो की बनावट से सम्बन्वित होता है। कोश-विभाजन की प्रक्रिया के दौरान मे उसके नाभिकणो मे निहित क्रोमटन नामक पदार्थ अपने ही आप साफ-साफ शलाका के आकार वाले तन्तुओ की एक निश्चित सख्या मे विभक्त हो जाता है। ये ही क्रोमोसोम है जो एक क्रम मे बधे होते है, और प्रत्येक प्राणी मे क्रोमोसोमो की यह सख्या स्थिर रहती है। वे मानव की सभी वश-जातियो मे, चाहे पुरुष हो अथवा स्त्री, समान होते है। फर्क केवल इतना होता है कि पुरुष के क्रोमोसोम जिन्हे 'एक्स-वाई' की सज्ञा दी गई है, डाइगैमेटिक होते है और अपने अपेक्षाकृत लघु आकार के कारण विशिष्ट है। स्तनपान कराने वाले जीवो मे साधारण तौर पर (पक्षियो मे यह बिलकुल विरुद्ध गुणयुक्त है) पुरुष 'एक्स'-धारी और बिना 'एक्स'-धारी अथवा 'वाई'-धारी, इन दोनो प्रकार के युग्मको की सम्पुष्टि करता है जब कि स्त्री केवल एक युग्मक की ही सम्पुष्टि करती है। कोई भी एक्स-धारी डिम्ब एक्स-धारी शुक्राणु द्वारा उर्वरित होकर एक्स-एक्स

और स्त्री-युग्मक वन सकता है अथवा वाईधारी शुक्राणु से उर्वरित होकर एक्स-वाई अथवा पुरुष-युग्मक वन सकता है। इस प्रकार हम सम्पूर्ण प्रक्रिया के (जिसे इवान्स और स्वेजी की दीर्घ और व्यापक गवेषणाओ ने स्पष्ट कर दिया है) प्रारम्भ-विन्दु पर पहुच जाते है। मेडेलीय प्रणाली पर चलने वाली इस प्रक्रिया के व्यापक व्यौरे मे जाने का यहा अवसर नही है। मेडेल द्वारा प्रतिपादित उत्तराधिकार की प्रक्रियाए निम्नतर जीवो की अपेक्षा, जिनमे पहले-पहल उनका अध्ययन किया गया था, मनुष्यो के क्षेत्र मे वहुत अधिक परिवर्तित और जटिल है।

इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि सामान्य रूप से गर्भाधान के समय ही प्राणी का पुरुपत्व या स्त्रीत्व निर्धारित हो जाता है, और इससे गर्भावस्था के दौरान मे पुरुप या स्त्री वनाने की विविध युक्तिया एक ओर धरी रहती है। क्र्यू के शब्दो मे यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि प्रत्येक उर्वरित डिम्ब मे, चाहे वह क्रोमोसोमो की वनावट की दृष्टि से एक्स-एक्स अथवा एक्स-वाई हो, उसमे विकास की रुझान के भौतिक आधार होते है, जो प्रत्येक विकासमान् व्यक्ति पर अन्ततो-गत्वा पुरुष अथवा स्त्री के रूप मे विकसित होता है।

ज्ञान के इस क्षेत्र मे हाल मे, विशेषकर वर्तमान शती मे, जो उन्नति हुई है उसकी ओर भी ध्यान देना आवश्यक है क्योकि यौन मनोविज्ञान से उसका घनिष्ठ सम्वन्ध है।

प्रारम्भ से ही हम इस वात को एक स्वीकृत तथ्य के रूप मे मानकर चलते है कि जिस शरीर मे ऐसे ग्रन्थि-समूह की प्रधानता होती है जिसका केन्द्र अण्डकोप है, तो उस शरीर को धारण करने वाला पुरुप होता है, और जिस शरीर मे ऐसे ग्रन्थि-समूह की प्रधानता होती है जिसका केन्द्र डिम्वकोप होता है, उसको धारण करने वाली स्त्री होती है। इस प्रकार सामान्य रूप से यौन क्षेत्र के प्राथमिक लक्षण सुनिश्चित हो जाते है। उनके साथ ही वनावट के अनुरूप यौन अवयवो का विकास भी सम्वन्धित है। अन्तिम तौर पर दोयम दर्जे के व्यक्त लक्षणों की पूर्ण प्राप्ति के साथ, जिनके साथ सोयम दर्जे के यौन लक्षणो के रूप मे कई अप्रकट भेद सम्वद्ध होते है, यौन परिपक्वता आ जाती है। इन सव प्रक्रियाओ मे वहुत कुछ विविधता हो सकती है। यौन ग्रन्थिया तथा दोयम दर्जे के यौन लक्षण एक मध्यवर्ती यौन टाइप की ओर जा सकते है जो शारीरिक तथा मानसिक किसी एक प्रकार से अथवा दोनो प्रकार मे विपरीत लिंग के निकट हो सकते है।

इस प्रकार पुरुपत्व और स्त्रीत्व के निरीक्षित सह-अस्तित्व का पता हर्मोन्स नामक एक रासायनिक द्रव्य के आन्तरिक क्षरण से लगता है। यह क्षरण शरीर की विविध क्षरण-ग्रन्थियों में से निकलकर रक्त में मिलता रहता है। लिंगों का सह-

अस्तित्व वर्णित क्षरण के उत्तेजक प्रभाव अथवा ऐसे प्रभाव की त्रुटि से उत्पन्न होता है। अतिक्षरण, अल्पक्षरण अथवा अव्यवस्थित क्षरण के कारण शारीरिक सतुलन, मानसिक झुकाव और सामर्थ्य मे तब्दीली हो सकती है, यहा तक कि कार्यरूपेण यौन परिवर्तन भी हो सकता है। किसी एक प्रक्रिया मे त्रुटि होने पर दूसरो के सन्तुलन मे गडबडी पैदा हो सकती है। हमारा लक्ष्य तो अनेक क्षरण-ग्रन्थियो का सामजस्ययुक्त समन्वय करना है। इस प्रकार होने वाले जटिल सम्बन्धो की व्याख्या करने की दिशा मे अनेक देशो मे काफी अध्ययन हो रहा है। अनवरत रूप से नए तथ्य और नए दृष्टिकोण सामने आ रहे हे, और अब पिट्यूटरी नाम की एक श्लैष्मिक ग्रन्थि के आगे की ओर वाले भाग के साथ ही मूत्राशय के निकट स्थित अड्रेनल नामक ग्रन्थियो के, सक्रियता प्रदान करने वाले प्रभाव को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। ब्लेयर बेल बहुत पहले से मानते आए है, डिम्बकोष अथवा अण्डकोष को पिट्यूटरी और थायरायड ग्रथियो जैसे अवयवो की शृखला की एक कडी मात्र मान लेना पडता है। कई बातो मे इसके परिणाम अभी तक अनिश्चित हे। किन्तु यौन मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि इस दिशा मे शरीर-विज्ञान तथा प्राणी-सम्बन्धी रासायनिक विज्ञान के क्षेत्रो की गवेपणाओ की कुछ जानकारी प्राप्त कर ली जाए। फिर भी इस स्थल पर उनकी विवेचना करना उपयुक्त नही होगा। ये विज्ञान दिन-प्रतिदिन विकसित हो रहे है, और चिकित्सा-सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओ मे तथा प्राणी-सम्बन्धी रासायनिक विज्ञान के साहित्य मे उनकी प्रगति का विवरण मिल सकता है।

यहा पर उल्लिखित बातो की सर्वेक्षणात्मक झलक के रूप मे यह जान लेना पर्याप्त है कि इस दिशा मे जो व्यापक परिवर्तन हुआ है, वह यह है कि पहले जहा हम स्नायु-प्रणाली को इन प्रक्रियाओ मे सक्रिय घटक मानते थे, वहा अब हम रासायनिक क्षरण-प्रणाली को अधिक सक्रिय मानते हे। यह कभी-कभी स्नायु-प्रणाली के अन्तर्गत होती है, पर कई बार स्नायु-प्रणाली से पृथक् भी होती है। कभी-कभी तो स्नायु और स्नायु के केन्द्र स्वय रासायनिक नियमन के अधीन होते हे।

यदि हम लैंगडन ब्राउन का अनुसरण करे तो हम यह कह सकते हे कि क्षरण-प्रणाली उन आदिम रासायनिक यन्त्रो के विस्तार हे जो स्नायु-प्रणाली के विकसित होने के पहले प्राणियो मे कार्यशील थे। शरीर के क्षरण-द्रव्य-नियमन की आदिमता का यह दिलचस्प सबूत है कि समस्त हार्मोनो के वाहक शरीर के अति प्राचीन यहा तक कि इस समय अनुपयोगी पिट्युटरी और पिनियल जैसी शरीर की

प्रणालियो से शुरू होते है। इसीके साथ हमे यह भी ध्यान मे रखना है, जैसा कि कुछ साल पहले बोक ने जोर देकर कहा था, कि हार्मोनो के प्रभाव से होने वाला उद्दीपन अथवा मन्दता-विशेष मानवीय गुणो के विकास को विचित्र रूप से प्रभावित करते है। यहा तक कि यह उद्दीपन अथवा मन्दता, जैसा कि अभी हाल मे कीथ ने बतलाया है, विविध नस्ली चारित्रिक विशेषताओ को भी प्रभावित करते है। जब स्नायु-प्रणाली को एक स्वरूप प्राप्त होने यहा तक कि प्रधानता मिलने लगी, तो स्नायु-प्रणाली मे तथा पहले से विद्यमान रासायनिक यन्त्रो के साथ उसका गठबन्धन विशेष रूप से उसकी निम्नतम सतह मे यानी पाकयन्त्रीय स्नायु-प्रणाली मे, जो सहानुभूतिशील और लगभग सहानुभूतिशील (या वेगस स्नायु का प्रसारित रूप) मे विभाज्य है, होने लगा। सहानुभूतिशील प्रणाली का झुकाव बिखराहट की ओर है, साथ ही सक्रिय है। वह पिट्यूटरी, थायरायड और अड्रेनलो से सम्बन्धित है। लगभग सहानुभूतिशील प्रणाली, जिसे अधिकाशत पुष्टिप्रद और निष्क्रिय माना जा सकता है, पैनक्रियास तथा परोक्ष रूप से पैराथायरायडो से सम्बन्धित होती है। ये प्रणालिया परस्पर-विरोधी है और कहा जाता है कि जीवन की लय-ताल उनके इस सन्तुलन पर निर्भर रहती है। गोनाड विशेषत सहानुभूतिशील क्षरण-ग्रन्थियो पर क्रिया-प्रतिक्रिया करते है। यद्यपि पिनियल और थाईमस सच्चे अर्थ मे क्षरण-ग्रन्थिया नही है (क्योकि इनसे किसी तरह का क्षरण नही होता) तथापि वे प्रमुख रूप से यौन परिपक्वता मे मन्दता और दैहिक विकास पर अनुकूल प्रभाव डालकर क्षरण-प्रणाली को प्रभावित करती है।

पिट्युटरी को अब क्षरण-सम्बन्धी वाद्यवृन्द के निर्देशक की सज्ञा दी जाती है। प्राचीन शरीरशास्त्री ऊपर स्थित मस्तिष्क से एक वृत्त द्वारा सम्बन्धित इस लघु अवयव को लघु मस्तिष्क मानते थे। यह धारणा अब बिल्कुल ही ऊल-जलूल समझी जाती हो, ऐसी बात नही। हार्वे कुशिग का कथन है—"यहा इस अच्छी तरह छिपे हुए स्थान मे आदिम जीवन-क्रम का प्रधान स्रोत मौजूद है। वह जीवन-क्रम जो वर्धक, भावुक और प्रजनक है, इसीपर मनुष्य ने थोडी-बहुत सफलता के साथ विधि-निषेधो की अन्तस्त्वचिका चढा दी है।" इवान्स और सिम्पसन ने उसके कुछ कोशो के साथ वृद्धि और यौन विकास के सम्बन्धो को खोज निकाला है।

थायरायड, जिसे प्रजनन-ग्रथि की सज्ञा दी गई है, सभी प्रकार की रचनात्मक यानी कलात्मक और बौद्धिक कार्यकारिता के लिए आवश्यक है। यदि सचमुच ऐसा न भी हो जैसा कि दावा किया जाता है तो भी वह प्रजनन के लिए तो

आवश्यक है ही। उसका निर्यास थायरोक्साइन (जिसे सश्लेषणात्मक रूप से तैयार किया जा सकता है) सामान्य पुष्टि पर धीरे-धीरे क्रमिक प्रभाव डालता है।

सुप्रारेनल्स से स्रवित अड्रेनालिन (जिसे भी सश्लेषणात्मक रूप से तैयार किया जा सकता है) का हृदय, रक्तवाहिनियो, यकृत, लाला ग्रन्थियो, अतडियो, पुतलियो और तिल्ली पर अपेक्षाकृत द्रुत प्रभाव पडता है । जहा अड्रेनालिन का इतना व्यापक प्रभाव होता है, वहा उसका खुद का क्षरण, जैसा कि टुर्नाड ने वतलाया है घनिष्ठ रूप से स्नायु-प्रणाली पर निर्भर रहता है।

क्षरण-अवयव एक-दूसरे को प्रभावित कर सकते हैं । थायरायड हटा देने पर पिट्युटरी का विस्तार हो सकता है, यद्यपि युवावस्था मे किसी जानवर से पिट्युटरी हटा देने पर थायरायड अवरुद्ध हो सकता है । थायरायड सुप्रारेनल्स को उद्दीप्त करता है, जो यकृतकोशो को रक्त मे ग्लाइकोजेन छोडने के लिए उत्तेजना देता है। इससे पैनक्रियास या अग्न्याशय को इन्सुलिन के क्षरण मे वृद्धि करने की उत्तेजना मिलती है । फिर ऐसा लगता है कि पिट्यूटरी का प्राक् भाग तीन हार्मोनो को उत्पन्न करता है। एक हार्मोन से वृद्धि अथवा विकास होता है । दूसरे से डिम्वकोषो को उत्तेजना मिलती है, जिससे एस्ट्रिन पैदा करने वाली ग्राफियन एकसेवनिया (Follicles) परिपक्व होती है। यहां वता दिया जाय कि इस प्रकार उत्पन्न एस्ट्रिन से उर्वरित डिम्वाणु को ग्रहण करने के लिए गर्भाशय मे परिवर्तनो का सूत्रपात होता है। तीसरे हार्मोन से डिम्व को अच्छी तरह जमाने के लिए गर्भाशय-सम्वन्धी अन्य परिवर्तन होते है। इनमे से दूसरा हार्मोन विशेष रूप से व्यावहारिक महत्त्व का है क्योकि गर्भावस्था है या नही, यह जानने के लिए किए जाने वाले जोण्डेक-ऐशहाईम नामक परीक्षण का आधार मूत्र मे उसकी मौजूदगी है।

आन्तरिक क्षरणो और रासायनिक ओषधियो की क्रियाओ मे वहुत सादृश्य है। शार्पे शाफेर चाहते हैं कि हार्मोन सज्ञा का प्रयोग उत्तेजना प्रदान करने वाले प्रकार तक ही सीमित कर दिया जाए, और जिन प्रकारो से प्रतिकूल निषेधात्मक प्रभाव पड़ता है, उन्हे शालोन (Chalones) की सज्ञा दी जाए। वे इन दोनो प्रकारो का सयुक्त नाम आटाकोइड (Autacoids) देते है, जिसमे यह सार्थकता व्यक्त होती है कि वे स्वय शरीर द्वारा उत्पन्न रासायनिक ओषधियों के समान तत्त्व हैं।

अव यह देखा जा सकता है कि हमे शरीर-सम्वन्धी व्यापारो की व्याख्या रासायनिक पदार्थो और साथ ही स्नायु-नियमन की शब्दावली मे करनी होगी। हम यह

भी देख सकते है कि ये दोनो प्रकार की परिभाषाए—स्नायु-सम्वन्धी होने की अपेक्षा रासायनिक शायद कुछ अधिक है और वे मानसिक व्यापारो के दूसरे तट पर स्थित है। हमे यह मानना पड़ता है कि शरीर मे एक वडी सख्या मे अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु अत्यन्त शक्तिशाली तत्त्व विद्यमान है, जैसे विविध हार्मोन और विटामिन, साथ ही उनसे निष्पन्न सेरम और वैक्सिन जिन्हे उचित रूप से जीव-वैज्ञानिक रासायनिक ओषधियो की सज्ञा दी जा सकती है। ज्यो-ज्यो उनके सम्वन्ध मे ज्ञान का उत्तरोत्तर विस्तार होता जाता है, त्यो-त्यो उनका महत्त्व और भी अधिक वढता हुआ दिखलाई देता है। पर इस कारण मनोविज्ञान मे प्राणि-रासायनिक विज्ञान-सम्वन्धी परिभाषाए ले आना हमारे लिए उचित नही होगा। वहुत पहले से ही यह स्पष्टतया समझा जाने लगा है कि मनोविज्ञान मे शरीर-रसशास्त्रीय (Histological) परिभाषाओ को प्रचलित करना गलत था। इस क्षेत्र मे प्राणि-रासायनिक परिभाषाओ का प्रचलन भी उतना ही गलत होगा। मनोवेग मनोवेग ही रहेगा, चाहे उसकी उत्पत्ति मे शारीरिक दृष्टि से हार्मोन अथवा शालोन ने हिस्सा क्यो न वटाया हो।

सहायक पुस्तक-सूची

एफ० ए० ई० क्रयू—The Genetics of Sexuality in Animals, also Article 'Sex' in Rose's Outline of Modern Knowledge

ए० लिप्शुट्ज—The Internal Secretions of the Sex Glands

जोसेफ नीडहम—Chemical Embriology 3 Vols

एफ० एच० ए० मार्शल—The Physiology of Reproduction

एच० एम० इवान्स तथा ओलिव स्वेजी—'The Chromosomes in Man' Memoirs of the University of California Vol IX 1929

डब्ल्यू० ब्लेयर वैल—'Conservative Gynaecological Surgery,' British Medical Journal 18th April 1931

लैंगडन ब्राउन—'Endocrines and Associated Psycho-neuroses,' British Medical Journal, 6th Feb 1932

जे० एच० वर्न—Recent Advances in Materia Medica (the biochemical drugs) 1931

सर ई० शार्पे शाफेर—'Endocrine Physiology,' British Medical Journal, 22nd Aug. 1931.

यौन आवेग की प्रकृति

उन नितान्त शरीर-सम्बन्धी प्राणिक कार्यकलाप के पहलू से हटकर, जिनसे यौन विकास होता है, मानसिक क्रियाओ मे अभिव्यक्त यौन विषयक जीवविज्ञानीय प्रक्रिया पर व्यापक दृष्टि डाल लेना आवश्यक है, क्योकि इस प्रसग मे हम उसी विषय पर विचार करने जा रहे है।

यह सच है कि यौन प्रक्रिया के मानसिक पहलू के सम्बन्ध मे कोई सर्वमान्य सिद्धान्त नही है। प्राचीन विश्वासो के अनुसार यौन आवेग निष्कासन की आवश्यकता की अभिव्यक्ति मात्र है, जिसकी तुलना मलाशय तथा मूत्राशय मे अनुभव किए जाने वाले समय-समय पर उठने वाले आवेग से की जा सकती है। वह दृष्टिकोण गलत और गुमराहकुन था। पुरुष-वीर्य निष्कासन के लिए निर्दिष्ट मलवत् पदार्थ नही है और स्त्री मे तो यौन-इच्छा के साथ निष्कासन की भावना का सम्बन्ध ढूढना बहुत मुश्किल है। इससे अधिक मान्य तो वह सिद्धान्त है जो कभी-कभी इस रूप मे सामने रखा जाता है कि यौन आवेग प्रजनन का सहजात है। पर यदि नितान्त सच कहा जाए तो ऐसा कोई सहजात नही है और न वह द्विलैगिक शरीर-प्रणालियो के लिए आवश्यक ही है। बस जरूरत केवल ऐसी सचालक वृत्ति की है जिससे पुरुष और स्त्री इस तरह एकसाथ आ जाए कि उर्वरीकरण सुनिश्चित हो जाए। यदि यह एक बार हो गया तो फिर सन्तान का भविष्य वात्सल्य-मूलक सहजात द्वारा प्रस्तुत उद्दीपको द्वारा सुनिश्चित हो जाता है, प्रजनन के सहजात की आवश्यकता नही पडती।

अध्यापक मेक्डूगल द्वारा रचित 'सामाजिक मनोविज्ञान की भूमिका'[1] मे, जो अपने विषय पर शायद सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ रहा था, प्रजनन के सहजात के उल्लेख भर के अलावा यौन विषय पर कुछ भी नही था, पर १९१४ मे पुस्तक के आठवे सस्करण के प्रकाशित होने तक यौन सहजात पर एक पूरक अध्याय ही जोड दिया गया। इसमे उसकी व्याख्या एक जटिल अन्तर्निहित, अतरग रूप से सगठित मनोशारीरिक आवेग के रूप मे की गई है, जिसके तीन भाग होते है, जो हरेक पूर्ण मानसिक अथवा मनोशारीरिक प्रक्रिया मे पाए जाते है जिन्हे वे सज्ञानमय, प्रभावमय तथा चेष्टामय कहते है। स्नायु के कार्यो और बनावट की दृष्टि से हम इन तीन भागो को क्रमश सन्देशवाहक या सवेदनात्मक, केन्द्रीय और

१ 'Introduction to Social Psychology'

केन्द्राभिसारी अथवा क्रियाशील कह सकते है। वे बतलाते है कि सज्ञान मे उन वस्तुओ के, जिनमे प्राणी की जातिविशेष की भलाई का तकाजा रहता है, अवलोकन अथवा अवलोकन द्वारा प्रभेद करने का अन्तर्निहित झुकाव सन्निहित रहता है। उदाहरणस्वरूप भिन्नलिग सहप्राणी को पहचान जाने की शक्ति ऐसी ही शक्ति होती है। फिर यही शक्ति उच्चतर प्राणियो मे यौन कार्य मे पूर्ण सयोजन सुनिश्चित करने के लिए इस पहचान के साथ-साथ एक के बाद एक प्रतिक्रियाओ की एक शृखला की शक्ति मे परिणत होती है।

मेक्डूगल की परिभाषा, जैसा कि वे स्वय कहते है, ऐसी है जिसे वे सब प्रकार के सहजात पर लागू करना चाहते है। वे सहजात की परिभाषा मन की जन्मजात, अन्तर्निहित, स्वाभाविक प्रवृत्तियो के रूप मे देते है, जो किसी विशेष प्राणी-वर्ग के समस्त सदस्यो मे सामान्य रूप से पाया जाता है। तथ्यत यह एक साधारणीकृत वक्तव्य है। इससे हमे यह समझने मे लगभग कुछ भी मदद नही मिल सकती है कि भिन्नलिग प्राणियो के पास आने और सयोग की प्रक्रिया क्या है।

यह प्रवृत्ति है कि सहजात शब्द के प्रयोग से यथासम्भव बचा जाए। इसे मैने स्वय एक बडी हद तक माना है, पर पियरो (Pieron) तथा दूसरे कई लोग इसे प्रयोग मे रखना चाहते है। यहा तक कि सहजात शब्द का प्रयोग ही अवाछनीय हो सकता है जैसा कि बोन (Bohn) ने कहा है कि इस शब्द का इतिहास गडबडियो से पूर्ण रहा है और इस बात पर पूर्ण मतैक्य नही रहा कि उसका प्रयोग किस अर्थ मे किया जाए। यद्यपि सहजात को साधारण प्रयोजन के लिए हरबर्ट स्पेन्सर की परिभाषा के अनुसार यौगिक प्रतिक्रियात्मक कार्य (Compound reflex action) माना जा सकता है, पर यह प्रश्न उठता है कि क्या उसके साथ-साथ जो चेतना रहती है वह गौण है?

यह भी कहा जा सकता है कि न केवल ऐसे जीववैज्ञानिक मनोवैज्ञानिक जो लोब (Loeb) से प्रभावित है, बल्कि सामान्य रूप से प्राय सभी ऐसे लोग कादिलाक की स्थिति मे लौटना और सहजात शब्द का प्रयोग ही बन्द करना चाहते है। इन अनुसन्धानकर्ताओ का कहना है कि हमारा काम सामने आनेवाली स्वयगतिक मानसिक प्रक्रियाओ का विश्लेषण करना है न कि एक ऐसे शब्द को प्रयुक्त कर जिसके इतने विविध और दुर्भाग्यपूर्ण अर्थ होते हो, अपनी कठिनाइयो मे वृद्धि करनी है। इसलिए हम सहजात तथा निश्चित रूप से प्रजनन का सहजात यह बता ना भारी-भरकम नाम देकर यौन विषय पर तर्क करना छोड सकते है। कारण यह है कि किसी आवेग का विश्लेषण उसके द्वारा परोक्ष रूप मे हो सकने वाले परिणाम को बतलाकर नही किया जा सकता। यहा हमारा उद्देश्य तो यौन

आवेग और उसके विश्लेषण मात्र से है।

जब सन् १८९७ मे मोल ने इस आवेग की बनावट के सम्बन्ध मे अपने सिद्धान्त सामने रखे, तब उसके विश्लेषण को उच्चतर आधार मिला। मोल की समझ के अनुसार इसके दो भाग है :

एक वह जो जननेन्द्रियो मे स्थानीय कार्य के लिए आवेग उत्पन्न करता है, जैसे कि पुरुष मे वीर्य का स्खलन, जिसकी तुलना मूत्राशय के खाली होने से की जा सकती है।

दूसरा भाग वह है जो प्रत्येक जोडीदार मे एक दूसरे से निकट शारीरिक और मानसिक सम्पर्क जोडने के लिए आवेग उत्पन्न करता है।

प्रथम भाग को मोल स्खलन की सज्ञा देते है और दूसरे को वे पूर्वराग या प्राक्क्रीडा की। इन दोनो भागो का अनुसरण करते हुए हम यौन ग्रन्थियो तक पहुचते है। एक भाग प्राथमिक है और दूसरा परवर्ती, किन्तु दोनो स्पष्ट रूप से भिन्न है और पृथक् रूप से विद्यमान रह सकते है। उनके सयोग से ही पूर्ण तथा स्वाभाविक यौन आवेग की सृष्टि होती है।

मोल के विश्लेषण मे वैज्ञानिक और व्यापक सिद्धान्त के रूप मे ग्रहणीय बहुत कुछ है। इसके परिणामस्वरूप उसे बडे पैमाने पर स्वीकार भी किया गया है। तो भी उसमे कुछ कठिनाइया आ जाती है : उदाहरणार्थ जब स्त्रियो पर इस विश्लेपण को प्रयुक्त किया जाता है तो वह पुरुष की अपेक्षा कम सन्तोषजनक उतरता है। साथ ही जैसा कि राबर्ट मूलर, सेन्टपाल तथा अन्य लोगो ने बतलाया है, इसमे यह गडबडी है कि इससे यौन प्रक्रिया विभक्त हो जाती है। इस तथा दूसरी कठिनाइयो से बचने के लिए मैने डार्विन द्वारा प्रतिपादित यौन निर्वाचन के सिद्धान्त के कम से कम विवादग्रस्त भाग की सहायता से मोल के सिद्धान्त मे थोडा बहुत सशोधन कर लिया है। यदि हम यौन प्रक्रिया को, जिस रूप मे वह साधारणतया जानवरो और जगली मनुष्यो मे पाई जाती है, देखे, तो हमे जल्दी ही यह मानना पडेगा कि हम स्खलन से शुरुआत नही कर सकते। स्खलन अथवा पूर्ण मैथुन हो सके इसके पहले स्फीति होनी चाहिए। घरेलू जानवरो और सभ्य मनुष्यो मे तो यह एक सरल प्रक्रिया है। पर प्राकृतिक अवस्था मे यह इतना सरल नही होता। उस हालत मे इस अवस्था की प्राप्ति के लिए नर को बहुत सक्रियता और आत्म-प्रदर्शन तथा मादा को दीर्घ साधना और ध्यान करना पडता है। इस प्रक्रिया मे साथी द्वारा अदा किए गए हिस्से से दोनो मे समान रूप से स्फीति की वृद्धि होती है। पूर्वराग या प्राक्क्रीडा का—चाहे वह शारीरिक हो अथवा मानसिक—लक्ष्य यौन स्फीति की वृद्धि है और उसे इस प्रक्रिया का स—

हिस्सा माना जा सकता है।

यौन स्फीति की धीमी प्रक्रिया के दौरान मे ही यौन निर्वाचन निश्चित होता है, प्रेम के दाने बधते है (ऐसा ही कहते थे) जैसा कि स्न्टेडहाल का कहना था और उत्तेजना के व्यक्तिगत प्रतीक—चाहे वे सही दिमाग के प्रतीक हो या विकृत मस्तिष्क के—निर्धारित होते है। यह मानना ही पड़ेगा कि स्खलन अथवा पूर्ण मैथुन इस सारे नाटक का लक्ष्य और पूर्णाहुति है; यह निश्चित रूप से एक शारीरिक प्रक्रिया है, पर वह प्रत्येक बिन्दु पर अनिवार्य रूप से मन को स्पर्श करती रहती है। वस्तुत इसीमे यौन स्फीति की कुजी है। जब तक हम बिल्कुल सही रूप से यह न समझ ले कि पूर्ण मैथुन अथवा स्खलन के दौरान मे कौनसी बात होती है, तब तक हमारा किया हुआ यौन आवेग का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अनिवार्य रूप से अनिश्चित और अपर्याप्त रहेगा।

पूर्ण मैथुन अथवा स्खलन सामान्यत यौन स्फीति से निकट सम्बन्ध रखता है। स्फीति मानो ईधन के ढेर पर ढेर लगाने की तरह है और पूर्ण मैथुन अथवा स्खलन तीव्र शिखा के साथ बल उठने के समान है जिससे जीवन की मशाल प्रज्वलित होकर एक पीढी से दूसरी पीढी के हाथो मे पहुचती रहती है। सम्पूर्ण प्रक्रिया दुहरी होती हुई भी इकहरी है और ठीक उस क्रिया के सदृश है जिसमे नीव बनाने के लिए मलगे को पहले ऊपर उठाया जाता है और फिर उसके सिर पर भारी वजन पटककर उसे जमीन मे धसाया जाता है। यौन स्फीति मे मानो शरीर मे धीरे-धीरे चाभी भरी जाती है और बल इकट्ठा होता जाता है, स्खलन की प्रक्रिया मे एकत्रित बल मुक्त हो जाता है और इस मुक्ति से शुक्राणुधारी शस्त्र लक्ष्य की ओर छूट जाते है। प्राक्क्रीडा, जैसे कि हम साधारणतया यौन स्फीति की प्रक्रिया को प्राक्क्रीडा कहते है, स्त्री के पास पहले-पहले यौन दृष्टि से पुरुष का जाना है। यह अक्सर एक अत्यन्त दीर्घ प्रक्रिया है। इस बात को हमेशा याद रखना जरूरी है कि मैथुन की प्रत्येक पुनरावृत्ति के दोनो पक्षो द्वारा सामान्यतया स्वस्थ और फलप्रद ढग से सम्पन्न होने के लिए इस प्रकार की दुहरी प्रक्रिया आवश्यक है; मैथुन के पहले सक्षिप्त ही सही, पर प्राक्क्रीडा अवश्य ही होनी चाहिए।

यह सक्षिप्त प्राक्क्रीडा, जिससे मैथुनिक कार्य मे यौन स्फीति की प्राप्ति अथवा वृद्धि होती है, प्रधान रूप मे स्पर्शात्मक होती है। ज्यो-ज्यो इन्द्रिगत उत्तेजना के प्रभाव मे स्फीति चरमोत्कर्ष की ओर चलकर स्खलन मे परिवर्तित हो जाती है, त्यो-त्यो शारीरिक गतिविधि अधिकाधिक रूप मे यौन अगो मे आकर सिमटती जाती है। जो प्रक्रिया पहले प्रधान रूप मे स्नायविक और मानसिक थी,

अब और अधिक तथा प्रधान रूप से रक्तप्रवाहगत हो जाती है। त्वचा का प्राचीन यौन सम्बन्ध उभर आता है और धरातल पर विविध प्रकार से निविडता के चिह्न स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। चेहरा लाल पडने लगता है और ठीक यही बात प्रजनन-अगो मे भी दिखाई पडती है। यह कहा गया है कि शिश्न का खडा होना उसका लज्जा से लाल पड जाना है। फर्क इतना है कि प्रजनन-अगो मे बढे हुए रक्त-प्रवाह को एक निश्चित और विशिष्ट कार्य—पुरुष-अग का कडा पडना, ताकि वह स्त्री-अग मे प्रवेश करने योग्य हो सके—सम्पन्न करना है। इसके परिणाम-स्वरूप शिश्न मे एक विशेष प्रकार के रक्त-प्रवाह-यन्त्र का विकास हुआ जिसकी खास पेशिया और तन्तु होते हैं, जिन्हे उन्नायक तन्तु की सज्ञा दी गई है।

सिर्फ पुरुष को ही उन्नायक तन्तु मिले हों, जो स्फीति की प्रक्रिया मे सघन रूप से भर और फूल जाते हैं, ऐसा नही है। स्त्री के भी वाह्य जननेन्द्रिय-प्रवेश मे उन्नायक तन्तु हैं। उन तन्तुओ मे भी रक्त भर जाता है और उनमे भी वे परि-वर्तन दिखाई देते हैं जो पुरुष मे होते हैं, यद्यपि वे खुले तौर पर देखने मे नही आते। वनमानुषो, उदाहरणार्थ गुरिल्लो मे यौन उत्तेजना के समय वडा सा भगा-कुर और भगोष्ठ प्रमुख रूप से दिखाई देने लगते हैं। किन्तु नारियो मे भगाकुर के कम विकास और उसके साथ कामाद्रि तथा वृहत् भगोष्ठो के रूप मे विशिष्ट मान-वीय विकास के कारण—उत्तेजनात्मक यौन तनाव व्यावहारिक रूप से वाहर से दिखाई नही देता, यद्यपि स्त्री-अग के स्पजी और लचीले तनाव को छूकर उत्तेजना मालूम की जा सकती है। स्त्री की सम्पूर्ण प्रजनन-नलिका, जिसमे गर्भाशय भी सम्मिलित है, रक्त-वाहिनियो से परिपूर्ण है और यौन उत्तेजना के समय उसमे वहुत अधिक तनाव की सामर्थ्य होती है।

नारी मे इन्द्रिय-स्फीति की प्रक्रिया के साथ ही एक तरल पदार्थ प्रचुरता से निकलता है, जिससे योनि के प्रवेशद्वार के आसपास स्थित भग के समस्त हिस्से विशेष रूप के भीग जाते हैं। यह कमोवेश एक गन्धहीन श्लैष्मिक द्रव्य है, जो साधारण परिस्थितियो मे धीरे-धीरे और सम्बद्ध अगो को अनजान मे तर कर देता है। खैर, जैसा कि प्राय कहा जाता है, योनिमुख के समीप स्थित ग्रन्थियो से, जो प्रसव के समय क्षरण-क्रिया के योग्य रहती हैं, एक द्रवपदार्थ का वास्तविक स्खलन भी होता है। जब कभी अधिक स्फीति की उपलब्धि हो जाती है, तब पूर्ण मैथुन शुरू होने के पूर्व इस प्रकार जो द्रवपदार्थ वाहर निकलता है, वह योनि-नलिका के प्रवेशद्वार को तैलसिक्त करने का महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करता है और इस भांति पुरुष-अग की प्रवेश-क्रिया को आसान बना देता है। इसी तरह भी [illegible] प्रसव के समय [illegible] होती है जब भ्रूण के सिर के बाहर नि[illegible]

समय ये अग फैल जाते है। यौन स्फीति मे श्लैष्मिक प्रवाह का होना हमेशा उस बात की सूचना देता है कि यह प्रक्रिया सक्रिय रूप से केन्द्रीय यौन अगो को प्रभावित कर रही है और अत्यन्त आनन्दकारी सुखद मनोवेग मौजूद है। इसलिए प्रेमकला मे यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

जब स्त्री और पुरुष मे पूर्ण उत्तेजन हो जाता है, तो मैथुन के लिए आवश्यक शर्तें पूरी हो चुकी, ऐसा समझना चाहिए। इस अवसर पर यदि स्त्री अक्षतयोनि हुई तो सतीच्छद झिल्ली की समस्या सामने आती है। प्राचीन काल मे तन्तुओ से निर्मित यह अग—जिसे अर्थपूर्ण ढग से सतीच्छद की सज्ञा दी गई है—स्त्री की यौन स्थिति निश्चित करने मे अक्सर विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता था। उसकी मौजूदगी से ही किसी अविवाहित नारी का नैतिक चरित्र निश्चित होता था। यदि यह बात छोड भी दी जाए कि इस समय आम तौर पर यह माना नही जाता है कि किसी स्त्री के गुणावगुण शरीर-रचना के एक ब्योरे के आधार पर निर्भर है, और भी दूसरे कारण है जिनसे इस झिल्ली की अब वह स्थिति नही मानी जा सकती। इस झिल्ली के आकार-प्रकार मे प्राकृतिक विविधता होती है। विभिन्न दुर्घटनाओ (साथ ही कुमारी-अवस्था मे हस्तमैथुन) से वह नष्ट हो सकती है,। इसके विपरीत वह कई क्षेत्रो मे मैथुन के बाद वेश्याओ तक मे भी अव्याहत रह सकती है।

प्रथम मैथुन मे झिल्ली के फटने से पीडा और असुविधा हो सकती है। कुछ अवसरो पर झिल्ली की मजबूती के कारण लिग-प्रवेश-क्रिया मे कठिनाई होती है। तब थोडी सी चीर-फाड जरूरी हो जाती है। स्त्री स्वत धीरे-धीरे अपनी उगली से दबाव डालकर भी बिना चीर-फीड के इसे भग कर सकती है। यह भी एक अच्छा तरीका है और उचित रूप से इसकी सलाह दी जाती है। कुछ जातियो मे माताए बालिकाओ की योनि मे कम उम्र से ही उगली डाला करती है। ऐसा कुछ तो इस अग को साफ रखने की दृष्टि से और कुछ आगामी वर्षो मे मैथुन को सुविधाजनक बनाने की दृष्टि मे किया जाता है। इस रीति के समर्थन मे बहुत कुछ कहा जा सकता है।

सभी जानवरो मे, यहा तक कि जो जानवर मनुष्य के निकटतम है, नर मादा के पीछे से मैथुन करता है। सामान्य विधि मे पुरुष नारी के सामने होता है। सामने से मैथुन करना विशेष रूप मे मानवीय विधि मानी जा सकती है, फिर भी कई बार उनमे परिवर्तन भी होते है। इसके अलावा मनुष्यो मे जानवरो जैसे तरीके भी है, जिन्हे कई जातियो ने राष्ट्रीय रिवाजो के रूप मे अपना लिया है और इसलिए ये प्रकार भेद की सामान्य परिधि मे आते है।

अब एक नया तत्त्व—मासपेशी के कार्य सामने आते है। पेशी-कार्य ज्यादातर

अनैच्छिक होता है। इस कार्य के शुरू होने पर जब ऐच्छिक पेशिया भी काबू मे नही रहती, तब पूर्ण मैथुन की खास प्रक्रिया चालू होने लगती है। इसलिए महान् प्रयत्न न किया जाए तो मैथुन मे पूर्ण रूप से इच्छा-शक्तियुक्त कार्य लगभग समाप्त हो जाता है। जब योनि के घर्षण से शिश्न को प्राप्त होने वाली उत्तेजना के प्रभाव से मूत्र मार्ग मे आए हुए वीर्य का तनाव मेरुदण्ड के निम्न भाग मे स्थित निष्कासक केन्द्रो के साथ ही ऐसा मालूम होता है कि निम्न पाकाशय के स्नायु-जाल को जगा देता है और मूत्र-मार्ग के आसपास स्थित गाठो से भरी छिद्रबहुल पेशी तालयुक्त ढग से सिकुडती प्रसारित होती है, तब यह समझना चाहिए कि हम निर्णायक क्षण की ओर अग्रसर हो रहे है। इस सोपान मे पूर्ण मुक्ति होती है।

मैथुन का कार्य प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से दो वर्गो मे रखा जा सकता है: पहला रक्त-प्रवाह और श्वास-प्रश्वास-सम्बन्धी और दूसरा शरीर-परिचालन-सम्बन्धी, यद्यपि इस बात का ध्यान रखा जाए कि वास्तव मे ये दोनो कार्य विभाज्य नही है। मैथुन मे श्वास उथला और द्रुत हो जाता है और कुछ हद तक रुक जाता है। श्वास के इस तरह रुकने से रक्तप्रवाह तेज हो जाता है और इस तरह वह साधारण तौर पर शरीर मे तथा विशेष तौर पर उन्नयन तन्तुओ मे रक्तचाप बढाकर शोणितप्रवाह-केन्द्रो को उत्तेजित करने मे सहायता देता है। बढा हुआ रक्तचाप मैथुन की अवस्था का सबसे अधिक गोचर लक्षण है। पुसेप के अनुसार जानवरो मे मैथुन के समय मस्तिष्क और रक्त-प्रणाली दोनो के सकुचन-प्रसारण मे द्रुत परिवर्तन होता है। हृदय की धडकन पहले की अपेक्षा प्रबल और द्रुत हो जाती है। ऊपर की धमनिया अधिक दिखलाई देने लगती है और सगमस्थल अधिक लाल हो जाते है। क्षरण-ग्रन्थियो मे कार्यशीलता की ओर प्रवृत्ति दिखाई पडती है। त्वचा की सामान्य क्रियाशीलता बढती है तथा महक वाले क्षरण के साथ प्रचुर मात्रा मे पसीना आता है। लाला क्षरण भी होता है। जिस तरह स्त्री मे प्रचुर मात्रा मे क्षरण होता है, उसी तरह पुरुष मे यौन उत्तेजना के परवर्ती सोपान मे श्लेष्मा का क्षरण होता है जो बूंदो के रूप मे मूत्र-मार्ग के छिद्र मे प्रकट होता है। यह द्रव्य कौपर और लिट्रे नाम की छोटी ग्रन्थियो से निकलता है, जो मूत्र-मार्ग मे खुलती है। पुराने धर्माचार्यो ने इसे डिस्टिलाटियो (चुआने) की सज्ञा दी थी। वे यह जान चुके थे कि इसका वीर्य से भिन्न अस्तित्व तथा सार्थकता है और वह इस बात का सूचक है कि मन मे कामवासना घनीभूत हो चुकी है। क्लासिक युग मे भी लोगो को यह मालूम था। पर बाद को अक्सर इस क्षरण को वीर्य समझने का भ्रम होने लगा था जिससे जल्दी घबरा जाने वाले लोगो को कभी कभी अनावश्यक चिन्ता हो जाती थी। कामोद्रेक होने पर मूत्राशय मे भी क्षरण की मात्रा बढ

जाती है और शायद समस्त शरीर मे ग्रन्थि-क्षरण वढ जाता है।

मैथुन की चरम परिणति परिचालक प्रणाली की क्रियात्मकता मे होती है। यह क्रियात्मकता मैथुन का आवश्यक अग है क्योकि उसके विना जीवाणु-कोष को परिणामकारी रूप से गर्भाशय के निकट लाकर गर्भ मे प्रविष्ट नही कराया जा सकता था। यह सामान्य क्रिया है, साथ ही विशेष क्रिया भी है। इस समय कमोबेश अनियन्त्रित, अनैच्छिक सचालन की ओर प्रवृत्ति होती है, यद्यपि नियन्त्रित (ऐच्छिक) मासपेशियो की शक्ति मे कोई वृद्धि नही होती, वल्कि यथार्थत वह घट जाती है। अनियन्त्रित मासपेशियो की विकीर्ण क्रियात्मकता की प्रवृत्ति को वीर्यपात या पूर्ण मैथुन से सम्वन्धित मूत्राशय के सकुचन के उदाहरण से समझाया जा सकता है। स्त्री-पुरुष दोनो मे ऐसा होता है, पर पुरुषो मे मूत्राशय के खाली होने मे लिग का उन्नयन यान्त्रिक रूप से बाधक हो जाता है। स्त्रियो मे पेशाव करने की सिर्फ इच्छा ही नही होती, वल्कि कई अवसरो पर वे मूत्रत्याग भी कर देती है। कापने, गला रुधने, छीकने, अधोवायु के वाहर निकालने तथा इसी तरह की दूसरी वातो की ओर, जो कभी-कभी मैथुन के साथ जुडी रहती है, ये सव वाते इसी तरह शरीर की परिस्खलन-सम्वन्धी गडवडियो के विकीरण से होती है।

विशिष्ट रूप से यौन मासपेशियो का सचालन इससे अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक उद्देश्यपूर्ण है, यद्यपि वह होता अनियन्त्रित ही है। मैथुन के शुरू से ही पेशियो की यह क्रियात्मकता सामने आती है। यह क्रियात्मकता पुरुष मे यथेष्ट स्पष्ट और सरल होती है। यह जरूरी होता है कि वीर्यग्रन्थियो से वीर्य निष्कासित हो और प्रोस्ट्रेट क्षरण-द्रव्य से (जो समान रूप से आवश्यक होता है) सयुक्त होकर मूत्रमार्ग मे से प्रवाहित होकर कुछ वेग के साथ मूत्रयन्त्र के छिद्र से वाहर निकाल दिया जाए। सामान्य तौर पर योनि के सम्पर्क और घर्षण से प्राप्त उत्तेजना के प्रभाव के अन्तर्गत यह प्रक्रिया श्वास को गठीली तथा छिद्रयुक्त पेशी के तालयुक्त सकुचन-प्रसारण के परिणाम मे होती जाती है और वीर्य कुछ झटके के साथ फव्वारे की तरह निकल पडता है।

विशिष्ट रूप से यौन पेशी की प्रक्रिया स्त्री मे कम दिखलाई देती है और वह अधिक धुधली, जटिल और अनिश्चित होती है। पूर्ण मैथुन के वास्तविक रूप मे शुरू होने के पहले कुछ समय के अन्तर पर योनि की दीवारो मे तालयुक्त सकुचन-प्रसारण होने लगता है। मालूम होता है कि इस प्रक्रिया का उद्देश्य उन प्रक्रियाओ को जो पुरुष-अग मे भी शुरू होने वाली है तत्काल उत्तेजित करना और उसके साथ तालमेल विठाना है। ऐसा मालूम होता है कि यह तालयुक्त सकुचन-प्रसारण उन सतत होने वाली क्रिया का ही वढा हुआ रूप है। जिसकी तुलना

मूत्राशय मे होने वाली सामान्य परन्तु स्थायी सकुचन-प्रसारण-क्रिया से की जा सकती है। योनि का सकुचन-प्रसारण पूर्ण मैथुन के ऐन पहले अच्छी तरह मालूम होने लगता है और ऐसा मुख्यतया स्त्री-अग के उस भाग का कार्य है जो पुरुष-अग के गठीले तथा छिद्रयुक्त भाग से मिलते-जुलते कार्य के कारण होता है। यह स्थानिक मासपेशी-प्रक्रिया का सिर्फ एक हिस्सा भर है।

पूर्ण मैथुन के समय वीर्य को गर्भाशय मे प्रविष्ट कराने के लिए स्त्री के यौन अग सक्रिय भाग लेते है, यह एक प्राचीन विश्वास है। यह ग्रीक लोगो के उस विश्वास से मिलता-जुलता है कि गर्भाशय शरीर के अन्दर एक जानवर की तरह है, पर वर्तमान समय मे किए गए सूक्ष्म निरीक्षणो से सक्रिय भाग लेने की इस वास्तविकता की पुष्टि नही होती। जो भी निरीक्षण किए गए है, वे गर्भाशय के डाक्टरी परीक्षण के दौरान मे आकस्मिक उत्पन्न यौन उत्तेजना और पूर्ण मैथुन के फलस्वरूप किए गए है। जहा तक प्रमाण मिलते है, उनसे मालूम होता है कि स्त्रियो मे घोडियो, कुत्तियो और दूसरे जानवरो के समान पूर्ण मैथुन के समय गर्भाशय अपेक्षाकृत छोटा, चौडा और कोमल हो जाता है और साथ ही वह वस्ति-गह्वर मे नीचे खिसक जाता है और उसका मुह बार-बार खुलता और बन्द होता रहता है।

यह सम्भावित जान पडता है कि गर्भाशय के उन्नयन, सकुचन और नीचे खिसकने और उसीके साथ श्लेष्मा-निष्कासन के क्षण स्त्री मे मैथुन की समाप्ति के निर्णायक क्षण होते है। इस समय गर्भ से अपेक्षाकृत पहले के कमजोर क्षरण से भिन्न गाढी श्लेष्मा (जिसका पूर्ण मैथुन के पश्चात् स्त्रियो को कभी-कभी ज्ञान होता है) स्रवित होती है। कुछ अधिकारी विद्वान् यह मानते है कि क्षरणों के बाहर निकलने से ही स्त्रियो मे मैथुन पूर्ण हो जाता है, पर दूसरे यह मानते है कि इसकी समाप्ति प्रजनन-अगीय सकुचनो विशेषकर गर्भद्वार के निकट गर्भ के सकुचन से होती है। मैथुन के अन्तिम सोपान के समय श्लेष्मा से अनिश्चित रूप से बहुत समय पहले भी यौन भाग सिंचित हो सकते है। तालयुक्त सकुचन-प्रसारण भी कुछ समय पहले शुरू हो जाते है। पूर्ण मैथुन के अन्तिम सोपान मे इन दोनो कार्यो मे से किसी मे भी दृश्यमान वृद्धि नही होती। पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे यह अपेक्षाकृत विशेष रूप से स्नायविक अभिव्यक्ति मालूम होती है। व्यक्ति की दृष्टि से यह क्षण तनाव से मुक्ति की भावना और अनुकूल विश्रान्ति के साथ प्रकट होता है। परन्तु वस्तु-गत दृष्टि से इस चरम क्षण की अचूक परिभाषा करना इतना सरल नही होता और न अनिवार्य रूप से—जैसा कि पुरुषो मे लगभग [illegible] होता है—जल्दी-जल्दी सकुचन-प्रसारण होता है।

मैथुन मे गर्भ द्वारा अदा किए गए सक्रिय हिस्से के सम्बन्ध मे अब सन्देह नही किया जा सकता, पर इसलिए जल्दवाजी मे हम यह निष्कर्ष नही निकाल सकते कि शुक्राणुओ की सक्रिय गति नही होती। यदि यह गति सचमुच न भी हो जैसा कि अनेक अधिकारी व्यक्ति विश्वास करते है कि शुक्राणु स्त्री-अग मे एक सप्ताह या उससे अधिक समय तक अपनी सक्रियता कायम रख सकते है (यद्यपि इस सम्वन्ध मे विवाद है) तो भी यह स्पष्ट है कि उन्हे अपनी शक्ति का उपयोग करने के लिए पर्याप्त समय मिलता है। यहा यह और कह दिया जाए कि शिश्न के वास्तविक प्रवेश के विना यदि वीर्य केवल योनिमुख के समीप छोड दिया जाए, तो शुक्राणु केवल अपनी गति से डिम्वाणु तक पहुच सकते है। पूर्ण मैथुन मे सिर्फ गर्भाशय ही सक्रिय भाग नही लेता, वल्कि योनि भी सक्रिय हलचल मे सम्मिलित रहती है, इसलिए यह सम्भव जान पडता है कि कुछ स्त्रियो मे कई हालतो मे गर्भ-धारण की आकाक्षा योनि के वहिर्मुख तक सचरित हो सकती है। कुछ लोगो का यह भी विश्वास है कि स्त्रिया, विशेषतः अपेक्षाकृत आदिम जातियो की स्त्रियां, योनि से वीर्य को वाहर निकालने मे उसी आवेग का, जो प्रसव के समय शिशु को वाहर निकालने मे सक्रिय होता है, सहारा ले सकती है और इस ढग को गर्भ-निरोध के लिए उपयोग मे लाया जा सकता है। यौन उत्तेजना के दौरान मे वीर्य और योनि की सम्मिलित क्रियाओ के कारण यह सम्भव है कि योनिद्वार पर त्यक्त होने पर भी, यहा तक कि सतीच्छद झिल्ली के अक्षत रहने पर भी वीर्य गर्भाशय मे पहुच जाए। इस तरह योनि के वाहर वीर्य-निक्षेप गर्भ-निरोध का उपयुक्त तरीका नही है। परिणामस्वरूप जव पति को इस वात का पूरा विश्वास हो कि उसने अपनी स्त्री के साथ वास्तविक मैथुन नही किया, फिर भी गर्भ ठहर जाए तो यह स्त्री के दुश्चरित्र होने का काफी सवूत नही है।

स्त्रियो मे जव साधारण यौन उत्तेजना होती है तो मासपेशियो की उत्तेजना जिस तरह से होती है, पूर्ण मैथुन के समय मासपेशियो की उत्तेजना उससे कुछ भिन्न प्रकार से होती है। यह वात मामूली तरीके से जानी जा सकती है। पर स्त्रियो मे पूर्ण मैथुन के समय मासपेशियो की होनेवाली उत्तेजना वहुत जटिल और अस्पष्ट होती है। यह कहा जा सकता है कि पुरुष और स्त्री दोनो मे पूर्ण मैथुन सकुचन-प्रसारण की एक शृखला है, जिसके द्वारा धीरे-धीरे एकत्र की हुई स्नायविक शक्ति का भण्डार परिक्षिप्त होता है। स्त्रियो मे पुरुषो की ही तरह शक्ति की यह मुक्ति एक विशिष्ट लक्ष्य सामने रखकर चलती है—एक के लिंग मे वीर्य का निष्कासन, दूसरी की योनि मे उसका सचरण। दोनो कार्यो मे ही मैथुन मे आनन्द और सन्तोष होता है। यौन क्षेत्र की मासपेशियो की सक्रियता मैथुन का एक

आवश्यक तत्त्व है।

यद्यपि मैथुन के समय पुरुष के चेहरे मे शक्ति की अत्यधिकता और स्त्री मे कमनीयता दिखाई देती है, तथापि पूर्ण मैथुन के शुरू होते ही चेहरा अव्यवस्थित हो जाता है। आख की पुतलिया प्रसारित हो जाती है, नथुने फैल जाते है, मुख मे लाला क्षरण की प्रवृत्ति होती है और जीभ फिरने लगती है। ये वाते मिलकर यह सूचित करती है कि इन्द्रियतृप्ति निकट आती जा रही है। यह महत्त्वपूर्ण है कि इस समय कुछ जानवरो मे कान शाब्दिक अर्थ मे खडे हो जाते है। ऐसे समय कुछ लोगो मे टूटे-फूटे और अर्थहीन शब्द वोलने की भी प्रवृत्ति होती है। आख की पुतलियो के प्रसारित हो जाने के कारण किसी चीज़ को देखने की अनिच्छा होती है और मैथुन के दौरान मे इस कारण आखे अक्सर वन्द कर ली जाती है। मालूम यह होता है कि यौन उत्तेजना के प्रारम्भ मे आख की पेशियो की सौम्यता वढ जाती है। पलको को ऊपर उठाने वाली पेशिया सकुचित हो जाती है और इसलिए आखे वडी दिखलाई देने लगती है और उनकी गति और चमक वढ जाती है। पेशियो की सौम्यता के कारण दृष्टि मे तिरछापन आ सकता है।

मैथुन की प्रक्रिया से होनेवाला अवयव-सम्वन्धी जल्दी-जल्दी सकुचन-प्रसारण इतना गहरा होता है कि कभी-कभी मैथुन के पश्चात् गम्भीर परिणाम हो जाते है। जानवरो मे भी यह वात देखी गई है। मनुष्य-जाति मे विशेषत पुरुषो की तुलना मे पूर्ण मैथुन की प्रक्रिया स्त्रियो मे वहुत धीमी होती है, इसलिए उन्हे प्राकृतिक सुरक्षा प्राप्त रहती है, पर पुरुषो मे मैथुन के फौरन वाद मृत्यु तक होने की वल्कि वहुत सी अन्य गडवडियो तथा दुर्घटनाओ के होने की खवरे मिली है। ये नतीजे मुख्यत रक्तवाहिनियो तथा मासपेशियो की उत्तेजना के (जो पूर्ण मैथुन की प्रक्रिया मे सन्निहित होती है) कारण होते है। प्रथम मैथुन के पश्चात् जवान पुरुषो मे मूर्च्छा, वमन, अनियन्त्रित मूत्रत्याग, मलत्याग आदि होना देखा जाता है। मिर्गी आने की वात भी अक्सर सुनी गई है। कभी-कभी विविध अग क्षतिग्रस्त हो जाते है, यहा तक कि तिल्ली फट जाती है। परिपक्व अवस्था के पुरुषो मे कभी-कभी धमनिया रक्तचाप को सहन नही कर पाती और पक्षाघात के साथ मस्तिष्क मे रक्तपात हो जाता है। जवान पत्नियो अथवा वेश्याओ के साथ मैथुन की उत्तेजना से अधिक उम्र के पुरुषो की कभी-कभी मृत्यु भी हो गई है।

कुछ भी हो, ऐसे नतीजे अपवाद है। वे ऐसे लोगो मे पाए जाते है जो असामान्य रूप से अनुभूतिशील है अथवा जो अदूरदर्शिता के कारण यौन स्वास्थ्य-विज्ञान के स्पष्ट नियमो का अतिक्रमण करते है। मैथुन इतनी अधिक स्वाभाविक प्रक्रिया है और यह शरीर का इतना अतरग और अन्तर्निहित कार्य है कि वह अक्सर

मैथुन मे गर्भ द्वारा अदा किए गए सक्रिय हिस्से के सम्बन्ध मे अब सन्देह नही किया जा सकता, पर इसलिए जल्दबाजी मे हम यह निष्कर्ष नही निकाल सकते कि शुक्राणुओं की सक्रिय गति नही होती। यदि यह गति सचमुच न भी हो जैसा कि अनेक अधिकारी व्यक्ति विश्वास करते है कि शुक्राणु स्त्री-अग मे एक सप्ताह या उससे अधिक समय तक अपनी सक्रियता कायम रख सकते है (यद्यपि इस सम्बन्ध मे विवाद है) तो भी यह स्पष्ट है कि उन्हे अपनी शक्ति का उपयोग करने के लिए पर्याप्त समय मिलता है। यहा यह और कह दिया जाए कि शिश्न के वास्तविक प्रवेश के बिना यदि वीर्य केवल योनिमुख के समीप छोड दिया जाए, तो शुक्राणु केवल अपनी गति से डिम्बाणु तक पहुच सकते है। पूर्ण मैथुन मे सिर्फ गर्भाशय ही सक्रिय भाग नही लेता, बल्कि योनि भी सक्रिय हलचल मे सम्मिलित रहती है, इसलिए यह सम्भव जान पडता है कि कुछ स्त्रियो मे कई हालतो मे गर्भ-धारण की आकाक्षा योनि के बहिर्मुख तक सचरित हो सकती है। कुछ लोगो का यह भी विश्वास है कि स्त्रिया, विशेषत अपेक्षाकृत आदिम जातियो की स्त्रिया, योनि से वीर्य को बाहर निकालने मे उसी आवेग का, जो प्रसव के समय शिशु को बाहर निकालने मे सक्रिय होता है, सहारा ले सकती है और इस ढग को गर्भ-निरोध के लिए उपयोग मे लाया जा सकता है। यौन उत्तेजना के दौरान मे वीर्य और योनि की सम्मिलित क्रियाओ के कारण यह सम्भव है कि योनिद्वार पर त्यक्त होने पर भी, यहा तक कि सतीच्छद झिल्ली के अक्षत रहने पर भी वीर्य गर्भाशय मे पहुच जाए। इस तरह योनि के बाहर वीर्य-निक्षेप गर्भ-निरोध का उपयुक्त तरीका नही है। परिणामस्वरूप जब पति को इस बात का पूरा विश्वास हो कि उसने अपनी स्त्री के साथ वास्तविक मैथुन नही किया, फिर भी गर्भ ठहर जाए तो यह स्त्री के दुश्चरित्र होने का काफी सबूत नही है।

स्त्रियो मे जब साधारण यौन उत्तेजना होती है तो मासपेशियो की उत्तेजना जिस तरह से होती है, पूर्ण मैथुन के समय मासपेशियो की उत्तेजना उससे कुछ भिन्न प्रकार से होती है। यह बात मामूली तरीके से जानी जा सकती है। पर स्त्रियो मे पूर्ण मैथुन के समय मासपेशियो की होनेवाली उत्तेजना बहुत जटिल और अस्पष्ट होती है। यह कहा जा सकता है कि पुरुष और स्त्री दोनो मे पूर्ण मैथुन सकुचन-प्रसारण की एक शृखला है, जिसके द्वारा धीरे-धीरे एकत्र की हुई स्नायविक शक्ति का भण्डार परिक्षिप्त होता है। स्त्रियो मे पुरुषो की ही तरह शक्ति की यह मुक्ति एक विशिष्ट लक्ष्य सामने रखकर चलती है—एक के लिंग से वीर्य का निष्कासन, दूसरी की योनि मे उसका सचरण। दोनो कार्यो मे ही मैथुन से आनन्द और सन्तोष होता है। यौन क्षेत्र की मासपेशियो की सक्रियता मैथुन का एक

आवश्यक तत्त्व है।

यद्यपि मैथुन के समय पुरुष के चेहरे मे शक्ति की अत्यधिकता और स्त्री मे कमनीयता दिखाई देती है, तथापि पूर्ण मैथुन के शुरू होते ही चेहरा अव्यवस्थित हो जाता है। आख की पुतलिया प्रसारित हो जाती है, नथुने फैल जाते है, मुख मे लाला क्षरण की प्रवृत्ति होती है और जीभ फिरने लगती है। ये बाते मिलकर यह सूचित करती है कि इन्द्रियतृप्ति निकट आती जा रही है। यह महत्त्वपूर्ण है कि इस समय कुछ जानवरो मे कान शाब्दिक अर्थ मे खडे हो जाते है। ऐसे समय कुछ लोगो मे टूटे-फूटे और अर्थहीन शब्द बोलने की भी प्रवृत्ति होती है। आख की पुतलियो के प्रसारित हो जाने के कारण किसी चीज को देखने की अनिच्छा होती है और मैथुन के दौरान मे इस कारण आखे अक्सर बन्द कर ली जाती है। मालूम यह होता है कि यौन उत्तेजना के प्रारम्भ मे आख की पेशियो की सौम्यता बढ जाती है। पलको को ऊपर उठाने वाली पेशिया सकुचित हो जाती है और इसलिए आखे बडी दिखलाई देने लगती है और उनकी गति और चमक बढ जाती है। पेशियो की सौम्यता के कारण दृष्टि मे तिरछापन आ सकता है।

मैथुन की प्रक्रिया से होनेवाला अवयव-सम्बन्धी जल्दी-जल्दी सकुचन-प्रसारण इतना गहरा होता है कि कभी-कभी मैथुन के पश्चात् गम्भीर परिणाम हो जाते है। जानवरो मे भी यह बात देखी गई है। मनुष्य-जाति मे विशेषत पुरुषो की तुलना मे पूर्ण मैथुन की प्रक्रिया स्त्रियो मे बहुत धीमी होती है, इसलिए उन्हे प्राकृतिक सुरक्षा प्राप्त रहती है, पर पुरुषो मे मैथुन के फौरन बाद मृत्यु तक होने की बल्कि बहुत सी अन्य गडबडियो तथा दुर्घटनाओ के होने की खबरे मिली है। ये नतीजे मुख्यत रक्तवाहिनियो तथा मासपेशियो की उत्तेजना के (जो पूर्ण मैथुन की प्रक्रिया मे सन्निहित होती है) कारण होते है। प्रथम मैथुन के पश्चात् जवान पुरुषो मे मूर्च्छा, वमन, अनियन्त्रित मूत्रत्याग, मलत्याग आदि होना देखा जाता है। मिर्गी आने की बात भी अक्सर सुनी गई है। कभी-कभी विविध अग क्षतिग्रस्त हो जाते है, यहा तक कि तिल्ली फट जाती है। परिपक्व अवस्था के पुरुषो मे कभी-कभी धमनिया रक्तचाप को सहन नही कर पाती और पक्षाघात के साथ मस्तिष्क मे रक्तपात हो जाता है। जवान पत्नियो अथवा वेश्याओं के साथ मैथुन की उत्तेजना से अधिक उम्र के पुरुषो की कभी-कभी मृत्यु भी हो गई है।

कुछ भी हो, ऐसे नतीजे अपवाद है। वे ऐसे लोगो मे पाए जाते है जो असामान्य रूप से अनुभूतिशील है अथवा जो अदूरदर्शिता के कारण यौन स्वास्थ्य-विज्ञान के स्पष्ट नियमो का अतिक्रमण करते है। मैथुन इतनी अधिक स्वाभाविक प्रक्रिया है और वह शरीर का इतना अतरग और अन्तर्निहित कार्य है कि वह अक्सर

—यहा तक कि शरीर अस्वस्थ रहने पर भी—हानिकर नही होता है। बहुधा अनु-कूल स्थिति मे उसका परिणाम पूर्ण रूप से लाभदायक होता है। सामान्यत पुरुषो मे इससे मासपेशियो को विश्राम मिलने, रक्तचाप के कम होने से गहरे सन्तोष की भावना और एक मधुर आलस्य की भावना का उदय होता है, और अक्सर एक प्रबल और कष्टकर धुन से मानसिक मुक्ति मिलने का अनुभव होता है, साथ ही उत्तेजना के दीर्घकालीन तनाव से राहत मिलती है। उचित सुखद परिस्थितियो मे मैथुन करने पर किसी प्रकार का दर्द, थकावट, खिन्नता अथवा मानसिक अस्थिरता नही होती। यदि कई बार मैथुन किया गया तो और बात है, नही तो स्त्रियो मे आलस्य की प्रवृत्ति उतनी स्पष्ट नही होती। मैथुन से विश्रान्ति और आत्मसन्तोष की अनुभूति होती है और अक्सर मुक्त और आनन्ददायक शक्ति प्राप्त होती है। सन्तोपजनक मैथुन के बाद स्त्रिया कई घण्टो तक मादकता जैसी अनुभव कर सकती है। उसकी कोई खराब प्रतिक्रिया कभी नही होती।

इस तरह हम देखते है कि उत्तेजना और पूर्ण मैथुन एक ही प्रक्रिया के दो सोपान है। यह प्रक्रिया प्रकृति की उस वृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है जो उसने शरीरो को उस शक्ति से भरने के उद्देश्य से बनाई है, जो पूर्ण मैथुन की क्रिया मे प्रजनन-कोशो को मुक्त करते और उनका सयोग होते समय निकल जाए। पूर्ण मैथुन से प्रजनन के परम लक्ष्य की पूर्ति होती है, पर जब इस लक्ष्य की कृत्रिम रूप से रोकथाम भी की जाती है, तब भी मैथुन समस्त शरीर मे ऐसे परिवर्तन उत्पन्न करता है जो शारीरिक और मानसिक रूप से लाभदायक होते है।

सहायक पुस्तक-सूची

ए० मोल—The Sexual Life of the Child

हैवलाक एलिस—'Analysis of the Sexual Impulse', Vol III and The Mechanism of Detumescence', Vol. V, of Studies in the Psychology of Sex

वेन डि वेल्डे—Ideal Marriage, Fertility and Sterility in Marriage

कामोत्तेजन के केन्द्र

उक्त नाम अब शरीर के उन भागो को दिया जाता है जो प्राक्क्रीडा की प्रक्रिया मे यौन रूप से अति अनुभूतिशील होते है । सामान्यत सभी व्यक्तियो मे कुछ अग ऐसे होते है जो शरीर के दूसरे अगो और भागो से यौन दृष्टि से सम्वेदनशील होते है, कई अग तो ऐसे होते है जो विशेष अवसरो पर ही सम्वेदनशील हो जाते है । सम्वेदनशीलता की यह मात्रा परिस्थिति के अनुसार घट-बढ सकती है और स्वाभाविक रूप से उस समय सबसे अधिक रहती है जब पहले से ही उस दिशा मे कोई रागात्मक प्रवृत्ति विद्यमान हो । प्रजनन-अग का क्षेत्र, मुख तथा स्त्रियो मे इनके अलावा स्तनाग्र सामान्यत उत्तेजना के केन्द्र कहे जाते है । कान, गर्दन के पिछले हिस्से का ऊपरी भाग, पुरुष के वक्षाग्र, काख, उगलिया, मलद्वार तथा जाघे, ये सभी उत्तेजना के साधारण केन्द्र ही है ।

कामोत्तेजन के केन्द्र की धारणा 'सिम्पैथी' (सहानुभूति) की प्राचीन धारणा से उत्पन्न हुई । सबसे पहले चिकित्सा-विज्ञान के निदानशास्त्र मे इसके सम्बन्ध मे स्पष्ट रूप से कहा गया । चार्कट ने इन क्षेत्रो को मिरगी के सकुचन-प्रसारण वाले क्षेत्र बताया । ये क्षेत्र ऐसे थे जो पहले डिम्बाशय मे सम्बन्धित पाए गए । फिर बाद को इन्हे और भी फैला हुआ पाया गया । ये क्षेत्र ऐमे थे जिनपर दबाव डालने से मिरगी वाले सकुचन-प्रसारणयुक्त हमले या तो शुरू हो सकते थे या बन्द हो सकते थे, फिर भी चार्कट ने इन क्षेत्रो को यौन आवेग से सम्बद्ध नही किया । सन् १८८१ मे पेरिस के शाबार ने दिखला दिया कि सामान्य दशा मे विशेषकर स्त्रियो मे त्वचा के ऊपरी हिस्से पर कुछ क्षेत्र ऐसे होते है जिनकी तुलना मिरगी के सकुचन-प्रसारण वाले केन्द्रो से हो सकती है । इन्हे कामोत्तेजन के केन्द्र कहा जा सकता है, और इन्हे कुछ दशाओ मे हलकी और द्रुत उत्तेजना देने से न केवल कामोद्रेक हो सकता है, बल्कि पूर्ण मैथुन की तैयारी होती है और उसे दिशा मिलती है । बाद को चलकर फेरे को यह बात मालूम हुई, जब उन्होने चार्कट के मिरगी के सकुचन-प्रसारण वाले क्षेत्रो से उनकी तुलना की (स्मरण रहे कि शाबार इस बात का निरीक्षण करने से चूक गए थे) तो उन्होने उनको कामोत्तेजन के केन्द्र का नाम दिया और तब से यही नाम चालू हो गया । यह अव्यापक रूप से माना जाता है कि स्वस्थ व्यक्ति मे कामोत्तेजन के क्षेत्र वही होते है जो एक अस्वस्थ व्यक्ति मे मिरगी के उद्भव के क्षेत्र बन जाते है और इस तरह दोनो मे समरूपता ही नही, बल्कि उससे कुछ अधिक भी है । फ्रायड ने उनका गहराई से सूक्ष्म अध्ययन किया । उन्होने जिजीविषा के प्रथम अथवा आत्ममैथुनीय सोपान का वर्णन करते हुए बताया कि उसमे यौन

मनोवेग का कोई पात्र नही होता और इसलिए उसका उद्देश्य कामोत्तेजन के केन्द्रो मे ही अवरुद्ध हो जाता है। इसके विपरीत यौवनोद्गम के बाद वास्तविक यौन उद्देश्य प्रकट हो जाते है और इसलिए पहले के जीवन मे प्राप्त आनन्द का प्राक्-भाग ही अब आगे के आनन्द के लिए एक सीढी बन जाता है।

इस तरह देखने पर ज्ञात होगा कि यौन उत्तेजना के क्षेत्र स्वाभाविक यौन जीवन के न्यायसगत और महत्त्वपूर्ण भाग है। प्रेम की पूर्ण परितृप्ति कैसे प्राप्त हो, इसकी शिक्षा मे इस सम्बन्ध मे ज्ञान अनिवार्य है। प्रत्येक स्त्री के अपने प्रकटीकृत या सुप्त उत्तेजनाक्षेत्र होते है और प्रेमी का यह कार्य है कि वह प्रेमक्रीडा के द्वारा उन क्षेत्रो का आविष्कार कर उन्हे विकसित करे जिससे कि अन्तिम उत्तेजना की वह अवस्था पैदा की जा सके जो सही और अस्वाभाविक रूप से यौन मिलन की प्रक्रिया की पहली मजिल है।

प्रत्येक व्यक्ति का आवयविक गठन अलग-अलग है, यद्यपि सबका साचा सामान्य होता है। व्यक्ति और व्यक्ति मे इस प्रभेद के कारण ही प्रत्येक के लिए यौन निर्वाचन के घटक और होते है। स्पर्शसुख को आधार रखकर यह बहुत आसानी से दिखाया जा सकता है कि व्यक्तियो मे कामोत्तेजन के क्षेत्र अलग-अलग होते है।

सहायक पुस्तक-सूची

हैवलाक एलिस—'Erogenic Zones' in Studies in the Psychology of Sex, Vol VII

फ्रायड—Three Contributions to Sexual Theory.

प्रेमक्रीड़ा का जीव-विज्ञान

प्रेमक्रीडा सही मानो मे एक जीव-वैज्ञानिक प्रक्रिया है और प्राणि-जगत् मे जहा भी स्त्रियो और पुरुषो का अस्तित्व है, प्रेमक्रीडा दृष्टिगोचर होती है। बात यह है कि यौन मिलन के लिए यौन उत्तजना की पराकाष्ठा धीरे-धीरे प्राप्त होती है। यह उसीको प्राप्त करने की मानो प्रक्रिया है।

उभयलैंगिक स्लग नामक कीडो मे भी प्रेमक्रीडा की बहुत लम्बी-चौडी प्रक्रिया होती है। दोनो धीरे-धीरे पारस्परिक गतिपथ का अनुगमन करते है। वे एक-दूसरे के इर्द-गिर्द छाती के बल रेगते है, एक-दूसरे के पीछे के हिस्से को मुह से छूते है और उनमे से बहुत काफी परिमाण मे आम क्षरित होता है। अन्ततोगत्वा

जननेन्द्रिय आगे बढाते है और वे एक-दूसरे से बल खाकर लिपट जाते है। इस प्रकार कई बार सुन्दर आकार बन जाता है, इन्द्रधनुष की तरह रग दिखाई पडता है और पूर्ण उत्तेजना या स्फीति पहुच जाती है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे हम सारी प्रकृति मे देख सकते है, यहा तक कि सभ्यता के उच्चतम सोपानो मे भी हम इसे मानसिक सतह पर देख सकते है।

प्रेमक्रीडा या रतिक्रीडा ससार के दूरतम भागो मे पाई जाने वाली बहुत सी चिडियो की किस्मो मे प्रमुख रूप से पाई जाती है। इनका बडे परिश्रम से अध्ययन किया गया है। चिडियो के मनोहर पख, उनका गायन, आत्मप्रदर्शन, ठुमक-ठुमक-कर चलना, नर्तन आदि सभी बाते, जैसा कि लगभग सभी अधिकारी विद्वान् मानते है, प्राथमिक रूप से रतिक्रीडा के ही अग है। यह मानो एक तरीका है जिससे पुरुष अपने को आविष्कृत करता है और अपनी वाछित सहचरी मे सहचर के लिए कामना उत्पन्न करता है और यौन मिलन के लिए उपयुक्त उत्तेजना उत्पन्न करता है। यही बात सारी सभ्यता मे देखी जा सकती है। हेग नगर के एक उच्च अधिवासी ने हिर्शफेल्ड से यह कहा कि महायुद्ध के जमाने मे जब वहा अगरेज सेना रहा करती थी, तो कई सौ डच लडकिया अगरेज सैनिको की मोहक तथा तेज़ चाल से मुग्ध होकर मा बन गई। उसका मतलब सैनिको के विशेष तेज और हल्के कदमो के आकर्षण से था।

सभ्यता की अवस्थाओ मे आलस्य, विलासिता और अतिपुष्टि के कारण यौन उत्तेजना तुलनामूलक रूप से आसान है, और यौन स्फीति लगभग हर समय बनी रहती है, इसलिए रतिक्रीडा का महत्त्व घट गया है फिर भी वह रहती है। हा, उसका रूप पहले के मुकाबले मे कही विविध और सुकुमार और अक्सर मुख्य रूप से मानसिक हो जाता है।

रतिक्रीडा का इस जीव-वैज्ञानिक तथ्य के साथ सम्बन्ध है कि जानवरो तथा असभ्य मनुष्यो मे और कुछ हद तक शायद सभ्य मनुष्यो मे विशेषकर स्त्रियो मे कामुकता विशेष-विशेष समय पर जोर मारती है और लगातार चालू नही रहती है। यदि ऐसा होता कि दोनो लिंगो के प्राणियो मे उत्तेजक कारण पैदा होते ही हर समय फौरन प्रतिक्रिया हो सकती, तो रतिक्रीडा के लिए कम से कम अवसर होता, और लिंगस्फीति या योनिस्फीति की अवस्था प्राप्त करने मे देर न होती। पर होता ऐसा है कि दीर्घ कालो तक यौन प्रवृत्ति सुप्त रहती है। रतिक्रीडा को प्रयास का वह मानसिक पहलू बताया जा सकता है जिससे वह सुप्त प्रवृत्ति जगाई जाती है।

अधिकाश उच्च प्राणियो मे साल मे एक या दो बार, वसन्त या पतझड ऋतु मे या दोनो मे प्रजनन का मौसम आता है। असभ्य जातियो मे भी इसी प्रकार के

प्रजनन के मौसम होते है। यह देखा गया है कि ससार के दूर-दूर के भागो मे (जिनका आपस मे कोई सम्बन्ध नही है) मदनोत्सव वसन्त या फसल कटने पर या दोनो अवसरो पर मनाए जाते है। इन मौको पर यौन मिलन होता है और शादिया हो जाती है। सभ्य देशो मे भी किसी खास मौसम मे यानी वसन्त या कई वार पतझड ऋतु मे गर्भाधान वहुतायत से होता है। वह आदिम युग के प्रजनन के मौसम का ही अवशिष्ट अश है। दोनो क्षेत्रो मे कारण एक ही है, चाहे वे कुछ भी हो। क्या कारण हो सकते है इस सम्बन्ध मे मतैक्य नही है। डर्कहाईम आदि का कहना है कि यह तथा इस प्रकार की सभी बातो जैसे अपराध और आत्महत्या मे विशेष समय पर तेजी आ जाना सामाजिक कारणो से उत्पन्न होता है, पर गेडेकेन आदि का कहना है कि सूर्य की रासायनिक किरणो का वसन्त ऋतु मे अधिक तेज होना ही असली कारण है। हेक्रैफ्ट आदि मानते है कि ऐसा गरमी से होता है, पर दूसरे लोग शायद ज्यादा सही तौर पर यह मानते है कि वसन्त ऋतु के प्रारम्भ मे जो मद्धिम गरमी होती है, और शीत ऋतु के प्रारम्भ मे जो गुलावी जाडा पडता है वह इसका कारण है।

हाल के वर्षो मे सभ्य जाति के पुरुपो मे यौन वृत्ति मे विशेष समय पर तेजी आने की बात पाई गई है। स्मरण रहे कि यह तेजी स्त्रियो के साथ सम्वन्ध के अलावा भी परिलक्षित होती है। ब्रह्मचर्य से रहने वाले लोगो के स्वप्नदोप-सम्बन्धी आकडो से दिलचस्प तथ्य निकाले गए है। १८८८ मे जूलियस नेल्सन ने पहले-पहल पुरुपो मे २८ दिन लम्बे मासिक यौन वृत्त की मौजूदगी के पक्ष मे प्रमाण पेश किए। श्री पेरीकोस्ट ने दीर्घतर और व्यापकतर शोध के आधार पर यह नतीजा निकाला कि चान्द्र ढग का यानी २९½ दिन का मासिक वृत्त मानने के पक्ष मे कुछ तथ्य है, यद्यपि उन्होने अपने तथ्यो से जो उपसहार निकाले, उनपर अभी झगडा है। वान रोमर ने कुछ ऐसे तथ्य निकाले, जिससे वे इस नतीजे पर पहुचे कि सम्भोग मे जो इच्छाकृत वीर्यपात होता है, उसे अनिच्छाकृत वीर्यक्षरणो के साथ एक पक्ति मे लाया जा सकता है। उन्होने यह दिखलाया कि एक अविवाहित व्यक्ति के द्वारा किए हुए सम्भोग एक मासिक वृत्त मे आते है, जिनमे से जो दो सवसे तगडे सम्भोग होते है, वे पेरीकोस्ट के आकडो के साथ मिल जाते है। उन्होने यह भी दिखलाया कि पूर्णिमा के समय मे मुख्य तगडा सम्भोग होता है और नम्वर दो तगडा सम्भोग शुक्ल पक्ष के प्रारम्भ मे होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि तगड़े यौन सम्भोग उन्ही दिनो होते है जिन दिनो ससार के बहुत से भागो मे आदिम जातियो मे यौन वृत्ति तेजी पर होती है, और मदनोत्सव हुआ करते है। इसकी चाहे कुछ भी व्याख्या की जाए, बात ऐसी ही है। यहां यह वता देना चाहिए कि यह उपसहार अन्तिम नही है,

और मानरोफाक्स तथा दूसरो ने इनके आधारभूत तथ्यो पर सन्देह प्रकट किया है ।

अनिच्छाकृत यौन क्रिया का एक साप्ताहिक वृत्त निकाला जा सकता है जिसमे रविवार या रविवार से मिले हुए किसी दिन सबसे तेजी रहती है। ऐसा शायद सामाजिक कारणो से होता है। पर यह बात अनिच्छाकृत यौन क्रिया के वार्षिक वृत्त पर कही नही जा सकती, जिस सम्बन्ध मे पहले-पहल १८९८ मे मैने ही तथ्य पेश किए। इस सम्बन्ध मे बाद को मैने और प्रमाण दिए। इन प्रमाणो से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि साल मे दो मौको पर स्वत स्फूर्त यौन क्रिया तेजी पर होती है, एक वसन्त ऋतु और दूसरा पतझड मे। यह अक्सर पाया गया है कि पतझड मे ही यौन वृत्ति सबसे ज्यादा जोर पकडती है।

इस समय स्त्रियो मे अनिच्छाकृत क्रिया के वार्षिक वृत्त के अस्तित्व के सम्बन्ध मे ब्योरेवार या व्यापक सबूत प्राप्त नही है। पर स्त्रियो मे मासिक धर्म के अस्तित्व से यह तो प्रमाणित है कि उनमे विशेष समय पर यौन वृत्ति का जोर पकडना स्वाभाविक और स्पष्ट है। इस दृष्टि से स्त्रिया पुरुषो से कही अधिक गहराई तक आदिम है।

मासिक धर्म का प्रारम्भ कैसे हुआ, इसपर बहुत विचार हुआ। ऐसा समझा जाता था कि निम्न दर्जे के ऐसे प्राणी जो ज्वार-भाटे के प्रभाव मे रहते हैं, चन्द्रमा की वृद्धि और घटती के अनुसार तेजी तथा मन्दा दिखलाएगे। पर कार्य-क्षेत्र मे ऐसा शायद ही पाया जाता हो। शेल मछलिया चन्द्रमा से साधारणत प्रभावित नही, होती, पर स्वेज की खाडी मे सामुद्रिक अर्चिन (urchins) चन्द्रमा का अनुसरण करते है यानी जब चन्द्रमा बढता है तब वे बढते है, जब वह घटता है तब घटते है। उनका आकार अण्डो पर निर्भर है और वे पूर्णिमा के दिन बच्चे देते है। इसलिए यह स्पष्ट है कि प्राणि-शास्त्र की दृष्टि से इतने दूर का प्रभाव कभी चौपायो तक प्रसारित नही हो सकता और दूसरी तरफ देखिए तो स्तनपायी जानवरो मे मासिक धर्म का वृत्त तब तक शुरू ही होता नही दीखता जब तक कि हम मनुष्य के नजदीक वाले उच्च वानरो मे पहुच नही जाते। ऐरेनियस ने यह सुझाव दिया है और मानरोफाक्स ने, जिसने विशेष रूप से इस विषय का अध्ययन किया है, इसे माना है कि मासिक धर्म का कारण वैद्युतिक है। उन्होने दिखलाया है कि वातावरण की बिजली एक छन्द के अनुसार परिवर्तित होती है, जो २७½ दिन मे उच्चतम बिन्दु पर पहुच जाती है, उतने ही समय मे चाद पृथ्वी की परिक्रमा कर लेता है। उन्होने जन्मो की रेखा मे भी कुछ मामूली हद तक मासिक धर्म का नियम प्राप्त किया।

वन्दरो मे मासिक धर्म का प्रारम्भ होने लगता है, इसके साथ-साथ उनमे आदिमतर मौसमी प्रभाव भी पाया जाता है। इसके माने यह हुए कि वन्दरो मे

लगभग एक मास मे मासिक धर्म होता है। साथ ही वे साल के कुछ ही भागो मे प्रजनन करते है। इस प्रवृत्ति का कुछ अवशिष्ट भाग मनुष्य-जाति मे भी मौजूद है।

प्राणियो मे जिन दिनो मादा गरम हो जाती है, उन्ही दिनो वह साधारणत सम्भोग करने देती है। नारियों मे मासिक धर्म के इर्द-गिर्द ही कामेच्छा प्रवलतम होती हे, पर मनुष्यो मे विशेपकर सभ्यता मे कामेच्छा और भी व्याप्त है। पहले के अधिकाश अधिकारी विद्वान् यह मानते थे कि मासिक धर्म रुपी सकट के वाद या पहले ही कामेच्छा प्रवल होती हे, उदाहरणस्वरूप क्राफ्ट एविग यह मानते थे कि मासिक धर्म के वाद ही कामेच्छा प्रवल होती है। आटो ऐडलर का कहना था कि कामेच्छा मासिक धर्म के पहले, उसके दौरान मे तथा वाद को वढती है। कासमान का कहना था कि मासिक धर्म के वाद ही वल्कि स्राव के अन्तिम दिनो मे ही सम्भोग वाछनीय तथा उन्ही दिनो उसकी अधिक माग होती है। गियो का कहना था कि मासिक धर्म के वाद के आठ दिन स्त्रियो मे कामेच्छा प्रवल होती है। हैरी कैम्पवेल ने मजदूर-वर्ग की स्वस्थ स्त्रियो मे कामेच्छा की वृद्धि पर इस तरह से जाच की कि जव इन स्त्रियो के पति लन्दन के एक अस्पताल मे भर्ती होते थे तो कैम्पवेल उनसे अन्तरग वातचीत करते थे। इस प्रकार उन्हे पता लगा कि दो तिहाई पत्नियो मे कामेच्छा मासिक धर्म के पहले या उसके दौरान मे या उसके वाद या तीनो मौको पर वढी हुई होती है।

अव हमारे सामने पहले से अच्छे आकडो पर अधारित जाच के परिणाम है। डाक्टर कैथरायन डैविस ने दो हजार से अधिक स्त्रियो के यौन जीवन का अध्यनन करने के बाद यह नतीजा निकाला कि मासिक धर्म के दो दिन पहले और उसके वाद एक हफ्ते तक कामेच्छा प्रवलतम होती है। अधिकाश शोध करने वालो के विपरीत उन्हे यह मालूम हुआ कि कामेच्छा मासिक धर्म के पहले प्रवल होती है न कि बाद को। उनके अनुसार ६९% मामलो मे ऐसा ही होता है जब कि दूसरे अन्वेषको के अनुसार मासिक धर्म के बाद ३८%मामलो मे कामेच्छा प्रबल होती है। डा० जी० वी० हैमिल्टन ने पढे-लिखे वर्ग की सौ विवाहित स्त्रियो का वहुत ध्यान से अध्ययन किया और वह इस नतीजे पर पहुचे कि २५ स्त्रियो मे मासिक धर्म के तुरन्त वाद, १४ मे उसके तुरन्त पहले, २१ मे पहले और तुरन्त वाद को, ११ मे मासिक धर्म के दौरान मे और तुरन्त पहले तथा तुरन्त वाद को कामेच्छा प्रवल होती थी। १९ स्त्रियो मे कोई नियम नही पाया गया, वाकी १० ने किसी प्रकार की सूचना नही दी।

स्त्रियो मे जो लज्जा पाई जाती है वह प्राणियो मे अत्यन्त आदिम रूप मे यौन तेजी अथवा मन्दता पर निर्भर है और यौन मौसम के साथ मिलकर प्रेम-क्रीडा

का एक अनिवार्य अग है। इस लज्जा के सम्बन्ध मे हम प्रारम्भिक तौर पर यह कह सकते हैं कि लज्जा मादा के द्वारा यौन प्रस्ताव का प्रत्याख्यान है, ऐसी मादा जो अभी तक गरम नही हुई है। यह लज्जा इस युग के बाद भी यानी जब मादा गरम होने लगती है, तब भी रह जाती है और यौन प्रवृत्ति के साथ सयुक्त होकर (स्मरण रहे कि यह साल के अधिकाश समय मे रहती है) नाज व नखरा का रूप धारण कर लेती है। उस हालत मे मादा एक बार नर के पास आती है और फिर चली जाती है या नर को बीच मे रखकर वृत्ताकार दौडती रहती है। इस प्रकार से लज्जा प्राथमिक रूप से यौन प्रस्ताव का प्रत्याख्यान होने पर भी शीघ्र ही अन्य वृत्तियो के साथ सयुक्त हो जाती है और अन्ततोगत्वा मनुष्य मे आकर इन उपादानो से बनी है—(१) आदिम मादा द्वारा यौन मिलन के प्रस्ताव को अस्वीकार करना। बात यह है कि अभी वह जीवन की उस परिपक्व हालत मे नही पहुची है जबकि वह पुरुष के प्रस्ताव को स्वीकार कर सकती है। (२) घृणा उत्पन्न करने का भय। यह भय प्राथमिक रूप से इस कारण उत्पन्न होता है कि यौन केन्द्र मलमूत्र के द्वारो से सबध रखते है। (३) यौन बातो के जादू वाले प्रभाव का भय तथा इस भय पर आधारित आनुष्ठानिक तथा अन्य कर्तव्य कार्य। ये ही आगे चलकर शालीनता के सरल नियमो मे परिवर्तित हो जाते है। ये नियम लज्जा के मानो प्रतीक और उनके अभिवावक है। (४) अलकार तथा कपडो का विकास, जिनसे साथ ही लज्जा का पोषण होता है। लज्जा अपनी बारी मे एक तरफ पुरुष की कामेच्छा का दमन करती है और दूसरी तरफ अलकार तथा कपडो के विकास से स्त्री के नाज व नखरे को, जिसका उद्देश्य पुरुष को प्रलुब्ध करना है, सहारा मिलता है। (५) सम्पत्ति के रूप मे स्त्री के सम्बन्ध मे धारणा। इस प्रकार से एक मनोवेग को शक्तिशाली समर्थन मिल जाता है जो पहले से ही और भी अधिक प्राकृतिक तथा आदिम तथ्यो पर निर्भर है।

इस प्रकार बनी होने के कारण लज्जा निम्नतम जगली जातियो मे भी बहुत शक्तिशाली वस्तु बन जाती है, यद्यपि उसके रूप बहुत भिन्न होते है। बर्बर मानव मे भी यह शक्तिशाली रहती है। सस्कृति के किसी सोपान मे भी लज्जा-प्रदर्शन के साथ कपडो का इस्तेमाल जरूरी नही होता। कुछ जगली जातिया, जो स्वभाव से लगभग या सम्पूर्ण रूप से नगी रहती है, अब भी लज्जा का प्रदर्शन करती है, जबकि आधुनिक जीवन मे बिलकुल नगा रहने की कई नई प्रथाए चल पडी है, जैसे नगावाद, सूर्यस्नान, जनप्रिय जर्मन नगावादी सस्कृति इत्यादि, पर इनमे भी लज्जा अव्याहत रहती है। फिर भी सभ्यता मे इसकी शक्ति कुछ घट जाती है। यह कुछ हद तक एक अनुष्ठान के रूप मे और कुछ हद तक शालीनता के एक अग

के रूप मे रहती है, पर इसमे वह दुर्धर्ष शक्ति नही रह जाती जो निम्न कोटि की नस्लो मे पाई है। जो कुछ भी हो, लज्जा शुरू से लेकर आखिर तक प्रेमक्रीडा का एक अनिवार्य भाग रहती है। लज्जा के सयम तथा विलम्बो के विना पुरुष और स्त्री मे यौन स्फीति उत्पन्न नही हो सकती और न स्त्री को इस बात का मौका मिल सकता है कि उसकी कृपा के भिखारियो के गुण खुल जाए और इस प्रकार वह सबसे योग्य साथी को चुन लेने मे समर्थ हो।

सहायक पुस्तक सूची

हैवलाक एलिस—'Analysis of the Sexual Impulse,' in Vol III The Evolution of Modesty, 'The Evolution of Modesty' and 'The Phenomena of Sexual Periodicity' in Vol I Studies in the Psychology of Sex, and 'The Menstrual Curve of Sexual Impulse' in Vol VII

वालाशेक—Primitive Music

कालिन स्काट—'Sex and Art,' American Journal of Psychology, Vol VII, No 2

हीप— The Sexual Season of Mammals,' 'Quarterly Journal of Microscopical Science, 1900 and 'The Proportion of the Sexes' Philosophical Transactions of the Royal Society, Series B, Vol 200, 1909.

वेस्टरमार्क—The History of Human Marriage, Vol I.

जे० आर० बेकर—Sex in Man and Animals.

जकरमैन—The Social Life of Monkeys and Apes

मनरो फाक्स—Selene

मोरिस पारमिले—Nudism in Modern Life.

तरजीहात्मक संभोग : यौन निर्वाचन के घटक

यौन स्फीति की प्रक्रिया परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से विभिन्न ज्ञानेन्द्रियो के जरिए से प्राप्त उत्तेजक प्रभावो या मन पर पडने वाली छापो से उत्पन्न होती है। मोल का कहना है कि इस प्रकार मन पर जो भौतिक तथा मानसिक छाप साधारण रूप

से विभिन्न लिंग के व्यक्ति से प्राप्त होती है, उसीको पूर्वराग कहते हैं। यौन निर्वाचन से एक ऐसे व्यक्ति का निर्वाचन सूचित होता है जिसने सबसे अधिक उपयुक्त रूप से मन पर तगडी छाप दी।

यौन निर्वाचन शब्द का प्रयोग करने पर शायद हमपर यह लाछन लगाया जाय कि हम डार्विन के विकासवाद सिद्धात को उसके मौलिक रूप मे मानते है, जबकि वह इस रूप मे अक्सर माना नही जाता। हमे विशेषकर यह स्मरण रखना चाहिए कि ऐसा निर्वाचन प्राथमिक रूप से सौन्दर्यशास्त्र-सम्मत नही है। इस सम्बन्ध मे सौन्दर्य नही बल्कि अधिक ओजस्विता या बढकर सामने आने का गुण काम मे आता है। वालेस ने डार्विन के यौन-निर्वाचन-सिद्धात की जो अपव्याख्या की है, उसे छोड भी दिया जाय तो भी यह सिद्धान्त किस हद तक साधारण रूप से जन्तुओ पर लागू है, यह बात जन्तु-जीवन के बहुत से सतर्क छात्रो के लिए भी अभी तक सन्दिग्ध रह गई है। दूसरे शब्दो मे यह सदिग्ध है कि किस हद तक यौन मिलन मे इस प्रकार सहजात के अनुसार किया हुआ निर्वाचन (जहा तक कि वह निरीक्षण मे आ सकता है) कुछ जैव विशेषताओ को जीववैज्ञानिक रूप से आगे बढा सकता है यानी कहा तक खूबिया सन्तानो मे सचरित हो सकती है और किस हद तक वह दूसरे प्रकार की विशेषताओ के लिए रास्ता बन्द कर सकता है और इस प्रकार उत्तराधिकार को अनुकूल दिशा मे प्रभावित कर सकता है। हाल के वर्षो मे उत्तराधिकार मेडेलीय घटको के सम्बन्ध मे ज्ञान बराबर बढता गया है, उससे भी यौन निर्वाचन का प्रश्न धुधला पड गया है। यहा हमारा सम्बन्ध तरजीहात्मक सभोग से है, उसमे नस्ली उत्तराधिकार से सबद्ध यौन निर्वाचन के प्रश्न को खुला छोड दिया जाता है। यह भी बहुधा देखा जाता है कि मैथुन के क्षेत्र मे जिनको कम तरजीह दी जाती है वे उससे वचित रह जाते है। यदि हम निम्न जन्तुओ या निम्न स्तर पर स्थित मानव-जातियो को देखे, जो सभोग से एकदम रह जाते हो, तो हम देखते है कि ऐसे लोगो की सख्या बहुत थोडी है। पक्षियो मे पूर्वराग अक्सर बहुत ही गम्भीर, दीर्घ तथा अत्यन्त श्रमसाध्य होता है। ऐसा होने पर भी यह स्पष्ट नही है कि उनमे डार्विनीय अर्थ मे कोई निर्वाचन हुआ है। इलियट हावर्ड पक्षी-जीवन के एक बहुत ही निपुण अध्येता है। उन्होने 'ब्रिटिश वार्बलर'-सबधी अपने महान् ग्रथ मे इस निर्वाचन के सिद्धान्त को अस्वीकार नही किया है, फिर भी वे निर्वाचन के विस्तार तथा अर्थ के सम्बन्ध मे बहुत ही कुठा के साथ कुछ कहते है। पक्षी-जीवन के अन्य अधिकारी विद्वान् भी समान रूप से सावधान है और खुलकर कोई निर्णयात्मक बात नही कहते।

ऐसा सम्भव है कि बहुत दूर तक भूतकाल मे मनुष्यो मे तरजीहात्मक सम्भोग

का बोलबाला रहा हो, और इस प्रकार कम तरजीह-प्राप्त लोगो की विशेषताए बाद की पुश्तो मे सचरित न हो सकी हो। बेबीलोनिया की स्त्रियो मे यह प्रथा थी कि वे मिलिटा के मन्दिर मे देवदासी के रूप मे कुछ दिन बिताती थी। हमे यहा सस्कृति के उस अति आदिम सोपान से कोई मतलब नही है। फिर भी यह तथ्य अपनी जगह पर महत्त्वपूर्ण है। हेरोडोटस उन स्त्रियो के सबन्ध मे यह बताते है कि जो स्त्रिया कम आकर्षक थी, उन्हे किसी पुरुष के द्वारा निर्वाचित होने मे तीन से चार साल तक प्रतीक्षा करनी पडती थी। नि सन्देह भूतकाल मे यही अवस्था विवाह के क्षेत्र मे भी अधिकाश रूप मे रही है, पर ऐसा देखा गया है कि सस्कृति के निम्नतर सोपानो मे स्थित सभी स्त्रिया देर या सवेर मे गर्भवती हो जाती है। कुछ निरीक्षको ने जगली जातियो की सबसे कुरूप स्त्रियो के सम्बन्ध मे भी यही बात पाई है। इसका मतलब यह हुआ कि निर्वाचित होने मे देर होने पर कम तरजीह वाले चरित्र आगे की पुश्तो मे उसी हद तक कम जा पाते है, फिर नस्ली आधारो पर निर्वाचन यानी नस्ल का उन्नयन सीमित ही रहता है।

यह कहा जा सकता है कि भविष्य मे डार्विनीय अर्थ मे यौन निर्वाचन और अधिक तथा द्रुत विकसित हो सकता है। हमारी सभ्यता के वर्तमान सोपान मे बहुत से पुरुष तथा स्त्रिया सभोग किए बिना रह जाते है। इनमे से बहुतेरे इस कारण रह जाते है कि वे अपने से भिन्न लिंग के प्राणियो मे सम्भोग की इच्छा उत्पन्न नही कर पाते। यदि सभ्यता भविष्य मे सम्भोग को उन बाहरी कारणो से मुक्त कर सके जिनके कारण अनाकर्षक तथा अयोग्य लोग भी साथी या साथिन पा लेते है, और काम्यता के आदर्श सम्भोग के लिए आवश्यक हो जाए, तो इस प्रकार निर्वाचन की जो प्रक्रिया चालू होगी, उसमे बहुत से लोग सम्भोग के बिना रह जाएगे। यह बात मानवीय विकास को एक परिचालिका शक्ति के रूप मे हो जाएगी। हैमान ने कहा है—"यदि पुरुष यह चाहते है कि स्त्रिया अब से लम्बी और कम भावुक हो, तो बहुत सी लम्बी और कम भावुक स्त्रिया मौजूद है, जिन्हे वे शादी के लिए चुन सकते है, पर ऐसी इच्छा का कोई असर होते-होते और इस इच्छा का पालन होते-होते बहुत दिन लग जाएगे क्योकि दूसरी बातो के आगे यह इच्छा दब जाती है।

इसलिए इस समय जो परिस्थिति है, उसमे यह माना नही जा सकता कि डार्विनीय यौन निर्वाचन प्रकृति के हाथ मे एक छेनी के रूप मे है जिसके द्वारा वह बराबर नए ढग के प्राणी उत्पन्न तथा प्रत्याख्यात ढग के प्राणियो को खतम कर रही है। जैसा कि हैमान ने सही ढग पर कहा है, कुछ दायरे के अन्दर पुरुषो के विचारो के अनुसार स्त्रियो का टाइप तथा स्त्रियो के विचारो के अनुसार

पुरुषो का टाइप बदलने की गुजाइश है, पर ये सीमाए सकीर्ण और अनिश्चित है। हम इस समय यह नही कह सकते कि पुरुष या स्त्री मे से कोई भी अपने से भिन्न लिंग के 'निर्वाचन' की प्रक्रिया से उत्पन्न निरवच्छिन्न टाइप है।

यौन मनोविज्ञान के मौलिक तथ्यो का सामना करने के लिए इस प्रारम्भिक और प्राथमिक वात को बहुत अच्छी तरह साफ कर देना चाहिए कि जब हम यौन निर्वाचन शब्द का प्रयोग कर रहे है, उस समय हमारा असली वक्तव्य तरजीहात्मक सम्भोग से है जो प्राक्क्रीडाकालीन विभिन्न प्रकार की इन्द्रियगत उत्तेजनाओ और आकर्षणो से सम्बद्ध है।

अभी तक बहुत से लोग यह समझते है कि यौन साथी या साथिन के निर्वाचन मे प्रतिद्वन्द्वी प्राथियो या प्रार्थिनियो के वीच एक सघर्ष अन्तर्निहित होता है पर हम यह साफ कर दे कि प्राक्क्रीडा मे यह उपादान हो ही, ऐसा जरूरी नही है। चाहे प्रतिद्वन्द्वी हो या न हो, प्राक्क्रीडा उतनी ही हद तक स्पष्ट और जरूरी है, भले ही उसका रूप सक्षिप्त हो जाए। केवल यही नही, यौन जीवन के दौरान मे प्राक्क्रीडा वरावर जरूरी होती है। तव तक यौन मिलन असरदार या सुखी ढग से हो ही नही सकता, जव तक कि वह नित नई प्राक्क्रीडा के सर्वोच्च विन्दु के रूप मे न हो। इसलिए हावर्ड जैसे अन्वेषक भी जो जन्तुओ मे यौन निर्वाचन के अर्थ के विषय मे सन्देह रखते है, उन दीर्घ तथा पूर्णाङ्ग उत्तेजनाओ के सिलसिले पर जोर देते है, जिसे प्राक्क्रीडा कहते है। प्राक्क्रीडा का सम्वन्ध यौन स्फीति तथा स्खलन या पूर्ण मैथुन से है, जो मानो यौन जीवन की नीव है।

प्राक्क्रीडा मे स्पर्श, गन्ध, श्रवण और दृष्टि का सम्वन्ध होता है। कुछ अस्वाभाविक लोगो के क्षेत्र मे भी स्वाद को उस हालत मे इस सूची के अन्तर्गत करने की कोई जरूरत नही मालूम होती, जव कि हम स्वाद से उन स्वादाभासो को निकाल देते है जो नासिका-गह्वर के जरिए प्राप्त गन्ध से उत्पन्न होते है। सच तो यह है कि इसमे से जिसे असल मे स्वाद कहते है, उसे निकाल देना चाहिए क्योकि स्वाद उस दूसरी महान् प्राथमिक शारीरिक आवश्यकता यानी पुष्टि की आवश्यकता का दास है। यदि स्वाद प्रजनन की प्राथमिक आवश्यकता के साथ सयुक्त हो जाता ता सहजात सही दिशा छोडकर, गलत दिशा अपनाता और उस हालत मे प्रेमिक अपने साथी से यौन मिलन चाहने के वजाय उसे खा डालने की चेष्टा करता। वहुत कम जन्तु ऐसे होते है जो मैथुन के अपने साथियो को खा डालते है और जव ऐसा होता है तो स्त्री ही खा डालती है और वह भी ऐसा तभी करती है जवकि गर्भाधान हो चुका हो।

(१) स्पर्श :

स्पर्श प्रेमक्रीडा का बहुत प्राथमिक और आदिम स्वरूप है। यदि देखा जाय तो मैथुन ही अनिवार्य रूप से प्रेमक्रीडा का एक ऐसा कार्य है जिसमे स्पर्श की ही प्रधानता रहती है । बच्चो मे आलिगन, चुम्बन तथा वदन से वदन सटाना रूप में स्नेह के मुख्य चिह्न हैं, और विशेष रूप से यौन अनुभूति की अभिव्यक्तिया हैं। वे भी समान रूप से प्राप्त वयस्क प्रेमिक की औपादानिक इच्छा को व्यक्त करते हैं।

इस प्राथमिक आवेग मे कोई भी खास या विशिष्ट बात नही है। चर्म की नीव पर ही सब प्रकार की इन्द्रियानुभूतिया विकसित हुई है और चूकि यौन इन्द्रियानुभूति सब तरह की इन्द्रियानुभूतियो मे प्राचीनतम है, इसलिए यह मुख्यत. तथा अनिवार्य रूप से साधारण स्पर्शानुभूति का ही एक सुधरा हुआ स्वरूप है। स्पर्शानुभूति के वहुत बडे भाग का आदिम चरित्र, इसकी स्पष्टता, साथ ही सर्वमयता चर्म की अनुभूतियो की भावुक गम्भीरता मे वृद्धि करती हैं। इसलिए इन्द्रियानुभूतियो के सारे क्षेत्र मे स्पर्श के क्षेत्र का वुद्धि से सवसे कम वास्ता है, पर दूसरी तरफ उसमे अत्यन्त तगडी भावालुता की गुजाइश रहती है। ये गुण, साथ ही यौन स्फीति और यौन स्खलन के यन्त्र के साथ इनका अन्तरग तथा आदिम सम्वन्ध, स्पर्श को सवसे सुलभ पर साथ ही सवसे शक्तिशाली साधन वना देते है जिसके द्वारा यौन मण्डल मे पहुचा जा सकता है।

निम्नतर प्राणियो की प्रेम-क्रीडा मे, जैसा कि हम आशा कर सकते हैं, स्पर्श का अक्सर बहुत प्रमुख भाग होता है। केकडो तथा क्रेफिशो मे स्पर्श से ही सम्भोग परिचालित होता है और मकडियो मे तो यह साधारण रूप से प्रधान यौन अनुभूति है ही। ढोरो, हिरनो, घोडों, कुत्तों इत्यादि मे लेहन प्रेमक्रीडा का एक महत्त्वपूर्ण भाग है। नैमैन ने हाथियो की प्रेमक्रीड़ा का अच्छी तरह निरीक्षण किया। उनका कहना है कि पहले हाथी अपने सूड को हथिनी पर फेरता है, फिर अगल-बगल खडे होकर उनके सूड एकदूसरे को काटते हैं, फिर सूड के अग्रभाग एक-दूसरे के मुह मे पहुच जाते है। मनुष्य भी आवेग मे इसी प्रकार के आचरण करते हैं। वहुत से लोगो को, विशेषकर स्त्रियो को जो अभी पूर्ण मैथुन की आदी नही हुई हैं, घनिष्ठ स्पर्श-सुख से ही पूरा यौन आनन्द मिल जाता है।

भाव-जीवन मे स्पर्श का उपादान विशेष महत्त्व रखता है, स्त्रियो के यौन जीवन मे तो उसका विशेष महत्त्व होता ही है। लिलियन मार्टिन ने छात्राओ मे सौन्दर्य-सम्वन्धी आवेगो पर खोज की । उन्होने यह नतीजा निकाला कि उनमे स्पर्श के आधारयुक्त भावो की प्रधानता है । पियर्स क्लार्क ने मिरगी रोग से

पीडित एक नौ साल की लडकी का वर्णन किया है, जो केवल उन लोगो को पास आने देती थी जिनका स्पर्श उसे पसन्द होता था। वह हाथ मिलाने या चुम्बन के दौरान मे जिसे जैसा पाती थी, उसीके अनुसार मनुष्यो को भले या बुरे वर्ग मे विभाजित करती थी। जब लडकिया बालिग होने लगती है, तब उनमे चुम्बन कराने तथा हाथ आदि फिरवाने की इच्छा उत्पन्न होती है न कि सम्भोग की। सैजर तो यहा तक कह जाते है कि कई तरुणियो मे जो सतीत्व का आलोक दिखाई देता है, वह इस कारण है कि लडकियो मे चर्म, श्लेष्मा-झिल्लियो तथा पेशियो मे कामुकता तो रहती है, पर उसी मात्रा मे जननेन्द्रिय मे उस भावना का अभाव रहता है। यह विशेषता स्त्रियो के यौन जीवन के प्रारम्भ मे ही पाई जाती हो ऐसी बात नही, बल्कि सदा यहा तक कि पूर्ण मैथुन के समय भी यह पाई जाती है। अठारहवी सदी के एक अश्लील उपन्यास मे हमे यह पढने को मिलता है कि "यद्यपि वह बहुत झिझक रही थी और लड रही थी और यह चेष्टा कर रही थी कि अपने प्रेमी की बाहो से छूट जाय, पर यह स्पष्ट था कि इन बातों के करने म उसका उद्देश्य केवल यही था कि उसके साथ सम्पर्क के बिन्दुओ को बढाए।" एक कवयित्री रेने वीविया ने लिखा है कि स्पर्श की अद्भुत तथा जटिल कला सुगन्ध के स्वप्नो और शब्द के जादू की समता करती है। स्त्रिया सहजात बुद्धि से प्रेम मे स्पर्श के महत्त्व को मानती है, इस बात से यह विचार पुष्ट होता है कि स्पर्श ही वास्तविक रूप से प्राथमिक तथा आदिम कामानुभूति है।

स्पर्श की नीव पर कई रोगग्रस्त सौन्दर्य-सम्बन्धी विकृतिया पुरुषो और स्त्रियो मे पाई जाती है जैसे प्रेमिक या प्रेमिका के द्वारा छुए हुए ऊनी कपडो, मखमलो, रेशम आदि पर जान देना। ऐसी विकृतियो के कई बार सामाजिक महत्त्वपूर्ण परिणाम होते है। जैसे कामचौर्य मुख्यत स्त्रियो मे पाया जाता है, दूसरी तरफ काम-घर्षण नामक विशेष विकृति पुरुषो मे अधिक पाई जाती है। इसमे विकृति का रोगी पुरुष कपड़े पहनी हुई स्त्री से शरीर भिडाने की (आवश्यक रूप से जननेन्द्रिय वाला भाग नही) चेष्टा करता है और ऐसा वह सार्वजनिक स्थानो मे बिलकुल अपरिचित स्त्रियो के साथ करता है। बहुत सी स्त्रियो ने यह बताया है कि जब वे किसी रगशाला यहा तक कि गिरजे की भीड मे खडी होती है तो उन्हे यह असुखकर अनुभूति होती है कि कोई उनसे जानबूझकर शरीर भिडा रहा है। यह रोगग्रस्त विकृति डाक्टरी और साथ ही कानूनी दायरे मे आ जाती है, पर ऐसे विकृत लोग सम्भव है कि बिलकुल सहीदिमाग, पदस्थ और बुद्धिमान् हो।

गुदगुदी की अनुभूति स्पर्शानुभूति की ही गौण उपज है। यह जन्म से पूर्व विकासमान प्रतिक्रियाओ पर निर्भर होने के साथ ही यौन व्यवहार से घनिष्ठ रूप से सयुक्त

होती है। यह मानो यौन स्फीति की ही एक अठखेली है। इसपर हसी स्खलन या पूर्णमुक्ति की एक दूसरी अठखेली के रूप मे प्रकट होती है जिससे अवाछित यौन-आवेग विखर जाता हे जैसा कि अक्सर लजीली तथा यौन आवेग के सम्बन्ध मे सज्ञान लडकियो मे देखा जाता है। गुदगुदी की वृत्ति ही मानो वाद को चलकर यौन स्फीति के गम्भीरतर लक्षणो मे परिणत होती है। गुदगुदी की वृत्ति किशोर अवस्था के वाद ही जव साधारण रूप से यौन सम्वन्ध शुरु हो जाते है, खतम हो जाती है।

गुदगुदी वृत्ति के सम्वन्ध मे यह विचार कि वह चर्मगत लज्जा का एक रूप है जो वाद को चलकर नही रहेगी, यह केवल इसका एक पहलू है। यह निश्चित है कि गुदगुदी की वृत्ति का आरम्भविन्दु यौनेतर है, और सम्भव है इससे रक्षात्मक प्रयोजन सिद्ध होते हो। जैसा कि लुई राविन्सन ने कहा है कि कमउम्र प्राणियों मे शरीर के उन्ही अशो मे सबसे अधिक गुदगुदी होती है जो मर्मस्थल है और जिन्हे रक्षा की जरूरत है। पर यौन क्षेत्र मे गुदगुदी और साथ ही इससे दूर यौन उत्तेजना की सम्भावनाओ से युक्त क्षेत्रो मे गुदगुदी की वृत्ति भिन्न रूप से कार्य करती है और ऐसा इसलिए करती है जैसा कि हेरिक ने वतलाया कि एक के वाद एक उत्तेजनाए मानो जमा होती जाती है और फिर तो एकदम से पहाड से उतरते हुए विराट् वर्फखण्ड की तरह अगौण कोषो की उत्तेजना धीरे-धीरे मुख्य कोषो को कर्मशक्ति से भर देती है। यह मानो यौन स्फीति की एक प्रक्रिया है, जो बढते-बढते पूर्ण यौन मुक्ति मे समाप्त होती है। हा यदि यह यौन क्षेत्र से बाहर है तो इसमे केवल मासपेशियो की प्रतिक्रिया या हसी उत्पन्न होती है, पर यौन क्षेत्र मे इसकी प्रतिक्रियाएं यौन होती है। सब तरह की प्राक्क्रीडा विशेष-कर यौन आलिगन का गुदगुदी वृत्ति से अन्तरग सम्बन्ध है। स्पिनोजा ने प्रेम की जो परिभाषा की थी उसका आधार यही है। उन्होने कहा था कि प्रेम वाहरी कारणो से उत्पन्न समधर्मयुक्त गुदगुदी मात्र है। गावर्स ने भी यही कहा था कि यौन मिलन प्राथमिक रूप से एक चार्मिक प्रतिक्रिया है।

यहा यह बता देना शायद अप्रासगिक न हो कि यद्यपि अब गुदगुदी छोटी लड-कियो मे ही यौन आनन्द प्राप्ति के साधन के रूप मे काम मे आती है, फिर भी इसका सभ्य मनुष्यो के प्रेम-जीवन मे वहुत कम महत्त्व रह गया है। पर कुछ जगली जातियो मे इसका अधिक महत्त्व है, जैसा कभी यूरोप मे भी था। कई जातियो मे गुदगुदाने का मतलब ही प्रणय-निवेदन करना है। फीजियो (Fuegians) मे यौन आलिगन और गुदगुदी के लिए एक ही शब्द है। जर्मन भाषा मे भगाकुर के लिए 'किट्सलर' यानी गुदगुदाने वाला शब्द आता है, इससे भी वे ही विचार व्यक्त

होते हैं। रोमनो मे प्रूरिटस शब्द कामुकता के माने मे इस्तेमाल होता था और यह अर्थपूर्ण है कि स्थानीयकृत प्रूरिटस शरीर के ऐसे क्षेत्रो मे पाए जाते हैं जो प्रारम्भिक जीवन मे आत्ममैथुनिक गुणयुक्त होते हैं और मासिक धर्म बन्द होने के बाद फिर चालू होते हैं। वीस्टाइन के कथनानुसार अठारहवी सदी के रूस मे रूस-सम्राज्ञी के दरबार मे सरकारी पैर गुदागुदाने वाली होती थी, जिनका काम ही यह था कि सम्राज्ञी के पैर गुदगुदाए, बेसिर-पैर की अल्हड कहानिया कहे और अश्लील गाने गाए। उन्हे यह विशेष रियायत मिली हुई थी कि जब सम्राज्ञी अनाचारो से थक जाती थी तो वे उसके नितम्ब दाबा करती थी। अवश्य यह पद बहुत उच्चकुलोत्पन्न स्त्रियो के लिए सुरक्षित होता था। फेरे ने यह बतलाया है कि इस प्रकार के कृत्य का शरीर-वैज्ञानिक आधार यह है कि थोडा गुदगुदाने से कर्मशक्ति बढती है, यद्यपि इसकी अति अवसादजनक होती है।

एक महिला के इस कथन से गुदगुदी और यौन आवेग का सबन्ध स्पष्ट हो जाता है कि यदि ऐसे समय जब कि वह यौन मिलन के लिए तैयार नही है उसके यौन क्षेत्र का स्पर्श किया जाए तो उसे गुदगुदी लगती है और जब उसमे यौन आवेग जगता है तो गुदगुदी नही लगती। इस प्रकार हम देखते है कि गुदगुदी एक तत्स्थानीय यौन अनुभूति है, और हम कह सकते है कि यौन अनुभूति गुदगुदी का ही बदला हुआ रूप है। यह अपने मौलिक रूप मे एक सन्तरी की तरह है, जो लोगो को दूर हटाती है, पर इसका दूसरा पहलू यह है कि यह आकर्षण के दरवाजे खोल देती है।

चर्म और यौन क्षेत्र का अन्तरग सम्बन्ध न केवल गुदगुदी से बल्कि चर्बी क्षरण करने वाली उन ग्रन्थियो के व्यवहार से भी व्यक्त होता है, जो पहले की केश-ग्रन्थियो के अवशिष्ट भाग है और उस जमाने की याद दिलाती है जब मनुष्य का शरीर बालो से ढका हुआ था। यौवनोद्गम के साथ अथवा जब यौन पद्धति मे कोई गडबडी पैदा होती है तो ये ग्रन्थिया केश उत्पन्न करने की चेष्टा करती हैं, जिससे मुहासे उत्पन्न होते हैं, पर मासिक धर्म बन्द हो जाने के बाद ही स्त्रियो मे इनकी क्रिया के फलस्वरूप वास्तविक रूप से बाल निकल आते है।

इस प्रकार बाल तथा इसकी गडबडियो का भी यौन पद्धति से सम्बन्ध है। साबुरो ने बताया था कि स्त्रियो मे आंशिक गजापन विशेष रूप से यौन परिपक्वता के साथ परिलक्षित होता है। इसके बाद फिर पचास साल की उम्र के लगभग यह लक्षण दिखाई पडता है, यद्यपि पुरुषो मे उस प्रकार कोई बढने-घटने की रेखा नही दीख पडती। मासिक धर्म के दमित होने के बाद भी, जैसे स्त्री-डिम्ब के निकाल दिए जाने के बाद या कभी-कभी गर्भिणी हो जाने पर भी, यह लक्षण दिखाई पडता है।

यौन मिलन स्वय एक बडी हद तक एक विशेष ढग की चार्मिक प्रतिक्रिया है। साधारणीकृत चार्मिक अनुभूतियो तथा यौन अनुभूति के महान् प्राथमिक केन्द्र के बीच कुछ गौण यौन केन्द होते है, जिनमे ऐसे गुण उत्पन्न हो चुके है कि वे यौन उत्तेजनाओ के केन्द्र के अन्तर्भुक्त किए जा सकते है।

इन गौण केन्द्रो मे से सब मे यह विशेषता है कि वे कोई न कोई शारीरिक प्रवेश-स्थल अथवा निष्कासन-स्थल है, यानी वे ऐसे स्थल है जहा चर्मश्लेष्मा झिल्लियो मे लय हो जाती है। और विकास के फलस्वरूप इनमे स्पर्शानुभूति बहुत ही सूक्ष्मीकृत हो गई है। शरीर की इन सरहदो के विषय मे यह कहा जा सकता है कि यदि भिन्न लिंग के दूसरे व्यक्ति की उसी सरहद या उसी प्रकार की अन्य सरहदो के साथ वह सस्पर्श मे आए और परिस्थितिया अन्यथा भी यौन स्फीति के अनुकूल हो तो कम से कम और कई बार अधिक से अधिक कामानुभूति उत्पन्न होगी। इन क्षेत्रो का एकदूसरे के साथ सस्पर्श या यौन क्षेत्र के साथ सस्पर्श केन्द्रीय यौन प्रतिक्रिया को इस घनिष्ठ रूप से उत्तेजित करता है कि स्नायविक कर्मशक्ति के लिए नहरे चालू हो जाती है और गौण यौन केन्द्र तैयार हो जाते है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि ये लक्षण अनिवार्य रूप से स्वाभाविक है। इनमे से कइयो के सम्बन्ध मे च्युति या विच्युति (Perversion) शब्द प्रयुक्त होता है। पर जहा तक कि वे यौन उत्तेजन मे सहायक है, उन्हे स्वाभाविक श्रेणी का मानना पडेगा, वे भले ही सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से पूरे न उतरते हो, पर यह दूसरी बात हुई। उसके अलावा यह भी याद रखना चाहिए कि यौन आवेग से प्रभावित होकर सौन्दर्य-सम्बन्धी मान्यताए बदल जाती है। प्रेमी की दृष्टि से बहुत सी बाते सुन्दर होती है, जो अप्रेमी की दृष्टि से सुन्दर नही है और प्रेमी जिस हद तक अपने आवेग से विचलित होगा, उसी हद तक उसकी सामान्य सौन्दर्य-सम्बन्धी मान्यताए बदल जाएगी। अयौन दृष्टि से देखे जाने पर पूर्वराग के प्रारम्भिक सोपान के सिवा यौन व्यवहार की सारी प्रक्रिया ही असुन्दर प्रतीत हो सकती है।

शरीर के कामोत्तेजक भागो के जरिए से प्राप्त यौन उद्दीपन को काम मे लाना स्वाभाविक कार्यो की श्रेणी मे ही समझा जाएगा। इसका पता हम अन्य जीवो के व्यवहार से पा सकते है। पर जब इन कामोत्तेजक भागो से वाछित उद्दीपन उत्पन्न करने के अलावा उन्हीके द्वारा पूर्ण परितृप्ति प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है, तभी उनको विच्युति की श्रेणी मे रखा जा सकता है। फिर भी वे उसी प्रकार के द्वयर्थक अर्थ मे च्युति माने जाएगे जैसे कि यौन मिलन के वे तरीके विच्युति माने जा सकते है जिनमे गर्भधारण के लिए रोके रखकर कार्य सिद्ध किया जाता है।

इस श्रेणी का सबसे मौजू उदाहरण चुम्बन का है। हमारे ओठो मे चर्म और

श्लैष्मिक झिल्ली के बीच एक बहुत ही अनुभूतिपूर्ण इलाका होता है जो कई दृष्टियो से योनि और योनिगह्वर के बीच के हिस्से के समतुल्य है, पर उसकी अनुभूति-सम्बन्धी शक्ति मे जब चाहे तब कही अधिक अनुभूतिपूर्ण अग जिह्वा को सक्रिय रूप से चलाकर वृद्धि की जा सकती है। यदि इन स्थानो का घनिष्ठ और दीर्घ सम्पर्क हो, और वह ऐसी परिस्थिति मे हो कि उससे यौन उद्दीपन सम्भव हो तो उससे स्नायविक उत्तेजना की एक तगडी धारा चल निकलती है। यौन क्षेत्रो के प्रत्यक्ष भागयुक्त सम्पर्कों के बाद यौन क्षेत्र मे स्नायविक शक्ति को परिचालित करने के लिए चुम्बन से बढकर कोई साधन नही है। यह विशेषकर कथित कपोतवत् चुम्बन मे देखा जा सकता है जो प्राचीन तथा आधुनिक दोनो कालो के प्रेमियो मे बहुत अधिक प्रचलित रहा है। फ्रास के एक भाग मे इसका एक रूप प्रचलित है, जिसे मारेशिनाज कहते है, जिसके सम्बन्ध मे कुछ पुरोहित यही कहेगे कि यह बहुत ही गर्हित पाप है। मनुष्य से निम्नतर कई तरह के प्राणियो मे चुम्बनवत् क्रियाए प्रचलित है, जैसा कि घोघो तथा कीडो मे सुओ का मिलाना, चिडियो का चोच मिलाना, कुत्तो के द्वारा चाटना तथा धीरे से काट लेना। इसी प्रकार कई प्राणियो मे यौन मिलन के समय चुम्बन के ढग के व्यवहार देखे जा सकते है। मनुष्य-जाति मे चुम्बन मे दो उपादान होते हैं। एक स्पार्शिक और दूसरा गान्धिक। स्पार्शिक उपादान बहुत ही प्राचीन है और यूरोप मे यही चुम्बन का प्रमुख अश है, पर गान्धिक चुम्बन यूरोपीय या भूमध्यसागरीय स्पार्शिक चुम्बन से कही अधिक ससारव्यापी है। मगोल जातियो मे जाकर यह चुम्बन अपने पूर्ण विकास मे पहुच जाता है।

चुम्बन को प्राक्क्रीडा का विशिष्ट और स्वाभाविक यौन क्षेत्रीय तरीका माना जा सकता है, जिससे यौन उद्दीपन का लक्ष्य प्राप्त होता है, पर इसी क्षेत्र मे कई और कम महत्त्वपूर्ण तरीके है। भिन्न लिंग के व्यक्तियो मे किसी प्रकार का भी छिद्र या कुहरगत सम्पर्क यौन उद्दीपन बढाने में चुम्बन की तरह असरदार है, ऐसे सारे तरीके चुम्बन के वर्ग मे ही आ जाते है। इसी प्रकार योनिचुम्बन और लिगचुम्बन अस्वाभाविक नही माने जा सकते, क्योकि वे अन्य प्राणियो मे प्रचलित है तथा कई जगली जातियो मे पाए जाते है। प्राक्क्रीडा के स्वरूपो तथा उद्दीपन मे सहायको के रूप मे वे स्वाभाविक है और वे कई बार पुरुष और स्त्रियो के द्वारा यौन आनन्द के सक्षिप्त स्वरूप समझे जाते है, यद्यपि उन्हे सौन्दर्यशास्त्रसम्मत नही माना जा सकता। वे उद्दीपन मे सहायक का रूप छोडकर लक्ष्य बन सकते है, और इस प्रकार यौन मिलन की इच्छा का स्थान ले लेने के कारण वे च्युतियो के वर्ग मे आ जाते है।

छिद्र वाले भागो मे स्तनाग्र आ जाते है और स्पर्श-सुख द्वारा यौन उद्दीपन प्राप्त करने मे उनका बहुत भारी महत्त्व है। यौन केन्द्रो मे छातियो को विशेष महत्त्व इसलिए मिला हे कि वे प्राथमिक रूप से प्रेमिक के लिए नही बल्कि बच्चे के लिए है। यह निस्सन्देह एक मौलिक तथ्य है, जिसपर दूसरी कामोत्तेजक अनुभूतिया विकसित हुई है। प्रेमियो मे जो ओष्ठ-सम्बन्धी योन अनुभूति का विकास हुआ है, वह बच्चे के ओठो का मा के स्तनाग्र से मिलने की अनुभूति से हुआ है, इसमे सन्देह नही।

यह आवश्यक है कि दुग्ध-क्षरण की इन्द्रिय के रूप मे छातियो तथा यौन अगो के बीच का सम्पर्क अन्तरग हो, जिससे सन्तान का जन्म होने के बाद ही बच्चे के चूसने वाले ओठो की माग पर छातिया उपयुक्त रूप से काम करे। स्तनाग्र के लेहन से गर्भाशय का प्रतिक्रियात्मक सकोचन-प्रसारण खुद-ब-खुद होता है। रहा यह कि स्त्री के मन मे क्या भावना उत्पन्न होती है जब कि बच्चा स्तन पीता है। इस सम्बन्ध मे उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ के विद्वान् कैबेनिस के पहले किसीने यह नही लिखा कि उसमे कामुक भावनाए जगती है। उन्होने ही यह लिखा कि कुछ माताओ ने उनसे कहा कि बच्चो के दूध पीने से ऐसी भावनाए उत्पन्न होती है।[1] यह जान लेना आसान है कि यौन आवेग के साथ दूध पीने वाले बच्चे का स्वाभाविक साहचर्य क्यो हुआ होगा ? स्तनपायी वर्ग के शिशुओ की प्राणरक्षा के लिए यह आवश्यक है कि दूध पिलाने के कष्ट को सहने के लिए माताओ को सुखानुभूति के रूप मे उपयुक्त क्षतिपूर्ति हो। बच्चे को दूध पिलाते समय दुग्ध-क्षरण के द्वारा तनाव से जो मुक्ति मिलती है, उसके अलावा उपयुक्त मात्रा मे सुखानुभूति प्राप्त करने का सबसे अच्छा तरीका यही हो सकता है कि गर्भाधान तथा गर्भ के दौरान मे स्तनो के साथ यौन क्षेत्र का जो सम्बन्ध प्रस्तुत हो गया है वह जारी रहे।

यहा यह बता दिया जाय कि यद्यपि स्तनाग्र और जननेन्द्रिय के बीच सम्बन्ध इतना अतरग है, फिर भी यह बहुत ज्यादा नही है। कुर्डीनोव्स्की ने खरगोशो पर प्रयोगो के द्वारा पता लगाया कि अन्य छिद्रो के उत्तेजन से भी गर्भाशय का प्रबल सकुचन-प्रसारण होता है। शायद सारे तन्तुजाल मे कही भी उत्तेजना पैदा की

---

१ मै बता दूं कि कैबेनिस के पहले १७६४ मे सी० बोने ने 'प्रकृति पर विचार' नामक अपनी पुस्तक मे यह लिखा था कि शिशु के प्रति माता का जो स्वाभाविक प्रेम होता है, उसे आनन्द के साथ-साथ मधुर भावना का सहारा मिलता है। उन्होंने कहा कि ऐसा हो सकता है कि यह भले ही प्रमुख कारणों में न हो। स्तनपायी-वर्ग के प्राणियों के नीचे के प्राणियो के सम्बन्ध मे उन्होंने कहा कि हमें इस बात पर भी विचार करना है कि मा और बच्चे के पास रहने से दोनों में सुखकर पारस्परिक गरमी बनी रहती है।

जाय तो वह प्रतिक्रिया-वाहिनियो से होकर गर्भाशय मे सकुचन उत्पन्न कर सकती है। यह उपसहार इस आधार पर पेश किया गया है कि चर्म साधारणत यौन-दृष्टि से अनुभूतिशील है और शरीर मे विभिन्न कामोद्दीपक क्षेत्र मौजूद है।

स्तनो के कामोद्दीपन-सम्बन्धी गुण का महत्त्व इस बात से प्रतिष्ठित है कि इस पर कैथोलिक धर्म-शास्त्रियो ने बहुत ध्यान दिया है। अठारहवी सदी मे स्तनस्पर्श पर बहुत भारी वादविवाद खडा हुआ था। बहुत प्रमुख जेसुइट धर्मशास्त्री, जो इन्क्विजीशन प्रथा तथा आम तौर पर धर्मगुरु पोप के खिलाफ थे, यह मानते थे कि भिक्षुणियो के स्तन का स्पर्श करना, वशर्ते कि कोई बुरे विचार न हो, क्षमा योग्य है। एक प्रायश्चित्त-सम्बन्धी जेसुइट धर्म-शास्त्र मे यह कहा गया था कि इस प्रकार के अन्तर्निहित रूप से निर्दोष कार्यो का निषेध करना धर्मद्रोह है और जानसेन-वादियो के ही उपयुक्त है।

(२) **गन्ध :**

पहले गन्ध-सम्बन्धी अनुभूति साधारण स्पर्शानुभूति से अलग स्पष्ट अस्तित्व नही रखती थी। गन्धानुभूति धीरे-धीरे विशिष्ट बन गई और जब स्वाद की अनुभूति भी विकसित होने लगी तो एक प्रकार की रासायनिक अनुभूति बन गई। मेरुदड वाले प्राणियो मे गन्धानुभूति सबसे अधिक विकसित अनुभूति हो गई। इससे दूर की ऐसी वस्तुओ की, जिनसे प्राणी का सम्बन्ध है, पहली सूचना प्राप्त होती है, यदि वह वस्तु पास हुई, साथ ही उससे सम्बन्ध है तो उसके सम्बन्ध मे बहुत ही सही सूचना मिलती है। यह वह अनुभूति है जिसके आधार पर अधिकतर मानसिक क्रियाओ को चलाना पडता है और उनके भावावेग चेतना मे पहुच जाते है। सरीसृपो और उसके बाद के युग मे स्तनपायियो के लिए सारे यौन साहचर्य न केवल मुख्य रूप से गान्धिक है, बल्कि इस अनुभूति से मन पर जो छाप पडती है, वह बाकी सारी अनुभूतियो पर छा जाती है। प्राणी न केवल गान्धिक उत्तेजनाओ से उपयुक्त यौन उद्दीपन प्राप्त करता है, बल्कि वे उत्तेजनाए इतनी प्रबल होती है कि अन्य अनुभूतियो की सारी गवाहिया अक्सर उनके सामने फीकी पड जाती है। यदि हम याद रखे कि मस्तिष्क मे गान्धिक इलाका बहुत फैला हुआ है, तो हमे इस बात पर कोई आश्चर्य नही होगा। एडिंगर और इलियट स्मिथ ने दिखलाया है कि मस्तिष्क का आवरण पहले-पहल गन्ध की अनुभूतियो को प्राप्त करने वाले केन्द्र से कुछ ही अधिक था और यह वह यन्त्र था जिससे प्राणी का व्यवहार प्रभावित होता था। गन्ध की अनुभूतिया आवरण मे सीधे-सादे पहुचती थी, न कि मस्तिष्क के भीतरी प्रकोष्ठ से होकर। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से गन्ध को एक विशिष्ट स्थान मिला हुआ है। यह सारी उच्चतर मानसिक

शक्तियो के जीवाणुओ का मानो प्रतिनिधित्व करता है और कम से कम यह वह सीमेन्ट है जिससे सब एकसाथ बधे रहते है। जल मे रहने वाले मेरुदण्ड वाले आदिम प्राणियो के, जो इन दिनो मनुष्य मे मौजूद स्वाद के अधिक करीव तथा अन्य सारी अनुभूतियो से असरदार थे, सारे व्यवहार पर यह छाई रहती है और यह जीव-वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत महत्त्व रखती है।

जब हम उच्चतर वानरो तथा मनुष्य मे पहुचते है तो सारी बात वदल चुकी है। अब भी सर्वत्र गन्धानुभूति है और यह वहुत सुकुमार भी है, यद्यपि अव इसकी बरावर अवहेलना की जाती है। इसके अलावा यह एक उपयोगी सहायक है। अक्सर जगली मनुष्यो के सम्वन्ध मे गलत या सही तरीके से यह कहा जाता है कि वे दुर्गन्ध के प्रति उदासीन होते है। फिर भी वे अक्सर गन्धो और उनके प्रकारो के सम्वन्ध मे वडे सचेत होते है, हा ऐसा नही मालूम होता कि उनमे गन्ध की अनुभूति सभ्य लोगो से अधिक विकसित है। मनुष्यो के विशेषकर गरम देश के मनुष्यो के भाव-जीवन पर महक का वडा महत्त्व है।

फिर भी व्यावहारिक जीवन तथा भाव-जीवन मे कला तथा विज्ञान मे साधारण परिस्थितियो मे गन्ध अधिक से अधिक एक सहायक अनुभूति मात्र है, और इस सम्बन्ध मे अध्ययन करना तव तक बेकार समझा जाने लगा जव तक कि यूट्रेक्ट के ज्वार्देमाकेर ने १८८८ मे गन्ध-मापक का आविष्कार किया तथा वाद को गान्धिक शारीर-शास्त्र अपना ग्रन्थ प्रकाशित नही किया। कुछ साल वाद ब्रूसेल्स के हेईनिक्स ने गन्ध के विषय को और विकसित किया और उन्होने यह कोशिश की कि गन्ध को पूर्णरूप से भौतिक आधार पर स्थापित करे। उन्होने गन्ध के लिए स्पेक्ट्रम या रश्मि-विश्लेषण की स्थापना की और एक वर्गीकरण तैयार किया जो तरग की दीर्घता-सम्बन्धी भेद-विषयक था। इस प्रकार से रासायनिक शक्ति के द्वारा नही बल्कि पारमाणविक स्पन्दन प्रक्रिया के द्वारा गन्ध अपने मार्ग को क्रियाशील वनाती है पर जी० एच० पार्कर की तरह अन्य विद्वान् गन्ध को 'रासायनिक' अनुभूतियो मे मुख्य स्थान देकर ही खुश है। 'रासायनिक' अनुभूतियो के अलावा 'यान्त्रिक' अनुभूतिया है, जो दवाव या शब्द या आलोक से उत्तेजित होती है। रासायनिक अनुभूतिया आदिम जलजीवन से चली आ रही है और यद्यपि उनमे गन्ध की प्रधानता है, फिर भी उनमे स्वाद आ जाता है। यह स्वाद जाकोवसन के नाम पर प्रचलित इन्द्रिय से होकर आता है। यह इन्द्रिय नाक मे खुलती है। इसके अलावा यान्त्रिक अनुभूति मे एक साधारण रासायनिक अनुभूति आती है। इतना सव कह लेने पर भी यह मुश्किल से कहा जा सकता है कि हम इनमे से किसी विषय पर निश्चित उपसहारो मे पहुचे है।

गन्धानुभूति अभी तक, जहा तक कि इस विषयक सन्देशो का सम्बन्ध है, स्पर्श की तरह अस्पष्ट है, यद्यपि इसके साथ सम्बद्ध अनुभूतिया अक्सर बहुत ही भावावेगपूर्ण होती है । इन्ही विशेषताओ के कारण जो अस्पष्ट होते हुए भी विशिष्ट और बेकार होते हुए भी अन्तरग है, बहुत से लेखको ने गन्ध की अनुभूति को अन्य सब अनुभूतियो से कही बढकर कल्पना के क्षेत्र की अनुभूति बतलाया है । किसी भी अनुभूति मे सुझाव उत्पन्न करने की, प्राचीन स्मृतियो को बहुत गहरे आवेग के साथ ताजी कर देने की शक्ति नही है, साथ ही यह उन अनुभूतियो मे सर्वोपरि है, और मन पर ऐसी छाप देती है कि अनुभूति प्राप्त करने वाले व्यक्ति के साधारण रुख के साथ सामञ्जस्य रखकर उसकी भावुकता का रग तथा गहराई बदल दे। इसी प्रकार से तरह-तरह की महके भावुक जीवन को नियन्त्रित करने की सामर्थ्य रखती है और साथ ही इसकी दासी बन सकती है। सभ्यता मे आकर गन्ध के आदिम भावुक साहचर्य बिखरने लगते है, पर दूसरी तरफ गन्धानुभूति की काल्पनिक दिशा और जोर पकडती है और इस क्षेत्र मे वैयक्तिक झक्कीपन अपना कार्य दिखलाने लगता है।

महके सारी स्नायविक पद्धति के लिए शक्तिशाली उत्तेजक है, जो दूसरे उत्तेजको की तरह कर्मशक्ति बढा देती है, पर यदि यही अत्यधिक या दीर्घ काल तक चालू रहे तो इससे स्नायविक थकान आ जाती है। इस प्रकार से यह सर्वमान्य-सा हो चुका है कि उड जाने वाले तेलो से युक्त मसाले आदि सकुचन-प्रसारण दूर करने वाले तथा बेहोशी लाने वाले होते है और उनसे हाजमा, रक्त-प्रवाह तथा स्नायु-पद्धति उत्तेजित होती है। यदि यह अधिक मात्रा मे ली जाए तो अवसाद पैदा होता है । फेरे ने डायनमोमीटर तथा एर्गोग्राफ यन्त्र से जो प्रयोग किए उनसे महको के उत्तेजक गुणो के सम्बन्ध मे बहुत रोशनी पडी है।

हम उस समय विशेष रूप से मनुष्य-जाति मे महक के यौन गुणावगुण पर पहुच जाते है, जब हम इस बात पर ध्यान देते है कि सभी पुरुष तथा स्त्रियो की अपनी-अपनी विशेष महक होती है । सभी जातियो मे यह बात विभिन्न ढग से परिलक्षित होती है। हमारे पूर्वपुरुषो ने शारीरिक महको के साथ यौन आवेगो के सम्बद्ध होने की बात जान ली थी और आज भी उनके साथ यौन वृत्ति के सम्बन्ध का होना मालूम है । इन दोनो क्षेत्रो के सम्बन्ध मे एक बहुत अर्थपूर्ण तथ्य यह है कि, जैसा कि हिपोक्रेटिस ने बहुत पहले ही जान लिया था, यौवनारम्भ के बाद ही शारीरिक महक मे वयस्कता-प्राप्ति की विशेषता आती है। बच्चा, बालिग व्यक्ति, बूढा सब की अपनी-अपनी विशेष महक होती है और जैसा कि मोनिन ने बताया है कि कुछ दायरो के अन्दर किसी व्यक्ति की शारीरिक महक से उसकी उम्र

जानना सम्भव हो सकता हे। पुरुषो तथा स्त्रियों दोनो मे यौवनारम्भ, किशोरा-वस्था तथा प्रथम यौवन मे चर्म तथा शरीर से निकलने वाली विभिन्न वस्तु जैसे मूल, मूत्र, पसीना आदि की बू का क्रमिक विकास होता है जो वाल तथा शारीरिक रग रूपी गौण यौन विकास के साथ सामञ्जस्य रखता है। वेन्तुरी ने तो यहा तक कहा कि शारीरिक महक दोयम दर्जे की यौन विशेपता है।

मानवीय यौन-निर्वाचन मे शायद ही कभी ऐसा होता हो कि गन्ध ही एक मात्र कारण हो जाए, इसलिए नही कि गन्धानुभूति की छापे वेकार होती है वल्कि इसलिए कि सुखकर वैयक्तिक महक यथेष्ट रूप से शक्तिशाली नही होती और गन्धेन्द्रिय इतनी तीक्ष्ण नही होती कि वह आख से देखी हुई वात पर हावी हो सके।

फिर भी वहुत से लोगो को कुछ गन्धे, विशेषकर वे गन्धे जिनका सम्वन्ध स्वस्थ और यौन रूप से वाञ्छनीय व्यक्ति से होता है, सुखकर प्रतीत होती है। कई बार प्रेमी से सम्वन्ध होने के कारण यह महक ऐसी हो जाती है जिसके सामने आत्मसमर्पण करना ही पडता है । उसकी शक्ति नि सन्देह इस तथ्य से और वढ जाती है कि कई महके विशेपकर शारीरिक महक, स्नायुओ को उत्तेजित करने वाली होती है।

इस सम्बन्ध मे लगभग कोई सन्देह नही रह गया है कि स्त्री तथा पुरुष दोनो मे नाक की गन्धवाही श्लैष्मिक झिल्लियो तथा पूरे जननेन्द्रिय यन्त्र मे एक अन्त-रग सम्बन्ध मौजूद है, अकसर उनमे एक सहानुभूतिपूर्ण क्रिया-प्रतिक्रिया भी दृष्टि-गोचर होती है। जननेन्द्रिय के क्षेत्र मे पडने वाले प्रभाव अक्सर नाक को भी प्रभा-वित करते है और उसी प्रकार नाक पर पडने वाले प्रभाव भी खुद-ब-खुद जनने-न्द्रिय के क्षेत्र को प्रभावित करते है।

यह देखा गया है कि कई बिल्कुल सहीदिमाग लोगो पर गन्ध का अपवादा-त्मक रूप से अधिक मानसिक प्रभाव पडता है। अवश्य औसत लोगो मे यह प्रभाव इस रूप मे देखने मे नही आता। बीने ने यौन फेटिसिज्म का अध्ययन करते हुए ऐसे अपवादात्मक लोगो को गन्धप्रधान जीव करार दिया है, यद्यपि ऐसे लोगो की सख्या वहुत कम है और उनका महत्त्व भी कोई अधिक नही है। फिर भी ऐसे लोगो की सख्या की तुलना उन वर्गो की सख्या से की जा सकती है जो इसी प्रकार दृष्टि-प्रधान, श्रवण-प्रधान तथा मनोगति-प्रधान है । गन्ध-प्रधान स्वभाव वाले व्यक्ति महको पर ज्यादा ध्यान देगे। वे दूसरे लोगो की तुलना मे गन्धात्मक सहधर्मिता से परिचालित अथवा विचलित होगे। कीरनान ने गन्धानुभूति से प्राप्त यौन परि-तृप्ति को गन्धमैथुन का नाम दिया था। कई स्त्रिया जो सही दिमाग वाली समझी

जा सकती है, विशेष महकों से, जैसे प्रिय व्यक्ति के शरीर की महक से, जो कभी-कभी तम्बाकू से मिली हो सकती है या चमडे की गन्ध से मिली हो सकती है (जो अन्ततोगत्वा शारीरिक महक ही है), यौन रूप से उत्तेजित हो सकती है, यहा तक कि उन्हे पूर्ण मैथुन भी हो सकता है। ऐसी स्त्रिया जब अपने प्रेमिक की शारीरिक महक को कल्पनात्मक ढग से याद करती है तो वे उससे कई बार बिल्कुल अभिभूत हो जाती है।

साधारण सही दिमाग वाले व्यक्तियो मे भी वैयक्तिक महक यौन आकर्पण तथा विकर्षण का बहुत बडा भाग अदा करती है, इसीको कभी-कभी गन्ध-प्रधानतावाद कहा जाता है। पुरुष मे गन्ध की अनुभूति तुलनात्मक रूप से कुन्द है, इसलिए उसपर नियम के तौर पर गन्धात्मक प्रभाव कम पडते है, हा, पूर्वराग के प्रारभिक सोपान पार हो जाए तो परिस्थिति बदल सकती है। इस प्रकार मनुष्य मे यौन आकर्षण के प्रसग मे गन्ध उतना महत्त्व नही रखती जितना कि वह निम्नतर प्राणियो मे रखती है। यह सब कह लेने पर भी इसमे कोई सन्देह नही कि निम्नतम से उच्चतम मनुष्य-जातियो मे भी महक का यौन सम्बन्धो पर प्रतिकूल या अनुकूल प्रभाव पडता रहता है। रसिक व्यक्ति को आकस्मिक रूप से या अन्यथा देर-सवेर मे यह मालूम हो ही जाता है कि सबसे अन्तरग सम्बन्ध मे अधिकाश लोगो के लिए महक या गन्ध बहुत भारी महत्त्व रखती है।

कीरनान ने बताया है कि सभ्य मनुष्य के यौन क्षेत्र मे गन्ध के महत्त्व को कम करके आका गया है। यह सही मालूम होता है, यद्यपि गुस्टावजागेर ने बिलकुल दूसरे ध्रुव पर जाकर यह कहा है कि मनुष्यो मे भी यौन सहजात वृद्धि बहुत कुछ या बिलकुल ही गन्धात्मक मामला है, हमे इतनी दूर तक जाने की आवश्यकता नही।

मनुष्य-जाति मे गन्ध का यौन महत्त्व न केवल निम्नतर प्राणियो से बहुत कम है, बल्कि उसमे तो गन्धात्मक आकर्षण का केन्द्रबिंदु यौन क्षेत्रो से हटकर शरीर के ऊपरी हिस्से मे पहुच गया है। इस दृष्टि से मनुष्य मे गन्धात्मक यौन आकर्षण दृष्टि के क्षेत्र मे प्राप्त होने वाले आकर्षण से मिलता है क्योकि भिन्नलिग व्यक्ति की आंखो मे पुरुष या स्त्री के जननेन्द्रिय सुन्दर नही प्रतीत होते और कही भी उनका प्रदर्शन करना प्राक्क्रीडा का प्रथम सोपान नही माना जाता। यौन क्षेत्र को बहुत अच्छी तरह छिपाने की प्रथा ने इस परिवर्तन को लाने मे अनुकूलता की है। इसलिए जब वैयक्तिक महक यौन आकर्षण का कारणस्वरूप बनती है तो बगल (जो शरीर मे महक का प्रधान केन्द्र है) चमडी और बालो के साथ कार्यशील होती है। इनके अलावा यह तथ्य भी अर्थपूर्ण है कि वे वैयक्तिक महक जो

साधारण परिस्थितियों में सज्ञान यौन क्षेत्र के अन्तर्गत है, और सच तो यह है कि सब तरह की वैयक्तिक महके कई बार किसी प्रकार का आकर्षण उत्पन्न नही करती, बल्कि विपरीत परिणाम हो सकता है। हा, यदि कुछ हद तक कामोत्तेजन हो चुका है तो बात और है पर उस हालत मे भी इससे घृणा उत्पन्न हो सकती है और इस प्रकार सम्बन्धो मे बहुत गडबडी पैदा करने वाली बात हो सकती है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य-शरीर की गन्धात्मक अनुभूतिया इसकी स्पर्शात्मक अनुभूतियो से मिलती जुलती है न कि देखने की अनुभूति से। हम लोगो मे गन्ध बौद्धिक कौतूहल की प्रधान अववाहिका नही रह गई। वैयक्तिक महको का प्रभाव अन्तरग, भावुकतापूर्ण तथा कल्पना-प्रधान होता है। इसलिए जैसा कि जेम्स ने कहा है यदि पहले से सहानुभूति मौजूद नही है तो वैयक्तिक महको से कामेच्छा की विपरीत इच्छा उत्पन्न हो सकती है।

ऐसा सम्भव मालूम होता है कि जन्तुओ मे पुरुष तथा स्त्री दोनो महको से प्रभावित होते है क्योकि यद्यपि साधारणत· नरो के शरीरो के यौन क्षेत्र मे विशेष गन्ध-सम्बन्धी ग्रन्थिया होती है (यदि ग्रन्थिया हो तो) पर यौन मौसम मे मादा से जो विचित्र गन्ध होती है वह नर को आकर्षित करने मे कुछ कम असरदार नही है। यदि हम यौन आकर्षण की बात को छोडकर साधारण रूप से इस बात पर विचार करे कि पुरुष और स्त्रिया किस हद तक गन्ध के द्वारा प्रभावित होती है तो इसमे कोई सन्देह नही कि हमे यह मानना पडेगा कि स्त्रिया ही अधिक प्रभावित होती है। ग्रोस ने यह बात दिखाई कि बच्चो मे भी लडकिया सुगन्धियो से लडको से कही अधिक दिलचस्पी रखती है और कई अन्वेषको ने विशेषकर गार्बिनि ने अपने शोधो के द्वारा यह बात साबित की है कि लडको की बनिस्बत लडकियो मे गन्ध पहचानने की वृत्ति अधिक तीव्र होती है। अमेरिका मे ऐलिस थायर ने यह प्रदर्शित किया कि लडकिया अपने रागद्वेष मे लडको की तुलना मे गन्ध से अधिक प्रभावित होती है। मारो ने इससे भी आगे बढकर लडकियो पर कुछ विस्तृत शोध किए, उन्होने अपने शोधो मे यौवनोद्गम के बाद की और उससे पहले की लडकियो को लिया। इसके फलस्वरूप उन्होने यह मत प्रतिपादित किया कि यौन जीवन आरभ हो जाने के बाद लडकिया महक के सम्बन्ध मे अधिक अनुभूतिशीलता प्राप्त कर लेती है, यद्यपि उनकी दूसरी अनुभूतिया उस मात्रा मे बढती नही है। यह और बता दिया जाय कि कई स्त्रियो मे गर्भिणी अवस्था मे गन्ध-सम्बन्धी अनुभूति अत्यधिक हो जाती है। वाशिडे के प्रयोगो ने यह प्रमाणित कर दिया कि बुढापे के आक्रमण के बाद भी स्त्रियो मे गन्धानुभूति-सम्बन्धी श्रेष्ठता कायम रहती है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है जैसे कि वैन डे वेल्डे तथा अन्य स्त्री-रोग-विशेषज्ञ

इस बात को मानते है कि स्त्रिया पुरुषो की तुलना मे गन्धानुभूतियो से कही अधिक और कही अधिक बार प्रभावित होती है।

बिलकुल भिन्न उद्गमो से आई हुई महको मे कई बार रासायनिक समता होती है और वे एक-सी मालूम होती है, इसलिए गन्धद्रव्यो से वे ही यौन असर पैदा हो सकते है जो आदिम रूप मे शरीर की महक से पैदा होते है। इवान ब्लाख ने यह कहा है कि आदिम रूप से स्त्रिया शरीर की सम्भव महक को छिपाने के लिए नही, जैसा कि सभ्य स्त्रिया करती है, बल्कि स्वाभाविक महक को बढाने और उसे तेज करने के लिए उनका इस्तेमाल करती थी। यह बात सही मालूम होती है। यदि आदिम मनुष्य किसी स्त्री से इस कारण कन्नी काट जाता था कि उसकी महक मामूली या इतनी कम है कि पहचान मे नही आती या वह उससे उस प्रकार से हट जाता था जैसे एक पोलिनेशियन पुरुष सिडनी नगर की लेडियो से यह कहकर हट गया था कि इनमे कोई महक नही है, तो यह स्पष्ट है कि स्त्रिया इस सम्बन्ध मे अपनी प्राकृतिक त्रुटि की पूर्ति करने की तथा अपनी गन्ध-सम्बन्धी विशेषताओ को बढाने की उसी प्रकार चेष्टा करती होगी जैसा सभ्य स्त्रिया अपने शरीर के यौन भलाइयो या खूबियो को सामने रखने की कोशिश करती है। ब्लाख ने इसी दिशा मे यह सुझाव रखा है कि अभी तक स्त्रिया जिन गन्धो को चुनती रही है, वे सूक्ष्म नही बल्कि बहुत तेज, अत्यन्त जान्तविक गुणसम्पन्न तथा अत्यन्त यौन होती थी जैसे कि मुश्क, कस्तूरी, सिविल अम्बरग्रि। इनमे से विशिष्ट पदार्थ मुश्क है, जो लीनियस वर्णित अमृतगन्धी वस्तुओ के वर्ग मे साथ आ जाता है। ज्वार्देमाकेर ने बताया है कि ये दोनो पदार्थ कैप्रिलवर्ग के साथ यौन महत्त्व रखते है और मुश्क की गन्ध वह गन्ध है जो मनुष्य के शरीर से बहुत मिलती है।

मनुष्य मे गन्धात्मक अनुभूतियो के वर्ग की विशेपता यह है कि उनसे एक अनुभूति का ह्रास सूचित होता है, जो मनुष्य के दूर के पूर्वपुरुषो मे यौन आकर्षण का प्रधान मार्ग हुआ करता था। मनुष्यो मे और कुछ हद तक वानरो मे दृष्टि ने गन्धानुभूति का स्थान ले लिया है। फिर भी गन्ध से बराबर हमारे इर्द-गिर्द एक वातावरण बनता रहता है जिससे हम आकर्षित या विकर्षित होते है और सूक्ष्म रूप से हम उनकी अवहेलना नही करते बल्कि उनको सवारते है।

(३) श्रवण :

हमारी जितनी भी मुख्य शारीरिक क्रियाए है, वे कुछ अन्तर देकर नियमपूर्वक हुआ करती है और इसमे कुछ आश्चर्य नही कि हमारी शारीरिक पद्धति मे छन्द अन्तर्निहित है। नतीजा यह है कि जो भी बाते हमारे स्नायुओ और मासपेशियो की नियमित गति-सम्बन्धी प्रवृत्ति से मिलती-जुलती है या जिन बातो से भी हमारे

अन्दर की यह छन्द-सम्बन्धी प्रवृत्ति विकसित और ऊची होती है, उनका हमपर निश्चित रूप से एक उत्तेजक तथा उत्साहवर्धक प्रभाव पडता है। बीखेर और वुण्ड्ट का यह मत मानना सम्भव नही है कि पद्धतिगत रूप से किए जाने वाले काम के साथ जो आवाज कुछ अन्तर से लगाई जाती है, उसीसे या मुख्य रूप से उसीसे सगीत की उत्पत्ति हुई है, पर छन्द चाहे सरल रूप मे हो या सगीत के विकसित रूप मे हो, मासपेशियो की क्रिया के लिए एक उत्तेजक असर रखता है, इसमे सन्देह नही। स्वीडिश भाषा-वैज्ञानिक स्पेरबेर का यह मत बहुत कुछ सही मालूम होता है कि यौन वृत्ति ही वह मुख्य स्रोत था जिससे साधारण रूप से भाषा की उत्पत्ति हुई। उनका कहना है कि दो परिस्थितिया है जिनमे सहजातात्मक चीत्कार उठेगा और उसे जवाब भी मिलेगा, एक तो वह जब कि भूखा बच्चा चिल्लाता है और मा उसे खिलाती है या पिलाती है, और दूसरे वह जब कि यौन रूप से उत्तेजित नर आवाज देता है और मादा उसका जवाब देती है। ऐतिहासिक रूप से दूसरी परिस्थिति पहले आई होगी और इसलिए यौन वृत्ति ही शायद भाषा का प्रथम स्रोत है। सच तो यह है कि यह उस समय हुई होगी जबकि मेरुदड-सम्बन्धी विकास हुआ होगा।

फेरे के प्रयोगो से यह साबित हो चुका है कि छन्द के अलावा केवल गाने की एक कडी भी शारीरिक उत्तेजना उत्पन्न कर सकती है। सगीत का मासपेशियो के कार्य पर क्या प्रभाव होता है, इसपर बार-बार खोज की गई है। डायनमोमीटर से छोटे प्रयोगो तथा एर्गोग्राफ से लम्बे प्रयोगो से यह पता चला है कि उत्साहप्रद प्रभाव होता है। एर्गोग्राफ यन्त्र के द्वारा टरचानोफ को यह मालूम हुआ कि स्नायविक रूप से अनुभूतिशील व्यक्तियो पर सजीव सगीत का यह असर होता है कि सामयिक रूप से थकावट या अवसाद दूर हो जाता है, यद्यपि नीचे के पर्दे पर मन्द सगीत का विपरीत ही असर होता है। फेरे को यह पता चला कि बेसुरेपन का प्रभाव अवसादजनक होता है, अधिकाश (पर सभी नही) ऊचे परदे उत्साहवर्धक है और अधिकाश (पर सभी नही) नीचे परदे अवसादजनक होते है। थकावट या अवसाद के समय नीचे परदे ऊचे परदो से अधिक उत्साहवर्धक होते है। सैडिज्म पर शोध करते हुए हमे शारीरिक अवसाद की स्थितियो मे विभिन्न कष्टकर भावो के समय जिस उत्साहवर्धक प्रभाव का ज्ञान होता है, यह परिणाम भी दिलचस्प ढग से उससे सामजस्ययुक्त पाया गया है। मासपेशियो की उच्चतर तथा निम्नतर क्रियाए यानी ऐच्छिक और अनैच्छिक क्रियाए सगीत के द्वारा उद्दीपित होती है।

स्नायविक और पेशीपद्धति के इस उद्दीपन के साथ-साथ, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनो तरह का हो सकता है, रक्त-सचार तथा श्वास-प्रश्वास पर भी असर पडता

है। १८८० मे रूसी शरीर-विज्ञानवेत्ता डोगियल ने यह मालूम किया कि प्राणियो मे इस प्रकार हृदय की शक्ति तथा द्रुतता बढ जाती है, तब से मनुष्यो और इतर प्राणियो पर वहुत तरह के प्रयोग किए गए है, जिनका उद्देश्य हृदय और फेफडे पर सगीत का परिणाम ज्ञात करना था। इधर और जो शोध हुए है उनसे यह स्पष्ट रूप से पता लगता है कि मनुष्य तथा दूसरे प्राणियो के रक्तसचार तथा श्वासयत्रो पर सगीत का स्पष्ट असर पडता है। पैट्रिजी ने एक ऐसे युवक पर प्रयोग किए जिसके सिर मे वहुत भारी चोट लगने से खोपडी का काफी हिस्सा उड गया था। उस प्रयोग से यह साबित हुआ कि मस्तिष्क के रक्त-सचार पर सगीत का बहुत स्पष्ट और प्रत्यक्ष असर पडता है। लय के उद्दीपन से मस्तिष्क के रक्त-सचार मे फौरन वृद्धि होती है।

यह आश्चर्यजनक नही है कि सगीत का शरीर के विभिन्न अन्तरग हिस्सों, आतो आदि तथा उनके कार्यो पर असर पडता है। इससे चर्म पर असर पडता है, जिससे पसीना वढ जाता है। इससे अश्रुपात की प्रवृत्ति पैदा हो सकती है। कभी-कभी इसके कारण पेशाब की इच्छा, यहा तक कि पेशाब हो सकता है। कुत्तो मे यह दिखाया जा चुका है कि श्रवण-सम्वन्धी उद्दीपन मे आक्सीजन का खर्च बढ जाता है और कार्वनिक ऐसिड दूर हो जाता है। विभिन्न वर्गों के वहुत से प्राणियो मे विशेषकर कीडो और चिडियो मे नि सदेह रूप से यौन आकर्षण को अभी तक सगीत से सहारा मिलता है और उसका विकास होता है। नर के गाने से मादा और मादा के गाने से नर यौन रूप से आकर्षित होते है। डार्विन ने इस मामले मे वहुत विस्तृत आधार पर खोज की थी, पर इस प्रकार के विचारो पर सन्देह प्रकट किया गया है और हडसन आदि कई लेखक हरवर्ट स्पेन्सर के इस विचार को मानते है कि चिडियो का गाना शक्ति के अतिरेक के कारण होता है और प्राक्क्रीडा तथा सगीत मे जो सम्वन्ध दिखाई पडता है वह केवल काकतालीय है। अव यह विचार मान्य नही। प्राणियो के सगीत की वास्तविक उत्पत्ति चाहे किसी वात से हुई हो, इसमे कोई सन्देह नही कि सगीतनुमा शब्द और चिडियो मे गाना प्राक्क्रीड़ा मे वहुत वडा हिस्सा अदा करते है। साधारणत ऐसा मालूम पडता है कि नर की स्वरलहरी से ही मादा आकृष्ट होती है, पर सरल और आदिम गाने वाले प्राणियो मे, जैसे कुछ कीडो मे, मादा ही नर को आकृष्ट करती है। हमेशा किसी प्राणिवर्ग मे नर या मादा मे से एक मे ही सगीत की प्रतिभा होती है। इससे भी यही सूचित होता है कि इसके पीछे यौन आकर्षण वाला कारण है।

कई स्तनपायी प्राणिवर्गो मे नर मुख्यत और कई वार केवल प्रजनन के मौसम मे ही वाणी के वरदान को काम मे लाता है। उच्चतर वानरो मे वाणी ही प्रेम-

निवेदन का मुख्यतम साधन है, साथ ही उसके द्वारा उत्तेजना को प्रकाशित किया जाता है। डार्विन ने इस बात को बताया था, और एक दूसरे दृष्टिकोण से फेरे ने मानवीय यौन सहजात के लक्षणो का अध्ययन करते हुए यह बताया कि किसी व्योरेवार निरीक्षण मे श्रवणशक्ति पर आधारित रोगग्रस्त यौन च्युतियो के अस्तित्व का उन्हे ज्ञान नही है।

केवल मनुष्य से निकट-सम्बन्धयुक्त प्राणियो मे ही नही वल्कि स्वय मनुष्य मे भी यौवनोद्गम होने पर स्वर-यन्त्र तथा आवाज मे यौन पृथकता आ जाती है, यानी पुरुष की आवाज स्त्री से विभिन्न रूप धारण करती है। यह विश्वास करना कोई कठिन नही है कि इस परिवर्तन का यौन निर्वाचन तथा यौन मनोविज्ञान पर प्रभाव पडता है। यौवनोद्गम पर स्वरयन्त्र तथा आवाज की तन्त्रियो मे द्रुत विकास होता है, यानी वे पहले से वडी और मोटी हो जाती हैं और आवाज मोटी पड जाती है। लडकियो मे ये परिवर्तन वहुत मामूली रहते हैं पर लडको मे ये परिवर्तन वहुत स्पष्ट होते हैं, जिनके सम्वन्ध मे यह कहा जाता है कि इनकी आवाज वैठ गई और फिर आवाज कम से कम एक सप्तक नीचे चली जाती है।—यौवनोद्गम पर स्त्री की आवाज ५ से ७ के अनुपात से वढती है जवकि पुरुप की वृद्धि का अनुपात ५ से १० का हो जाता है। इस परिवर्तन का कारण प्रत्यक्ष रूप से यौन विकास है, इसका प्रमाण न केवल इससे मिलता है कि यौवनोद्गम के समय ही यह परिवर्तन होता है, वल्कि इस तथ्य से यह और भी प्रमाणित होती है कि यौवनोद्गम के पहले ही जिन नपुसको के अण्डकोष निकाल लिए जाते हैं, उनकी आवाज वचकाना वनी रहती है।

यदि हम यह याद रखे तो हम यौन आवेदन के साधन के रूप मे स्वर तथा सामान्य रूप से सगीत को बहुत अधिक महत्त्व देगे। हम इस मामले मे मोल के साथ सहमत हो सकते हैं कि कानो के जरिए से यौन उद्दीपन जितना समझा जाता है उससे कही अधिक होता है, यद्यपि मै यह मानता हू कि यह प्रभाव पुरुषो की तुलना मे स्त्रियो पर अधिक होता है। इसका कारण यह है, जैसा कि रावर्ट मिलर ने कहा है, स्त्री की आवाज मे शिशु-सुलभ गुण वने रहते हैं और इसलिए पुरुष की आवाज जिस प्रकार विशिष्ट रूप से पुरुषोचित है, स्त्री की आवाज उसकी तुलना मे कम स्त्रियोचित है।

वाल्यावस्था मे प्रेम-सम्वन्धी जो विचार होते है, पुरुष अक्सर उनका सम्वन्ध गाती हुई या वजाती हुई स्त्री से स्थापित कर सकता है, पर साथ ही इन क्षेत्रो के सम्वन्ध मे यह वता दिया जाय कि यह आकर्षण रोमाटिक और भावुकतापूर्ण था और विशेष रूप से कामात्मक नही था। इसके विपरीत वयस्क जीवन मे वह सगीत,

जो हमे स्पष्ट रूप से यौन आवेदनयुक्त मालूम पडता है, इस कारण ऐसा असर उत्पन्न करता है कि उसका सम्बन्ध एक कहानी से रहा और अशत उसका असर इस कारण होता है कि सुनने वाला बौद्धिक रूप से इस बात को हृदयगम करता है कि स्वरकार ने आवेग को सौन्दर्य की भाषा मे अनुवाद करने की कोशिश की है। सगीत का वास्तविक असर यौन नही होता और यह अच्छी तरह विश्वास किया जा सकता है कि सम्मोहित लोगो पर ट्रिस्टैन के सगीत के यौन प्रभाव-सम्बन्धो मे जो प्रयोग किए गए, उनका परिणाम नकारात्मक रहा। पर ऐसा देखा गया है कि कम महत्त्वपूर्ण स्वरकारो विशेषकर मासने के सगीत का स्पष्ट रूप मे यौन असर हुआ है। हेल्म होल्टज ने यह जो कहा है कि सगीत मे यौन आवेग की अभिव्यक्ति धार्मिक आवेग से अभिन्न है, यह कुछ अत्युक्ति है।

फेरे ने अस्पताल मे पडे हुए एक युवक की बात लिखी है जो बहुत भयकर आर-थ्राइटिस रोग से पीडित था। वह यह शिकायत करता था कि अस्पताल के कपडो की देख-रेख करने वाली एक अदृश्य लडकी थी। जब भी सुमधुर आवाज दरवाजे के अदर से उसे सुनाई पडती थी, तभी उसका शिश्न कष्टकर रूप से दण्डायमान हो जाता था। पर ऐसी बाते अक्सर देखने मे नही आती या कम से कम साफ होकर सामने नही आती। मेरी अपनी खोजो से पता लगता है कि सगीत सुनने के फलस्वरूप बहुत कम पुरुषो पर स्पष्ट यौन असर पडता है।

जिन कारणो से ऐसा मालूम होता है कि पुरुष श्रवण के द्वारा यौन रूप से आकर्षित नही होते होगे, उन्ही कारणो से यह सम्भव मालूम होता है कि स्त्रिया यौन रूप से आकर्षित होगी। यौवनोद्गम पर पुरुष की आवाज भारी पडने लगती है, इसलिए यह पुरुष की एक गौण यौन विशेषता बन जाती है। इसके साथ जब हम यह मिलाकर देखते हैं कि आम तौर पर स्तनपायी जानवरो मे नर ही बहुत बोलता है, और सो भी मुख्यत बल्कि केवल प्रजनन के मौसम मे ही, तो इससे इस बात की सम्भावना पैदा हो जाती है कि साधारण रूप से स्तनपायी जानवरो की, जिनमे मनुष्य भी है, स्त्रियो मे पुरुष की आवाज के सम्बन्ध मे वास्तविक या सुप्त यौन अनुभूतिशीलता होती है। सभ्यता मे आकर यही अनुभूतिशीलता सगीत के प्रति आकर्षण मे परिणत हो गई होगी। जैसा कि गोकूरतो ने कहा है, सगीत स्त्रियो के लिए प्रेम का भण्डार है। यह ध्यान योग्य है कि स्त्रियो के द्वारा लिखे हुए उपन्यासो मे नायक के स्वर तथा नायिका पर उसके भावुक असर का बहुत जिकर रहता है। वास्तविक जीवन मे तो स्त्रिया कई बार पुरुष की आवाज़ के कारण प्रेम मे पड जाती है। ऐसा वे कई बार पुरुष को बिना देखे ही करती है। बाशीडे और बुरपास ने यह दिखलाया है कि जिन क्षेत्रो मे विशेष स्थानीय ढग के

यौन असर दिखाई नही पडते, उन क्षेत्रो मे भी स्त्रियो पर सगीत का शरीर-वैज्ञानिक असर यौन उद्दीपन से वहुत कुछ मिलता-जुलता है। वहुत ही सही दिमाग वाली पढी-लिखी स्त्रिया भी सगीत से एक हद तक स्पष्ट रूप से उद्दीपित होती है, यद्यपि यह नही कहा जा सकता कि ऐसा वे एक ही तरह के सगीत से होती है। स्नायु-विकृति वाले लोगो मे यह प्रभाव अक्सर अधिक स्पष्ट हो सकता है और कुछ रोग-ग्रस्त व्यक्तियो मे जैसा कि वाशीडे और वुरपास का कहना है तव तक मैथुन हो ही नही सकता जव तक कि उसे सगीत के द्वारा सहारा न दिया जाय।

यह भी अर्थपूर्ण है कि यौवनोद्गम के साथ-साथ सगीत तथा इस प्रकार की अन्य कलाओ मे स्पष्ट दिलचस्पी पैदा हो जाती है। पढे-लिखे वर्ग के युवाओ मे और विशेषकर लडकियो मे यौवनोद्गम के समय कला के प्रति प्रवल अभिरुचि उत्पन्न होती है, जो कई महीनो तक या अधिक से अधिक साल दो साल स्थायी होती है। एक निरीक्षण के अनुसार ६ मे ५ लडकियो मे ऐसे समय सगीत के सबध मे आवेगपूर्ण प्रेम वढ जाता है। पन्द्रह की उम्र के लगभग यह प्रेम सवसे अधिक होता है, और सोलह के वाद यह प्रेम तेजी से घटने लगता है।

(४) दृष्टि :

वहुत वडी हद तक दृष्टि ने वाकी सव इन्द्रियानुभूतियों पर धीरे-धीरे प्रधानता प्राप्त कर ली है और यही वह मुख्य धारा वन गई है जिसके जरिए से हमारे मन पर छाप पडती है। इसका क्षेत्र लगभग अनन्त है और उसका प्रयोग सूक्ष्म तथा अतरग हो सकता है। यह वह आधार है जिसपर कई कलाओ का आवेदन निर्भर है, साथ ही यह वह अनुभूति है जिसपर हम मुख्यत पुष्टि-ग्रहण के जान्तविक कार्य के लिए भरोसा करते है। इसलिए यह आश्चर्यजनक नही है कि यौन निर्वाचन की दृष्टि से दृष्टि ही सबसे बडी अनुभूति हो गई है। मनुष्यो मे प्रेम सौन्दर्य के निरन्तर अवलोकन के रूप मे हो गया है।

सौन्दर्य-सम्वन्धी धारणा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, यह सौदर्यशास्त्र का विषय है, न कि यौन मनोविज्ञान का। उसके साथ ही यह एक ऐसा प्रश्न है जिसपर सौन्दर्य-शास्त्रियो मे मतभेद है। हम यहा पर इस पचडे मे नही पडेगे कि यौन सौदर्य-सम्वन्धी हमारे आदर्शो का विकास सामान्यतर तथा मौलिकतर नियमो के प्रभाव के कारण हुआ है या नही और न हम इस झगड़े मे पडेगे कि सौदर्य की जो अधिकतर सामान्य धारणाएं हैं उनमे यौन आदर्श अतर्निहित हैं या नही। व्यावहारिक रूप से परिस्थिति यह है कि जहा तक मनुष्य तथा उसके पूर्वपुरुषो का सम्वन्ध है, सौदर्य के यौन और अयौन घटक पहले से ही एकदूसरे मे अन्त प्रविष्ट हैं। यौन रूप से सुन्दर पात्र की मौलिक शरीरवैज्ञानिक सामर्थ्य पर अच्छी प्रतिक्रिया हुई

होगी, साथ ही सामान्य रूप से सुन्दर वस्तु मे वह चमत्कार प्राप्त हुआ होगा जो विशेष रूप से यौन पात्र मे मिलता है। इस प्रकार से अनिवार्य रूप क्रिया-प्रतिक्रिया हुई होगी जैसे कि हम यह देखते है कि प्रकृति मे सर्वत्र मोहक गन्ध के यौन और अयौन प्रभाव अच्छेद्य रूप से मिले-जुले है। इसी प्रकार से कोई पात्र या वस्तु हमारी आखो मे सुन्दर मालूम होती है, तो उसके भी उद्देश्य उसी प्रकार से मिले-जुले है। सुन्दर व्यक्तियो के व्यौरेवार वर्णन मे द्रष्टव्य उपादानो पर ही जोर दिया जाता है। सौदर्य एक ऐश्वर्यशाली शब्द है, वह मन पर पडी हुई ऐसी जटिल छापो का मानो समन्वय है जो एक ही ज्ञानेद्रिय के जरिए से प्राप्त हुई है।

यदि हम तुलनात्मक रूप से असभ्य लोगो मे स्त्री के सौन्दर्य के सम्बन्ध मे जो आदर्श है, उसका सर्वेक्षण करे तो हमे यह दिलचस्प वात मालूम होगी कि इनमे वहुत सी वाते ऐसी मिलेगी जो सभ्य लोगो की सौदर्य-सम्बन्धी रुचि के अनु-रूप होगी। सच तो यह है उनमे से अधिकाश ऐसी है जो किसी भी प्रकार हमारे सौदर्य-सम्बन्धी विचारो या आदर्शो के प्रतिकूल नही पडती। यहा तक कहा जा सकता है कि कुछ असभ्य जातियो के सौदर्य-सम्बन्धी आदर्श हमारे मध्ययुगीन पूर्वपुरुषो के आदर्शो से हमे कही अधिक भले मालूम होते है। आधुनिक यूरोपियन सस्कृति के सम्बन्ध मे यह मान लिया जा सकता है कि वह सौदर्यशास्त्रगत सौन्दर्य के प्रति विशेष रूप से अनुभूतिशील है, फिर भी वह असभ्य जातियो की स्त्रियो मे सौदर्य देखता है। इससे यह सूचित होता है कि चाहे कितनी ही तरह के वदलने वाले प्रभाव पडे हो, सौदर्य एक वडी हद तक एक वस्तुगत मामला है। इस धारणा का समर्थन इस प्रकार से भी होता है कि निम्नतर जातियो के लोग कई वार अपनी जाति की स्त्रियो की तुलना मे यूरोपीय स्त्रियो की प्रशसा करते है।

यह शायद एक अर्थपूर्ण तथ्य है कि यही वात हमे सारे प्राणिजगत् मे प्राप्त होती है। मनुष्य को प्रकृति मे जो भी चीजे वहुत सुन्दर मालूम होती है वे यौन प्रक्रिया तथा यौन सहजात से सम्वद्ध है, या उनपर निर्भर है। यही वात पौधो की दुनिया मे भी दिखाई पडती है। प्राणिजगत् के अधिकाश मे भी यही वात है और जैसा कि पुलटन ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाते हुए कहा है, जिसकी ओर लोगो का ध्यान नही जाता और न लोग उसका मतलव लगा पाते है, कि मुर्गे का वह गाना या वह पख जो मुर्गी मे सम्भोग की इच्छा उत्पन्न करते है, वे ही अधिकाश क्षेत्रो मे मनुष्य को भी प्रिय मालूम देते है।

पुरुष तथा स्त्री के सौदर्य-सम्वन्धी आदर्शो के निर्माण मे यह वरावर अनिवार्य-सा रहा है कि मनुष्य-जाति के इतिहास के आदिकाल से यौन विशेषता को वहुत महत्व दिया जाता था। आदिम दृष्टिकोण से यौन रूप से वांछनीय तथा आकर्षक

स्त्री वही है जिसकी यौन विशेषताए या तो प्राकृतिक रूप से प्रमुख है या कृत्रिम रूप से प्रमुख बनाई गई है, यानी सुन्दर स्त्री वह स्त्री है जो दृश्यमान रूप से सतान धारण करने तथा उन्हे स्तन पिलाने के लिए सबसे अधिक योग्यता रखती है। इसी प्रकार से एक स्त्री की दृष्टि मे पुरुष के सौन्दर्य मे वे गुण है जो एक समर्थ जोडा तथा रक्षक के गुण है। एक हद तक प्राथमिक यौन चरित्र इस प्रकार असभ्य जातियो मे प्रशसा के कारण बनते है। कई जातियो के आदिम और अक्सर यौन अर्थपूर्ण नृत्यो मे स्त्रियो तथा पुरुषो के द्वारा यौन अगो के प्रदर्शन को प्रमुखता दी जाती है। यूरोप मे मध्ययुग तक पुरुषो के वस्त्र ऐसे होते थे जिनसे यौन अगो को प्रमुखता मिलती थी। ससार के कई भागो मे स्त्री के प्रजनन-अगो, भगोष्ठो तथा भगाकुर को कृत्रिम रूप से बढाने का अभ्यास किया जाता था और इस प्रकार बढे हुए अग महत्त्वपूर्ण माने जाते थे।

पर नग्न प्रजनन-अगो को आकर्षण के पात्रो के रूप मे प्रदर्शन करना निम्न सस्कृति के लोगो मे ही पाया जाता है, यद्यपि इस सम्बन्ध मे यह स्मरण रखना चाहिए कि जापान के कामात्मक चित्रो मे स्त्री तथा पुरुष दोनो के कामागो को बहुत बढा-चढाकर दिखाया गया है। उससे कही अधिक फैला हुआ तो वह रिवाज है जिसके अनुसार यौन अगो को सुन्दर बनाने तथा उन्हे छद्मवेश पहनाने की कोशिश की जाती है। ऐसा गोदना गोदवाकर तरह-तरह के अलकारो से तथा अजीब कपडे पहनकर किया जाता है। शारीरिक सौन्दर्य के स्थान पर कपड़े के सुघडपन को स्वीकार करने की प्रवृत्ति मनुष्य-जाति के इतिहास मे बहुत पहले ही शुरू होती है और जैसा कि हम अच्छी तरह जानते है, सभ्यता मे तो इसीका बोल-बाला है। इसलिए हमारी वास्तविकताए और हमारे परम्परागत आदर्श एकदूसरे से बिलकुल भिन्न हो गए है। हमारे कलाकार भी इस सम्बन्ध मे उलझनग्रस्त तथा अज्ञ है। स्ट्राटस ने बार-बार दिखलाया है कि कलाकार लोग अपनी मासूमियत मे त्रुटिग्रस्त माडेलो के विकृत अगो तथा रोगग्रस्त विशेषताओ का चित्रण करते अघाते नही है।

असभ्य जातियो मे सजावट तथा वस्त्र के प्रधान आदिम उद्देश्यों मे एक उद्देश्य यह है कि शरीर के प्रति आकर्षित किया जाए न कि उसे छिपाया जाए और उसे अधिकतर आकर्षक बनाया जाए। इसके साथ ही हमे इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि सजावट तथा अगच्छेद आदि का उद्देश्य जादू-टोनामूलक माना जाता था, जिसके द्वारा खतरे से भरे हुए शारीरिक कार्यो की रक्षा की जाती थी तथा उन्हे अलग कर दिया जाता था। ये दोनो उद्देश्य बडी हद तक एक-दूसरे मे अन्त:-प्रविष्ट है। सस्कृति के उद्भव के आदिम युग मे प्रजनन-अग पवित्र रूप धारण

करने लगते है, साथ ही यौन क्रियाए धार्मिक बन जाती है। आदिम मनुष्य ने ही इस बात को समझ लिया था कि प्रजनन, जो प्रकृति मे सृजन की शक्ति है, बहुत महान् धारणा है और उसने तदनुसार सृजन के प्रधान प्रतीको मे प्रजनन-अगो को स्थापित कर दिया। इस प्रकार इन्हे इतनी गम्भीर पवित्रता मिल गई, जो यौन आकर्षण के उद्देश्य की दृष्टि से अनुकूल नही माने जा सकते। लिगपूजा एक जगद्व्यापी प्रथा के रूप मे पाई जाती है। यह उच्च सस्कृति वाले लोगो मे भी जैसे रोमन साम्राज्य के समय के रोमनो मे और आज के जापानियो मे प्रचलित है।

प्राथमिक यौन विशेषताओ पर इस प्रकार से जो धार्मिक और जादू-टोनामूलक गुण अर्पित किए गए है, उनके अलावा भी कई और कारण हुए जिनसे उन्हे यौन आकर्षण के पात्रो के रूप मे अधिक महत्त्व प्राप्त नही हुआ, और यदि हुआ तो वह ज्यादा दिन नही टिका। वे इस दृष्टि से अनावश्यक तथा असुविधाजनक है। जन्तुओ मे भी ऐसा बहुत कम देखने मे आता है कि प्राथमिक यौन विशेषताए विपरीत लिग के सदस्य की आखो मे आकर्षक जान पडे, यद्यपि वे गध की अनुभूति के कारण आकर्षक है। यौन क्षेत्र शरीर के मर्मस्थल होते हैं। विशेषकर मनुष्य मे वे बहुत ही मर्मस्थल है, इसलिए यौन आकर्षण के रूप मे उनका प्रदर्शन तथा उनका रक्षण एक-दूसरे के विरुद्ध पडते हैं। इसके विपरीत यह उद्देश्य शरीर के ऊपरी तथा अन्य प्रमुख भागो पर (जो यौन आकर्षण के प्रधान चिह्नस्वरूप है) केन्द्रीभूत करने से अधिक असरदार तरीके से सिद्ध होता है। यह तरीका भी ऐसा है जो लग-भग सर्वत्र यहा तक कि निम्नतर जन्तुओ मे भी दृष्टिगोचर होता है।

इसीके साथ ही भले ही सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से यह सुन्दर न जान पडे, यह बहुत ही आवश्यक है कि पुरुष का अन्त प्रवेशक अग तथा स्त्री की ग्रहणकारी प्रणाली अपनी आदिम विशेषताओ को कायम रखे। इसलिए उनमे यौन या प्राकृतिक निर्वाचन के द्वारा अधिक परिवर्तन की गुजाइश नही है, और इस प्रकार वे आदिम विशेपता को कायम रखने के लिए बाध्य है। भले ही वे कामातुरता की हालत मे विपरीत लिग के व्यक्ति के निकट यौन रूप से वाछनीय तथा आकर्षक जान पडे, पर वे सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से आसानी से सुन्दर नही लग सकते। इसी कारण कलाकार की कृति मे यौन अगो के आकार घटे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। आदर्श पुरुपोचित सौन्दर्य का अकन करते हुए सभ्य जगत् का कलाकार कभी दण्डायमान शिश्न प्रदर्शित नही करता। मामूली तथा स्वाभाविक दशाओ मे स्त्री के यौन क्षेत्र नगी हालत मे भी लगभग दिखाई नही पडते और इसलिए उसकी असुन्दर विशेपता लुप्त हो जाती है। यही कारण है कि पुरुष की वजाय स्त्री के स्वरूप को ही सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से अवलोकन का पात्र माना गया है। इस

विशेपता के अलावा हम पक्के सौन्दर्यशास्त्रीय मानदण्ड से यह मानने के लिए मजबूर है कि पुरुप कम से कम स्त्री की तरह ही समान रूप से सुन्दर होता है। इसके अलावा स्त्री अक्सर जल्दी से सुन्दरता के सर्वोच्च विन्दु को पार कर जाती है।

प्रजनन-अगो के प्रति दृष्टि आकर्पित करने के लिए जो तरीके अख्तियार किए गए थे सस्कृति के विकास के साथ वे तरीके जारी रखे गए, पर साथ ही एक विकास यह हुआ कि प्रजनन-अगो के प्रति दृष्टि आकर्पित करने की वजाए उसे छिपाने का एक उद्देश्य भी जुड गया। जैसा कि पहले ही वताया जा चुका है, शुरू से ही दोयम दर्जे के यौन अगो की ओर ही आकर्पित करने का और यौन रूप से उद्दीपित करने का अधिकतर प्रचलित तरीका था। आज भी अत्यन्त सभ्य देशो मे अधिकाश लोगो के लिए दोयम दर्जे के यौन अगो की ओर ध्यान दिलाना ही यौन आकर्षण का प्रचलित तरीका है। सुघड व्यक्तियो मे दोयम दर्जे की यौन विशेपताए ही साधारणत सुन्दर रूप मे आगे आती हैं।

यूरोप, एशिया और अफ्रीका के अधिकाश लोगो मे दोयम दर्जे की जो यौन विशेषता सौन्दर्य का सबसे महत्त्वपूर्ण अग समझी जाती है, वह है स्त्रियो का सुपुष्ट नितम्बिनी होना। यह एक विशेषता है जो पुरुष के सौन्दर्य से स्त्री के सौन्दर्य को निश्चित रूप से अलग करके रख देती है। साथ ही हमे यह याद रखना चाहिए कि यह फर्क स्त्रियो के गर्भधारण के लिए आवश्यक है। पुष्ट नितम्ब वाली स्त्री यौन रूप से निर्वाचित होती है, इस तथ्य के पीछे प्राकृतिक निर्वाचन का नियम काम कर रहा है, यद्यपि विशुद्ध सौन्दर्य--शास्त्रीय सौन्दर्य की दृष्टि से पुष्ट नितम्ब साधारण तौर पर अच्छा समझा जा सकता है। सौन्दर्यशास्त्र के इस सूक्ष्म विचार को छोड दिया जाय तो लगभग हर जगह पुष्ट नितम्ब सौन्दर्य का चिह्न माना जाता है। अत्यन्त सूक्ष्म सौन्दर्यप्रिय देशो मे भी औसत आदमी की यही राय होगी। यदि इस पुष्टता की तुलना बधे-सधे पुरुष-शरीर से की जाए और इस प्रकार दोनो का सम्बन्ध जुड जाय जैसा कि जुडा है तो इसमे सन्देह नही कि इस प्रकार स्वस्थ मातृत्व के लिए जो बाते जरूरी है, उन्हीका समन्वय हुआ है और इस प्रकार यौन आकर्षण के लिए एक आदर्श आधार बन गया है। पुष्ट नितम्बो के साथ वस्तिगह्वर का बडा होना जरूरी है, इसलिए इसमे ताज्जुब नही है कि उच्चतम मनुष्य-जाति की यह भी विशेषता बन गई है कि जिन जातियो के लोगो के सिर सबसे वडे है, उनमे वस्तिगह्वर भी सबसे बडा होना चाहिए।

इसे केवल एक आकस्मिक वात नही माना जा सकता कि काले रग की जातियो मे जिनमे वस्तिगह्वर सबसे छोटा होता है, कृत्रिम रूप से चर्बी जमा करने के तरीके से वस्तिगह्वर वडा करके दिखाने की चेष्टा की जाती है और ऊची नस्लो के वडे

वस्तिगह्वर की प्रशसा की जाती है। इस प्रकार से चर्म के नीचे स्त्रियो के नितम्बो तथा जाघ के ऊपरी हिस्सो की चर्बी को बहुत अधिकता से बढाया जाता है और इस प्रकार से एक तरह का प्राकृतिक चर्बीयुक्त मासल भाग वन जाता है। जिसे सचमुच ही चर्बी जमा करना कह सकते है, वह बुशमैन तथा हाटेन्टट जातियो की स्त्रियो मे तथा जो लोग उनसे रक्त द्वारा सम्बन्धित है, उनमे पाया जाता है। वहुत सी अन्य अफ्रीकी जातियो मे भी नितम्बो का असाधारण विकास पाया जाता है। कई वार इस विशेषता के लिए प्रशसा की भावना आम तौर से मोटी स्त्रियो के लिए दिखाई पडती है और इस सम्बन्ध मे यह द्रष्टव्य है कि कुछ हद तक अधिक मोटाई दोयम दर्जे की स्त्रीसुलभ यौन विशेषता समझी जाती है। इस प्रकार की प्रशसा-भावना अफ्रीका की कई काली जातियो मे दृष्टिगोचर होती है। विकसित नितम्ब के साथ यौन सौन्दर्य को सयुक्त करके देखने की प्रवृत्ति की एक विशेषता यह रही है (जो विशेषत मध्ययुगीन यूरोप मे प्रचलित थी) कि गर्भवती स्त्री को शारीरिक दृष्टि से सबसे सुन्दर समझा जाता था।

स्त्री के वस्तिगह्वर के प्रति आकर्षण के बाद ही स्तनो के प्रति आकर्षण का नम्वर आता है। सच तो यह है कि सभ्य जातियो मे इनका नम्वर कुछ ऊचा ही है। यूरोपियनो मे इस क्षेत्र का महत्त्व इतना अधिक है कि जिन दिनो शरीर का प्रदर्शन विल्कुल ही निषिद्ध था उन दिनो भी पूरे कपडे पहनी हुई यूरोपीय स्त्री को वक्षस्थल को कमोवेश अनावृत रखने की छूट थी। इसके विपरीत असभ्य जातियो के लोग शरीर के इस हिस्से के प्रति विशेष आकर्षित नही होते। कई असभ्य जातियो के लोग स्तनो के विकास को असुन्दर समझते है और वे उनके उभार को चौरस कर देने के तरीके काम मे लाते है। आधुनिक यूरोप मे भी इसके पीछे जो भावना है, वह अज्ञात नही है। मध्ययुगीन यूरोप मे तो दुवली-पतली स्त्री को आदर्श सुन्दरी मानने का जो विचार था, वह उभारयुक्त स्तनो के विरुद्ध पडता था, इसलिए कपडो से उन्हे दवा देने का तरीका था। परन्तु ऊचे दर्जे की सभ्यता मे यह भावना विलकुल अज्ञात है, और सच तो यह है कि कई बर्बर जातियो मे भी इस प्रकार के विचारो का पता नही मिलता। उभारयुक्त स्तनो और वृहत् वस्तिगह्वर के प्रति प्रशसा इस वात से सूचित होती है कि प्राचीन युग के कारसेट के द्वारा कमर को कस दिया जाता था। यह प्रथा श्वेत जातियो मे सर्वत्र पाई गई है, और यह दूसरी जातियो मे भी अज्ञात नही है।

दोयम दर्जे की पुरुषोचित यौन विशेषताओ मे दाढी को गिना जा सकता है, यद्यपि उसका सम्वन्ध स्तन और नितम्ब की तरह सन्तानोत्पादन क्रिया से नही है। दाढी को एक विशुद्ध यौन अलकार समझा जा सकता है, जिसकी तुलना जानवरो

में नरो के केशर से की जा सकती है। सस्कृति के विभिन्न युगो मे दाढी वढाने का रूप भिन्न रहा। दाढी रखने की प्रथा वर्वर लोगो मे विशेप रूप से पाई जाती है। वे इसे कई बार पवित्र भी मानते हैं। सभ्यता मे आकर उसका यह अर्थ लुप्त हो गया और यौन अलकार के रूप मे इसका मूल्य या तो घट गया है या विल्कुल ही नष्ट हो गया है। प्राचीन सभ्यताओ मे भी यही वात थी। रोमनो के प्रथम युग मे दाढी और लम्बे बाल की प्रथा थी, पर वाद को चलकर यह प्रथा लुप्त हो गई जव कि भगसन्धि का केशमोचन स्त्रियो मे साधारण हो गया, और दाढी गम्भीरता और ज्ञान के प्रतीक के रूप मे दार्शनिको के लिए सुरक्षित रखी गई। ग्रीक मूर्तियो मे स्त्रियो के भग-सन्धियो में अक्सर वाल नही है पर इससे वास्तविक जीवन का परिचय नही प्राप्त होता और अलकारयुक्त पात्रो पर जो शिल्प-कार्य वना हुआ है, उनमे ग्रीक (देवदासी) हेटेराइयो की भग-सन्धि के वाल दिखाए गए हैं। ट्राय की हेलेन मे भी, जो सौन्दर्य की एक टाइप समझी जाती थी, यही वात दिखाई गई है। स्टोल ने विभिन्न जातियो मे प्रचलित केश-सम्वन्धी रिवाजो, विभिन्न युगो मे एक ही जाति के केश-सम्बन्धी व्यवहारो तथा केश को वे किस प्रकार मर्यादा देते हैं, इन बातो का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया है और वे इस नतीजे पर पहुचे कि इनमे वहुत फर्क है। कई बार तो केश पुरुषो के लिए सवसे अधिक सम्मान की वस्तु और स्त्रियो मे चरम सौन्दर्य के प्रतीक समझे जाते है, पुन कई वार जहा तक सम्भव है उनका वर्जन किया जाता है, वे काटे जाते हैं, मुडाए जाते है और साफ किए जाते है।

इसका एक मुख्य कारण यह रहा है कि सेक्स के साथ केश-पद्धति का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, साथ ही लोग यह भी महसूस करते रहे है कि वस्तिगह्वर तथा स्तनो की तरह केशो का अब कोई निश्चित जीव-वैज्ञानिक मूल्य प्राप्त नही है। इस प्रकार यह एक क्षेत्र है, जिसमे लोग अपनी इच्छा के अनुसार चाहे जैसे फैशन बना सकते है। धार्मिक यति-उपादान का असर प्राचीन मिस्र मे भी केश रखने के प्रतिकूल ही रहा क्योकि जैसा कि रेमी-द-गुर्मो ने कहा है, प्राणी के जीवन-स्वरूप की अनैतिकता विशेष रूप से केश रखाने की पद्धति मे वसी हुई है। इस प्रकार से ईसाइयत का प्रभाव वालो के विरुद्ध होना अनिवार्य रहा। प्राचीनकाल मे दाढियो का विरोध चला, जिसकी निन्दा भिक्षु लेखको ने की है। इसके वाद लज्जा स्थान वाले वालो के विरुद्ध मोर्चा तैयार हुआ, जिसका रूप विक्टोरियन युग मे चलकर इस प्रकार हो गया कि चित्रो मे इन वालो को दिखलाना गर्हित समझा जाने लगा। इस प्रकार जो वाते सभ्यता की अच्छी वाते समझी जाती थी, धर्म ने उन्हीमे जोर पहुचाया और अव हम देखते हैं कि पुरुषों मे दाढ़ी वनाना और स्त्रियो मे

बगल तथा कई बार भग-सन्धि के बाल बनाना और साधारण तौर पर केश को कम महत्त्व देने की ओर प्रवृत्ति है।

फिर भी कुल मिलाकर हम ऐसा देखते हैं कि एक मौलिक प्रवृत्ति है जिसके अधीन ससार की विभिन्न जातिया, अपने बुद्धिमान् सदस्यो के जरिए से सौन्दर्य के एक सामान्य आदर्श को मानकर चलती हैं, जिससे एक हद तक यह कहा जा सकता है कि सौन्दर्य का एक वस्तुगत आधार है। सौन्दर्य के मानवीय आदर्श विभिन्न देशो मे परिवर्तित होते रहते हैं और सच तो यह है कि एक ही देश मे विभिन्न युगो मे परिवर्तित होते रहते हैं। ये परिवर्तन क्यो होते हैं जब इसपर विचार किया जाता है तो ऐसा मालूम होता है कि इसके पीछे एक यौन आवेग होता है, जो आवश्यक रूप से सौन्दर्यशास्त्रीय नियमो के साथ सामञ्जस्ययुक्त नही होता। इस आदर्श का उद्देश्य किसी न किसी प्रमुख दोयम दर्जे की यौन विशेषता पर जोर देना या उसका दमन करना होता है।

एक प्रवृत्ति जो इससे भी अधिक हद तक सौन्दर्य-सम्बन्धी विशुद्ध शास्त्रीय आदर्शो के अनुशीलन के विपरीत पडती है, वह है राष्ट्रीय या वशजातीय टाइप का प्रभाव। प्रत्येक वश-जाति के औसत पुरुष की आखो मे वही स्त्री साधारण रूप से सबसे सुन्दर है जिसमे उसकी वश-जाति की टाइप मूर्त हो जाती है। कई बार अगच्छेद यहा तक कि कुरूपीकरण भी अपनाया जाता है और उसका उद्देश्य यह होता है कि वशजातीय टाइप को दूसरो से अलग करके दिखाया जाए। प्राच्य स्त्रियो की आखे प्राकृतिक रूप से बडी और प्रमुख होती हैं, फिर इस विशेषता को कला से और भी बढाया या बल दिया जाता है। ऐनू जाति के लोगो मे बहुत ज्यादा बाल होते हैं और वे बालो को जितना सुन्दर समझते हैं उतना और किसी चीज को नही समझते।

यौन रूप से ऐसे व्यक्तियो के प्रति आकर्षित होना कठिन है जो मौलिक रूप से वशजातीय गठन की दृष्टि से हमसे भिन्न हैं। इसलिए अक्सर अपनी वशजाति की विशेषताओ की प्रशसा-भावना रखते-रखते हम ऐसी बातो को आदर्श समझने लगते है जो शास्त्रीय सौन्दर्य से बहुत दूर है। कडे और गोल स्तन अवश्य ही सौन्दर्य के एक अग हैं, पर अफ्रीका की बहुत सी काली जातियो मे बहुत कम उम्र मे ही स्तन झूल जाते हैं, इसलिए हम देखते हैं कि वहा कई बार झूला हुआ स्तन सुन्दर समझा जाता है।

यौन सौन्दर्य के विश्लेषण को पूर्णाङ्ग बनाने के लिए एक और बात पर विचार करना जरूरी है, वह है वैयक्तिक रुचि का प्रभाव। प्रत्येक पुरुष, कम से कम सभ्य पुरुष, कुछ सकीर्ण दायरो के अन्दर अपने लिए स्त्री के सौन्दर्य का एक

आदर्श चित्र अपने मन मे प्रस्तुत करता है। यह आदर्श आशिक रूप से उसकी विशेप बनावट तथा उसकी मागो पर निर्भर है और आशिक रूप से उससे वास्तविक जगत् मे जिन लोगो के साथ आकस्मिक रूप से स्नेह-सम्बन्ध हो गया, उनपर निर्भर करता है। इस घटक के अस्तित्व पर जोर देना अनावश्यक है, सभ्य जगत् मे यौन निर्वाचन पर विचार करते समय इस वात पर विचार करना ही पडेगा। पर इसमे कई प्रकार-भेद होते है, और मस्त प्रेमिको मे कई वार ऐसी विशेपताओं के प्रति प्रशसा-भावना दृष्टिगोचर हो सकती है जो वास्तविक रूप से सुन्दरता के विपरीत है। इस प्रकार हम रोगग्रस्त यौन विच्युतियो के क्षेत्र के पास आ जाते है।

इस प्रकार से हम सौन्दर्य के आदर्श की वनावट के सम्वन्ध मे एक और घटक को मानने के लिए मजबूर है जो शायद सभ्यता मे ही पाया जाता है। वह है अस्वाभाविक, दूरगत तथा अद्भुत का प्रेम। यह आम तौर से कहा जाता है कि सौन्दर्य मे दुर्लभ विशेषताओ की प्रशसा की जाती है। पर यह वात सम्पूर्ण रूप से सत्य नही है। हा जब प्रशसित टाइप से कुछ इधर-उधर की टाइप से इसका मतलव होता है तो यह वात सत्य होती है। एक प्राचीन कहावत है कि जो असाधारण नही है, वह कुछ भी नही है। अधिकतर स्नायविक वेचैनी और सभ्यता की अनुभूतिशीलता के कारण यह प्रवृत्ति जोर पकडती है और अक्सर यह कलात्मक प्रतिभा के व्यक्तियो मे भी पाई जाती है। सभ्यता के हर बडे केन्द्र मे सौन्दर्य का राष्ट्रीय आदर्श अद्भुत दिशाओ मे पल्लवित होता रहता है और वैदेशिक आदर्शो तथा फैशनो को देशी आदर्शो तथा फैशनो के मुकावले मे तरजीह दी जाती है।

इस प्रकार से दृष्टिगत यौन आवेदन मे सौन्दर्य ही एकमात्र नही तो मुख्य उपादान होता है। ससार के सभी भागो में दृष्टिगत आवेदन को अच्छी मान्यता दी गई है और इसीलिए प्रेम-निवेदन यानी उद्दीपन के प्रयास मे दृष्टि पर ही तरह-तरह से चोट की जाती है, और साथ ही दोयम दर्जे के आवेदनो से इस हमले को तगडा बनाया जाता है।

इस प्रकार से यौन दृश्यो के द्वारा, यहा तक कि भिन्न लिग के यौन अवयवो के प्रदर्शन के द्वारा यौन उत्तेजना का उद्रेक किया जाता है। एक हद तक यह विलकुल ही स्वाभाविक है। इस प्रकार के निर्लज्ज प्रदर्शन इस कारण किए जाते है कि नग्न शरीर को वहुत कडे परम्परागत ढग से गुप्त रखा जाता है। वडे-वडे सम्माननीय लोग अपनी जवानी मे परस्त्रियो के शयनकक्ष मे झाकते थे, इसी प्रकार से वहुत सम्मानित स्त्रिया परपुरुषो के शयनकक्ष के छिद्र से झाकती है, यद्यपि कोई भी इस वात को स्वीकार नही करना चाहेगा। मकान-मालकिने

तथा नौकरानिया ऐसे कमरो के छेदो से झाका करती है जिनमे ऐसी जोडी होती है जिसपर प्रेमिक प्रेमिका होने का सन्देह करती है। जो लोग इस प्रकार से यौन दृश्य देखने का बेधडक अनुशीलन करते रहते है, उन्हे आम तौर पर 'पीपर' या चोरी से झाकने वाला कहा जाता है। कई बार इस प्रकार की चेष्टा के कारण लोग पुलिस के चगुल मे पड जाते है, खासकर पेरिस मे ऐसा होता है। मेरी जानी हुई कई स्त्रियो ने यह बताया है कि उन्होने पेरिस के तीलरी बाग के सार्वजनिक स्थानो के अदर से होकर स्काई लाइट के जरिए से पुरुषो को उन्हे चोरी से देखते देखा है।

इसका एक दूसरा रूप यह है कि लोग चित्रो से यौन रूप से आकर्षित होते है। ऐसे चित्र कामुकतापूर्ण या काममूलक दृश्य वाले हो ही, ऐसी बात नही। इसी प्रकार लोग मूर्तियो से भी यौन रूप से आकर्षित होते है। ऐसा एक तरफ उस मनोवैज्ञानिक कारण से होता है जिसे लोग 'पोर्नोग्राफी'[1] कहते है। यह शब्द गलत है क्योकि इसके प्रचलित अर्थ के साथ चकलो का कोई विशेष सम्बन्ध नही होता। दूसरी तरफ ऐसा उस यौन विच्युति के कारण होता है जिसे पिगमैलियन-वाद कहते है। पिगमैलियन एक मूर्तिकार था, जो अपनी बनाई हुई मूर्ति के इश्क मे गिरफ्तार हो गया था। यौन दृश्यो तथा यौन चित्रो मे दिलचस्पी स्वाभाविक तथा साधारण है, बशर्ते कि वह एक बहुत ही भयकर मनोवेग के रूप मे परिणत न हो जाए। पिगमैलियनवाद एक रोगग्रस्त प्रवृत्ति है, क्योकि प्रशसित वस्तु स्वय अपने मे लक्ष्य हो जाती है। पिगमैलियनवाद मुख्यत पुरुषो मे पाया जाता है, पर हिर्शफील्ड ने एक ऐसी महिला का उल्लेख किया है जो उच्चतम सामाजिक वृत्तो की थी, पर उसके सम्बन्ध मे यह देखा गया कि उसने एक अजायबघर की क्लासीकल मूर्तियो से अजीर के पत्ते[2] उठा दिए और उनके नीचे के स्थान को चुम्बनो से भर दिया। इस समय चित्रो के प्रति कामुक आकर्षण मुख्यत और बहुत बडे पैमाने पर सिनेमा के जरिए अभिव्यक्त होता है। सिनेमा का प्रभाव बहुत ही शक्तिशाली है क्योकि इस प्रकार जो चित्र दिखलाए जाते है, वे बिल्कुल सजीव और चलते-फिरते होते है। बहुत से लोग विशेषकर युवतिया प्रतिदिन शाम को यौन उत्तेजना की हालत मे अपने प्रिय नायक को देखने के लिए सिनेमा-घरो मे जाती है। यह नायक शायद हजारो मील दूर रहता है जिसे वे लडकिया शायद

१—इसका शाब्दिक अर्थ वेश्यालिखन ('पोर्नो' माने वेश्या और 'ग्राफी' माने लिखना) है, पर इसका प्रचलित अर्थ अश्लील साहित्य-प्रेम है—अनुवादक

२—प्राचीन चित्रों में लज्जास्थान को अजीर के पत्तों से कई बार ढका जाता था, सार्वजनिक स्थानो में नगे चित्र के साथ भी ऐसा किया जाता था—अनुवादक

वास्तविक जीवन मे कभी न देखे।

दृष्टि के द्वारा महत्त्वपूर्ण पर दोयम दर्जे के आवेदन का परिचय हमे नृत्य के रूप मे मिलता है। यहा हमे उस वृत्ति का दर्शन होता है जिसे रीजर ने पेशीगत कामुकता और हीली ने चर्मगत कामुकता के साथ मिश्रित पेशीगत कामुकता कहा है। नृत्य मे दृश्य होता है, साथ ही पेशीगत क्रिया होती है। इनमे से प्रत्येक क्रिया कुछ स्थितियो मे यौन उत्तेजना का कारणस्वरूप बनती है और वह दृश्य सामने चलने वाले शारीरिक अभ्यास से कही अधिक उद्दीपक होता है। कई असभ्य जातियो मे नृत्य यौन निर्वाचन का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तरीका है। उनमे जो लोग कुशल तथा तगडे नर्तक होते है, स्त्रिया उन्हे वरण करती है। सभ्यता के युग मे नृत्य का प्रभाव अच्छा रहता है या बुरा, इसपर वाद-विवाद हुआ है। कुछ साल पहले ब्रिल ने न्यूयार्क मे इस विषय पर खोज की। उसने नए नृत्य के हामी ३४२ पुरुषो तथा स्त्रियो पर (मित्रो, रोगियो तथा दूसरे ऐसे लोगो पर जिनपर विश्वास किया जा सकता था) प्रयोग किए। इनमे से दो तिहाई पुरुष और एक तिहाई स्त्रिया थी। इन लोगो के सामने ये प्रश्न रखे गए--(१) नए नृत्य करते समय क्या आप कभी यौन दृष्टि से उत्तेजित होते है? (२) ऐसे नृत्य देखते समय क्या आप कभी उत्तेजित होते है? (३) पुराने नृत्यो को नाचते या देखते समय भी क्या आपको वे ही तजुरबे होते है?

पहले प्रश्न के उत्तर मे १४ पुरुषो और ८ स्त्रियो ने 'हा' मे उत्तर दिया, दूसरे प्रश्न के उत्तर मे १६ पुरुषो और २९ स्त्रियो ने तथा तीसरे प्रश्न के उत्तर मे ११ पुरुषो तथा ६ स्त्रियो ने 'हा' मे उत्तर दिया। जिन लोगो ने दूसरे प्रश्न के उत्तर मे 'हा' कहा था, उन लोगो ने दूसरे और तीसरे प्रश्नो के उत्तर मे भी 'हा' कहा था। कुल सख्या की तुलना मे स्त्रियो मे 'हा' मे उत्तर की सख्या कुछ अधिक रही। इनमे से सभी स्त्रिया ब्रिल की परिचित थी और ब्रिल इन्हे यौन रूप से अति अनुभूति-शील समझते थे। बहुत अधिक सख्या का यह कहना था कि इनमे नाचते समय स्फूर्ति और सतोष की भावना भर जाती है। रहा यह कि नए नृत्य भयकर यौन उत्तेजक है या नही, इसका उत्तर नकारात्मक रूप से दिया गया। ब्रिल ने सही रूप से यह उपसहार निकाला है कि दोनो तरह के नृत्य यौन तनाव को निकाल देते है, हा उनमे डिग्रियो का फर्क है और स्नायविक कमजोरी वाले तथा हाइपर कोड्रियाकल लोगो के लिए बहुत ही लाभजनक है। जब नृत्य करना महामारी की तरह जोरो पर हो जाता है, जो अवाञ्छनीय है, तो भी इसका परिशीलन होना चाहिए क्योकि यह वासना और दमन इन दो विरुद्ध धाराओ के बीच मे एक सम-झौते के रूप मे है और दमित तनाव की भाप को निकाल देने का एक रास्ता सा है।

अन्त मे यह बात बता देनी चाहिए कि सौन्दर्य स्त्री का एक प्राथमिक गुण है और इस रूप मे नारी पुरुष के लिए चिरन्तन तथा आराधना की वस्तु है। फिर भी, स्त्रिया भी सौन्दर्य की प्रशसा करती है, यद्यपि यह एक स्त्रियोचित गुण है, पर इसके साथ ही यह भी बात सत्य है कि जिस प्रकार पुरुष के कल्पना-नेत्रो के सामने हमेशा नारी का सौन्दर्य तरगित होता रहता है, उस प्रकार स्त्री के सामने पुरुष का सौन्दर्य उपास्य आदर्श के रूप मे नही रहता। सम्पूर्णता की दृष्टि से पुरुष का शरीर स्त्री से किसी भी प्रकार घटिया नही है, पर इसका अध्ययन केवल कलाकार या सौन्दर्य-शास्त्री के लिए ही दिलचस्प है और इसके लिए केवल समलैंगिक मैथुनेच्छुक पुरुष मे ही यौन आवेग पैदा होता है। जानवरो यहा तक कि असभ्य जातियो मे चाहे कुछ भी हो, सभ्य मनुष्यो मे स्त्रियो के साथ जो पुरुष सबसे अधिक सफल रहता है, वह साधारणत सबसे सुन्दर पुरुष नही होता, सम्भव है कि सुन्दर के विपरीत ही हो। स्टेन्डहाल ने कहा है—"हम आवेग का स्वागत करते है, सौन्दर्य से तो केवल सम्भावनाए जान पडती है।" स्त्रिया पुरुष की शारीरिक या मानसिक शक्ति की प्रशसा करती है न कि उसके सौन्दर्य की। शक्ति का दृश्य, जहा तक कि यह दृष्टि के क्षेत्र मे रहता है, वास्तविक रूप से—भले ही अज्ञात रूप से ही हो—हमपर ऐसी छाप डालता है जो एक दूसरी अनुभूति से यानी स्पर्शानुभूति से सम्बद्ध है। जिस समय हम शक्ति की प्रशसा कर रहे है, उस समय हम वास्तविक रूप से एक स्पर्श-सम्बन्धी गुण की मानो प्रशसा कर रहे है, जो दृष्टिगत बन गई है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि पुरुष सौन्दर्य के अधिकतर विशुद्ध दृष्टिगत गुण के द्वारा ही यौन दृष्टि से प्रभावित होते है पर स्त्रिया ऐसी दृष्टिगत छापो से ही अधिकतर प्रभावित होती है जो मौलिक रूप से अधिकतर यौन अनुभूति यानी स्पर्शानुभूति के गुणो को अभिव्यक्त करती है।

दबावात्मक शक्ति की दृष्टिगत अभिव्यक्ति के लिए आकाक्षा स्त्री मे पुरुष से कही स्पष्ट और प्रमुख है। ऐसा क्यो होता है, इसका कारण ढूढना कठिन नही है। इसके लिए हमे मामूली तौर से दी जाने वाली उस व्याख्या का आश्रय लेने की जरूरत नही है कि यौन निर्वाचन का अर्थ ही है कि मादा ऐसे नर को पसन्द करे जिसमे तगडे बच्चो का बाप होने और अपने परिवार का सबसे श्रेष्ठ सरक्षक होने की सभावना दीख पड़े। मैथुन मे पुरुष को अधिक कर्मशक्ति वाला हिस्सा और स्त्री को सूक्ष्म कर्म वाला भाग अदा करना पडता है। इसलिए स्त्री मे कर्मशक्ति का होना प्रेम के सफल होने का कोई सूचक नही है, पर पुरुष मे कर्मशक्ति उस शक्ति के प्राथमिक गुण के अस्तित्व का सूचक है जिसकी कि स्त्री यौन आलिगन मे बहुत जरूरत है। सम्भव है, यह एक गलत सूचक हो क्योकि मासपेशियो की

ताकत आवश्यक रूप से यौन शक्ति के साथ सम्बद्ध नही है, और सच तो यह है कि एक की जहा अति होती है, दूसरी वहा लुप्त मालूम होती है। फिर भी इससे आवेग की सम्भावना का इगित मिलता है, और किसी भी हालत मे यह एक प्रतीक है, जिसका असर होता ही है। हमे फिर भी ऐसा नही समझना चाहिए कि उस बाला की चेतना मे ये सारे विचार मौजूद होते है, जब कि वह सलज्ज होकर एक कन्दर्प की तरह रूपवान् पुरुष को छोडकर भीम की तरफ बढती है, फिर भी इसमे सन्देह नही कि इसका भावगत आधार कमोवेश निर्भ्रान्त सहजातो पर निर्भर है। इस प्रकार से देखने मे आता है कि दृष्टिगत आकर्षण के क्षेत्र मे भी यौन निर्वाचन स्त्रियो को मौलिक रूप से यौन अनुभूति यानी अधिकतर आदिम स्पर्शानुभूति के जरिए से प्रभावित करता है।

सुन्दर, भव्य, स्वस्थ गति के अवलोकन से जो यौन तृप्ति मिलती है, उसे फेरे ने एर्गोफिली बताया है और विशेष रूप से स्त्रियो मे ही यह अधिकतर पाई जाती है। यह उस रोगग्रस्त सुखानुभूति से अलग है जो भयकर तथा निष्ठुर दृश्यो के देखने से प्राप्त होती है। फेरे ने एर्गोफिली से अतिशय पीडित एक विवाहित स्त्री के विषय मे लिखा है, जो अपने पति के प्रेम का प्रतिदान नही दे पाती थी यद्यपि पति के विरुद्ध उसे कोई भी शिकायत नही थी। वह बचपन मे अति अनुभूतशील थी। वह चार साल की उमर मे देहात मे फिर-फिरकर तमाशा करने वाली एक सरकस-कम्पनी का दिखाया हुआ खेल देखने गई थी। वहा उसने देखा कि लगभग उसीकी उमर की एक छोटी सी लडकी कई गेदो को एकसाथ उछाल रही है, इसपर उसकी जननेन्द्रिय के क्षेत्र मे अजीब गरम सी अनुभूति हुई, फिर कुछ सकुचन-प्रसारण हुआ और वह गीली हो गई। यहा यह बता दिया जाए कि जब कम उमर मे इस प्रकार का सकुचन-प्रसारण होता है तो उसका अन्तिम चरण पेशाब करने का रूप ले सकता है। इसके बाद से वह नन्ही जादूगरनी उसकी कल्पना का यहा तक कि स्वप्न का विषय बन गई। ऐसी कल्पना अथवा स्वप्न के बाद उसे बराबर उसी प्रकार की अनुभूति होती रही तथा मूत्रत्याग होता रहा। १४ साल की उम्र मे यौवनोद्गम के बाद उसने एक सरकस मे एक सुन्दर तथा दक्ष बाजीगर को देखा, जिसका उसपर वही प्रभाव हुआ, और तबसे वह नन्ही बाजीगरनी तथा वह तरुण बाजीगर बारी-बारी से उसके स्वप्नो मे आते रहे। १६ साल की उम्र मे वह पहाड पर यात्रा करने गई। वहा खूब अच्छा खाना खाने के बाद वह सो गई और उसे उस तरुण बाजीगर का स्वप्न आया। साथ ही उसका तगडा सा पूर्ण मैथुन हो गया, यद्यपि अब की बार उसे यह सन्तोष रहा कि पेशाब नही आया। पेशाब इसलिए नही आया कि अब परितृप्ति

का रूप बदलकर कुछ और हो गया था। वह पेरिस मे रहने लगी और थिएटरो, वर्कशापो इत्यादि मे उसे चतुर तथा शक्तिशाली पुरुषो के जो कार्य देखने के मौके मिलते थे, उनसे उसे यौन सुख प्राप्त होता था। विवाह से भी इस स्थिति मे कुछ फर्क नही आया, यद्यपि बाद को उसने अपने पति से सारी बात बता दी। कम मात्रा मे हो तो एर्गोफिली स्वाभाविक मानी जा सकती है।

थोडे मे यह कहा जा सकता है कि सौन्दर्य, जैसा कि कुछ लोगो ने मान लिया है, केवल खामख्याली पर निर्भर नही है। यह आशिक रूप से इन बातो पर निर्भर करता है—(१) सौदर्य का एक वस्तुगत आधार होता है, जिसके इर्द-गिर्द सारी विविधताए पल्लवित होती है। इसीके कारण भिन्न-भिन्न जातियो के अत्यन्त बुद्धिमान् लोगो मे स्त्री के सौन्दर्य के सम्बन्ध मे जो धारणाए है, वे एक दूसरी से बहुत मिलती-जुलती है। पर इस साधारण वस्तुगत आधार के अलावा (२) राष्ट्र या वशजाति की कुछ विशेषताए होती है जिनके कारण सौन्दर्य के आदर्शो मे प्रकार-भेद आ जाता है। बात यह है कि कई बार यह समझा जाता है कि इन्ही वशजातीय तथा राष्ट्रीय मानव-वैज्ञानिक विशेषताओ का अतिविकास ही सौन्दर्य है, और इसके साथ ही ऐसी धारणा होती है कि वशजातीय विशेषताओ के पूर्ण विकास से साथ ही साथ स्वास्थ्य और ओज का पूर्ण विकास सूचित होता है। हमे यह भी सोचना है कि (३) अधिकाश देशो मे सौदर्य का एक महत्त्वपूर्ण तथा अपरिहार्य उपादान उन बातो पर जोर देना होता है जो यौन विशेषताओ मे दोयम दर्जे अथवा सोयम दर्जे की बाते होती है। उदाहरणस्वरूप स्त्री के केश, स्तन, नितम्ब तथा छोटी-मोटी उपयोगिता की अन्य ऐसी असख्य बातो पर जोर दिया जाता है जो यौन निर्वाचन की दृष्टि से अर्थपूर्ण हो सकती है। इसके अलावा हमारे सामने (४) वैयक्तिक रुचि भी रहती है जो व्यक्ति के विशेष गठन, उसके विचित्र तजरबे आदि से बनी होती है और अनिवार्य रूप से उसके सौदर्य-सम्बन्धी आदर्शो को प्रभावित करती है। अक्सर यह वैयक्तिक बात आकर सौदर्य की सामूहिक धारणाओ मे पैठ जाती है और इस प्रकार से सौदर्य के मामलो मे अस्थायी फैशनो की सृष्टि होती है, जो ऐसे प्रभावो के रूप मे होती है जिनसे साधारण रूप से ऐसा व्यक्ति ही प्रभावित होता है जो अपनी बारी मे बहुत से दूसरे व्यक्तियो को प्रभावित कर सकता है। अन्त मे ऊचे दरजे की सभ्यताओ तथा बेचैन तथा स्नायविक दृष्टि से कमजोर व्यक्तियो के कारण (यहा यह बता दिया जाए कि इस प्रकार के व्यक्ति सभ्यता मे बहुत साधारण हो गए है) हमारे (५) सौदर्य-सम्बन्धी आदर्श मे एक बाहरी उपादान शामिल हो जाने की प्रवृत्ति हो जाती है और साधारण रूप से अपनी वशजाति वाले सुपरिचित टाइप से मिलते-जुलते सौदर्य के प्रति प्रशसा-भावना के बजाय ऐसे टाइप की प्रशसा शुरू हो जाती है जो

सुपरिचित टाइप से भिन्न है।

मनुष्य-जाति मे यौन निर्वाचन इसलिए और भी जटिल हो गया है कि यहा केवल पुरुष के द्वारा स्त्री का निर्वाचन नही वल्कि स्त्री के द्वारा पुरुष का निर्वाचन भी अपेक्षित होता है। जब हम इस वात पर विचार करते है तो हमे यह मालूम होता है कि इसलिए मानदड भी विलकुल भिन्न है और स्त्री की दृष्टि मे पुरुष के सौदर्य-सम्वन्धी मान मे से कई उपादान लुप्त हो गए है और वल तथा ओज-सम्वन्धी धारणा मे एक नया और प्रमुख उपादान जुड गया है। जो उपादान जुडा है वह सहज दृष्टिगत नही है वल्कि यह एक स्पर्शिक दवाव का चरित्र लिए हुए है जो मानो दृष्टि की भाषा मे अनूदित होकर सामने आता है।

इसके अलावा ऐसा मालूम होता है कि कुछ मौलिक जीव-वैज्ञानिक गुण-सवंधी घटक, जो इन मानसिक उपादानो से कही अधिक गहराई लिए हुए है, यौन निर्वाचन मे प्रविष्ट हो चुके है। आदर्श रूप से या व्यावहारिक रूप से कौन व्यक्ति कहा तक योग्यतम सहचर हो सकता है यह वात अलग रही, पर कुछ व्यक्ति अधिकतर कर्मशक्ति का परिचय देते है और दूसरो के मुकावले मे सहचरी प्राप्त करने के क्षेत्र मे अधिक सफल रहते है। इन व्यक्तियो की वनावट मे ही अधिक शारीरिक या मानसिक ओज होता है, जिसके कारण वे साधारणत व्यावहारिक मामलो मे अधिक सफलता प्राप्त करते है और शायद इसीके कारण साहचर्य के क्षेत्र मे भी उनकी योग्यता वढ जाती है।

इस प्रकार से मनुष्य-जाति मे यौन निर्वाचन की समस्या वहुत ही अधिक जटिल है। जब हम इस समय उपलब्ध वहुत कम सामग्री को एकत्र करते है तो हमे यह मालूम होता है कि जो नतीजे साधारणतः निकाले जाते है, वे आम तौर पर अल्प उपलब्ध सामग्री से मेल खाते है, फिर भी यह नही कहा जा सकता कि सारी उपलब्ध सामग्री का अर्थ हम सम्पूर्ण रूप से समझ ही रहे है। सारी वातो के देखने के वाद यही नतीजा निकलता है कि जोड़ा ढूढने मे हम वशजातीय तथा मानव-वैज्ञानिक गुणो की एकरूपता चाहते है, पर दोयम दर्जे के यौन गुणो मे हम वैपरीत्य और मानसिक गुण मे पूरक टाइप को ही पसन्द करते है।

यह एक परिवर्तन है, पर वहुत थोड़ा परिवर्तन, जिसे हम चाहते है।

सहायक पुस्तक-सूची

डार्विन—Descent of Man

पाईक्राफ्ट—The Courtship of Animals.

हैवलाक एलिस—Man and Woman; Studies in the Psychology

of Sex, Vol. IV, 'Sexual Selection in Man.'

वेस्टरमार्क—The History of Human Marriage, Vol I.

क्राले—The Mystic Rose, edited by Besterman.

अलेक्जेण्डर स्टोन—The Study of Phallicism.

ए० ए० ब्रिल—'The Psychopathology of the New Dances', New York Medical Journal, 25th April, 1914.

अध्याय | ३

यौवन में यौन आवेग

यौन आवेग का प्रथम प्रकाश

पहले यह विश्वास था कि बाल्यावस्था मे यौन आवेग का कोई अस्तित्व ही नही रहता, पर यह विश्वास भी सामान्यत उतना प्रचलित नही था जितना कि कुछ लोग समझते है। किन्तु यदि इस बात पर डटे रहना सम्भव भी हो कि प्रारम्भिक जीवन मे यौन मनोभाव का (स्वस्थ रूप से) सामान्य अस्तित्व नही होता, तो उस काल मे उसकी प्रत्येक अभिव्यक्ति को विकृत मानना पडेगा। यहा तक कि फ्रायड भी, जो शैशवकालीन कामुकता को स्वाभाविक मानते है, उसे विपरीत ही मानते है जैसा कि उनके द्वारा दिए हुए नाम 'पालीमोर्फ पर्वर्स' से स्पष्ट है। इस विषय पर कोई भी चर्चा करते समय, चाहे वह कितनी भी सक्षिप्त हो, यह भ्रम दूर कर लेना आवश्यक है।

यह शुरू मे ही बता दिया जाए कि यदि हम यौन शब्द का प्रयोग उसके विस्तृत और व्यापक अर्थ मे न करे तो भी जिन्हे यौन आवेग के प्रकाश की सज्ञा भली भाति दी जा सकती है, वे उससे कही अधिक उपलब्ध है जितना कि लोग पहले समझते थे। उनके वेग, समय से पूर्व परिपक्वता और उनकी प्रकृति का दायरा भी कही विस्तृत है।

प्रजनन-अगो की प्राथमिक और प्रारम्भिक सामर्थ्य मे भी बहुत प्रकार-भेद है। कुछ शिशुओ मे कम उम्र मे ही प्रजनन-सम्बन्धी प्रतिक्रियाओ की अभिव्यक्तियां, जिन्हे अक्सर जलन की प्रतिक्रिया के लक्षण-रूप मे माना जाता था, बहुत पहले से परिलक्षित होती थी। चूकि इन अभिव्यक्तियो की स्मृति बनी नही रहती, इसलिए हमारे पास इस बात का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नही है कि वे आनन्ददायक होती है अथवा नही, किन्तु दोनो ही लिगो के बहुत से व्यक्तियो को बचपन मे प्रजनन-अगो से सम्बन्धित सुखकर अनुभूतियो का स्मरण आ जाता है। उनका दमन नही किया जा सकता, जैसा कि कल्पना की जाती है; जिन बातो का दमन किया जाता है और सामान्यत, लोग जिन्हे जान भी नही पाते, वह यह है कि उन्हे बड़ो से कहा नही

जाता और साधारण तौर पर किसीको वताया भी नही जाता। पर वे स्मृति मे वनी रहती है क्योकि साधारण अनुभवो से वे विशिष्ट और उनसे स्पष्ट रूप से भिन्न होती है।

कम उम्र मे स्पष्ट यौन आत्म-उत्तेजना होने की वात वहुत पहले से ही लोगो को मालूम है। १९वी सदी के प्रारम्भ मे फ्रास तथा अन्य स्थानो के लेखको--मार्क, फोसाग्रिव, परेज आदि ने ऐसे वालक-वालिकाओ के हवाले दिए है जो तीन या चार साल की उम्र मे ही हस्तमैथुन करने लगे थे। रोवी ने देखा कि लडको मे यौन आवेग का उदय ५ साल से लेकर १४ साल की उम्र मे और लडकियो मे ८ से लेकर १९ साल की उम्र मे होता है। दोनो मे ही यह अभिव्यक्ति अक्सर शुरू मे प्रकट न होकर वाद के सालो मे होती है। हैमिल्टन ने अपनी अपेक्षाकृत विस्तृत और सतर्क जाच के दौरान मे देखा कि २० प्रतिशत वालक और १४ प्रतिशत वालिकाए ६ साल की उम्र के पहले अपने यौन अगो मे आनन्द प्राप्त करते है। कैथराइन डैविस ने पुरुषो और स्त्रियो के समूहो की तुलना करते समय यह आविष्कार किया कि ११ साल की उम्र तक, जिसमे ११वा साल भी सम्मिलित है, २०.९ प्रतिशत लडके और ४९ १ प्रतिशत लडकिया हस्तमैथुन शुरू करती है, यद्यपि वाद के ३ सालो मे लडको का प्रतिशत लडकियो से वहुत अधिक हो जाता है। यह अनुमान करना भूल होगी कि सभी वालक-वालिकाए प्रजनन-अग-सम्वन्धी उत्तेजना अथवा सुखद यौन अनुभूतिया अनुभव करते है अथवा अनुभव करने मे समर्थ होते है। विशिष्ट ढग के कुछ मामले ऐसे होते है जिनमे एक वालक अज्ञान के कारण दूसरे किसी वालक द्वारा इस प्रकार वहकाए जाने पर कि घर्षण से उसके शिश्न के आकार मे वृद्धि होगी, अनुमित लाभ की प्राप्ति के लिए कोशिश करता है, पर किसी भी मात्रा मे कुछ प्रतिक्रिया नही होती और न यौन आनन्द ही प्राप्त होता है, पर यदि पहले नही तो यौवनोद्गम के समय उसका अग पूरे तौर पर उत्तेजना योग्य हो जाता है। इस तरह वाल्यावस्था मे प्रजनन-अग की सम्भावना और यौन सामर्थ्य के कई स्तर दीख पडते है। कहा तक यह पार्थक्य स्पष्ट रूप से भिन्न वशगत गुणो के कारण उत्पन्न होता है, यह वताना हर समय आसान नही है। कुल मिलाकर यह दिखाई देगा, जैसी कि हमे आशा करनी चाहिए कि अच्छे और चोखे वश का वालक वाल्यावस्था मे यौन रूप से कम उत्तेजित होता है और विकृत अतिकामुक माता-पिता का वालक अपरिपक्वावस्था मे ही अधिक उत्तेजित हो जाता है। निश्चित रूप से डाक्टर हैमिल्टन की जाच मे यही सुझाव मिलता है कि जितनी देर से यौन जीवन आरम्भ होता है, विवाहित जीवन उतना ही सन्तोषजनक रहता है।

जब हम स्थानिक प्रजनन-अगो की यौन क्रिया से आगे बढते है तो विषय अधिक जटिल हो जाता है। यहा हमारा साबका मनोविश्लेषको की जिजीविषा (Libido) से पडता है। शुरू-शुरू मे शैशवावस्था और बाल्यावस्था पर उसे लागू करने पर प्रबल विरोध होता था। अब भी यह नही कहा जा सकता कि अब यह विरोध पूर्ण रूप से खतम हो गया है। जो भी हो, आज यह स्वीकार किया जाता है कि जिस प्रकार हम जिजीविषा की परिभाषा करते है, उसपर बहुत कुछ निर्भर है। फ्रायड के अन्य पारिभाषिक शब्दो की तरह इस शब्द को उचित ढग से नही चुना गया है, और उसे अगरेजी शब्द लिबिडिनस (Libidinous) यानी कामुक से अलग करना आसान नही है। फ्रायडवादी स्कूल के बाहर के मनोविश्लेषको मे सबसे अधिक प्रसिद्ध जग सचमुच जिजीविषा को किसी विशिष्ट यौन सम्बन्ध से पृथक् मानते है और उसे मानसिक शक्ति के व्यापक अर्थ मे ग्रहण करते है, जो बर्गसा सज्ञा की 'elan vital' अथवा प्राणिक स्फूर्ति से मिलती-जुलती है। इस सज्ञा का बहुत लोग प्रयोग करना चाहेगे, क्योकि इसमे सन्देह नही कि हम लिबिडो को निश्चित यौन शक्ति से अलग नही कर सकते। जिजीविषा के सम्बन्ध मे फ्रायड के विचार स्थिर नही रहे। जैसा कि वह अपने 'जिजीविषा का बचकाना सगठन' (१९३२) नामक महत्त्वपूर्ण लेख मे लिखते है कि एक समय मैने उसके प्रारम्भिक प्राक्प्रजनन-सगठन पर जोर दिया था, यद्यपि बाद को चलकर मुझे यह स्वीकार करना पडा कि बाल्यावस्था के यौन आवेग और वयस्क यौन आवेग मे बहुत निकटता है।

पर जैसा कि फ्रायड कहते है, शिशु के प्रजनन-सम्बन्धी गठन मे सचमुच ही शिश्न की प्राथमिकता अन्तर्निहित है। इसे वे बचपन मे एकमात्र मान्यताप्राप्त प्रजनन-अग के रूप मे मानते है। इसी समय फ्रायड प्राक्प्रजनन-सोपान की भी बात करते है और कहते है कि यौन रूप से बालिग होने तक यौन आवेग पुरुष और स्त्री के आमने-सामने आने के रूप मे प्रकट नही हो पाता। चूकि साधारण व्यक्ति के लिए जिजीविषा यौन वैपरीत्य पर निर्भर है, इसलिए फ्रायड के लिबिडो शब्द से भी कोई अधिक भय खाने की जरूरत नही है। सारा दोष फ्रायड के पारिभाषिक शब्दो का है। हम अर्नेस्ट जोन्स के इस कथन से सहमत हो सकते है कि यदि हम यौन सक्रियता को दो सोपानो—'प्रारम्भिक आनन्द' और 'अन्त के आनन्द'—मे विभक्त कर दे तो यौन वयस्कता के पहले की प्राय सभी अभिव्यक्तिया पूर्ण रूप से प्रथम सोपान पर आ जाती है। जो भी हो, हमे अपवाद स्वीकार करना चाहिए।

यदि फ्रायड शुरू से ही यह स्थिति अपना लेते, जो अन्ततः उन्होने १९२५

(Das Ich und das Es) में अपनाई, और न्यूनाधिक लिविडो की धारणा त्याग-कर अहम् (ego) और इदम् (id) (जो Es का सुन्दर अनुवाद है) के साथ सम्बन्ध वनलाते तो जिजीविषा के सम्बन्ध मे फ्रायड की धारणा को कम विरोध का सामना करना पडता। इदम् (id) न्यूनाधिक रूप से अपनी वासनाओ के साथ अचेतन और आदिम 'स्व' होता है और 'अहम्' अपेक्षाकृत अधिक चेतन और वहिर्जगत् के साथ निकट प्रतिक्रियाओ से समन्वित अधिक तर्कसगत 'स्व' होता है। वह धीरे-धीरे 'इदम्' से विकसित होता है और फिर उससे अलग हो जाता है। जैसा कि फ्रायड ने स्वय लिखा है, इस धारणा से लोकप्रिय और सामान्यत स्वीकृत विचारो की अच्छी तरह सगति बैठ जाती है।

जव हम वालको की गतिविधियो का विस्तृत सर्वेक्षण करते है तो हमे शिश्न की प्राथमिकता सवसे अलग स्पष्ट नही दिखाई देती। शिशुओ से अच्छी तरह परिचित लोग अगूठे और पैर की अगुलियो को ही प्राथमिकता देगे और जैसा कि फ्रायड लिखते हैं, दुर्भाग्य से कुछ माताए जिज्ञासा का दमन करती है और इस तरह यह मनोवेग शिशु के भीतर चला जाता है और उस मनोवेग को अनुचित वल प्राप्त होता है। शरीर के सवसे कौतूहलोद्दीपक वे अग है (जिनमे उगलिया भी सम्मिलित है) जो वच्चे के लिए खिलौने के समान होते है। यह कौतूहल आनन्ददायक अनुभूति भी ला सकता है किन्तु अधिकाश वालको के लिए तो, जिसे यौन अनुभूति कहा जा सकता है, वह वय सन्धिकाल की अनुभूति होने के कारण प्रजनन-क्षेत्र के वाहर ही रहता है। कहने का अर्थ यह है कि वयस्को मे इस अनुभूति से यौन क्षेत्र के चौखट पर सावका पडेगा। इस तरह वैध रूप से वह प्रेम-कला के अन्तर्गत आती है। फर्क इतना है कि वालको मे ऐसी अनुभूति आनन्ददायक होने के वावजूद अक्सर वास्तविक यौन अनुभूति के चौखट को पार नही करती।

सर्वोपरि ऐसे लक्षण मुखमण्डल मे सवसे अधिक प्रकट होते है। यह कोई आश्चर्य की वात नही है क्योकि जव शिशु के अनुभूतिशील ओठ दुग्धपूर्ण स्तनाग्र के सम्पर्क मे रहते है तो उसे चरम आनन्द प्राप्त होता है। वयस्कावस्था मे मुह यौन उत्तेजना का एक केन्द्र है, अत. हमे इस वात से आश्चर्य नही होता कि यौन जीवन के चौखट पर, यहा तक कि शैशव मे भी, वह आनन्द का केन्द्र होता है। स्तनाग्रस्त चूसना अप्राप्य होने अथवा समाप्त हो जाने पर कभी-कभी अगूठा चूसना उसका स्थानापन्न हो जाता है। कुछ लोगो का कथन है—यद्यपि अनेक अधि-कारी व्यक्ति उस मत के सम्वन्ध मे विवाद उठाते है—कि पूर्वप्रवृत्तियुक्त वालको मे यह एक प्रकार का हस्तमैथुन है जो आगे चलकर साधारण हस्तमैथुन मे परि-णत हो सकता है। यह वात दोनो लिंगो के छोटे-छोटे वच्चो में काफी हद तक

और विविध अनुपातों मे पाई जाती है तथा जन्म के वाद से ही शुरु हो सकती है।

इस रूप से मुखमण्डल के पश्चात् दूसरा नम्वर सम्भवत· मलद्वार का है। जव तक टट्टी आपसे-आप विना रोकथाम के हो जाती है, तव तक मलद्वार-क्षेत्र को आनन्ददायक केन्द्र के रूप मे विकसित होने का अवसर नही मिल पाता । किन्तु रोकथाम लगने के साथ ही निष्कासन से मलद्वार मे आराम अनुभव होना निश्चित हो जाता है, और उससे मलद्वार की आनन्ददायक सम्वेदनशीलता विकसित होने की सम्भावना रहती है । वाद के सालो मे वह अक्सर कामोत्तेजना का केन्द्र वन जाता है, यद्यपि मलद्वार वयस्को मे उतना अधिक गहरा कामोत्तेजन-केन्द्र नही होता जितना कि मुखमण्डल वाला केन्द्र होता है। कुछ मनोविश्लेपको का कथन है कि प्रारम्भिक उम्र मे कुछ व्यक्तियो मे आनन्ददायक उद्देश्य से मल रोकने की प्रवृत्ति होती है और यह प्रवृत्ति आगे होने वाले मानसिक विकास मे वहुत महत्त्व-पूर्ण होती है। जो भी हो, दूसरे इस वात को मानने से इन्कार करते है क्योकि उसे सिद्ध करना आसान नही है।

वहुत कुछ यही वात मूत्र-त्याग के सम्वन्ध मे भी कही जा सकती है, यद्यपि शिशुओ और वयस्को दोनो को ही मूत्र-त्याग के कार्य मे ही आनन्द मिलता है। कुछ निरीक्षक लिखते है कि शिशु को किसी विशेष रूप से अपनी पसन्द के व्यक्ति पर पेशाव करने मे आनन्द मिल सकता है, यद्यपि ऐसा हो सकता है कि यह तथ्यो की गलत व्याख्या पर आधारित हो। ऐसा वहुत सम्भव है कि आनन्ददायक भाव के अन्तर्गत शिशु ने जान-बूझकर मूत्र-त्याग न किया हो, जैसा कि कुछ स्त्रियो मे पूर्ण मैथुन के समय प्रतिक्रियात्मक कार्यों के सिलसिले मे कई वार मूत्रत्याग हो जाता है, यद्यपि इससे उनको वडी परेशानी होती है। हैमिल्टन लिखते है कि २१ प्रतिशत पुरुप और १६ प्रतिशत स्त्रिया प्रारम्भिक जीवन मे पेशाव मे दिलचस्पी लेने अथवा उसके साथ खेलने की वात स्वीकार करते है, और मल रोकने वालो का भी ठीक यही प्रतिशत आता है।

मानसिक दृष्टि से शारीरिक पक्ष की अपेक्षा इस तथ्य मे और भी कम सन्देह रहता है कि वच्चो मे उन मनोवेगो को अनुभव करने की सम्भावना हो सकती है जिन्हे सही तौर पर यौन मनोवेग कहा जा सकता है। वहुत साल पहले स्टेनफोर्ड वेल ने सामूहिक आधार पर इन अभिव्यक्तियो की अधिकता वतलाई थी । इन्हे अवलोकन करने का अवसर सभी को कभी न कभी मिल जाता है। उनके प्रतिवेदन को पढकर इस समय भी लाभ उठाया जा सकता है। उन्होने इस विषय पर पन्द्रह साल तक स्कूलो मे तथा स्कूलों के वाहर अध्ययन किया था और स्वय ८००

मामलो का अवलोकन किया था । साथ ही उन्होने ३६० अन्य निरीक्षको से १७०० मामलो का (कुल मिलाकर २५०० का) विवरण प्राप्त किया था। इन व्यक्तियो मे से केवल पांच व्यक्ति ही अपने बचपन मे इस तरह के अनुभव का स्मरण नही कर सके थे। यह तथ्य वतलाता है कि यह अनुमान करना भूल है कि इस तरह के कम उम्र के अनुभव का दमन एक सामान्य वात है। जिन हालतो मे दमन होता है वह साफ तौर पर असामान्य और सम्भवत जन्मजात विलक्षणताओ के कारण होता है। वेल ने यह देखा कि इस प्रकार का मनोवेग तीसरे साल के मध्य मे ही देखा जा सकता है और ऐसा मालूम होता है कि इसकी अभिव्यक्ति के कई सोपान होते हैं । उनमे से पहला सोपान साधारण तौर पर ८ साल और दूसरा १४ साल की उम्र तक बना रहता है। प्रथम सोपान मे वालक वालिका की अपेक्षा अधिक नम्र और कम आक्रमणकारी होता है। यह मनोवेग कुछ छोटे-छोटे सकेतो से पकड मे आता है, जिन्हे यौवनारम्भ से सम्बद्ध किए विना काम नही चल सकता। आलिंगन और चुम्बन की प्रवृत्ति भी आम तौर पर होती है, पर यह हमेशा ही होती हो, ऐसी वात नही है। साथ ही कर्ता मे अक्सर इस मनोवेग को उसके पात्र से और अन्य व्यक्तियो से छिपाने की इच्छा पाई जाती है। अक्सर किसी न किसी रूप मे स्पर्श-सुख की कामना की जाती है। पर यह आम तौर पर विशेष रूप से यौन नही होती, और जव वह यौन भी होती है तो वेल इस पक्ष मे है कि उसे समय से पहले परिपक्वता की अवस्था की दशा माना जाए । वे सही तौर पर कहते हैं, शारीरिक उत्तेजना की अक्सर यौन अङ्गो मे अभिव्यक्ति नही होती (यद्यपि हो भी सकती है) वल्कि वह शारीरिक उत्तेजना समस्त शरीर मे, विशेषकर रक्तवाहक और स्नायविक प्रणालियो मे प्रसारित होती है । वर्ष मे वसन्त ऋतु मे ही इन अभिव्यक्तियो के होने की सवसे अधिक सम्भावना रहती है।

वाल्यावस्था के अध्येताओ, मनोविश्लेषको और अन्य लोगो ने इन निरीक्षकों की पुष्टि की, और उनपर और ज्यादा विस्तार के साथ वताया है । फ्रायड ने वार-वार इस विषय पर लिखा है। आस्कर फिस्टर वालको मे प्रेम और उसके विकास के दोषो के विषय मे लिखे गए अपने विस्तृत और खोजपूर्ण ग्रन्थ मे इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि वालको की प्रेम-भावनाओ की अभिव्यक्तियो मे आश्चर्यजनक और सन्देहरहित विविधता होती है।

जैसा कि पहले ही वताया जा चुका है, वालको की यौन अथवा प्रच्छन्न यौन दिलचस्पी का यह लक्षण है कि उनकी दिलचस्पी यौन क्षेत्र से वाहर होती है, जव कि वयस्को मे यह यौन क्षेत्र मे ही केन्द्रित होती है । इस फर्क का कारण कुछ तो यह है कि शारीरिक दृष्टि से प्रजनन-केन्द्र अभी अविकसित है और कुछ यह

कारण है कि मानसिक रूप से भिन्न लिंग के व्यक्ति को वह महत्त्व प्राप्त नही हो पाया है जो यौवनोद्गम के पश्चात् देर-सवेर प्राप्त होता है।

बचकानी कामात्मकता का एक दिलचस्प और अक्सर उपेक्षित लक्षण यह है कि उसमे सुख-दु ख सह-अस्तित्व अथवा यन्त्रणा को देखना, यन्त्रणा देना, या यन्त्रणा सहना भी सम्मिलित होता है। इन अभिव्यक्तियो को विविध वयस्क नाम जैसे—'निष्ठुरता' सादवाद और मासोकवाद आदि दिए गए है, और यह शायद अपरिहार्य भी है क्योकि वयस्क इन बाल्यावस्थाकालीन अभिव्यक्तियो की अपने ढग से व्याख्या करते है। किन्तु वे भ्रामक और दुर्भाग्यपूर्ण है क्योकि वे बाल्यावस्था के उद्देश्यो से कोसो दूर है। उदाहरण के लिए इस समय तक बालक के दिमाग मे निष्ठुरता के वयस्क अर्थ वाली धारणा नही बन पाई है। जब हम यह बात याद रखते है कि बहुत से वयस्को के लिए भी इस धारणा का स्पष्ट अस्तित्व नही होता तो फिर तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नही है कि निष्ठुरता की यह धारणा बालको के स्वभाव के अनुकूल नही है जो अक्सर बडे आनन्द के साथ मानवेतर प्राणियो को यन्त्रणा देते है, और अक्सर उनकी यन्त्रणा बढाते है या यन्त्रणा के कारण बनते है। उस उम्र तक बालको के मनोवेग भेदरहित रहते है और वे जिज्ञासापूर्ण तर्क के क्षेत्र मे अभ्यास-सा करते है या आप चाहे तो यह भी कह सकते है कि खेलते है। यहा वयस्क जीवन की नैतिकता के पथराए हुए कठोर नियमो को लागू करना अनुचित है। सच्चे अर्थ मे शिक्षा का यह कार्य ही है कि जैसे ही बच्चे मे समझने की शक्ति आ जाए, उसे यथासमय बाद के जीवन को समझने मे सहायता दे और बालक पर यह स्पष्ट कर दे कि वयस्क ससार मे बाल्यावस्था के अनियन्त्रित मनोवेग नही चल सकते। (सच्चे अर्थ मे इसलिए कि अभी भी अज्ञानियो मे यह धारणा मौजूद है कि शिक्षा का अर्थ दिमाग मे कुछ ठूसना है न कि भीतर जो कुछ है उसे बाहर निकालना।) यहा पर हमारा सम्बन्ध भावनाओ के क्षेत्र मे चालू कार्यो मे ही सबसे पहले है, जो यदा-कदा यन्त्रणा की चौखट तक पहुचता है। यह बात इससे साफ दिखलाई देती है कि वे यन्त्रणा सहना यन्त्रणा देने के तुल्य ही अधिक पसन्द करते है। सजा के खेल, जिनमे परस्पर बहुत मार-पीट होती है, छिपे तौर पर बच्चो और बच्चियो मे बहुत लोकप्रिय होते है। विशेषत. लडकियो मे शायद ऐसे खेल बहुत लोकप्रिय होते है और इस उद्देश्य से वे अक्सर बालो वाले ब्रश का प्रयोग करती है। यौवनारम्भ के पश्चात् भी जब प्रजनन के केन्द्र पूर्ण रूप से क्रियाशील हो जाते है, स्त्री या पुरुष अपने से भिन्न लिंग के व्यक्ति की अनुपस्थिति मे अपने को मारने की क्रिया को कामात्मक आनन्द को बढाने के लिए ग्रहण कर लेते है। यहां तक कि छोटे-छोटे बालको को भी यन्त्रणा और अत्याचारो की कल्पनाओ मे

सामान्यत. आनन्द मिलता है और कुछ वाद की उम्र मे कोई भी वच्चा फाक्स लिखित 'शहीद-गाथा' जैसी पुस्तको को वडे ध्यान से सुनता है और उसमे आनन्द का स्रोत पाता है । कभी-कभी वालक स्वय अपने ऊपर, अक्सर अपने शिश्न को यन्त्रणा पहुचाने के अदमनीय आवेग का अनुभव करता है । यह इस वात को स्पष्टत सूचित करता है कि यदि वयस्क अर्थ मे शिश्न को यौन उत्तेजना का स्रोत न भी माना जाए, तो भी वह मनोवेगपूर्ण दिलचस्पी का केन्द्र तो वन ही चुकता है। ऐसे तथ्य 'नपुसकीकरण जटिलता' की याद दिलाते है, जिसे कुछ मनोविश्लेषक वहुत महत्त्व देते है। शिश्न के चारो ओर कसकर एक धागा वाधा जा सकता है अथवा उसको जोर से चोट भी पहुचाई जा सकती है। अभी हाल मे ही नौ वरस की एक लडकी की दशा को लिपिवद्ध किया गया है, जिसने अपनी भगनासा के चारो ओर एक धागा वाध दिया था, पर वह उसे खोल नही सकी और इसलिए आपरेशन करना जरूरी हो गया। अनुभूति और मनोवेग इस उम्र तक विखरे और अनिश्चित रूप मे रहते हैं। चूकि आत्मरक्षा के लिए जीवन मे दु ख पाना शुरू से ही आवश्यक हो जाता है, इसलिए यह अपरिहार्य है कि वच्चो मे ऐसे कष्टदायक मनोवेग रहे जिनमे अभी आनन्द के अस्पष्ट आवेग साकार हो रहे हैं । हैमिल्टन ने यह देखा कि उनके मरीजो मे (जो सभी उच्च चरित्र और उच्च सस्कृति के कहे जा सकते थे) केवल ४९ प्रतिशत पुरुषो और ६८ प्रतिशत स्त्रियो ने यन्त्रणा देने मे कभी आनन्द का अनुभव नही किया, जव कि लगभग ३० प्रतिशत पुरुष और स्त्रिया दोनो ने ही यन्त्रणा देने मे आनन्द का अनुभव किया।

यहा हम वयस्क-जीवनसुलभ विकासो से कितनी दूर है, यह इस सुपरिचित तथ्य से मालूम पडता है कि यन्त्रणा देने के रूप मे होने वाली अभिव्यक्तियो मे लिंगसादृश्य और रक्त-सम्वन्ध की निकटता वाधक नही होती। जो वयस्क इन अभिव्यक्तियो को अलग करके देखने मे सफलता प्राप्त करता है, गम्भीरता के साथ इस प्रसग मे शास्त्रीय ढग से समलैंगिकता, अगम्यगमन, एडिपस जटिलता की वाते छौंकता है। वह यह तो सोचता हो नही है कि उसकी वात कितनी अनर्गल और ऊलजलूल है। यदि वयस्क-जीवन के इस तरह के कार्यों पर विचार करते समय वह इस प्रकार से वाते करता तो सचमुच ही उसकी वात तर्कसंगत होती। जव कि इस उम्र मे कामात्मकता की धारणा ही नही वन पाती तो समलैंगिक यौन प्रवृत्ति का प्रश्न ही नही उठता और जव तक कर्ता को रिश्तेदारियो की रोक-टोक का वोध न हो, अगम्यगमन का भी प्रश्न नही उठता। एक प्रसिद्ध मनोविश्लेपक डा० जैलिफ कहते है कि वाल्यावस्थाकालीन आवेगात्मक क्रियाशीलता पर वयस्क-जीवन की सज्ञान क्रियाशीलता के शब्दो को आरोपित करने का यह तरीका शाब्-

बुझक्कडी है। बाल्यावस्था के कुछ मनोविश्लेषक जैसा स्टर्न अपने ग्रन्थ 'साइकोलाजी आफ अर्ली चाइल्डहुड' मे अपनी इस बात पर जोर देते हैं कि बालको को हमारे मानसिक शक्तियो के मानदण्डो से नही मापना चाहिए, वल्कि उनके पृथक् स्वभावो को समझने की कोशिश करनी चाहिए। जब तक हम इस बात को महसूस न कर ले और कामभाव के उस व्यापक ढाचे को हटाकर अलग न कर दे, जो वयस्क-जीवन के नकशो पर आधारित है, तब तक हम इस क्षेत्र मे व्यर्थ ही छायाओ के पीछे भटकते रहेगे। मालूम होता है कि ऐसे वयस्क लोग अपने बचपन की सभी बातो को भूल गए हैं। इस सम्बन्ध मे अगाध ज्ञान का क्षेत्र पडा हुआ है, पर उसमे वे ही व्यक्ति प्रवेश कर सकते हैं जो खुद बच्चे बन जाए।

इस स्थान पर एडिपस जटिलता नामक मानसिक विशेषता का उल्लेख करना आवश्यक है। सबसे पहले फ्रायड ने ही एडिपस जटिलता की ओर ध्यान आकर्षित किया था और पिछले दिनो मनोविश्लेषको और सर्वोपरि फ्रायड ने ही इस दशा को बहुत महत्त्व दिया था और कुछ हद तक मनोविश्लेषक अब भी दे ही रहे हैं। ऊपरी तौर पर उसका यह नामकरण बहुत अच्छा नही है क्योकि यहा एडिपस जटिलता का मनोवैज्ञानिक अर्थ सिर्फ इतना ही है कि लड़के का अपनी मा से और लडकी का अपने बाप से प्रणयमूलक आकर्षण (विवाह करने की इच्छा) रहता है और उन्हे क्रमश बाप और मा से उसीके अनुरूप ईर्ष्या होती है। इसके विपरीत पौराणिक गाथा के एडिपस ने किसी ऐसी भावना का अनुभव नही किया था, बल्कि भविष्यवाणी करने वाले देवी-देवताओ ने उसे विवश किया था कि वह आन्तरिक सघर्ष के बावजूद अपनी मा से विवाह करे और अपने अनजान मे बाप की निर्मम हत्या कर डाले। एडिपस के इस आन्तरिक सघर्ष को फ्रायड यह कहकर टाल देते हैं कि भविष्यवाणी करने वाले देवी-देवता अवचेतन के गौरवीकृत मूर्तरूप थे। जब तीस साल पहले उन्होने एडिपस जटिलता लोगो के सामने रखी तो फ्रायड के ही शब्दो मे उसका स्वागत विभीषिका और तिरस्कार से किया गया। अवश्य ही उन्होने इस शब्द का प्रयोग असावधानी के साथ किया था और फ्रायड ने अगम्य-गमन शब्द का भी अपप्रयोग किया था। एडिपस जटिलता के प्रति लोगो के इस विरोधी रुख के बावजूद फ्रायड अपने प्रबल और तेज स्वभाव के कारण इस सिद्धान्त पर डटे रह गए और उन्होने और भी जोरदार ढग से इसका प्रतिपादन किया। फ्रायड ने घोषणा की कि किसी न किसी मात्रा मे या किसी न किसी रूप मे, यहा तक कि उसके बिलकुल उल्टे रूप मे भी एडिपस जटिलता बालक के मानसिक जीवन का नियमित और महत्त्वपूर्ण अग रहती है। इससे आगे उन्होने देखा कि यह असम्भव नही जान पड़ता कि एडिपस जटिलता ही समस्त यौन विपरीतताओ का स्रोत हो

और साथ ही स्नायविक रोगो का भी वह वास्तविक केन्द्र हो। रैंक उस समय फ्रायड के घनिष्ठ सम्पर्क मे थे और उन्होंने साहित्य और सस्कृति के अपने व्यापक अध्ययन की सहायता से यह दिखलाया कि किस प्रकार नाटकीय काव्य मे वार-वार और विविध प्रकार से यह जटिलता प्रविष्ट हो जाती थी। अन्तिम रूप से फ्रायड ने सन् १६१३ मे अपने ग्रन्थ 'टोटम ऐण्ड टावू' मे एडिपस जटिलता की धारणा को आदिम नैतिकता के मूल स्रोत के रूप मे विकसित किया। इसके साथ उन्होने दोषी होने की अनुभूति भी जोड़ दी। पाप की यह अनुभूति फ्रायड की दृष्टि मे धर्म और नैतिकता का आदिम स्रोत, केंट के निरवछिन्न 'स्व' का सबसे प्रारम्भिक रूप और माता-पिता से शुरू होकर ईश्वर, भाग्य या प्रकृति (चाहे हम उसे किसी नाम से पुकारे) जैसी सर्वव्यापक व्यक्तित्व का प्रथम मूर्त रूप वन गई।

किन्तु जिन मनोविश्लेषको ने मानव-सस्कृति के एक वड़े हिस्से मे एडिपस जटिलता को नीव के रूप मे स्थापित किया है वे यह भूल जाते है कि एडिपस जटिलता का सम्वन्ध परिवार की सिर्फ एक विशेष रचना-प्रणाली से सयुक्त है, जब कि परिवार की किसी एक निश्चित रचना-प्रणाली का होना तो दूर की वात है, उसके विविध स्वरूप रहे है। पितृसत्तात्मक परिवार, जो ऐतिहासिक काल मे हमारे यहा यूरोप के कुछ हिस्सो मे पाया जाता था, एडिपस जटिलता के सवसे अधिक अनुकूल है। पर ऐसी वीत नही है कि परिवार की यही प्रणाली सर्वत्र और सर्वदा पाई जाती हो। परिवार की सारी वस्तु तो जीव-वैज्ञानिक होती है, पर उसके स्वरूप सामाजिकता के साचे मे ढले होते है। यह मालिनोव्स्की ने (जो शुरू मे मनोविश्लेषको के पक्ष मे थे) अपनी पुस्तक 'काम और वर्वर समाज मे उसका दमन' मे स्पष्ट कर दिया है। वे जटिलताए जो सस्कृति को गढने वाली मानी जाती है, सस्कृति के अन्तर्गत ही पैदा हो सकती है और तथ्य तो यह है कि सस्कृतिया कई तरह की होती है। हम यह मानकर नही चल सकते कि एक आदिम यूथ मध्यवर्गीय यूरोपीय परिवार के सस्कारो, असन्तुलनो और बदमिज़ाजियो से सयुक्त हो और साथ ही वह प्रागैतिहासिक जगलो मे भटकता रहे। प्रत्येक प्रकार की सभ्यता मे आवश्यक उपोत्पादन के रूप मे केवल एक ही तरह की विशिष्ट जटिलता हो सकती है।

इससे आगे एडिपस जटिलता इस विश्वास पर आधारित है कि निकट सम्वन्धियो के प्रति यौन प्रेम की स्वाभाविक और प्रवल प्रवृत्ति होती है, जो कम उम्र मे ही प्रकट हो जाती है और जिसे कड़े नियम और कठोर दमन ने ही काबू मे लाया जा सकता है। सभी विद्वान् इस वात से सहमत है कि अगम्यगमनमूलक आवेगो का निर्वाध प्रचलन परिवार-व्यवस्था से मेल नही खाता, और इन आधार

पर किसी भी प्रकार की विकसित सस्कृति के उदय की सम्भावना नही है, पर इस बारे मे अधिकारी विद्वानो मे मतभेद है कि अगम्यगमन स्वाभाविक है या अस्वाभाविक। वेस्टरमार्क की धारणा थी कि निश्चय ही एक ऐसा स्वाभाविक सहजात है जो अगम्यगमन के प्रतिकूल है, फ्रायड का मत है कि अगम्यगमन का प्रवल सहजात शैशव से ही होता है। मालिनोव्स्की का विचार है कि अगम्यगमन के प्रतिकूल जो सहजात है वह स्वाभाविक नही, पर सस्कृति द्वारा प्रवर्तित सास्कृतिक प्रतिक्रियाओ की जटिल उपज है। काफी लम्बे अरसे से मैंने जो स्थिति अपनाई है वह इन परस्पर-विरोधी मतो मे सामञ्जस्य स्थापित करती है। जिन व्यक्तियो के साथ निकट सम्पर्क रहता है उनके प्रति यौन आकर्षण भी होता है। ये व्यक्ति अक्सर रिश्तेदार होते है, इसलिए इस आकर्षण को अगम्यगमनमूलक कहा जाता है, पर स्वाभाविक परिस्थितियो मे यह आकर्षण कमजोर होता है (अपवाद तो हमेशा ही रहते है) और जब तरुण दर्शक को अपने परिचित दायरे के वाहर आकर्षण और आनन्द का पात्र मिल जाता है तो वह शीघ्र ही उस प्रकार के आकर्षण पर कावू पा लेता है। अगम्यगमन के प्रतिकूल कोई सहजात या उसके प्रति स्वाभाविक घृणा नही होती, पर यौन सहजात बुद्धि को प्रवल रूप से उत्तेजित करने के लिए एक गहरे उद्वेलन की ज़रूरत होती है और उसके लिए एक नए पात्र की जरूरत होती है। इसके लिए उससे काम नही चल सकता जो अति जान-पहिचान के कारण रोजमर्रे का वन चुका है। वेस्टरमार्क विवाह-प्रथा पर लिखे गए अपने महान् ग्रन्थ के वाद के सस्करण मे उस मत के पक्ष मे दिखाई देते है। इससे पहले इस मत को क्राले और हीप भी स्वीकार कर चुके थे। यह वात उन व्यक्तियो के लिए स्पष्ट हो जाती है जो यौन शरीर-विज्ञान और पूर्वराग के मनोविज्ञान की प्रक्रियाओ को समझ सकते है। रेस्तिफ द ला ब्रितोन के आत्मचरित 'मोशिये निकलस' नाम की पुस्तक से उद्धरण पेश किए जा सकते है जो यौन आनन्द और उत्तेजना-सम्वन्धी मनोविज्ञान के विषय की एक अत्यन्त वहुमूल्य पुस्तक है। हम इस पुस्तक मे देखते है कि समय से पूर्व यौन अतिपरिपक्वावस्थाप्राप्त एक वालक चार साल की उम्र से ही अपनी साथिनो और साथ खेलने वाली वालिकाओ से एक हद तक यौन रूप से उत्तेजित होने लगा था, यद्यपि वह उनके दुलार को वडी झेप के साथ ही ग्रहण करता था। ग्यारह साल की उम्र के वाद ही वह इतना अधिक उत्तेजित हो सका कि अपना सारा झेपूपन दूरकर मैथुन की सीमा तक पहुच गया और ऐसा उसने एक ऐसी लडकी के साथ किया जो अजनवी, यहा तक कि दूसरे गाव की रहने वाली थी। यदि इसमे अन्तर्निहित मनोवैज्ञानिक तथ्य को ठीक से समझ लिया जाता तो वहुत से गलत सिद्धान्तो से वचा जा सकता था। अगम्य-

गमन के प्रति कोई स्वाभाविक प्रतिकूलता नही होती, किन्तु स्वाभाविक परिस्थितियो मे गहरे यौन आकर्षण के लिए प्रवल उत्तेजना की आवश्यकता होती है और यह सामान्य रूप से अति जान-पहचान मे से उदित नही हो सकती। कुल वहिर्गमन (Exogomy) के मनोविज्ञान के सम्वन्ध मे मेरे मत के विरुद्ध तरह-तरह की आपत्तिया उठाई गई है, किन्तु वे गलतफहमी और कई अत्यन्त घनिष्ठ रूप से सम्वद्ध वातो को स्वीकार न करने के कारण है। कुछ आलोचक एकमात्र सभ्य मनुष्यो और पालित पशुओ के सम्वन्ध मे ही सोचते रहने के कारण गुमराह हो गए है। कुछ यह देखने मे असफल रहे कि परिचित व्यक्तियो से होने वाली यौन उत्तेजना के प्रति निरवच्छिन्न उदासीनता का प्रश्न ही नही उठता क्योकि वह तो आसानी से मौजूद रह सकती है, और कभी-कभी विलक्षण रूप से प्रवल भी होती है। दूसरो का इस वात पर जोर देना ठीक ही है कि अगम्यगमन के परिणामस्वरूप सर्वोत्तम सन्तान की अथवा पारिवारिक शान्ति की सम्भावना नही होती और वहिर्गमन सामाजिक विकास का एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अग है। ये प्रभाव अच्छी तरह अगम्यगमन-निषेध के लिए ज़िम्मेवार हो सकते है और उस निषेध को कायम रखने के लिए जिम्मेवार वने रह सकते हैं। पर उस आधार को और उस असन्दिग्ध मानसिक प्रवृत्ति के सिवाय, जिसकी ओर मै पहले ही ध्यान आकर्षित कर चुका हू, वे प्रभाव मुश्किल से ही पैदा हो सकते थे। सामाजिक सस्थाओ का उद्गम कभी अस्वाभाविक नही होता, केवल स्वाभाविक आधार पर ही उनका उदय हो सकता है। इसके सिवाय जैसा कि क्राले ने वतलाया है, हमे आदिम जीवन मे यह सरल आकाक्षा दृष्टिगोचर होती है कि जो कुछ प्रचलित है उसपर प्रथा और कानून की निरवच्छिन्न छाप लगाकर स्वाभाविक वात की अनुकूलता की जाए।

आज हम गम्भीरतापूर्वक एडिपस जटिलता और उसके कारण जो भयकर प्रतिक्रियाए हुई उनपर शान्ति से विचार कर सकते है। जव तथ्यो को भयानक और भारी-भरकम वनाने अथवा उन्हे सर्वव्यापक सिद्धान्तो के रूप मे उछालने के प्रयत्नो के विना सीधे और सरल रूप मे देखा जाता है तो इस स्वाभाविक तथ्य की खोज मे आसानी हो जाती है कि छोटे वालक का अपनी मा से लगाव होता है (यही लडकियो मे अपने पिता के प्रति लगाव का रूप ले लेता है) और वह शुरू-शुरू मे उस व्यक्ति के प्रति ईर्ष्यालु होता है जो उसकी मां के ध्यान को उसकी ओर से हटाता है। ईर्ष्या पूर्णत एक स्वाभाविक आदिम भावना है। यदि किसी कुत्ते को ऐसा जान पडता है कि कोई दूसरा कुत्ता उसकी हड्डी मे से हिस्सा वटाने के फिराक मे है तो वह गुर्राता है और यदि कोई विल्ली यह देखती है कि कोई अजनवी विल्ली उसकी तश्तरी मे मुह मारने के लिए वढ रही है तो वह भी नाराज होकर गुर्राने

लगती है। हममे से वहुतो को, जो स्वस्थ और सहीदिमाग है तथा दुश्चिन्ता के कारण विक्रतस्नायु नही है, याद आ सकता है, या हमे वतलाया गया है कि जव कोई नया भाई या वहिन पैदा होती थी तो शुरू-शुरू मे हम उसे नापसन्द करते थे। पर साथ ही हमे यह भी याद पडता है कि थोडे ही समय के भीतर हमने नई परिस्थिति से पूरा समझौता कर लिया और नए शिशु को प्रेमपूर्वक दुलराने मे सहायता पहुचाकर गर्व का अनुभव करने लगे। सामान्य परिस्थितियो मे पिता के प्रति विरोध की भावना किसी भी सोपान मे शायद नही उठी। कारण वहुत स्पष्ट है। वालको के लिए शिशु नया होता है और नई भावनाओ को जन्म देता है। पिता तो शुरु से ही मौजूद है, उसके प्रति रुख वदलने वाली कोई नई चीज नही होती। उसे साधारण तथा स्वाभाविक कहकर स्वीकार कर लिया जाता है।

पर हम यह भी देखते है कि स्वाभावत विकृत स्नायु वाले कर्ताओ मे इस प्रकार की परिस्थिति रोगगस्त और भावनात्मक प्रवृत्तियो का विकास करने के लिए अनुकूल पडती है, विशेषकर तव, जव माता-पिता का व्यवहार अविवेकपूर्ण जैसे पक्षपात और असावधानीपूर्ण उपेक्षा का होता हो। तव हमे मनोविश्लेषको द्वारा निरूपित अभिव्यक्तियो की सम्पूर्ण शृखला दृष्टिगोचर होती है। यह आवश्यक है कि हम इन सम्भावनाओ के प्रति जागरूक रहे और ऐसी दशा का निर्भीकतापूर्वक उद्घाटन करने के लिए तैयार रहे क्योकि साहस के विना मनोविज्ञान के पथ पर आगे नही बढा जा सकता। किन्तु यह आवश्यक नही है कि हम किसी एक दशा से यहा तक कि अनेक दशाओ से अचानक एक साधारण नियम निकाल ले। सभी युक्तिसगत निष्कर्षो के लिए यह घातक है कि हम पूर्वाग्रह लेकर चले और हरएक दशा पर जवरदस्ती उसे लागू करने की कोशिश करे।

अव यह वात अधिक स्पष्ट होती जा रही है और मनोविश्लेषक भी इसे स्वीकार करने लगे है। इस तरह रैक, जो एडिपस जटिलता के प्रारम्भिक सोपान मे उसे विकसित करने के लिए इतने सचेष्ट थे, वीस साल वाद अपनी सुझावपूर्ण पुस्तक—'आधुनिक शिक्षा' मे लिखते है कि लडके का मा के प्रति और लडकी का वाप के प्रति आकर्षण और क्रमश वाप के और मा के प्रति ईर्ष्या के रूप मे एडिपस जटिलता व्यवहार मे इतने स्पष्ट तौर पर नही पाई जाती जितना कि उसे पौराणिक गाथा वतलाती है या फ्रायड का पहले विश्वास था। वह अन्यत्र यह भी लिखते है कि सुप्रसिद्ध मातृजटिलता का अर्थ वच्चे का मा पर उतना मनोवैज्ञानिक रूप से लगाव नही है जितना कि वह आजकल प्रचलित इस विश्वास का परिचायक है कि वच्चे की शिक्षा पर मा का वहुत अधिक प्रभाव पडता है।

मनोविश्लेषक नपुसकीकरण जटिलता का सम्वन्ध एडिपस जटिलता से जोडते

है। फ्रायड उसे प्राथमिक रूप से यौन क्षेत्र मे भीति-प्रदर्शन के प्रति हुई प्रतिक्रिया मानते है। इस मत मे शैशवकालीन क्रियाकलाप पर किसी तरह की रोकथाम को पितृजन्य माना जाता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि जब माताए और धाइया बच्चो को शिश्न हाथ मे लेकर खेलते हुए देखती है तो वे मजाक मे उसे काट देने की धमकी देती है । सम्भव है कि बालक इस धमकी को गम्भीरता के साथ ले, विशेषकर तब, जब वह देखता है कि उसकी बहिन के शिश्न नही है, साथ ही बहिन यह समझती है कि वह एक ऐसे अङ्ग से वचित कर दी गई है जो उसके भाई के है। यह कहना निश्चित रूप से आसान नही है कि ये भावनाए साधारण बालको पर लागू है, यद्यपि फ्रायड इतने आगे बढ जाते है कि उनका दावा है कि नपुसकीकरण जटिलता न केवल विकृत स्नायविक दशा के निर्माण मे बल्कि स्वस्थ बालक के चरित्रनिर्माण मे भी एक बडा हिस्सा अदा करती है। इसमे कोई सन्देह नही हो सकता कि नपुसकी-करण जटिलता कुछ विकृत स्नायविक व्यक्तियो पर बहुत प्रभाव डालती है। कुशाग्र बुद्धि के, पर विकृत स्नायविक प्रवृत्ति के कुछ व्यक्ति जब अपने प्रारम्भिक विकास का सिहावलोकन करने मे समर्थ होते है तो वे देखते है कि उनमे नपुसकी-करण जटिलता जागरित करने मे उनके ऊपर मूर्ख धाइयो का जो प्रभाव पडा है उसका बहुत बडा हाथ रहा है।

प्रारम्भिक जीवन के इस पहलू के सम्बन्ध मे जिस निर्दिष्ट अभिव्यक्ति ने सबसे अधिक ध्यान आकर्षित किया है वह हस्तमैथुन है। प्राचीन काल मे ही यह शब्द चालू हो गया था। यहा काम का उल्लेख करना सरल और सम्भवत उचित भी है, यद्यपि कडाई के साथ देखा जाए तो यह बात पूरे तौर सही नही है क्योकि यहा हमे ऐसी क्रिया पर विचार करना है जो सिर्फ आनन्ददायक अनुभूतियो के लिए साधारणीकृत और सहजातमूलक खोज से शुरू हो सकती है और अक्सर शुरू होती है। पर चूकि यह एक ऐसी क्रिया है जो बचपन तक ही सीमित नही रहती और किसी भी उम्र मे अकसर सबसे विकसित यौन भावनाओ के सिलसिले मे भी हो सकती है, इसलिए उसकी सीमारेखा खीचना बाल की खाल उधेड़ने के समान होगा।

इस क्रिया का प्राचीन और सामान्य प्रचलित नाम स्त्री और पुरुष दोनो ही लिगो मे यौन अङ्गो को हाथ के माध्यम से उत्तेजित करना सूचित करता है। किन्तु सामान्यत और बिल्कुल अपरिहार्य रूप से इस शब्द के प्रयोग मे वे सब विधिया सम्मिलित रहती है जिनके द्वारा जननेन्द्रियो मे आनन्ददायक अनुभूति पैदा करने के लिए घर्षण किया जाता है। इसमे सन्देह नही कि हाथ सबसे अधिक उपयोग मे आने वाला साधन है और मानसिक निषेध और भौतिक बाधा रहने वाली हालत

मे स्वाभाविक रूप से उसका ही उपयोग किया जाता है, पर बहुत से दूसरे कारण भी हो सकते है । जहा तक लडको का सम्बन्ध है, कसरत, खेल, विशेषत सामान्य उत्तेजना की दशा मे कपडो का आकस्मिक दबाव भी शिश्न को दडायमान कर सकता है, यहा तक कि उनका स्खलन भी हो सकता है । तनाव और भय की दशाओ, भय अथवा आनन्द का मचार करने वाले दृश्यो से तथा इसी प्रकार के वास्तविक अनुभवो, जैसे कोडे लगाने की सजा मिलने आदि से इसी तरह के नतीजे निकल सकते है । इसका एक प्राचीन उदाहरण रूसो के जीवन से प्राप्त होता है । उन्हे अपनी शिक्षिका या धाय से यह अनुभव हुआ था । स्वय रूसो का विश्वास था कि उनके अत्यन्त अनुभूतिशील मन पर उसका स्थायी प्रभाव पडा । लडकियो के हाथो का उपयोग लडको के समान सब से सामान्य होते हुए भी उतना ज़रूरी नही है । बचपन के शुरू मे भी यौन अङ्गो का आकस्मिक स्पर्श आनन्ददायक सिद्ध हो सकता है और किसी लडकी को इस आनन्द के कारण अपनी बचपन-सम्बन्धी इस प्रकार की याद बनी रह सकती है । वे बाद को चलकर सहजातमूलक तरीके से सम्पर्क तथा घर्षण करने के बाहरी पदार्थो को खोजती है । छोटी लडकिया बिना किसी लुकाव-छिपाव के कुर्सी के कोने अथवा ड्राअरो के कुन्दे से अपना घर्षण कर सकती है । नवयुवतिया ऐसी आदत डालती है और उसे बनाए रखती है और यहा तक कि सार्वजनिक रेस्टोरेंटो मे भी टेबिल के पाए की सहायता से उत्तेजना प्राप्त कर लेती है । किसी प्रकार की बाहरी चीज की सहायता लिए बगैर भी किसी लडकी के लिए यह सम्भव है कि अपनी जाघो को एक-दूसरे से रगडकर अथवा अनुकूल भावनात्मक दशा के रहने पर अपनी जाघो को एक-दूसरे से कसकर दबाने से उत्तेजना और परितृप्ति प्राप्त कर ले । लडको के समान उनमे भी उत्तेजक दृश्यो अथवा उत्तेजक विचारो से वे ही नतीजे हो सकते है । हम देखते है कि इसमे और जो बात दो प्रेमी-प्रेमिकाओ मे स्वाभाविक रूप से होती है, उनमे मुश्किल से ही प्रभेद किया जा सकता है ।

जिन लडको मे पहले कभी स्वत स्फूर्त यौन आवेग क्रियाशील नही हुआ और जिनको इस सिलसिले मे अपने साथियो से कुछ सीखने का मौका नही मिला उनमे यौवनोद्गम पर अक्सर निद्रावस्था मे स्वप्न के साथ या बगैर स्वप्न के स्खलन होता है । कभी-कभी लडके को इससे बहुत चिंता होती है और शरम लगती है और तब तक बनी रहती है जब तक उसके लगातार चालू रहने के कारण वह उसे वयस्क ब्रह्मचारी जीवन के एक अग के रूप मे स्वीकार नही कर लेता । इस तरह की परिस्थितियो मे यह अपरिहार्य नही है कि लडकियो मे भी इस प्रकार का तजुरबा हो । ऐसा बहुत ही कम होता है कि (जैसा मैंने अक्सर ही बताया है, यद्यपि

मेरे कथन को हमेशा स्वीकार नही किया गया) लडकियो को यौन उत्तजना की प्रथम अनुभूति (चाहे वह पूर्ण मैथुनिक परितृप्ति के साथ हो या न हो) निद्रा-वस्था मे हो और साधारणत ऐसा अनुमान अज्ञान के कारण किया जाता है। लडका निद्रावस्था मे स्वत यौन रूप से जागरित हो जाता है। लडकियो को दूसरो के द्वारा या स्वय अपने द्वारा सक्रिय रूप से जागरित करना पडता है, यद्यपि इसके वाद भी यह हो सकता है कि वयस्कावस्था प्राप्त कर लेने के वहुत समय वाद ही वह स्पप्ट कामात्मक स्वप्न देखे । यहा सम्भवत हम एक दिलचस्प यौन भेद का पता पाते है, जो इस प्रकार है—पुरुष यौन रूप से अधिक क्रियाशील है और स्त्री यौन रूप से अधिक शात। जो भी हो, फिर भी इसका अर्थ यह नही है कि पुरुप की कामात्मकता अधिकतर है और स्त्री की यौन आवश्यकताए निम्न कोटि की अथवा हीन है। यदि हम मिरगी तथा स्नायविकता को प्रच्छन्न यौन शक्ति की अभिव्यक्ति माने, तभी लडकियो को मिरगी होने तथा उनमे अन्य स्नायविक लक्षण पाए जाने की वात समझ मे आती है।

अमेरिका मे रोवी ने एक वडी सख्या मे स्त्रियो और पुरुपो मे खोज करने पर देखा कि उनमे मुश्किल से ही एकाध व्यक्ति ऐसा था जिसे हस्तमैथुन या आत्म-मैथुनिक क्रियाशीलता का किसी न किसी रूप मे आठ साल की उम्र के पहले अनुभव न हुआ हो। उनके निरीक्षण हमेशा असदिग्ध नही थे। डा० कैथराइन डैविस ने इस वात पर विशेप ध्यान दिया। अमेरिका मे कालेज से सम्वन्धित २२ साल से अधिक उम्र की १००० स्त्रियो मे से उन्होने देखा कि ६० प्रतिशत ने तो हस्तमैथुन का अपना वाकायदा इतिहास दिया। शायद किसी अन्य वैज्ञानिक की अपेक्षा उन्होने इस सम्पूर्ण प्रश्न की छानवीन अधिक पूर्णता और ज्यादा व्योरे के साथ की है। उन्होने देखा कि कालेज की अविवाहित स्नातिकाओ मे से ४३·६ प्रतिशत ने तीन साल की उम्र से लेकर दस साल की उम्र तक, २० २ प्रतिशत ने ११ से लेकर १५ साल की उम्र तक १३ ९ प्रतिशत ने १६ से लेकर २२ साल तक और १५ ५ प्रतिशत ने २३ से लेकर २९ साल की अवस्था मे हस्तमैथुन शुरू कर दिया था। उनके नतीजो की तुलना ऐसे शोधकर्ताओ के नतीजो से करने पर, जिन्होने पुरुपो के क्षेत्र मे छानवीन की है, निम्न-लिखित परिणाम निकलते है—

	पुरुप	स्त्री
११ साल तक	२०·९	४६ १
१२ से लेकर १४ साल तक	४८ ३	१४ ६
१५ से लेकर १७ साल तक	३० ३	६·२
१८ साल और उसके वाद	४ ५	३०·१

ये निष्कर्ष वजनदार है, क्योकि इन समूहो मे लगभग ५०० पुरुष और ६०० स्त्रिया सम्मिलित है। अप्रत्याशित मात्रा मे वे यह वतलाते है कि अक्सर लडकिया लडको की अपेक्षा कम उम्र मे ही हस्तमैथुन शुरू कर देती है। किशोरावस्था मे इस मामले मे लडको की प्रधानता रहती है। और जैसा कि हमारे लिए अनुमान करना स्वाभाविक है, वयस्कावस्था प्राप्त करने के वाद हस्तमैथुन करने वालो मे स्त्रियो की अधिकता रहती है।

डा० हैमिल्टन ने अच्छी सामाजिक स्थिति के १०० विवाहित पुरुषो और १०० विवाहित स्त्रियो का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने के दौरान मे पाया कि पुरुषो मे ६७ प्रतिशत और स्त्रियो मे ७४ प्रतिशत ने किसी न किसी समय हस्त-मैथुन किया था। ये नतीजे मोल के सामान्य निष्कर्षो से वहुत कुछ मिलते है। उल्लेखनीय है कि 'बालक के यौन जीवन' पर मोल का सन् १६०८ मे लिखित ग्रन्थ अपने विषय का सर्वप्रथम विस्तृत ग्रन्थ था और अभी तक उसकी गणना सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थो मे होती है। जो भी हो, मोल लिखते है कि जर्मनी मे हस्तमैथुन उतना अधिक प्रचलित नही है जितना कि लोग कभी-कभी अनुमान करते है। मै इस कथन मे इतना और जोड दे सकता हू कि इग्लैन्ड और यहा तक कि फ्रास मे भी सामान्यत. इतना प्रचलित नही है जितना अमेरिका मे पाए जाने वाले प्रतिशत से हमे धारणा होती है।

इससे यह दिखाई देगा कि ये अभिव्यक्तिया शाब्दिक अर्थ और सामान्यत. स्वीकृत अर्थ मे हस्तमैथुन की शाब्दिक और प्रचलित धारणा से कही अधिक व्यापक है, जिससे वास्तविक रूप से यह नही कहा जा सकता है कि वह एक अलग समूह है क्योकि वह निश्चित सीमाओ के वगैर वृहत्तर समूह से मिलता है।

जब हम इस तरह कुल मिलाकर अभिव्यक्तियो के इस समूह पर विचार करते है, तो यह साफ पता चल जाता है कि हम क्यो उन्हे विपरीत नही करार दे सकते। वे स्वाभाविक होते है, जब यौन आवेग यौन इच्छा के पात्र के अभाव मे कार्यशील होता है तो इस प्रकार की अभिव्यक्तिया स्वाभाविक होती है। यहा तक कि ऐसी परिस्थितियो मे वे कुछ मानवेतर जानवरो मे भी पाई जाती है और जव वे वयस्कावस्था के पहले पाई जाती है तव तो वे और भी स्वाभाविक होती है। यह भी स्वाभाविक है कि जव यौन आवेग अदमनीय प्रतीत हो और जव सामान्य तरीके से यौन तृप्ति की या तो इच्छा ही न की जाय या यह वाञ्छनीय न हो तो वयस्कावस्था मे भी उक्त अभिव्यक्तियो का उदय हो सकता है, यद्यपि यहा यह भी वता दिया जाए कि जव ऐसी परिस्थितियो के अन्तर्गत किन्ही अन्य विचारो के कारण उनका निषेध अथवा दमन कर दिया जाए जो उच्चकोटि के मालूम

पडते हो तो उस हालत मे भी उस प्रकार की अभिव्यक्ति उतनी ही स्वाभाविक है।

इतिहास के विभिन्न कालो और सस्कृति के विभिन्न सोपानो मे प्राक्यौवनारम्भ और किशोरावस्थाकालीन कामवासना के प्रति क्या रुख था, इसकी छानवीन करना भी शिक्षाप्रद होगा। यौन आवेग के सदृश इतने आदिम और मूल आवेग पर विचार करते समय हम आसानी से यह फैसला नही कर सकते कि क्या स्वाभाविक है और क्या विपरीत, क्योकि विचारो को बदलते हुए फैशनो या किसी एक विशेष युग के धार्मिक या सामाजिक रिवाजो के ढाचे की कसौटी पर कसना खतरे से खाली नही होगा। यह कहना उचित न होगा कि जिस युग मे से हम निकल रहे है, इस युग मे जो विशिष्ट और अतिरजित यौन विचार प्रचलित है वह किसी भी प्रकार चिरन्तन है।

उदाहरण के लिए हम अपनी परम्पराओ से अलग सस्कृति वाली न्यूगिनी की एकमात्र जाति ट्रोबियान्डर को ले। सिर्फ इसी जाति का अभी तक वैज्ञानिक सतर्कता के साथ अध्ययन किया जा सका है, जिसे मालिनोव्स्की ने अपने ग्रन्थ 'सेक्चुअल लाइफ आफ सावेजेज' मे प्रस्तुत किया है। ट्रोबियान्ड द्वीप मे बालक-बालिकाओ को स्वतन्त्रता और स्वाधीनता रहती है जो यौन मामलो तक विस्तृत होती है। बच्चो को अपने माता-पिताओ को मैथुन करते समय देखने से अथवा यौन विषयक बातचीत सुनने से बचाने के लिए न तो कोई सावधानी बरती जाती है और न ऐसा करना सम्भव ही होता है। साथ ही यह भी सच है कि बडे-बूढे उन बच्चो के विषय मे ऊचे विचार रखते है जो इस तरह देखी अथवा सुनी गई बातो को नही दुहराते। जब मछली पकडने के लिए लडकिया अपने बापो के साथ जाती है तो अक्सर पुरुष अपने जननेद्रिय पर से अजीर के पत्तो की तरह लगोटी[1] हटा देते है और इसलिए पुरुष-अग का आकार लडकियो के लिए कभी रहस्य नही रहता। लडके व लडकिया दोनो अपने से उम्र मे कुछ ही बडे साथियो से यौन सबधी निर्देश प्राप्त करते है व छोटी उम्र से ही यौन खेल खेलना शुरू कर देते है, जिनसे उन्हे इन विषयो का थोडा-बहुत ज्ञान प्राप्त हो जाता है और उनकी स्वाभाविक जिज्ञासा शान्त हो जाती है। यहा तक कि उन्हे कुछ मात्रा मे आनद भी मिल जाता है। इन जननेन्द्रिय-सबधी खेलो मे साधारण तौर पर हाथ और मुह का उपयोग किया जाता है। छोटी लडकिया अक्सर यौन सम्बन्धी खेल चार या पाच साल की उम्र मे शुरू कर देती है और वास्तविक यौन जीवन का प्रारम्भ छह या आठ साल के बीच शुरू होता है। गावो के बीच में

[1] पानी में उतरने के लिए—अनुवादक

लडके और लडकियो द्वारा खेले जाने वाले खेलो मे कभी-कभी यौन भावना का तगडा पुट रहता है। वयस्क लोग इन सब अभिव्यक्तियो को स्वाभाविक मानते है और इसपर डाटना या हस्तक्षेप करना जरूरी नही समझते। इससे कोई नुकसान नही होता। यहा तक कि अवैध बालक भी पैदा नही होते, यद्यपि यह अभी तक रहस्य ही है कि इस बात को किस तरह रोका जाता है। ट्रोवियान्डर जाति के तरुण अपनी सहजात काव्य-बुद्धि की सहायता से अपरिष्कृत कामवासना को ढक देते है और मालिनोव्स्की के शब्दो मे—"अपने खेलो मे बहुत बडी हद तक रोमाटिक दशा को प्रदर्शित करते है।"

फिर भी दुनिया के उसी हिस्से मे और उन लोगो के बीच, जो नस्ल और सस्कृति की दृष्टि से ट्रोवियान्डरो से बहुत अधिक भिन्न नही है, यौन विषयो के प्रति बिलकुल ही अलग रुख पाए जाते है। मार्गरेट मीड अपनी पुस्तक 'ग्रोइग अप इन न्यूगिनी' मे न्यूगिनी के उत्तर मे स्थित एडमिरैल्टी द्वीप के निवासियो मे मनु नामक जाति को कट्टर नैतिकतावादियो के रूप मे चित्रित करती है। वे यौन मामलो को अरुचि और मल-मूत्र आदि को घृणा के साथ देखते है। वे उनकी अभिव्यक्तियो का दमन करते हुए और उनसे बचते हुए इन मामलो मे अधिक से अधिक गोपनीयता रखते है। यद्यपि बालक-बालिकाओ को शारीरिक मामलो मे सावधानी के साथ शिक्षा दी जाती है, पर यौनेतर मामलो मे उन्हे खुली छूट दे दी जाती है और स्वतन्त्र छोड दिया जाता है। किन्तु यौन अभिव्यक्तिया, जिनमे हस्तमैथुन भी आ जाता है, बहुत कम पाई जाती है क्योकि पृथक्त्व और एकान्त का मौका मुश्किल से ही मिल सकता है। यहा मैथुनिक शीतलता बहुत पाई जाती है और विवाहित स्त्रिया यह स्वीकार नही करती कि दाम्पत्य जीवन से उन्हे आनन्द मिलता है और वे समागम से बचने की कोशिश करती है तथा वहा रोमाटिक प्रेम के लक्षण भी नही दिखाई देते।

हमारी सस्कृति के बाहर तरुण-यौन-जीवन का एक दूसरा चित्र मार्गरेट मीड ने 'कमिग आफ एज इन समोआ' नामक पुस्तक मे प्रस्तुत किया है, यद्यपि इस समय समोआ हमारी सभ्यता से अछूता नही है। यहां हमारी सभ्यता का प्राचीन समोअन सस्कृति पर विध्वसक प्रभाव पडा और इस तरह जो एक नई और बनावटी सस्कृति बनी है उसकी द्रुत गति से वृद्धि हुई। फिर भी स्वाभाविक रूप से उसके विकास का आधार वही है जो स्पष्टत. प्राचीन समोअन सस्कृति का आधार है। वे न्यूनतम निषेध और प्रतिबन्ध है, और इससे फायदा ही रहा है। छोटे बालक-बालिकाए एक-दूसरे से किसी बाहरी आदेश के कारण नही, बल्कि प्रथा और सहज़ात बुद्धि के कारण बचना चाहते है, तथापि एकान्त के सामान्य अभाव के कारण

वे प्रारम्भिक जीवन से ही जीवन और मरण के आवश्यक तथ्यो से, जिनमे मैथुन और यौन व्योरे भी सम्मिलित है, परिचित होने लगते है। उनका यौन जीवन बाल्यावस्था से ही शुरू हो जाता है। प्राय प्रत्येक छोटी लडकी कमोवेश गोपनीय रूप से छह या सात साल की उम्र से ही हस्तमैथुन शुरू कर देती है, लडके भी हस्त-मैथुन करते है, पर ऐसा अक्सर वे समूहो मे करते है और जब-तब समलैंगिक मैथुन के मामले भी उपलब्ध होते है। उम्र मे बढती हुई साथ काम करने वाली लडकियो और स्त्रियो मे इस तरह से जब-तब होने वाले सम्बन्ध सुखकर और स्वाभाविक मनोरजन माने जाते है, जिनमे काम-वासना का हलका-हलका सा पुट होता है। इस तरह की विपरीतताए न तो निषिद्ध है और न ही उन्हे बाकायदा विकसित किया गया है, वे तो केवल स्वाभाविक स्वस्थ अवस्था के व्यापक दायरे की मान्यता के सकेत मात्र है और जनमत यौन व्योरो पर अधिक ध्यान देने को अच्छा न मानते हुए भी उन्हे गलत नही माना जाता। मार्गरेट मीड का यह दावा है कि "इस प्रकार समोअन जाति ने स्नायविक विकृति का अपने यहा से अस्तित्व ही मिटा दिया है।" वहा न तो स्नायविक विकृति और रोग है न मैथुनिक शीतलता, न ही नपुसकता। विवाह-विच्छेद की आसानी रहने से कोई दुखी विवाहित जीवन बिताने के लिए बाध्य नही रहता (यद्यपि वहा व्यभिचार से विवाह का भग होना अनिवार्य नही है) और पत्नी को आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त होने के कारण वही अधिकार मिल जाता है जो पुरुष को प्राप्त है।

जब हम यूरोपीय परम्परा और अपनी आधुनिक सभ्यता के स्रोतो की ओर मुडते है तो इन अभिव्यक्तियो के सम्बन्ध मे सबसे प्राचीन जो उल्लेख मिलते है उनसे ऐसा नही दिखाई देता कि उनमे इनके प्रति स्पष्ट रूप से कोई तिरस्कार निहित है, अधिक से अधिक उनमे कुछ घृणा प्रकट की जाती है, और ग्रीक-साहित्य मे तो देवताओ को हस्तमैथुन से सम्बद्ध बतलाया गया है। ऐतिहासिक काल मे हम देखते है कि सिनिक-सम्प्रदाय के श्रद्धेय दार्शनिक यौन आवश्यकताओ की अपने-आप पूर्ति करने के लाभो की डीग हाकते थे। ऐसा मालूम होता है कि रोम मे इन मामलो के प्रति काफी उपेक्षा थी और गिरजा-प्रणाली मे एक हजार साल से भी ज्यादा समय तक इतनी तरह की अद्भुत यौन अतियो का सामना करना पडता था कि उन्हे दूर करने के प्रयत्नो मे ही सारा ध्यान लग गया और अकेले मे होने वाले स्वयस्फूर्त यौन अभिव्यक्तियो की तरफ ध्यान ही नही गया। रिफार्मेशन के पहले तो यह असम्भव था। सबसे पहले प्रोटेस्टेंट देशो मे नैतिकतावादियो और डाक्टरो का ध्यान हस्तमैथुन की ओर गया और वे चिन्तित होने लगे, यद्यपि शीघ्र ही यह आन्दोलन फ्रास और अन्य कैथोलिक देशो मे फैल गया। यह अठारहवी सदी

मे हुआ। इसी समय नीम-हकीमो को उन बुराइयो का उल्टा-सीधा इलाज करने का मौका हाथ लग गया। यहा तक कि विगत शती के अन्त तक भी गम्भीर डाक्टर यह मानकर चलते थे कि हस्तमैथुन से भयकर नतीजा अथवा कुछ और हो सकता है। जब उन्नीसवी सदी के उत्तरार्ध मे डार्विन की प्रेरणा से एक नवीन प्राणिशास्त्रीय धारणा धीरे-धीरे चिकित्सा-विज्ञान मे प्रवृष्ट होती जा रही थी तब शैशव और किशोर अवस्था की विपरीतताओ-सम्बन्धी धारणा का अन्त होने लगा। एक तरफ तो उस सदी के तीसरे चरण मे क्राफ्ट एविग ने अग्रदूत के ढग पर काम शुरू किया और उन्होने यौन-विषयक वैज्ञानिक अध्ययन के द्वारा यह दिखा दिया कि उम्र मे ये तथाकथित विपरीतताए कितनी साधारण है और दूसरी तरफ विकास की धारणा ने यह स्पष्ट करना शुरू कर दिया कि हमे वयस्को के विकसित मानदण्डो को अविकसित लोगो पर नही लागू करना चाहिए तथा यह आवश्यक नही है कि जो एक सोपान पर स्वाभाविक है वह उसके पहले के सोपान पर भी स्वाभाविक हो।

इटली के मनोचिकित्सक सिलवियो वेन्तुरी इन प्रभावो के प्रारम्भिक प्रतिपादक दार्शनिको मे से थे। वे इटली मे चिकित्साशास्त्र को नई प्राणिशास्त्रीय और सामाजिक धारणाओ से उर्वरित करना चाहते थे। सन् १८९२ मे उन्होने अपना व्यापक अध्ययन-ग्रन्थ 'मनोवैज्ञानिक कामात्मक पतितावस्थाए' प्रकाशित किया। वैयक्तिक और सामाजिक इतिहास मे प्रतिफलित कामात्मक पतितावस्थाओ का इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ मे चित्रण किया गया। वेन्तुरी यौन विकास को एक धीमी प्रक्रिया मानते थे। वे यह मानते थे कि उसे यौवनारम्भ के पहले यौन नाम देना उचित नही है, फिर भी यह प्रक्रिया ऐसे घटको (शैशवकाल मे शिश्न का दडायमान होना ऐसा ही घटक है और इसी प्रकार बचपन मे ओठो का अकामात्मक सुखकर प्रयोग विकसित हो जाना, कामात्मक रूप से अनुभूतिशील हो जाना दूसरा घटक है।) से निर्मित होती थी जिनका आपस मे सयुक्त होने के पूर्व पृथक् विकास होता है। ये ही तत्त्व यौवनारम्भ के बाद संयुक्त होकर कामवासना तथा कामचेष्टा का निर्माण करते है, जिन्हे वेन्तुरी साहब मानसिक तत्त्वो पर जोर देते हुए 'एमोरे' या प्रेम की सज्ञा देते है। हस्तमैथुन को, जिसे वेन्तुरी हमेशा ओनानिज्म कहते है, उसका बीज माना गया है जो आगे चलकर प्रेम बन जाता है। वह बिना किसी सुखद कामात्मक कल्पना के तरुणाई मे एक अज्ञात और अनिश्चित शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के रूप मे प्रकट होता है, जिसकी जडे शैशव मे ही मौजूद रहती है। निश्चित रूप से उसकी प्रकृति कामात्मक रहती है, पर चेतना के समक्ष वह ऐसे अनुभूतिशील धरातल को खोदने के कार्य के रूप मे प्रकट होती है. यद्यपि उसमे निषिद्ध फल के चखने का मानसिक चटपटापन भी शामिल रह

सकता है। यह कार्य धीरे-धीरे मानसिक तत्त्वो और विशुद्ध कामात्मक उत्तेजनाओ से जटिल बनता जाता है, जो उसे धीमी गति से किसी काल्पनिक साथी के साथ मैथुन करने की कल्पना के निकट लाती जाती है और इस तरह वह प्राय. बिना जाने ही वयस्क यौन प्रेम मे प्रवृष्ट और लुप्त हो जाता है अथवा व्यक्ति के अनुसार द्रुत अथवा मन्द होता है। जैसा कि वेन्तुरी का कथन है (लोम्ब्रोजो की तरह जो आज के दृष्टिकोण के अनुकूल है) कि जैसे भी हो उसके कुछ तत्त्व, जैसे फेटिश-युक्त तत्त्व, विकास के अवरुद्ध हो जाने के कारण मौजूद रहते है और जब वे इतनी दूर तक आगे बढ जाते है कि वयस्क जीवन मे स्वाभाविक यौन लक्ष्य का स्थान ले लेते है तो वे विपरीतता का रूप ले लेते है। फ्रायड ने जैसा कि बाद को कहा, "विकृत कामचेष्टा शैशवकालीन कामचेष्टा के सिवाय और कुछ नही है।" इसका अर्थ यह है कि बालक मे जो बात स्वस्थ है जब वही बात वयस्क-जीवन मे पाई जाती है, तब अस्वाभाविक हो जाती है। वेन्तुरी यह निष्कर्ष निकालते है कि हस्त-मैथुन उस कथित पाप से कोसो दूर है जिसे शिक्षक और नैतिकतावादी दूर करना चाहते है और वह एक स्वाभाविक मार्ग है जो पहले यौवन को उष्ण और उदार प्रेम की ओर और बाद को परिपक्वता के शान्त और ठोस दाम्पत्य प्रेम तक पहुचाता है।

सहायक पुस्तक-सूची

ए० मोल—The Sexual Life of the Child

सन्फोर्ड बेल—'The Emotion of Love between the Sexes,' American Journal of Psychology, July, 1902

ऑस्कर फीस्टर—Love in Children.

कैथराइन डेविस—Factors in the Sex Life of Twenty-two Hundred Women

जी० वी० हैमिल्टन—A Research in Marriage.

मालिनोव्स्की—Sexual Life of Savages

मारगरेट मीड—Growing up in New Guinea Coming of Age in Samoa

फ्रायड—Introductory Lectures of Psycho-Analysis

अर्नेस्ट जोन्स—Papers on Psycho-Analysis.

आत्ममैथुन

बाल्यावस्था के प्रारम्भिक लक्षणो का अध्ययन करते समय ही हम उन अभिव्यक्तियो तक पहुच चुके है जो आत्ममैथुन सज्ञा के अन्तर्गत आती है। मैने इस सज्ञा 'आत्ममैथुन' को सन् १८९८ मे उन स्वत स्फूर्त अकेले मे होने वाली यौन अभिव्यक्तियो के लिए खोज निकाला था जिन्हे सोते समय प्रजनन-अगो की उत्तेजना के प्रकार का कहा जा सकता है। अब इस सज्ञा का सामान्यत प्रयोग होता है, जो कि हमेशा ठीक उसी अर्थ मे नही जिसमे कि मैने उसका प्रवर्तन किया था। कभी-कभी उसका प्रयोग स्वय के प्रति निर्देशित यौन सक्रियता को व्यक्त करने के लिए भी किया जाता है। ऐसे प्रयोग का अर्थ इस सज्ञा के अर्थ को सीमित करना है और ऐसा करना आत्म शब्द से जुडकर बनने वाले शब्द-वर्ग के साधारण अर्थ के अनुसार नही पडता, स्वयक्रिय कार्य का अर्थ बिना किसी प्रत्यक्ष बाहरी आवेग के स्वय के प्रति नही बल्कि स्वय के द्वारा कार्य है। यदि हम आत्ममैथुनिक सज्ञा को सीमित कर दे तो हमारे पास इस सम्पूर्ण वर्ग को सूचित करने के लिए कोई सज्ञा नही बचेगी।

इसलिए आत्ममैथुन सज्ञा से मेरा मतलब स्वत स्फूर्त यौन भाव के उस लक्षण से है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त बाह्य उत्तेजना के कारण उद्भूत न हुआ हो। एक व्यापक अर्थ मे, जिसकी पूरी तरह से उपेक्षा नही की जा सकती, यह कहा जा सकता है कि आत्ममैथुन मे दमित यौन सक्रियता के वे सब रूप सम्मिलित है जो किसी रोगग्रस्त दशा के घटक है। साथ ही इसके अन्तर्गत कला और कविता की स्वाभाविक और स्वस्थ अभिव्यक्तिया आ जाती है और वे न्यूनाधिक रूप से वास्तव मे सम्पूर्ण जीवन को अपने रग मे रग देती है।

डिकिन्सन कहते है कि व्यापक अर्थ मे आत्ममैथुन के अन्तर्गत किसी भी प्रकार की आत्माभिव्यक्ति मे व्यक्त होने वाला आत्मप्रेम सम्मिलित है। उसमे सिर्फ यौन विच्युति के शिकार ही नही, बल्कि वैज्ञानिक, देश-अनुसन्धानकर्ता, खिलाडी और पर्वतारोही ऐसे लोग भी आ जाते है।

ऐसी परिभाषा मे विरुद्ध लिंग के प्रिय व्यक्ति की उपस्थिति से उदय होने वाली स्वस्थ यौन उत्तेजना नही आती, इसी प्रकार उसमे किसी समलैंगिक व्यक्ति के प्रति होने वाले आकर्षण से सम्बन्धित विकृत अथवा विपरीत कामभावना भी नही आती। इसके बाद उसके अन्तर्गत कामात्मक फेटिशवाद के बहुविध रूप भी नही आते। इसमे यौन आकर्षण का सामान्य केन्द्र अपने स्थान से हट जाता है और यौन भाव किसी ऐसी वस्तु से उदित होते है जो साधारण प्रेमी के लिए सिर्फ गौण महत्त्व की ही है। आत्ममैथुन का क्षेत्र विस्तृत है, और अपेक्षाकृत विशेष रूप से

उसके अन्तर्गत ये बातें आती हैं—(१) कामात्मक दिवास्वप्न, (२) नींद में कामात्मक स्वप्न, (३) नार्किससवाद[1] जिसमें आत्म-चिन्तन द्वारा कामात्मक भाव पैदा होते हैं, और (४) हस्तमैथुन, जिसमें न केवल हाथ के द्वारा आत्म-उत्तेजन, बल्कि यौन अवयवों तथा अन्य उत्तेजना-केन्द्रों पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालने वाले अन्य बहुत से तरीके यहां तक कि वे तरीके भी शामिल हैं जो केन्द्रीय तौर पर शुरू किए जाते हैं।

(१) कामात्मक दिवास्वप्न :

यह (जिसे अतिकल्पनाशीलता की भी संज्ञा दी जाती है) आत्ममैथुन का एक अत्यन्त प्रचलित और महत्त्वपूर्ण रूप है। इसके सिवाय वह कभी-कभी हस्त-मैथुन का भी प्रारम्भिक सोपान रहता है। वेलेजली कालेज के मावेल लेयारायड ने बहुत पहले उसके प्रमुख रूप का अध्ययन 'लगातार चालू कहानी' में प्रस्तुत किया था। 'लगातार चालू कहानी' एक काल्पनिक वर्णन होती है, जो कमोवेश हर व्यक्ति के लिए विशिष्ट होती है। वह व्यक्ति उसे बहुत पसन्द करता है, और वह विशेष रूप से उसकी पवित्र मानसिक सम्पत्ति मानी जाती है। अक्सर व्यक्ति उसे कभी दूसरों को नहीं सुनाता, पर यदि सुनाने का मौका आ भी जाए तो उसे बहुत अधिक सहानुभूति रखने वाले मित्रों को ही बतलाया जाता है। इसकी प्रवृत्ति लड़कों और नवयुवकों की अपेक्षा लड़कियों और नवयुवतियों में अधिक पाई जाती है : ३५२ स्त्री-पुरुषों में जहां ४७ प्रतिशत स्त्रियों की कोई न कोई चालू कहानी थी, वहां सिर्फ १४ प्रतिशत लड़कों की ही ऐसी कहानी थी। प्रारम्भ-बिन्दु किसी पुस्तक से कोई घटना अथवा जैसा कि अक्सर होता है, वास्तविक जीवन से ही कोई घटना होती है, जिसे कर्ता विकसित करता है और वह (कर्ता) प्रायः हर क्षेत्र में उस कहानी की नायिका या नायक होता है। एकान्त कहानी के विकास के लिए अनुकूल होता है, और सोने के पहले बिस्तर पर लेटे रहने का समय उसके विकास के लिए विशेष रूप से अनुकूल होता है। जी० एफ० पार्ट्रिज ने दिवास्वप्न के साथ होने वाले शारीरिक लक्षणों का विशेषकर नार्मल स्कूलों की १६ से लेकर २२ साल तक की लड़कियों का वर्णन बड़ी अच्छी तरह किया है। पिक ने कामात्मक आधार पर होने-वाले दिवास्वप्नों की रोगग्रस्त, प्रकट रूप से मिरगी-ग्रस्त पुरुषों की दशाओं को

[1] फ्रायड के दूसरे अनुयायी (यद्यपि स्वयं फ्रायड नहीं) आत्ममैथुन संज्ञा को इस प्रकार विशेष अर्थ तक ही सीमित रखना चाहते हैं। मैं इसे अवैध मानता हूं। आत्ममैथुन के सभी प्रकारों में जहां किसी अन्य व्यक्ति की उपस्थिति की आवश्यकता बगैर कुछ परि-[illegible] पाता है, किन्तु उसका यौन आवेग प्रत्येक अर्थ में आवश्यक रूप से स्वयं अपने प्रति नहीं होता।

लिपिबद्ध किया है। थ्योडेट स्मिथ ने लगभग १५०० तरुण व्यक्तियो का, जिनमे दो-तिहाई से अधिक सख्या लडकियो और नवयुवतियो की थी, अध्ययन किया था, 'लगातार चालू कहानिया' मुश्किल से १ प्रतिशत मे पाई गई थी। पन्द्रह साल की उम्र के पहले स्वस्थ लडके दिवास्वप्न देखते थे, जिनमे खेल-कूद और साहसपूर्ण कार्यो का बहुत वडा भाग रहता था, लडकिया उपन्यासो मे अपनी प्रिय नायिकाओ के स्थान पर स्वय को रख देती थी। प्रेम और विवाह के दिवास्वप्न सत्रह साल की उम्र के वाद और लडकियो मे उससे पहले ही, वहुधा पाए जाते थे। यद्यपि इन दिवास्वप्नो का पता लगाना किसी भी तरह आसान नही है, फिर भी कामात्मक दिवास्वप्न नवयुवको मे विशेषकर नवयुवतियो मे सर्वत्र यथेष्ट मात्रा मे पाए जाते है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना विशेष स्वप्न होता है, जो सदैव वदलता और विकसित होता जाता है, पर अत्यन्त कल्पनाशील लोगो के सिवाय वह अन्य लोगो मे ज्यादा दूर तक विकसित नही होता। उस तरह का दिवास्वप्न अक्सर सुखद वैयक्तिक अनुभूति पर आधारित होता है और उसी आधार पर पनपता है। उसमे विपरीतता का भी एकाध तत्त्व हो सकता है, चाहे वास्तविक जीवन मे वह तत्त्व दिखलाई न पडे। ब्रह्मचर्य से दिवास्वप्न पनपता है। प्राय उसको पूरी तरह से समझने का कोई प्रयत्न नही किया जाता। यह आवश्यक नही है कि उसकी परिणति हस्तमैथुन ही हो, यद्यपि उससे कभी-कभी कमोवेश या स्वत स्फूर्त रूप से स्खलन हो जाता है।

दिवास्वप्न नितान्त वैयक्तिक और घनिष्ठ अनुभव होता है। ऐसा केवल स्वभाव से ही नही होता, वल्कि यह ऐसे विम्वो के रूप मे होता है जिन्हे कर्ता को भाषा के माध्यम से इच्छा रहने पर भी व्यक्त करने मे वडी कठिनाई होती है। दूसरी दशाओ मे इसका चरित्र नाटकीय अथवा रोमान्टिक होता है और नायक अथवा नायिका कहानी का कामात्मक चरमोत्कर्ष प्राप्त करने के पूर्व वहुत से अनुभवो मे से गुजरते हैं। यह चरमोत्कर्ष कर्ता के वढते हुए ज्ञान अथवा अनुभव के साथ सामजस्य रखते हुए विकसित होता जाता है, पहले वह महज चुम्वन मात्र से शुरू होकर किसी भी प्रकार की परिष्कृत यौन तृप्ति मे विकसित हो सकता है। सही-दिमाग व्यक्तियो और विकृतमस्तिष्क व्यक्तियो मे दिवास्वप्न पाया जा सकता है। रूसो अपनी 'आत्मकथा' मे ऐसे स्वप्नो का वर्णन करते है जिनमे मासोकवाद और हस्तमैथुन सम्मिलित थे। रेफालोविच ऐसी प्रक्रिया का उल्लेख करते है जिसके द्वारा यौन रूप से अन्तर्मुखी व्यक्ति अपने चिन्तन के प्रवाह मे शायद सडक या थिएटर मे देखे गए अपने ही लिग के किसी व्यक्ति की आकृति को कल्पना मे देखने लगते है। इससे एक तरह का मानसिक आत्ममैथुन होता है चाहे वह शारीरिक रूप से अभिव्यक्त हो या न हो।

इस प्रकार के दिवास्वप्नो पर अभी तक बहुत थोड़ा ही अध्ययन हो सका है क्योकि यह गुप्त रूप से होता है तथा एकान्त मे ही इसका अनुशीलन किया जाता है, और यह शायद वैज्ञानिक खोजो के लिए काफी तौर पर दिलचस्प भी नही समझा जाता था, पर वास्तव मे यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है और आत्म-मैथुनिक क्षेत्र के एक बहुत बडे हिस्से मे फैली हुई है। यह प्रक्रिया अक्सर ऐसे कल्पनाशील नवयुवको और नवयुवतियो मे पाई जाती है जो सयम के साथ रहते है और हस्तमैथुन से अक्सर दूर भागते है । ऐसे व्यक्तियो मे विद्यमान परिस्थितियो के अन्तर्गत इसको नितान्त स्वाभाविक और आवेग की क्रीडा का अपरिहार्य स्वरूप समझना चाहिए। इसमे सन्देह नही कि अक्सर यह रोगग्रस्त हो सकती है, और जब इसकी अति हो जाती है तो यह कदापि स्वस्थ नही होती । कलात्मक प्रकृति के नवयुवको और नवयुवतियो मे यह सबसे अधिक प्रभावित करने वाली और जकडने वाली होती है। यद्यपि यह बात नही है कि दिवास्वप्न हमेशा ही यौन भाव से रजित हो तो भी जैसा कि मुझे स्त्रियो और पुरुषो दोनो ने ही बताया है कि ऊपरी तौर से ये अकामात्मक दिवास्वप्न भी विवाह के बाद बन्द हो जाते है और यह इस बात का महत्त्वपूर्ण सूचक है कि उनका उद्गम कामात्मक होता है।

हैमिल्टन की जाच-पडताल से यौन दिवास्वप्नो का महत्त्व और भी अच्छी तरह से सामने आ गया है। उन्होने देखा कि २७ प्रतिशत पुरुषो और २५ प्रतिशत स्त्रियो ने निश्चित रूप से यह बतलाया कि यौन विषय मे कुछ भी मालूम होने से पहले से ही, उन्हे दिवास्वप्न आते थे, अन्य बहुत से व्यक्ति अनिश्चित थे, जब कि २८ प्रतिशत पुरुषो और २५ प्रतिशत स्त्रियो को यौन रूप से परिपक्व होने से पूर्व दिवास्वप्न आते थे। केवल १ प्रतिशत पुरुषो और २ प्रतिशत स्त्रियो को यौवनारम्भ के बाद भी कामात्मक दिवास्वप्न नही हुए। ५१ प्रतिशत पुरुषो और ५७ प्रतिशत स्त्रियो ने कहा कि १८ साल की उम्र के पश्चात् और विवाह के पहले के समय मे दिवास्वप्नो मे उनका दिमाग बहुत लगा रहता था। २६ प्रतिशत पुरुषो और १९ प्रतिशत स्त्रियो को (जो सभी विवाहित थे) दिवास्वप्नो मे डूबे रहने के कारण अब भी कार्य मे बाधा पहुचती है।

अक्सर दिवास्वप्न उन लोगो विशेषत उपन्यासकारो के जीवन और गतिविधियो मे महत्त्वपूर्ण हिस्सा अदा करते है जो शारीरिक और मानसिक बनावट से ही कला की ओर झुके रहते है । इसलिए जहा साधारण लोगो के लिए वयस्क जीवन मे कल्पना मे बहुत अधिक डूबे रहना असन्दिग्ध रूप से हानिकर है—क्योकि यह उन्हे वास्तविक जीवन से दूर हटाता है—वहा फ्रायड का सुझाव है कि कलाकार मे उसकी शारीरिक बनावट से ही उदात्तीकरण और दमन की उतनी प्रबल

क्षमता हो सकती है कि वह अपनी कल्पना से आनन्द का इतना प्रवल प्रवाह पैदा करे जिससे दमन का पलडा हलका पड जाए और उसका निवारण हो जाए।

(२) नींद में कामात्मक स्वप्न :

स्वप्नो के मनोवैज्ञानिक महत्त्व को हमेशा स्वीकार किया गया है, भले ही ऐसा चाहे विभिन्न ढग से किया गया हो और चाहे जिस ऊलजलूल प्रकार से उसकी व्याख्या की गई हो। हम देखते हैं कि मनुष्य की प्रारम्भिक परम्परा यह थी कि स्वप्नो पर गम्भीरता के साथ विचार किया जाता था और यह माना जाता था कि उनमे जादू, धर्म या भविष्यवाणी के वारे मे वाते रहती हैं। सभ्य देशो की लोक-कथाओ और लोकगीतो मे यह अभी तक मौजूद है, और असभ्य जातियो मे तो स्वप्न वहुत महत्त्वपूर्ण माने ही जाते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान के उदय के साथ ही स्वप्नो पर द्रुत गति से विविध दृष्टिकोणो से अध्ययन होने लगा।[१] हाल ही मे यह अध्ययन वहुत व्यापक हो गया है और जैसा कि हमे मालूम है, मनोविश्लेषण मे स्वप्न वहुत वजनदार माना जाता है।

स्वप्न की सामान्य व्यापकता को स्वीकार कर लिया जाता है, पर हमेशा इस वात पर पूरा मतैक्य नही रहा कि वह स्वाभाविक और निरन्तर चालू रहने वाला है और इसलिए यह पूरी तरह से स्वस्थ और स्वाभाविक है। फ्रायड यह मानते हैं कि वह एक ही साथ स्वस्थ और मनोरोगग्रस्त है। यह सवसे अधिक तर्कसगत मालूम पडता है कि इसे पूर्ण रूप से स्वाभाविक मान लिया जाए। जानवरो को भी स्वप्न आते हैं और हम यह देख सकते हैं कि सोया हुआ कुत्ता कभी-कभी दौडने की चेष्टा की नकल करता है। असभ्य जातियो के लोगो को भी स्वप्न आते हैं। वहुत से लोगो को स्वप्न का ज्ञान नही रहता तो भी जव वे इसपर ध्यान देने लगते हैं तो उन्हे स्वप्न आने के चिह्न अक्सर मिलने लगते है। हम यह भली भाति विश्वास कर सकते हैं कि सोते समय उनकी मानसिक सक्रियता इतने उतार पर रहती है कि जागने पर उसकी याद वाकी नही रहती।

साधारण स्वप्नो के समान ही कामात्मक स्वप्नो के सम्वन्ध मे भी—चाहे उनके आने के साथ स्खलन हो या न हो—मतभेद है। सिद्धान्तो और तथ्यो का सावधानी के साथ अध्ययन करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि स्वस्थ व्यक्तियो मे ब्रह्मचारी रहते समय जागरित अवस्था मे आत्ममैथुनिक अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति होती है।

---

१ फ्रायड ने (जो साहित्य के विशेषज्ञ होने का दावा नहीं करते) स्वप्न पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दिए जाने वाले ध्यान को कम ही महत्त्व दिया। वे यह कह जाते हैं मानो यह सामान्य विश्वास रहा हो कि 'स्वप्न' एक मानसिक नहीं किन्तु देह-यंत्र-संवंधी *व्यापार* है। यह वक्तव्य अर्थहीन है।

जो भी हो, इसमे सन्देह नही हो सकता कि उन्हीं परिस्थितियो मे निद्रावस्था मे पुरुषो के स्खलन का होना तथा स्त्रियो की पूर्ण तृप्ति होना स्वाभाविक है। संसार के कई भागों में बतलाया जाता है कि इस तरह की अभिव्यक्तियां शैतान के द्वारा दी गई उत्तेजना के कारण होती हैं। कैथोलिक चर्च ने इस अपवित्रता को बहुत महत्त्व दिया और उसे 'दोष' की संज्ञा दी, पर लूथर भी कामात्मक स्वप्नो को एक बीमारी मानते हैं और उसकी दवा के लिए फौरन शादी कर देने की व्यवस्था देते हैं। यहां तक कि कुछ प्रसिद्ध चिकित्सा-वैज्ञानिको ने भी (विशेष रूप से मोल और एलेनबर्ग ने) रात्रिकालीन वीर्यपात को रात्रिकालीन मूत्रत्याग अथवा वमन के स्तर पर रख दिया है। और इससे भी इन्कार नही किया जा सकता कि आदिमकालीन प्राकृतिक परिस्थितियो मे यह दृष्टिकोण औचित्यपूर्ण है।

जो भी हो, चूकि हमारी सामाजिक परिस्थितियो के अन्तर्गत कुछ हद तक मैथुनिक सयम कमोबेश अपरिहार्य है, अधिकाश विद्वानो का झुकाव रात्रिकालीन कामात्मक स्वप्नो को, जो सयम के फलस्वरूप आते है, काफी हद तक स्वाभाविक मानने की ओर प्रवृत्ति है। उन्हे चिन्ता केवल इस बात की रहती है कि वह कितनी जल्दी-जल्दी आता है।

पाजे का कहना है कि उन्होने कोई भी ऐसा ब्रह्मचारी अथवा सयमी पुरुष नही देखा जिसे सप्ताह मे एक या दो बार से लेकर तीन महीने तक मे एक बार भी स्वप्नदोष न होता हो। और इन दोनो सीमाओ के भीतर रहने वाला व्यक्ति स्वस्थ ही पाया गया। ब्रिन्टन का कहना है कि स्वप्नदोष सबसे ज्यादा लोगो मे सामान्यत पन्द्रह दिन से लेकर महीने मे एक बार पाया जाता है। इन अवधियो मे स्वप्नदोष एक रात्रि के बाद दूसरी रात्रि को भी अक्सर हो जाता है। रोलेडर का तो यहा तक कहना है कि यह स्वाभाविक रूप से कई रातो तक लगातार हो सकता है। हैमण्ड का भी विचार था कि १५ दिनो मे एक बार स्वप्नदोष होता है। नेतेनाफ ने मास्को के दो हजार से भी अधिक विद्यार्थियो की जाच करने के बाद यह पाया कि इसी अन्तर पर ही स्वप्नदोष सबसे ज्यादा लोगो मे होता था। रिबिंग यह मानते थे कि दस से लेकर चौदह दिन के भीतर एक बार स्वप्नदोष होना स्वाभाविक है, पर हैमिल्टन एक सप्ताह से लेकर पन्द्रह दिन की अवधि को स्वाभाविक मानते थे (१६ प्रतिशत दशाओ मे)। लेवेनफेल्ड यह मानते थे कि सप्ताह मे एक बार स्वप्नदोष स्वाभाविक है। बहुत से अच्छे स्वस्थ युवको के क्षेत्र मे यह कथन नही लिया जाता है। चाहे जैसे भी हो, कभी-कभी स्वप्नदोष बिलकुल नही होता। (नेतेनाफ की जाच मे दस प्रतिशत मे स्वप्नदोष का न होना पाया जाता है, किन्तु हैमिल्टन केवल दो प्रतिशत मे ही इसका अभाव पाते है।) दूसरे अच्छे स्वस्थ युवको म यौनिक प्रा-

क्रियाशीलता अथवा चिन्ता और व्यग्रता की दशा को छोडकर बाकी समय शायद ही कभी स्वप्नदोष होता है।

यद्यपि हमेशा ही नही, पर अक्सर जिसे स्वप्नदोप होता है उसे कामात्मक सपने आते है। जिसमे स्वप्न देखने वाले को किसी स्त्री की न्यूनाधिक रूप से निकट उपस्थिति अथवा सम्पर्क की चेतना होती है। सामान्य नियम यह मालूम होता है कि स्वप्न जितना अधिक स्पष्ट और कामात्मक होगा, शारीरिक उत्तेजना और साथ ही जागने पर तृप्ति की अनुभूति उतनी ही अधिक होगी। कभी-कभी कामात्मक स्वप्न वीर्यपात के बिना ही समाप्त हो जाता है और कई बार स्वप्न देखने वाले के जागने के बाद ही वीर्यपात होता हे। कभी-कभी सन्निकट स्खलन का दमन अर्ध-जागरण-अवस्था मे ही हो जाता है। नैके ने इसे 'स्तम्भित स्वप्नदोप' की सज्ञा दी है।

उत्तर इटली मे ग्वालिनो ने कामात्मक स्वप्न की विस्तृत और व्यापक जाच की, जो १०० स्वस्थ पुरुषो—डाक्टरो, शिक्षको, वकीलो आदि के बीच प्रसारित थी। ग्वालिनो दिखलाते है कि निष्कासन (चाहे वह वीर्य का हो या और किसी वस्तु का) के साथ कामात्मक स्वप्न उस उम्र से कही जल्दी शुरू हो जाते है जिसे मारो ने उत्तर इटली के उसी हिस्से मे युवको पर शोध करके निश्चित किया था। ग्वालिनो को मालूम हुआ कि उनके समक्ष प्रस्तुत सभी मामलो मे १७ साल की अवस्था मे कामात्मक स्वप्न आने लगे थे, मारो ने यह देखा कि उस उम्र मे भी ८ प्रतिशत युवक यौन रूप से अविकसित थे, और जहा १३ साल की उम्र से यौन विकास शुरू होता है वहा १२ वर्ष की अवस्था से ही कामात्मक स्वप्न शुरू हो जाते है। प्राय सभी दशाओ मे स्वप्नदोष आने के कुछ महीने पहले से शिश्न का दडायमान होना शुरू हो जाता था। ३७ प्रतिशत दशाओ मे कोई वास्तविक यौन अनुभव (चाहे वह हस्तमैथुन हो अथवा मैथुन) नही था, २३ प्रतिशत मामलो मे हस्तमैथुन किया गया था और शेष मे किसी न किसी रूप मे यौन सम्पर्क हो चुका था। स्वप्न मुख्यत दृश्यगत होते है, स्पर्श-सम्बन्धी तत्त्व बाद को आते है। स्वप्न मे आने वाला नाटकीय पात्र अक्सर एक अज्ञात स्त्री (२७ प्रतिशत मामलो मे) अथवा केवल आख से देखी गई स्त्री (५६ प्रतिशत मामलो मे) होता है और अधिकाश क्षेत्र मे, कम से कम शुरू की सभी परिस्थितियो मे, एक कुरूप अथवा अद्भुत आकृति वाली स्त्री पात्र के रूप मे सामने आती है, जो आगे चलकर अधिक आकर्षक होती जाती है, पर वह उस स्त्री से नही मिलती-जुलती जिसे जागरित जीवन मे प्यार किया जा रहा है। ग्वालिनो, लेवेनफेल्ड तथा अन्य विद्वानो ने बतलाया है कि यह दिन के भावो की रात मे प्रच्छन्न रूप मे प्रकट होने की सामान्य प्रवृत्ति के अनुरूप है। यौवनारम्भ के सोपान मे भावात्मक दशा मे आनन्द के अतिरिक्त व्यग्रता (३७ प्रति-

शत), वासना (१७ प्रतिशत) और भय (१४ प्रतिशत) मौजूद रहता है। वयस्कावस्था मे चिन्ता और भय घटकर क्रमश ७ और ६ प्रतिशत रह जाते है। ३३ कर्ताओ को यौन गडबडियो या अन्य गडबडियो के कारण विना सपने देखे ही वीर्य-स्खलन हो गया था और ऐसे व्यक्तियो ने जागने पर अपने को वहुत थका हुआ पाया। ९० प्रतिशत से अधिक लोगो को जो सपने आते थे उनमे कामात्मक स्वप्न सवसे स्पष्ट थे। ३४ प्रतिशत दशाओ मे मैथुन करने के वाद जल्दी ही स्वप्नदोष हो जाता था। वहुत सी दशाओ मे पूर्वरागकाल मे जव युवक अपनी मगेतर को चूमता और सहलाता रहता था, स्वप्नदोष विशेष रूप से अधिक और वार-वार (यहा तक कि एक रात मे तीन वार) होता था, किन्तु शादी के वाद वन्द हो जाता था। इस वात पर ध्यान नही दिया गया कि विस्तर पर लेटने की स्थिति अथवा मूत्राशय के भरे रहने से कामात्मक स्वप्नो की सख्या पर कोई विशेष प्रभाव पडता है या नही, पर शुक्राशय का परिपूर्ण होना एक प्रधान तत्त्व माना जाता है। वहुत से लोगो (लेवेनफेल्ड आदि ने) यह लिखा है कि लोगो को उन व्यक्तियो के स्वप्न विरले ही आते है जिन्हे वे प्यार करते है। भले ही वे अपनी प्रेमिका का ध्यान करते हुए, उसके सम्वन्ध मे सोचते हुए सो गए हो। इसका कारण यह वतलाया जाता है कि सुप्तावस्था मे प्रवल वासना शान्त हो जाती है और यह निश्चित रूप से सही है। यह भी भली भाति ज्ञात है कि शायद ही कभी हम दिन मे होने वाले दु खो को स्वप्न मे देखते है यद्यपि हम उसके छोटे-छोटे व्योरो को अक्सर देखते रहते है। कई विद्वानो का (स्टैन्ले हाल आदि का) इस वात पर भी ध्यान गया है कि कामात्मक स्वप्न मे न केवल ऐसे व्यक्ति जो जागरितावस्था मे स्वप्न देखने वाले के प्रति विलकुल उदासीन है, वल्कि उनके वहुत ही तुच्छ वैयक्तिक व्योरे अथवा उनसे कल्पित सम्पर्क भी स्वप्नदोष के लिए पर्याप्त होते है।

जागरितावस्था मे कर्ता के यौन स्वभाव के सूचक के रूप मे कामात्मक स्वप्नो का निदानशास्त्र की दृष्टि से क्या मूल्य है, इसपर विविध लेखको (मोल, नैके आदि) ने विचार किया है। जागरितावस्था मे कर्ता जिन लक्षणो से सवसे प्रवल रूप मे प्रभावित होता है उन्ही अवस्थाओ की पुनरावृत्ति होने की प्रवृत्ति रहती है। इसीके साथ इस सामान्य कथन को अधिक विशिष्ट कर देना चाहिए, विशेषत विपरीत स्वप्नो के मामले मे ऐसा करना जरूरी है। अव्वल तो वह युवक जो जागरितावस्था मे स्त्री-शरीर से परिचित नही है, चाहे कितना भी नहीदिमाग क्यो न हो, निद्रित अवस्था मे स्त्री-शरीर को स्वप्न मे भी नही देख सकता। दूसरे स्वप्नो-सम्बन्धी [illegible] के गडवडा जाने और संकुल हो जाने के कारण अक्सर लिंगगत प्रभेद मिट जाता है, चाहे [illegible] विपरीतता कितनी भी निरुद्ध हो। इस प्रकार स्त्री-

कभी ऐसा देखा जाता है कि जो लोग पूर्ण रूप से स्वाभाविक है उन्हे अस्वाभाविक स्वप्न आ सकते है और थोडे से मामलो मे ऐसा हो सकता है कि सही-दिमाग व्यक्तियो के स्वप्न नियमित रूप से अस्वाभाविक हो, यद्यपि इससे ऐसा विश्वास करने का कोई कारण नही है कि उस व्यक्ति मे विच्युति की ओर वास्तविक अथवा प्रच्छन्न प्रवृत्ति हो । कभी-कभी इस वात को ध्यान मे रखना वहुत महत्त्वपूर्ण है।

सामान्यत. कहा जाए तो निद्रावस्था मे पुरुषो और स्त्रियो के आत्ममैथुन की अभिव्यक्तियो मे कुछ अन्तर दिखलाई देते है, जो सम्भवत मनोवैज्ञानिक रूप से अर्थहीन नही है। पुरुषो मे ये लक्षण काफी सरल होते है। प्राय वे यौवनारम्भ के लगभग प्रकट होते है और यौन जीवन मे विविध प्रकार के अन्तरो के साथ जारी रहते है, वशर्ते कि व्यक्ति सयम के साथ रहे । हमेशा तो नही, पर प्राय उस व्यक्ति को ऐसे कामात्मक स्वप्न आते है जो चरमोत्कर्ष तक पहुचते है । उनका आना कुछ हद तक विविध परिस्थितियो शारीरिक, मानसिक अथवा भावनात्मक उत्तेजना, सोने जाने से पहले मदिरापान, विस्तर पर लेटने की स्थिति (जैसे पीठ के बल चित लेटना), मूत्राशय की दशा, कभी-कभी सिर्फ अपरिचित विस्तरे पर सोने मात्र से और एक हद तक प्रकट रूप से मासिक अथवा वार्षिक नियम के अनुसार होता है। कुल मिलाकर यह काफी हद तक निश्चित और नियमित ढग से होता है और जागने पर उसका कोई चिह्न शेष नही रहता। हा, कुछ लोगो को क्लान्ति होती है, और कभी-कभी सिरदर्द होना है । जैसे भी हो, स्त्रियो मे सोते समय आत्ममैथुन के लक्षण बहुत अधिक अविकसित, अनेकरूपयुक्त और विकीर्ण ज्ञात होते है। लडकियों को यौवनारम्भ अथवा किशोरावस्था मे निश्चित रूप से कामात्मक स्वप्न अपवादात्मक क्षेत्र मे ही आते है । जहा ब्रह्मचारी किशोरो के लिए स्खलन का प्रकट होना नियम है (हैमिल्टन ने १२ साल से लेकर १५ साल की अवस्था के वीच के ५१ प्रतिशत लडको मे यह वात पाई थी), वहा ब्रह्मचारिणी लडकियो को स्वप्नदोष होना अपवादात्मक है। जैसा कि प्रारम्भिक यौन अभिव्यक्तियो पर विचार करते समय वतलाया जा चुका है, जब तक स्त्रियो को जागरित अवस्था मे पूर्ण मैथुन का अनुभव न हो जाए—चाहे वह किसी भी परिस्थिति मे क्यो न हो—तव तक उन्हे निद्रावस्था मे पूर्ण मैथुन होना शुरू नही हो सकता। यहा तक कि यौन वासना का दमन करने वाली अतिकामुक स्त्री मे भी (हैमिल्टन के अनुसार ६० प्रतिशत मे) पूर्ण मैथुन अक्सर वहुत कम क्षेत्रो मे होता है या होता ही नही । उन स्त्रियो को जो वास्तविक मैथुन की अभ्यस्त हो जाती है, पूर्ण मैथुन और उसके साथ रहने वाली परितृप्ति से युक्त स्वप्नदोष होता है और

कभी-कभी वास्तविक मैथुन से अनभिज्ञ स्त्रियो मे भी ऐसा हो सकता है । जो भी हो, कुछ स्त्रियां वास्तविक समागम से परिचित होने के बाद भी यह पाती है कि मैथुनिक स्वप्नो के साथ क्षरण-कार्य होने पर भी उन्हे वास्तविक परितृप्ति नही मिलती ।

स्त्रियो के कामात्मक स्वप्नो और वस्तुत उनके सामान्य स्वप्नो मे तथा पुरुषो के स्वप्नो मे जो भेद है, उनके महत्त्वपूर्ण और दिलचस्प लक्षणो मे से एक लक्षण यह है कि उनके जागरित जीवन पर उन स्वप्नो का प्रभाव पडता है, जब कि पुरुष के जीवन पर उसके स्वप्न का कोई प्रभाव नही पडता । यह बात स्वस्थ और सहीदिमाग स्त्रियो मे भी सामान्यत होती है, जो स्वप्न को वास्तविकता के रूप मे लेती है और इसके लिए कसम खाकर यह कह सकती है कि ऐसा वास्तविक रूप से सम्पादित हुआ था । यह एक महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक तथ्य है क्योकि वह कृत्रिम रूप से लाई गई बेहोशी की हालत मे उसपर आक्रमण और बलप्रयोग किया गया—यह झूठा दोष लगा सकती है ।

निद्राकालीन आत्ममैथुनिक लक्षणो की इतनी शक्ति के साथ अभिव्यक्ति मे आने की प्रवृत्ति होती है कि वह जागरित जीवन पर छा जाए और चेतनाकालीन भावो और क्रियाओ को प्रभावित करे, विशेष रूप से मिरगी-ग्रस्त स्त्रियो मे यह बात अधिक पाई जाती है और इसीलिए उसका ऐसी पात्रियो मे ही विशेष अध्ययन किया गया है । जिल्लेस द ला तुरेत, सात द सान्क्तिस आदि ने जागरित जीवन पर स्वप्नो के प्रभाव, विशेषकर मिरगी-ग्रस्त व्यक्तियो पर पडने वाले कामात्मक स्वप्नो के प्रभाव पर बहुत जोर दिया है । निस्सन्देह इस प्रसग मे हमे Incubi और Succubi की धारणाओ का उल्लेख करना चाहिए, जिनका मध्ययुग के प्रेत-शास्त्र मे इतना महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है । मिरगी-पीडितो के ऐसे कामात्मक स्वप्न हमेशा ही, यहा तक कि अक्सर ही आनन्ददायक नही होते । कुछ मामलों में मैथुन का भ्रम तीव्र कष्ट उत्पन्न कर देता है । पुरानी डाइनो ने इसकी पुष्टि की थी और यह अभी तक पाया जाता है । कभी-कभी यह चेतना मे केवल ऐसे किसी दैहिक आवेग के साथ विरोध होने के फलस्वरूप होता है, जो इतना प्रबल होता है कि कर्ता अथवा कर्त्री के भावनात्मक और बौद्धिक घृणा के बावजूद उसपर हावी हो जाता है । इस तरह यह घृणा का एक उग्र रूप है । समस्त यौन शारीरिक अभिव्यक्तियां ऐसे व्यक्ति मे इस घृणा को प्रेरित करती है जो उक्त अभिव्यक्तियो के प्रति ध्यान देने को तैयार नही है । कुछ-कुछ इसी तरह की घृणा और दैहिक कष्ट यौन भावनाओ और सम्बन्धो को उत्तेजित करने के प्रयासो मे उस समय होता है जब प्रतिप्रयोग के कारण वे परिश्रान्त होते है । जो भी हो, यह पूर्णत सम्भव है कि

इस लक्षण मे कोई शरीर-वैज्ञानिक और साथ ही मानसिक तथ्य मौजूद हो। सोलियर ने मिरगी की प्रकृति और उसके उत्पत्ति-सम्बन्धी अपने विशद अध्ययन मे इस बात पर जोर दिया कि मिरगी मे अनुभूतिशीलता की गडबडी का बहुत महत्त्व रहता है। उन्होने यह भी बताया कि कृत्रिम बेहोशी की अवस्था से स्वाभाविक अनुभूतिशीलता की अवस्था मे आते हुए किन-किन निर्दिष्ट लक्षणो को पार करना पडता है। इस प्रकार से उन्होने मिरगी-ग्रस्त व्यक्तियो मे आत्ममैथुनिक उत्तेजना के यान्त्रिक चरित्र का स्पष्टीकरण किया।

इसमे सन्देह नही कि मिरगी के आत्ममैथुनिक लक्षण-सम्बन्धी कष्टकर चरित्र को बढा-चढाकर बतलाने की प्रवृत्ति रही है। वह प्रवृत्ति अपरिहार्य रूप से पहले के उस दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया थी जिसके अनुसार मिरगी यौन भावो की अचेतन अभिव्यक्ति से किञ्चित् ही अधिक थी और इस तरह सावधानी के साथ किसी जाच-पडताल के बिना उसे मनोवैज्ञानिक कहकर खारिज कर दिया जाता था। हम फ्रायड के इस कथन मे सहमत हो सकते है कि मिरगी-ग्रस्त व्यक्तियो की यौन आवश्यकताए उतनी ही वैयक्तिक और विविध होती है जितनी कि स्वस्थ स्त्रियो की, किन्तु वे बहुत हद तक अपने ही सहजातो से नैतिक सघर्ष करने और उन्हे चेतना के पृष्ठभाग मे रखने के प्रयत्नो के कारण अधिक पीडित होती है। बहुत सी मिरगी-ग्रस्त और मानसिक रूप से अस्वस्थ स्त्रियो मे आत्ममैथुनिक लक्षण और सामान्यत यौन लक्षण बहुत ही सुखकर हो सकते है, यद्यपि ऐसी स्त्रिया अक्सर इस अनुभूति के कामात्मक चरित्र के सम्बन्ध मे अज्ञ होती है।

(३) हस्तमैथुन :

पहले ही बाल्यावस्था के कामात्मक लक्षणो पर विचार करते समय हस्तमैथुन की चर्चा की जा चुकी है। सही अर्थ मे हस्तमैथुन का आशय यौन उत्तेजना प्राप्त करने के लिए कर्ता का खुद अपने हाथ की सहायता लेना है। व्यापक अर्थ मे यह सज्ञा आत्म-उत्तेजन के लिए काम मे लाए जाने वाले सभी ढगो के लिए प्रयुक्त की जाती है, और तर्क-विरुद्ध रूप से 'मानसिक हस्तमैथुन' शब्द का प्रयोग भी सम्भव है, जिसमे किसी शारीरिक चेष्टा की सहायता के बगैर उत्तेजना प्राप्त की जाती है। इसी अर्थ मे कभी-कभी ओनानिज्म सज्ञा का भी प्रयोग किया जाता है, किन्तु ऐसा अनुचित रूप से होता है क्योकि ओनान द्वारा प्रयुक्त उपाय किसी भी अर्थ मे हस्त-मैथुन नही था, बल्कि वह स्तम्भित मैथुन मात्र था। हिर्शफेल्ड ने उसे आत्ममैथुन से अलग करने के लिए 'इप्सेगन' शब्द का प्रयोग किया है, जिसमे उनके अनुसार कर्ता परितृप्ति के लिए अपने शरीर को दैहिक वस्तु मानकर उसे कार्य मे लाता है न कि मानसिक वस्तु मानकर।

व्यापक अर्थ मे हस्तमैथुन ससार के समस्त भागो के जानवरो और मनुष्यो मे पाया जाता है । वह इतना अधिक व्यापक है कि हम नितान्त सही अर्थ मे उसे अस्वाभाविक नही कह सकते । यह एक ऐसा लक्षण है जो स्वाभाविकता और अस्वाभाविकता की सीमारेखा पर स्थित है और जब यौन कार्यो के स्वाभाविक प्रयोग पर किसी तरह का नियन्त्रण लग जाता है तो उसके होने की सम्भावना हो जाती है। पालित अथवा पृथक् दशा मे रहने वाले और कभी-कभी जगली दशा मे रहने वाले जानवरो मे, यद्यपि इस अन्तिम दशा मे निरीक्षण मुश्किल है, नर और मादा दोनो मे स्वयस्फूर्त एकाकी उत्तेजना के विविध रूप प्रकट होते हैं। कभी-कभी नर अपने शिश्न को अपने उदर के निम्न भाग से घिसता है और अक्सर यौन अगो को बाह्य पदार्थो से, जैसा कि प्राय मादा करती है, घिसा जाता है।

मनुष्य-जाति मे इसी तरह के लक्षण सभ्य-असभ्य सब दशाओ मे पाए जाते हैं। नि सन्देह वे सभ्यता की परिस्थितियो के अन्तर्गत बहुत विकसित हो जाते हैं। किन्तु यह किसी भी अर्थ मे सच नही है कि (जैसा मान्टेगात्सा का विचार था) हस्तमैथुन यूरोपवासियो की नैतिक विशेषता है । सच तो यह है कि वह प्राय हर एक जाति मे, जिसका हमे घनिष्ठ परिचय है, पाया जाता है, चाहे वह जाति कितनी भी स्वाभाविक दशा मे क्यो न रहे। कुछ जातियो मे अक्सर उसका प्रयोग किया जाता है और स्त्रियो और पुरुषो दोनो मे ही प्रारम्भिक जीवन की एक प्रथा के रूप मे माना जाता है। हम कुछ हद तक निम्न स्तर की सस्कृति वाली जातियो मे हस्त-मैथुन के लिए स्त्रियो द्वारा कृत्रिम उपकरणो, विशेषत कृत्रिम शिश्न का भी प्रयोग पा सकते हैं । उनका प्रयोग आज यूरोप मे भी होता है, यद्यपि सामान्य जनता मे यह प्रचलित नही है।

दूसरी तरफ आधुनिक सभ्य देशो की सामान्य जनता मे आत्ममैथुनिक तृप्ति के लिए रोजमर्रे के जीवन के साधारण पदार्थो और उपकरणो का उपयोग तो क्या, दुरुपयोग किस सीमा तक और कितना विविध हो चुका है, इसका बहुत थोडा सा अन्दाज उन मामलो से लगाया जाता है जो दुर्घटनाओ के फलस्वरूप डाक्टर की आख के सामने आते हैं। इस तरह स्त्रियो द्वारा शाक और फल (विशेषत केला) अक्सर बहुत प्रयोग मे लाए जाते हैं । किन्तु उनसे भयकर परिणामो के होने की सम्भावना कम ही रहती है और इस तरह इन चीजो का उपयोग प्रकट मे नही आता। जो भी हो, पर डाक्टरी चीड-फाड के पश्चात् योनि और मूत्र-नालिका से बहुत सी चीजे समय-समय पर निकाली जाती हैं। इनमे सब से अधिक पाई जाने वाली चीजे ये हैं—पेंसिले, कपडे सीने की [illegible], कपास की रीलें, बालो के पिन, [illegible] की डाट, मोमबत्तिया, साधारण डाटे, गिलास आदि । स्त्रियो की योनि और मूत्र-

नालिका मे पाई जाने वाली बाहरी चीजो की दस मे से नौ चीजे हस्तमैथुन से कारण होती है। जिस उम्र मे वे अक्सर पाई जाती है वह मुख्यत. सत्रह और तीस वर्ष के बीच की उम्र होती है। स्त्रियो की मूत्र-नालिका मे बालो के पिन विशेष रूप से अक्सर पाए जाते है क्योकि सामान्यत मूत्र-नालिका यौन उत्तेजन का एक प्रधान केन्द्र है और जो कुछ उसके भीतर डाला जाता है उसे वह ग्रास कर लेती है। बालो के पिन (जो कि बिस्तर मे स्त्री को सबसे आसानी से उपलब्ध होने वाली चीज है) का आकार इस तरह का होता है कि वह उसमे रह जाता है।

डाक्टर की नजर मे न आने वाली चीजो का एक दूसरा वर्ग भी है, जिन्हे आसानी से यौन अगो के सम्पर्क मे लाया जा सकता है। वस्त्रो के चिथडे, कुर्सिया, टेबिले तथा फर्नीचर की दूसरी चीजे इसी वर्ग मे आती है। यहा पर उस यौन उत्तेजना का भी उल्लेख कर देना चाहिए जो आकस्मिक रूप से या जान-बूझकर अखाडे मे (जैसे कि खम्भ पर चढने) घुडसवारी करने अथवा साइकिले चलाने, पाव से सीने की मशीन चलाने अथवा कसकर बन्द बाधने के फलस्वरूप हो जाती है। यहा इतना और बता देना चाहिए कि व्यायाम अथवा कसकर बाधने की क्रिया स्वय मे यौन उत्तेजना का कारण नही है।

आत्ममैथुन के ऐसे प्रकारो का यह वर्ग जघा-घर्षण वर्ग मे शामिल हो जाता है। जघा-घर्षण मे जाघो के द्वारा यौन प्रदेश पर स्वेच्छापूर्वक दबाव डाला जाता है तथा घिसाई की जाती है। कभी-कभी पुरुष भी इसका प्रयोग करते है और स्त्रियो मे तो वह सामान्यत बहुत पाया जाता है। यहा तक कि वह छोटी-छोटी बच्चियो मे भी पाया जाता है। यह एक व्यापक व्यवहार है और कहा जाता है कि कुछ देशो मे (जैसे स्वीडन मे) स्त्रियों मे हस्तमैथुन का सबसे प्रचलित रूप है।

बाहर उभरने वाले उत्तेजना-केन्द्रों को रगडकर अथवा दूसरे किसी प्रकार से उत्तेजित करके भी, जैसे नितम्ब पर मारकर या चिकोटी काटकर, कुचो और स्तनाग्रो को रगड-रगड़कर, हस्तमैथुन किया जा सकता है। वास्तव मे कुछ गिने-चुने क्षेत्रो मे शरीर का प्राय· प्रत्येक भाग उत्तेजना-केन्द्र हो सकता है और यौन भावनाओ को जगाने के लिए उन्हे काम मे लाया जा सकता है।

आत्ममैथुनिक दशाओ का एक वर्ग और भी है। इसमे जब विचारो को कामात्मक विषयो, यहा तक कि यौन स्पर्शानुभूतिरहित भावनात्मक विषयो की ओर केन्द्रित किया जाता है या जब कर्ता भिन्न लिग के किसी आकर्षक व्यक्ति से मैथुन करने की जान-बूझकर कल्पना (हैमड के शब्दो मे मानसिक मैथुन) करने लगता है तो स्वत. स्फूर्त रूप से कामोद्रेक हो जाता है। ये आत्ममैथुनिक अभिव्यक्तिया कामात्मक दिवास्वप्नो के अन्तर्गत आ जाती है, जिनपर पहले ही विचार किया

जा चुका है। डाक्टर डैविस को मालूम हुआ कि हस्तमैथुन के सब से आम कारणों मे वे पुस्तकें हैं जो यौन विचारो को जागरित करती है। खुले-आम प्यार आदि लेना बहुत छोटा कारण है और नाच तो उससे भी छोटा कारण है।

यदि हम आत्ममैथुनिक व्यवहार के हस्तमैथुनिक वर्ग के सही-सही विस्तार, मात्रा और महत्त्व की छान-बीन करे तो हमे बहुत सी कठिनाइयो का सामना करना पडता है और बहुत मे मतभेद दिखाई पड़ते हैं।

पुरुषो मे हस्तमैथुन के होने के बारे मे विश्वसनीय बहुमत इस पक्ष मे है कि ९० प्रतिशत से भी अधिक पुरुष अपने जीवन मे किसी न किसी उम्र मे हस्तमैथुन करते हैं, यद्यपि बहुत सी दशाए ऐसी होती है जिनमे हस्तमैथुन या तो विरल होता है या लोग बहुत ही थोडे समय के लिए करते हैं। इस प्रकार इग्लैंड के रुबी स्कूल के अनुभवी डाक्टर ड्यूक्स का कहना है कि उन स्कूलो मे, जहा के विद्यार्थी छात्रावास मे ही रहते हैं, समस्त लडको मे से ९० से लेकर ९५ प्रतिशत विद्यार्थी हस्तमैथुन करते हैं। जर्मनी मे जूलियन मार्क्यूज अपने अनुभव से इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि ९२ प्रतिशत पुरुष अपनी किशोरावस्था मे हस्तमैथुन करते हैं। रोलेंडर इस अनुपात को और भी बडा बताते है। अमेरिका मे सियरली ने उच्च कक्षाओ के १२५ छात्रो मे से केवल छह प्रतिशत विद्यार्थी ही ऐसे पाए जिन्होने यह आश्वासन दिया कि उन्होंने अपने जीवन मे हस्तमैथुन कभी नही किया था। ब्राकमान को धर्मशास्त्र के विद्यार्थियो तक मे ५६ प्रतिशत विद्यार्थी ऐसे मिले जिन्होंने बिना पूछे ही यह बतला दिया कि वे हस्तमैथुन करते थे। चेलेनाफ ने लिखा है कि मास्को के विद्यार्थियो में से ६० प्रतिशत ने अपने-आप ही हस्तमैथुन करने की बात स्वीकार कर ली। इस तरह स्वत.स्फूर्त रूप से दी गई जानकारियो से आवश्यक रूप से यह सूचित होता है कि वस्तुत. हस्तमैथुन जितना स्वीकार किया जाता है उससे भी अधिक किया जाता है क्योकि बहुत से व्यक्ति इस कार्य से इतने लज्जित होते हैं कि वे उसे स्वीकार नही करते।

पहले इस प्रश्न पर कि हस्तमैथुन स्त्रियो मे अधिक सामान्य है या पुरुषो मे, अलग-अलग मत थे और प्रमुख अधिकारी विद्वानो मे दोनो ही मतो के समर्थको की सख्या बराबर थी, पर साधारण जनता का यह ख्याल था कि हस्तमैथुन लडको मे लडकियो की अपेक्षा अधिक सामान्य होता है। जो भी हो, अब हमें इस प्रश्न पर निश्चित तथ्यो की रोशनी मे विचार करना चाहिए, जिनका उल्लेख पहले ही यौन आवेग के प्रथम आविर्भाव पर विचार करते समय किया जा चुका है। आत्मकामुकता के किसी रूप-विशेष पर ध्यान केन्द्रित करने की प्रवृत्ति से हस्तमैथुन का यौन विश्लेषण थोडा-बहुत अस्पष्ट हो गया है। यदि हम तथ्यो के सम्बन्ध मे

अधिकारी रूप से कुछ कहना चाहते है तो हमे उनका वैज्ञानिक रूप से वर्गीकरण और विभाजन करना चाहिए। यदि हम अपना ध्यान बहुत छोटे बालक-बालिकाओ तक ही सीमित रखे तो प्रमाणो से ज्ञात होगा कि यह कार्य लडकियो मे अधिक सामान्यत: पाया जाता है। यह नतीजा इस तथ्य से मेल खाता है कि लडकियो मे समय से पूर्व यौवनोद्गम बहुत अधिक होता है और बहुत सी दशाओ मे उसके साथ समय से पूर्व प्रकट होने वाले योन तौर-तरीके भी सम्मिलित रहते है। यौवनोद्गम और तरुणावस्था मे लडको और लडकियो दोनो मे ही कभी-कभी या अक्सर हस्तमैथुन करना सामान्य है। यद्यपि मेरा यह मत है कि वह उतना सामान्य नही है जितना कभी-कभी अनुमान किया जाता है। यह कहना बडा मुश्किल है कि हस्तमैथुन करने वालो की सख्या लडको मे ज्यादा होती है या लडकियो मे, पर यह निष्कर्ष निकालने की प्रवृत्ति होती है कि लडको मे हस्तमैथुन व्यापक रूप से प्रचलित है। यह सच है कि लडको की परम्पराए तथा उनका अधिक सक्रिय जीवन इस प्रवृत्ति पर रोक-थाम करता है, पर लडकियो मे इस तरह के तत्त्वो को रोकने वाले प्रभाव के लिए बहुत थोडा मौका रहता है। साथ ही दूसरी तरफ लडकियो मे लडको की अपेक्षा यौन आवेग और उसके परिणामस्वरूप हस्तमैथुन की प्रवृत्ति देर से और मुश्किल से जागरित होती है। इसमे कम सन्देह रह जाता है कि किशोरावस्था के पश्चात् स्त्रियो मे पुरुषो की अपेक्षा हस्तमैथुन अधिक सामान्य होता है। इस उम्र तक पुरुष स्त्रियो के साथ परितृप्ति पाने का कोई न कोई जरिया निकाल लेते है। स्त्रियो के लिए बडी हद तक यह रास्ता बन्द रहता है। इसके अतिरिक्त स्त्रिया बहुत कम क्षेत्रो मे यौन रूप से समय से पूर्व परिपक्व होती है और अक्सर यह होता है कि उनका यौन आवेग तभी शक्ति और आत्मचेतना प्राप्त करता है जब किशोरावस्था बीत चुकती है। बहुत सी दशाओ मे सक्रिय, बुद्धिमती और स्वस्थ स्त्रिया, जो अन्यथा ब्रह्मचर्य का जीवन बिताती है, कभी-कभी (विशेषत. मासिक धर्म के आसपास) हस्तमैथुन करती है। विशेष रूप से ऐसा वे स्त्रिया करती है जो स्वाभाविक यौन सम्पर्कयुक्त जीवन बिताने के बाद किसी न किसी कारण से इन यौन सम्बन्धो को तोड देने पर विवश होती है और एकान्त जीवन बिताती है। किन्तु हमे यह भी याद रखना चाहिए कि कुछ स्त्रियो मे जन्मजात रूप से यौन अनुभूतिशीलता की कमी रहती है (इसमे सन्देह नही कि किसी न किसी रूप मे ऐसी स्त्री का स्वास्थ्य सामान्य स्वस्थ अवस्था से घटिया दर्जे का होता है) और उनमे कभी यौन सहजात जागरित नही होता। ऐसी स्त्रिया न केवल हस्तमैथुन नही करती बल्कि साथ ही स्वाभाविक परितृप्ति के लिए भी अनिच्छा प्रकट करती है। अन्य स्त्रिया एक बडे अनुपात मे इस आवेग की अन्य साधनो से निष्क्रिय

रूप से परितृप्ति प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार कल्पनाओ के ताते के प्रवाह मे वहकर विना किसी सक्रिय हस्तक्षेप के स्वत स्फूर्त रूप से जो आत्ममैथुन होता है वह निश्चित रूप से पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे अधिक पाया जाता है।

अभी हाल के कुछ वर्षो तक हस्तमैथुन से होने वाले नतीजो के बारे मे व्यापक मतभेद रहा है। कतिपय अधिकारी विद्वानो का विचार रहा है कि हस्तमैथुन के नतीजे उन नतीजो से कोई खास बुरे नही होते जो अतिमैथुन के कारण होते है, पर अधिकाश अधिकारी विद्वान् हस्तमैथुन को चाहे उसकी अति न भी की जाए, पागलपन से लेकर अन्य बहुत सी रोगग्रस्त दशाओ का कारण बतलाते थे। अब अधिक सन्तुलित दृष्टिकोण पाया जाता है। अब सामान्य रूप से विश्वास किया जाता है कि कुछ विशेष दशाओ मे हस्तमैथुन से तरह-तरह के अवाछनीय परिणाम हो सकते है, पर अब यह नही माना जाता कि हस्तमैथुन से (उसकी अति होने पर भी) स्वस्थ और सहीदिमाग व्यक्तियो मे (यह मानते हुए भी कि ऐसे लोग हस्तमैथुन मे अति कर सकते है) वे रोगाग्रस्त दशाए उत्पन्न हो सकती है जिन्हे किसी समय हस्तमैथुन का सामान्य परिणाम समझा जाता था।

इस सम्बन्ध मे मतपरिवर्तन का अधिकाश श्रेय ग्रीसिंगेर को है। उनके कारण पिछली सदी के मध्य मे हमारे सामने हस्तमैथुन के परिणामो के सम्बन्ध मे ज्यादा सन्तुलित और सही दृष्टिकोण पहली बार सामने आया। यद्यपि कुछ हद तक तो वे अपने रूप मे प्रचलित परम्पराओ मे जकडे हुए थे, तो भी ग्रीसिंगेर ने यह देखा कि अकेले हस्तमैथुन मे उतनी हानि नही होती जितनी कि हस्तमैथुन के प्रति पाए जाने वाले सामाजिक रुख के कारण अनुभूतिशील मन को पहुचती है। बात यह है कि इस रुख के कारण लज्जा, पश्चात्ताप, बार-बार सत्कार्य करने का सकल्प और हस्तमैथुन से होने वाली परेशानी उत्पन्न होती है। उन्होने आगे बतलाया कि हस्तमैथुन करने वाले के कोई विशेष लक्षण नही है और उन्होने यह निष्कर्ष निकाला कि हस्तमैथुन कारण के बजाय कारण से उत्पन्न लक्षण ही है। तब से लेकर आज तक सुशिक्षित वर्ग ने ग्रीसिंगेर द्वारा सतर्कता के साथ वर्णित इन परिणामो की पुष्टि की है। इस विख्यात मनोरोग-चिकित्सक का यह ख्याल था कि यदि बहुत बचपन मे ही हस्तमैथुन शुरू कर दिया जाए तो उससे पागलपन हो सकता है। बाल्यावस्थाकालीन मानसिक विकारो की छानबीन करते समय वर्नॉन को मनोविकार का ऐसा एक भी मामला नही मालूम हुआ जिसका कारण हस्तमैथुन रहा हो। पोलेन, [illegible]मान, एमिंगहाउस और मोल भी इस विषय पर अध्ययन करते समय प्राय: इसी निष्कर्ष पर पहुचे। एमिंगहाउस ने इस बात पर जोर दिया कि [illegible] रूप से मानसिक रोगग्रस्त व्यक्ति मे ही हस्तमैथुन के अनुमानित

परिणाम मूर्च्छा अथवा मिरगी के कारण होते है। क्रिश्चियन को अस्पतालो, पागलखानो और शहर तथा देहातो मे निजी तौर पर डाक्टरी करने का बीस साल का अनुभव था, पर इस दीर्घकाल मे भी उन्होने यह नही देखा कि हस्तमैथुन का कोई गम्भीर परिणाम होता है। उनका विचार यह था कि पुरुषो के वजाय स्त्रियो मे इसका परिणाम अधिक गम्भीर हो सकता है। किन्तु येलोतीस का विचार है कि वह सम्भवत पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे कम श्रान्तिकारक और कम हानिकारक होता हे। यही मत हेमड और गुटसीट का भी था, यद्यपि गुटसीट को मालूम हुआ कि पुरुषो की अपेक्षा स्त्रिया हस्तक्रिया को अति तक ले जाती है। नैके ने इस वात पर विशेष ध्यान दिया था, पर उन्हे भी कोई दशा ऐसी नही मिली जिसमे कोई स्त्री हस्तमैथुन के कारण ही पागल हो गई हो। स्त्रियो मे पागलपन का एक निश्चित कारण है। काख भी स्त्री और पुरुष दोनो के ही सम्बन्ध मे इसी निष्कर्ष पर पहुचे, यद्यपि उन्होने यह स्वीकार किया कि हस्तमैथुन कुछ मात्रा मे मानसिक रोग पैदा कर सकता है। जो भी हो, इस विषय मे भी उन्होने स्पष्ट कर दिया है कि यदि किसी अपवादरहित ढग से हस्तमैथुन को साधारण मात्रा मे किया जाए तो वह उतना हानिकारक नही होता जितना कि कुछ लोगों का विश्वास है। साथ ही ऐसे व्यक्ति जिनकी स्नायविक प्रणाली पहले से ही क्षतिग्रस्त हो चुकी है, वड़ी आसानी से और दूसरो की तुलना मे वहुत अधिक हस्तमैथुन करते है। वुराई का मुख्य स्रोत आत्मग्लानि और इस आवेग के साथ होने वाला सघर्ष है। माड्सले, मारो, स्पिट्ज्का और श्युले अभी तक हस्तमैथुनात्मक पागलपन को मान्यता देते हैं, पर क्राफ्ट एविग ने वहुत पहले ही उसे अस्वीकार कर दिया था और नैके ने निश्चित रूप से उसका विरोध किया था। क्रेपलिन ने वतलाया कि खतरनाक मात्रा मे अत्यधिक हस्तमैथुन केवल पूर्वप्रवृत्तियुक्त कर्ताओ में ही बढ़ सकता है। फोरेल, लेवेनफ़ेल्ड और ट्रूसो का भी ऐसा मत था। अब यह कहा जा सकता है कि आधुनिक काल के अधिकारी विद्वान् प्रायः एकमत से हस्तमैथुन को पागलपन का कारण नही मानते।

मनोविकृति और स्नायविक विकृतियो के दूसरे रूपो को पैदा करने मे हस्तमैथुन का कितना हाथ है, उस बारे मे कुशल निरीक्षको के प्रमाण भी समान रूप से निर्णायिक वनते जा रहे है। वहुत साल पहले वेस्ट के जमाने से ही यह मान लिया गया है कि वालको मे मूर्च्छा, अल्पबद्धि, अगविक्षेप, मिरगी आदि का सक्रिय कारण हस्तमैथुन नही है, यद्यपि कुछ लोग यह विश्वास करते आए है कि इस तरह मूर्च्छा और मिरगी को उत्तेजना मिल सकती है। लेडन ने भी मेरुदण्ड की वीमारियो के जो कारण वताए हैं उनमे यौन अति के किसी स्वरूप को शामिल नही किया है।

इस सिलसिले में एर्ब लिखते है कि "हस्तमैथुन मेरुदण्ड के लिए स्वाभाविक मैथुन से खतरनाक नही है। इस बात से कुछ आता-जाता नही है कि पूर्ण परितृप्ति स्वाभाविक मैथुन से हुई या एकान्त मे हुई।" तूलूस, फिर्ब्रिगेर, कुर्शमान और अधिकाश अधिकारी विद्वानो का भी यही मत है।

जो कुछ भी हो, यह कहना कि हस्तमैथुन के परिणाम मैथुन की अपेक्षा अधिक हानिकारक नही होते, शायद हद से बाहर चला जाना है। यदि पूर्ण यौन परितृप्ति प्राप्त करना केवल विशुद्ध रूप से शारीरिक कार्य होता तो यह बात सही होती, पर स्वाभाविक रूप मे पूर्ण यौन परितृप्ति उन प्रबल भावनाओ के समूह से बधी हुई है जो अपने से भिन्न लिंग के व्यक्ति के प्रति जागरित होती है। समागम से मिलने वाले सुख और सन्तोष मे सिर्फ पूर्ण यौन परितृप्ति ही नही बल्कि इन भावो के उतार-चढाव से मिलने वाला आनन्द भी शामिल रहता है। अभीष्ट व्यक्ति के अभाव मे पूर्ण यौन परितृप्ति से चाहे जितनी भी राहत मिले, हस्तमैथुन करने के बाद उससे कर्ता मे असन्तोष, अवसाद, शर्म, ग्लानि यहा तक कि क्लान्ति की भावना पैदा होती है। व्यावहारिक रूप से भी स्वाभाविक मैथुन की अपेक्षा हस्तमैथुन मे अति करने की अधिक सम्भावना है। पर इस बात मे अभी तक सन्देह है कि हस्त-मैथुन करने के लिए स्नायुओ पर अधिक जोर देना पडता है या नही। इसलिए निश्चयपूर्वक यह कहना भी भ्रामक है कि हस्तमैथुन के परिणाम स्वाभाविक मैथुन के परिणाम से अधिक नही होते, पर जैसा कि फोरेल की मान्यता थी, मामूली तौर पर हस्तमैथुन उतनी ही हद तक नुकसानदेह है जितना कि स्वप्नदोष या सुप्ता-वस्था मे अन्य प्रकार का कामोद्रेक।

हस्तमैथुन के अनुमानित गम्भीर लक्षणो और चिह्नो तथा उसके विध्वंसकारी परिणामो का सिहावलोकन करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि स्वस्थ और सत्कुलोत्पन्न व्यक्ति यदि मामूली मात्रा मे हस्तमैथुन करे तो यह आवश्यक नही है कि कोई गम्भीर विध्वंसकारी परिणाम हो। हस्तमैथुन की पहिचान के जो सामान्य चिह्न बतलाए जाते है उनमे से अधिकाश वास्तविक न होकर सिर्फ ऊपर से मढे गए है और हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि उनमे से एक भी ऐसा नही है जिसपर विश्वास किया जा सके।

अन्तिम रूप मे हम इस नतीजे पर पहुच सकते है कि इस बारे मे जो परस्पर-विरुद्ध मत पाए जाते है उनकी इस तथ्य से आसानी से व्याख्या की जा सकती है कि दोनो ही तरफ के लेखको ने वशानुगत या स्वभाव की या तो उपेक्षा की या उसे [illegible] तौर पर स्वीकार किया। उन्होने ठीक वही किया जो मद्यपान के विषय मे लिखने वाले बहुत से [illegible]

शराव पीने के भयकर परिणामो का तो वर्णन करते है, पर वे यह नही वतलाते कि इन दशाओ मे वुराई की जड शराव नही, वरन् वह ढाचा या वनावट है जिस पर शराब क्रियाशील होती है ।

हमे इस तरह पिछली सदी मे हस्तमैथुन से होने वाले भयकर परिणामो के वारे मे व्यापक रूप से पाए जाने वाले मतो को यह कहकर ठुकरा सकते है कि वे अज्ञान और मिथ्या परम्पराओ से उत्पन्न हुए थे और नीम-हकीमो ने उनपर मुलम्मा चढाया था । पर साथ ही हमे यह मानना पडेगा कि स्वरथ अथवा मामूली रूप से स्वस्थ व्यक्तियो मे एकान्त मे आत्म-उत्तेजना की अधिकता ऐसे नतीजे पैदा कर सकती है जो वहुत हलके होते हुए भी हानिकारक हो सकते है । त्वचा, पाचन-क्रिया और रक्तप्रवाह इन सवमे गडवडी हो सकती है । सिरदर्द और वातशूल हो सकता है और जैसा कि साधारण यौन अति मे या नीद मे जल्दी-जल्दी यौन उत्तेजना के होने पर होता है, स्नायविक क्रियाशीलताए सामान्य रूप से घट जाती है । सम्भवत तुलनात्मक रूप से हस्तमैथुन से सम्वन्धित दशाओ मे होने वाले रोगो मे से सवसे महत्त्वपूर्ण अनेक लक्षणो से युक्त स्नायविक रोग न्यूरस्थेनिया है, पर यह रोग भी अक्सर तभी पैदा होता है जब उसके लिए रोगग्रस्त और विकृत अवस्था की जमीन पहले से ही तैयार हो ।

कुछ दशाओ मे यह दिखाई देगा कि अति हस्तमैथुन से विशेषकर तव, जव यौवनारम्भ के पहले ही वह शुरू किया जाता है, स्नायविक मैथुन के प्रति अरुचि साथ ही एक हद तक असमर्थता की भावना पैदा हो जाती है । इससे कभी-कभी अनावश्यक तौर पर यौन उत्तेजनशीलता पैदा हो जाती है जिससे शीघ्र स्खलन और व्यावहारिक नपुसकता आ जाती है । डिकिन्सन का कहना है कि जो स्त्रिया स्थायी रूप से दृढतापूर्वक मैथुनिक रूप से उदासीन बनी रहती है, वे आत्ममैथुनिक होती है । जो भी हो, यह एक अपवाद है, विशेषकर तब, जब कर्ता यौवनारम्भ के पहले हस्तमैथुन नही करता । जब स्त्रिया वचपन से ही हस्तमैथुन करती है तो यदा-कदा इससे यह महत्त्वपूर्ण परिणाम होता है कि वाद के जीवन मे उन्हे स्वाभाविक मैथुन से विरक्ति हो जाती है । इन दशाओ मे कोई वाहरी परेशानी या अस्वाभाविक मानसिक उद्दीपन शारीरिक यन्त्र को इस हद तक प्रभावित करता है कि उसपर किसी ऐसे आवेदन का असर पडने लगता है जिसका सामान्यत अपने से भिन्न लिग के व्यक्ति से प्राप्त होने वाली मुग्धावस्था से कोई सवध नही होता । जो भी हो, यौवनारंभ पर वासना और वास्तविक कामात्मक आनन्द के तकाजो का अनुभव होने लगता है । पर चूकि कर्ता की दैहिक यौन भावनाओ का एक विकृत और अस्वाभाविक दिशा मे रुझान हो चुका है, ये नए और अधिक स्वस्थ यौन सम्पर्क विशुद्ध रूप से आदर्शवादी और भावना-

त्मक ही वन रहते है। उनमे उन प्रवल शारीरिक आवेगो का अभाव रहता है जिनसे ये नए और स्वस्थ यौन सम्पर्क यौवनारम्भ या किशोरावस्था से परिपक्व वयस्क जीवन मे अग्रसर होने के साथ ही साथ सम्बद्ध होते जाते है। इस तरह कुछ ऊंचे दरजे की विदुषी स्त्रिया जव समय से पहले होने वाली यौन परिपक्वावस्था प्राप्त कर लेती है और अति हस्तमैथुन करती है तो वाद को चलकर उनके शारीरिक ऐन्द्रिय आवेगो और आदर्शवादी भावनाओ के वीच खाई पैदा हो जाती है। पर यह भी जरूरी नही है कि सभी दशाओ मे इसका एकमात्र सक्रिय कारण हस्तमैथुन ही हो। जव यौन विपरीतता के विकास का एक कारण वचपन मे हस्तमैथुन करना भी होता है तो वह इस ढग से होता है कि हस्तमैथुन से स्वाभाविक मैथुन के प्रति अरुचि पैदा होने से एक ऐसे आधार के वनने मे सहायता मिलती है जिसपर विपरीतता का आवेग विना किसी विघ्न-वाधा के वढ सकता है। यह समझ लेना महत्त्वपूर्ण है कि हस्तमैथुन के सम्भावित दुष्परिणाम वहुत कम क्षेत्रो मे ही पाए जाते है। इस सम्वन्ध मे डाक्टर कैथराइन डैविस की विस्तृत खोजे वहुत महत्त्वपूर्ण है और उनकी खोजो मे स्त्रियो मे हस्तमैथुन आदि से सम्वन्धित प्रश्नो पर अत्यन्त वहुमूल्य और व्यापक सामग्री है। उन्होने विवाहित जीवन मे सुखी स्त्रियो के समूह की तुलना अविवाहित जीवन मे दु खी स्त्रियो के समूह से की और यह देखा कि इन दोनो ही समूहो मे ऐसी स्त्रियो की सख्या प्राय एक सी है जिन्होने शादी के पहले हस्तमैथुन किया था या यौन समागम को छोडकर अन्य प्रकार की यौन क्रीडाए की थी।

मानसिक दृष्टि से लगातार अति हस्तमैथुन करने का सवसे अधिक और सवसे विशिष्ट परिणाम यह होता है कि उसमे आत्मचेतना तो वहुत वढ जाती है, पर आत्मश्रद्धा मे वृद्धि नही होती, जिससे सन्तुलन कायम नही रह पाता। पुरुष या स्त्री जव अपने से भिन्न लिग के वाछित और वाछनीय व्यक्ति द्वारा चूमी जाती है तो उसे गौरव और वडप्पन का अनुभव होता है, जिसका आत्ममैथुनिक प्रक्रियाओ मे सर्वथा अभाव रहता है। हस्तमैथुन-क्रिया के सम्वन्ध मे प्रचलित सामाजिक रुख के प्रति हस्तमैथुनकर्ता की जागरूकता, साथ ही पकडे जाने के भय के कारणो के अलावा भी ऐसा होना उचित ही है क्योकि ये वाते तो स्वाभाविक मैथुन के सम्वन्ध मे इस तरह की मानसिक स्थिति के वगैर भी हो सकती है। यदि हस्तमैथुनकर्ता को हस्तमैथुन का चस्का लग जाता है तो वह इस तरह आत्मश्रद्धा की कृत्रिम जागरूकता का दिखावा करने के लिए वाध्य हो जाता है और मानसिक औद्धत्य की प्रवृत्ति दिखा सकता है। आत्मपरिष्कार और धार्मिकता, जैसे कि वे पहले थी, [illegible] की प्रवृत्ति के विभिन्न प्रकार का काम करती है। अवश्य इन विशेषताओ के [illegible]।

यह याद रखना चाहिए कि ऐसा पुरुप जो हस्तमैथुन का आदी रहता है, अक्सर झेंपू और एकातप्रिय व्यक्ति होता है। और ऐसे स्वभाव वाले व्यक्ति विशेष तौर पर पहले से ही आत्ममैथुन की सब अभिव्यक्तियो मे अतिशयता की ओर उन्मुख होते है। इन प्रवृत्तियो से जब कर्ता मात खाता रहता है, तब उसके मन मे अलग रहने की प्रवृत्ति और समाज के प्रति भय की भावना बढती है। साथ ही उसके भीतर दूसरो के प्रति सन्देह भी पैदा हो जाता है। नि सन्देह जैसा कि क्रेपलिन का विश्वास था, कुछ उग्र मामलो मे मानसिक शक्ति का ह्रास, बाह्य प्रभावो को ग्रहण करने और उनमे सन्तुलन करने की असमर्थता, स्मरणशक्ति की दुर्बलता, मनोवेगो का निष्प्राण हो जाना अथवा स्नायविक दुर्बलता तक पैदा करने वाला चिड-चिडापन भी हो सकता है।

तरुणावस्था मे बुद्धिमान् तरुण पुरुष और तरुण स्त्रियो, दोनो मे ही आत्म-उत्तेजना की अधिकता, चाहे उससे कोई बडी हानि न हो, कुछ मात्रा मे मानसिक विकृति को प्रोत्साहन देती है और जीवन के झूठे और बधे हुए आदर्शो का विकास करती है। क्रेपलिन ने उल्लेख किया है कि हस्तमैथुनकर्ताओ मे यदा-कदा प्रबल उत्साह पाया जाता है। इसके सिवाय एन्स्टी बहुत पहले ही साहित्य तथा कला के क्षेत्र मे प्रस्तुत अपरिपक्व गलत ढग की कृतियो और हस्तमैथुन के बीच रहने वाले सम्बन्ध पर प्रकाश डाल चुके थे। यहा इतना और कह दिया जाए कि कभी-कभी ऐसे पुरुषो मे भी हस्तमैथुन की अतिशयता पाई गई है जिनकी साहित्यिक और कलात्मक कृतियो को अपरिपक्व और हीन नही ठहराया जा सकता।

जो भी हो, यह हमेशा याद रखना चाहिए कि जहा हस्तमैथुन की प्रक्रिया का नतीजा हानिकारक हो सकता है, वहा स्वाभाविक यौन सबधो के अभाव मे वह प्रक्रिया अक्सर अच्छे परिणाम पैदा कर सकती है। विगत सौ वर्षो के डाक्टरी साहित्य मे ऐसे बहुत से मामले लिपिबद्ध मिलते है जिनमे हस्तमैथुन से मरीज़ो को लाभ पहुचा। और यदि ऐसे मामलो को विशेष रूप से ढूढा जाता तो निश्चित रूप से और अधिक मिलते। हस्तमैथुन मुख्यत. इसलिए किया जाता है कि उससे स्नायविक प्रणाली को शाति मिले। यौवनारम्भ-काल के काफी देर बाद ऐसे व्यक्ति जो हस्त-मैथुन करने के अलावा पवित्र जीवन व्यतीत करते है, शारीरिक और मानसिक शाति पाने के उद्देश्य से ही ऐसा करते है और उनके सबध मे यह कहा जा सकता है कि वे इस उद्देश्य के अलावा कभी भी यह कार्य न करते।

इन विचारो से स्वर्गीय डाक्टर रोबी बहुत प्रभावित हुए और वे अमेरिका मे अपने दीर्घकालीन चिकित्सा-सबधी अनुभव के बल पर इस बात पर जोर देने लगे कि आत्ममैथुनिक कार्यो से कोई वास्तविक हानि नही होती। इस सिलसिले मे वे

सीमा का उल्लघन कर गए। उन्होने सचमुच ही अपनी 'रेशनल सेक्स एथिक्स' और उसके वाद की कितावो मे सिफारिश की कि स्नायविक रोगो मे विशेषत स्त्रियो की चिकित्सा के रूप मे हस्तमैथुन का प्रयोग किया जा सकता है और इन दशाओ मे वह स्वास्थ्य के लिए उतना ही लाभदायक हो सकता है जितना कि स्वाभाविक मैथुन। इस सिद्धात मे वहुत कुछ जोडने या घटाने की आवश्यकता है। इन दशाओ मे जो कुछ कठिनाइया रहती हैं उन्हे देखते हुए अपने उग्र रूप मे यह सिद्धात वहुत ही वचकाना है। इस तरह की सिफारिश ठीक उतनी ही अवाछनीय हो सकती है जितनी कि पुराने जमाने मे दी जाने वाली यह सलाह कि 'वेश्यागमन करो या ब्रह्मचर्य रखो' है। एकात मे वद होकर मिलने वाली आत्मतुष्टि से अतृप्त व्यक्ति की व्यग्र और सक्रिय वासनाओ का परिमार्जन नही भी हो सकता। चिकित्सक का रुख हमेशा सहानुभूतिपूर्ण और उदार होना चाहिए, किन्तु यह फैसला तो मरीज ही कर सकता है कि कौन सी कार्य-प्रणाली उसके स्वभाव और परिस्थितियो के सवसे अनुकूल है।

इस प्रकार रोवी के रुख की अपेक्षा वोल्वार्स्ट का रुख अधिक तर्कसगत है, जो यह मानते हुए भी कि हस्तमैथुन को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए, सोचते है कि ऐसी कोई सीमा आ सकती है जव आवेग का निग्रह नही करना चाहिए। इस सिलसिले मे वे एक चीनी कहावत को उद्धृत करते है कि "दिमाग मे गडवडी पैदा करने की अपेक्षा शरीर को तृप्त कर देना कही अच्छा है।" जव कर्ता हस्तमैथुन करने की वात को स्वीकार करता है और उसे आत्मग्लानि होती है तव हमे विशेष तौर से हस्तमैथुन की कडी निन्दा करने से वचना चाहिए। साथ ही वे सही तौर पर इतना और जोड देते है कि उन 'नैतिकतावादियो' की तारीफ नही की जा सकती जो एक काल्पनिक सद्गुण को सुरक्षित रखने के तरीके के रूप मे हस्तमैथुन का अनुमोदन करते है। यौन प्रेम के प्रति स्वाभाविक आवेग की चाह और उस आवेग से पैदा होने वाली स्वाभाविक इच्छाओ का साहसपूर्वक सामना करने मे अधिक वास्तविक गुण है।

हमे यह स्वीकार करना होगा कि हमारा प्रयोजन एक ऐसी अभिव्यक्ति से है जो आत्ममैथुनिक लक्षणो के व्यापक समूह से सम्बन्धित है और किसी न किसी रूप मे ऐसी अभिव्यक्तिया अपरिहार्य होती है। हमारे लिए सबसे बुद्धिमत्त [illegible] यही है कि हम यह मान ले कि सभ्यता के लिए निश्चय शाश्वत रूप से [illegible] है और इन परिस्थितियो मे यौन अभिव्यक्तियो का विभिन्न रूपो मे [illegible] होना अपरिहार्य है। [illegible] हस्तमैथुन के प्रति [illegible] [illegible]

आतक का रूप भी नही अपनाना चाहिए क्योकि हमारे भय और आतक से तथ्यो पर परदा पड जाता है और वे दृष्टि से ओझल तो हो ही जाते हैं, साथ मे उससे कृत्रिम बुराइया भी पैदा हो जाती हैं, जो मूल बुराई से कही वडी है।

(४) नार्किससवाद या आत्मप्रेमवाद :

इस दशा को हम आत्ममैथुन का चरम और सर्वोच्च विकसित रूप मान सकते है। यह एक ऐसी धारणा है जिसे यौन शास्त्र के विविध मनोवैज्ञानिको के हाथों अलग-अलग रूपरेखा मिली है। और इसलिए उसके इतिहास के सम्वन्ध मे संक्षेप मे थोडी-वहुत जानकारी दे देना वाञ्छनीय है। आज से चालीस साल पहले विज्ञान मे उसका कोई निश्चित अस्तित्व नही था, यद्यपि वहुत पहले से उसके चिह्न कथा-साहित्य और कविता मे ढूढे जा सकते थे और उसकी केन्द्रीय स्थिति का प्रतीक नार्किसस प्राचीन समय से ही यूनानी साहित्य मे मौजूद था। अवश्य मनोरोग-चिकित्सको ने यदा-कदा ऐसी दशा को व्यक्तिगत मामलो मे परिलक्षित किया था। मैने इस दशा का सकेत सन् १८९८ मे किया था। उस साल मैंने मनो-रोग-चिकित्सको और स्नायविक रोग-चिकित्सको की पत्रिका 'अलियनिस्ट ऐंड न्युरोलाजिस्ट' मे आत्ममैथुन की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए एक निवन्ध लिखा था। इस निवन्ध के अन्त मे मैने आत्ममैथुन के अत्यन्त उग्र रूप के तौर पर नार्किसस सदृश एक प्रवृत्ति का उल्लेख किया था, जो विशेषत. स्त्रियो मे अक्सर पाई जाती है, साथ ही एक दशा का भी विवरण दिया था। इस दशा मे यौन भावनाए आत्मप्रशसा मे निमज्जित हो जाती है और अवसर पूरी तरह लुप्त हो जाती है। उस लेख के प्रकाशित होते ही डाक्टर नैके ने मेरे द्वारा लिखित 'नार्किसस सदृश प्रवृत्ति' का जर्मनी मे 'नार्किससवाद' नाम से अनुवाद किया और मेरे निवन्ध को सार रूप मे प्रकाशित करवाया। डा० नैके ने मेरे इन विचारो के साथ मतैक्य प्रकट किया और नार्कि-ससवाद को मेरे द्वारा प्रयुक्त 'आत्ममैथुनिक' शब्द का सबसे प्राचीन और शास्त्रीय रूप बतलाया। उन्होने इतना और जोड़ दिया कि नार्किससवाद की दशा मे पूर्ण यौन परितृप्ति भी हो सकती है। मैने न तो यह लिखा था और न तो इसे स्वीकार किया ही जा सकता है। रोलेडर ने इस दशा के कुछ स्पष्ट मामलो को पुरुषो मे देखा और उन्होने उसे आत्मैककामत्व का नाम दिया। हिर्शफेल्ड ने भी इसी शब्द का प्रयोग किया है। इसके बाद सन् १९१० मे फ्रायड ने नैके से नार्कि-ससवाद के नाम और धारणा को ग्रहण किया। पर उन्होने नार्किससवाद को सिर्फ इतना ही माना कि वह पुरुषो मे होने वाली यौन विपरीतता का एक सोपान मात्र है और उसमे अनुमानत. कर्ता अपने-आपको किसी स्त्री के (साधारणत अपनी मा के) साथ एकाकार कर देता है और इस प्रकार आत्मप्रेम अपना लेता है।

सन् १९११ में आटो रैंक ने उसे मेरे द्वारा प्रतिपादित विचारो से शुरू किया, पर फ्रायड के तरीके पर उसे विकसित किया और यह दिखलाने की चेष्टा की कि वह न केवल स्वाभाविक प्रकारान्तर के दायरे के अन्तर्गत है, (जैसा कि मैंने वतलाया था) वल्कि यौन विकास की एक वहुत साधारण अवस्था है । स्पष्ट है कि रैंक के अध्ययन से फ्रायड प्रभावित हुए और सन् १९१४ मे उन्होने रैंक के मत को स्वीकार कर लिया और उसपर जोर दिया। फ्रायड ने निश्चयपूर्वक यह कहा कि प्रत्येक व्यक्ति मे नार्किससवाद का प्राथमिक रूप मौजूद रहता है। वात यह है कि जिजीविपा के तत्त्व मे आत्मरक्षा के सहजात का अहम् एक पूरक के रूप मे मौजूद रहता है और इससे कभी-कभी प्रेम-पात्रो के चुनाव करने का कार्य पूर्ण रूप से प्रभावित होता है। ऐसी स्थिति मे जव कोई व्यक्ति प्रेम करता है तो उसके सामने ये अलग-अलग विकल्प प्रेमपात्र के रूप मे आते है—(क) वह स्वय, (ख) उसका भूतकालीन रूप, (ग) उसका आदर्श 'स्व', (घ) ऐसा व्यक्ति जो उसके 'स्व' का भूतकालीन भाग था। यही वह विन्दु है जिसपर नार्किससवाद की धारणा साधारण प्रयोग के लिए सवसे अधिक उपयुक्त वनी रहती है।

फ्रायड ने स्वय कई वातो मे अपने मत मे सशोधन किए और कुछ वातो को व्यापक वनाया, पर उनके अनुयायी अथवा अन्य मतो के वहुत से विश्लेपक इस धारणा को उसके चरमविन्दु तक घसीट ले गए और वे धर्म तथा तत्त्व-दर्शनो को नार्किससवाद की अभिव्यक्ति समझते है । अन्तिम रूप से फेरेन्त्सी ने यह सुझाव दिया है कि विकास की प्रतिक्रिया के दौरान मे प्रकृति स्वय नार्किससवादी उद्देश्यो से परिचालित होती है। असभ्य जातियो मे और लोककथाओ मे जैसा कि रोहीम ने दिखाया है, नार्किससवाद के समर्थन मे प्रमाण उपलब्ध हुए है। इस वारे मे सव से पहले रैंक ने ही वताया था कि सर जेम्स फरेजर के ग्रन्थो मे मनोविज्ञान के लिए वहुत उपयोगी सामग्री मिल सकती है।

सहायक पुस्तक-सूची

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex Vol I, 'Auto erotism'

जी० ई० पार्ट्रिज—'Reverie' Pedagogical Seminary April, 1898

थियोडेट स्मिथ—The Psychology of Day-Dreams', American Journal of Psychology, Oct , 1904

हैवलाक एलिस—The World of Dreams

एस० फ्रायड—Introductory Lectures on Psycho-Analysis

डब्ल्यू मैक्डोगाल—Outline of Abnormal Psychology

जे० वेरनउंक—The Psychology of Day Dreams

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex, Vol VII, 'The History of Florric'

हैवलाक एलिस—'Auto-crotism' and 'The Phenomena of Sexual Periodicity' in Studies in the Psychology of Sex Vol. I, and 'The Synthesis of Dreams' in Vol VII, also The World of Dreams.

स्टैन्ले हाल—Adolescence

एस० फ्रायड—The Interpretation of Dreams

हैवलाक एलिस—'Auto-crotism' in Studies in the Psychology of Sex, Vol. I

ए० मोल—The Sexual Life of the Child

स्टैन्ले हाल—Adolescence

फ्रायड—Three Contributions to Sexual Theory

कैथराइन डैविस—Factors in the Sex Life of Twenty-two Hundred Women

जी० वी० हैमिल्टन—A Research in Marriage.

नार्थकोट—Christianity and Sex Problems.

वोलबार्स्ट—Children of Adam

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex Vols. I and VII

एस० फ्रायड—Three Contributions to Sexual Theory, and Collected Papers Vol. IV.

जे० हार्निक—'The Developments of Narcissism in Man and Woman,' Int. jour. Psycho-analysis Jan, 1924

यौन-विषय-सम्बन्धी शिक्षा

जब हम शैशव और बाल्यावस्था मे होने वाली अभिव्यक्ति का सर्वेक्षण करते है तो हम देखते है कि जहा तक काम का सम्बन्ध है, कभी-कभी ऊपरी तौर पर इन अभिव्यक्तियो का असर नही रहता। जब कभी वे मौजूद भी रहती है तब अक्सर

वे अस्पष्ट रहती है और जब ये अभिव्यक्तिया निश्चित रूप से मौजूद भी रहती है तो उसी ढग से उनकी व्याख्या नही की जा सकती जैसे वयस्क व्यक्तियो मे प्राप्त इन अभिव्यक्तियो की व्याख्या की जा सकती है।

नतीजा यह हुआ कि यदि हम ऐसे लोगो को एक तरफ छोड दे जो किसी समय शिशुओ के मस्तिष्क मे किसी यौन-सम्बन्धी बात के होने के सुझाव से ही डर जाते थे और अब जिन लोगो की सख्या दिन-ब-दिन घटती जा रही है, तो भी शैशव और बाल्यावस्था मे काम के प्रश्न को लेकर अच्छे निरीक्षको मे भी अलग-अलग दृष्टिकोण और अलग-अलग नीतिया रही है। ऐसे भी व्यक्ति है जो स्वस्थ और सहीदिमाग बालको मे किसी तरह की वास्तविक यौन अभिव्यक्ति को स्वीकार नही कर पाते। कुछ लोग ऐसे भी है जो यह मानते है कि ये अभिव्यक्तिया सहीदिमाग और विकृत-मस्तिष्क दोनो मे ही समान रूप मे हमेशा ही पाई जाती है, यद्यपि वे यह भी पाते है कि इन अभिव्यक्तियो मे प्रकारान्तर और परिवर्तन होते रहते है। कुछ ऐसे भी लोग है जो यौन लक्षणो के तत्त्व को स्वीकार तो करते है, पर बाल्यावस्था मे उनका होना स्वस्थ नही मानते। चाहे कोई भी परिस्थिति हो, डा० रैक का परिपक्व मत यही है। वे अपनी पुस्तक 'आधुनिक शिक्षा' मे लिखते है—"कामवासना बालक के लिए स्वाभाविक नही है। इसके बजाय कामवासना को व्यक्ति का स्वाभाविक शत्रु माना जा सकता है, जिसके विरुद्ध व्यक्ति शुरू से ही अपनी रक्षा करता है।" चाहे हमे इस बात को बाल्यावस्था तक पीछे ले जाने के अधिकार हो या न हो, रैक के इस मत का सस्कृति के सम्बन्ध मे प्रचलित आम रूप से, यहा तक कि आदिम सस्कृति मे अपनाए हुए रूप से, ताल-मेल बैठ जाता है। अतएव बच्चे के काम-भाव के प्रति सबसे उचित रुख तो यही है कि उसके ऊपर आरोग्य-शास्त्र की दृष्टि से सिर्फ आख रखी जाए और कभी जबरदस्ती न की जाए। बच्चो के कामात्मक आवेग अक्सर अचेतन होते है और उन्हे सज्ञान बनाने से या उनके ऊपर ध्यान केन्द्रित करने से कोई भी लाभ नही होता। पर यह भी जरूरी है कि बच्चे को स्वय अपने को अथवा दूसरो को प्रकट हानि पहुचाने से बचाया जाए। कुछ दशाओ मे यह भी वाञ्छनीय मालूम होता है कि माताओ को यह चेतावनी दे दी जाए कि वे ऐसी अभिव्यक्तिया प्रकट करने वाले बच्चो को सजा देने के मौके की तलाश मे न रहे और न तो अपने बच्चे के शरीर को [illegible] कि दूसरे [illegible] प्रभावित होने वाले बच्चो मे स्नायविक रूप से भावनाओ का सचार हो। इन सब के अतिरिक्त यह जरूरी है कि बच्चे के स्वभाव को अच्छी तरह समझा जाए। अक्सर लोगो की यह प्रवृत्ति होती है कि अपनी भावनाओ को बच्चो के ऊपर मढ देते है। बच्चो के [illegible] [illegible] लोगो की दृष्टि मे कामपूर्ण उद्देश्य को प्रकट करते दिखाई दे सकते है,

डब्ल्यू मैक्डोगाल—Outline of Abnormal Psychology

जे० वेरनडंक—The Psychology of Day Dreams

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex, Vol VII, 'The History of Florrie'

हैवलाक एलिस—'Auto-erotism' and 'The Phenomena of Sexual Periodicity' in Studies in the Psychology of Sex Vol I, and 'The Synthesis of Dreams' in Vol VII, also The World of Dreams.

स्टैन्ले हाल—Adolescence

एस० फ्रायड—The Interpretation of Dreams

हैवलाक एलिस—'Auto-erotism' in Studies in the Psychology of Sex, Vol. I

ए० मोल—The Sexual Life of the Child

स्टैन्ले हाल—Adolescence

फ्रायड—Three Contributions to Sexual Theory

कैथराइन डैविस—Factors in the Sex Life of Twenty-two Hundred Women

जी० वी० हैमिल्टन—A Research in Marriage.

नार्थकोट—Christianity and Sex Problems.

वोलबार्स्ट—Children of Adam.

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex. Vols. I and VII.

एस० फ्रायड—Three Contributions to Sexual Theory, and Collected Papers. Vol. IV.

जे० हार्निक—'The Developments of Narcissism in Man and Woman,' Int jour. Psycho-analysis. Jan, 1924

यौन-विषय-सम्बन्धी शिक्षा

जब हम शैशव और बाल्यावस्था मे होने वाली अभिव्यक्ति का सर्वेक्षण करते है तो हम देखते है कि जहा तक काम का सम्बन्ध है, कभी-कभी ऊपरी तौर पर इन अभिव्यक्तियो का असर नही रहता। जब कभी वे मौजूद भी रहती है तब अक्सर

पर अक्सर ऐसे कार्यो का कोई भी यौन उद्देश्य नही होता और वे अक्सर क्रीडात्मक आवेग या जिज्ञासा के कारण होते हैं। इसमे सन्देह नही कि पिछले कुछ सालो से उक्त मिथ्या तर्क को मनोविश्लेपण के असावधान अनुयायियो ने प्रश्रय दिया है।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि वाल्यावस्था पर अध्ययन करने वाले विद्वान् ऐसे व्यक्ति रहे हैं जिन्होने अपनी जानकारी विकृतमस्तिष्क कर्ताग्रो के अध्ययन से प्राप्त की है। आटो रैंक अपनी पुस्तक 'आधुनिक शिक्षा' मे लिखते हैं—"आजकल के स्नायविक रोगग्रस्त वर्ग के अध्ययन से निकाले गए सामान्य निष्कर्षो को वडी साव-धानी के साथ ग्रहण करना चाहिए क्योकि अध्ययन के पात्रो से भिन्न परिस्थितियो मे मनुष्य की प्रतिक्रिया अलग प्रकार की होती है।" वे आगे कहते है कि आजकल के वालक की तुलना आदिम मनुष्य से नही की जा सकती और शायद सवसे अच्छा यही हो कि शिक्षा वहुत ज्यादा नपी-तुली और एक दिशा मे निर्दिष्ट न हो।

अब श्रेष्ठ अधिकारी विद्वानो का यह मत है कि जहा तक यौन शिक्षा के मूल तत्त्वो का सम्वन्ध है, वच्चो का पथ-प्रदर्शन वहुत कम उम्र मे ही शुरू हो जाना चाहिए और वास्तविक रूप से इस कर्तव्य को पूरा करने के लिए एक वुद्धिमती और उदार माता वहुत उपयुक्त है। यहा यह वता दिया जाए कि सही तरीके से केवल मा ही इस काम को कर सकती है और वच्चो की स्वस्थ और हितकर परि-णति के लिए एक जरूरी शर्त यह है कि माताओ को इस वारे मे उचित प्रशिक्षण मिले। कभी-कभी यह कहा जाता है कि इससे वच्चो का दिमाग कृत्रिम रूप से यौन विषयो पर केन्द्रित हो जाने का खतरा है, दूसरी तरफ यह खतरा है कि वे तथ्यो के विषय मे विलकुल बुद्धू बने रह जाए। जो भी हो, वच्चे के दिमाग के स्वाभाविक कार्यकलाप को याद रखना वहुत महत्त्वपूर्ण है। वच्चे की यह जानने की इच्छा कि शिशु कहा से आता है, यौन सज्ञानता का लक्षण नही है। वह तो एक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक तथ्य को खोज निकालने की इच्छा है। इसके वाद थोडा आगे चलकर वच्चे की यह जानने की इच्छा भी कि अपने से भिन्न लिंग के व्यक्तियों के शरीर की वनावट कैसी होती है, उतनी ही निर्दोष और स्वाभाविक है। वल्कि उनकी जवरदस्ती वच्चों में अस्वस्थ यौन सज्ञानता इन जिज्ञासाओं को शान्त कर देने से नही, वरन् उनका तर्कहीन रूप से जवरदस्ती दमन करने के कारण होती है। तव वच्चा चोरी से इन रहस्यों का उद्घाटन करने मे अपना ध्यान लगाता है क्योकि खुलकर प्रयत्न करने पर उसे झिडकिया खानी पडती है।

माता द्वारा वच्चे को दी जाने वाली यौन जानकारी के वारे मे कोई भी औप-चारिक अथवा विशेष वात नही होनी चाहिए। जव माता और वच्चे के वीच

स्वाभाविक और घनिष्ठ सम्बन्ध है तो प्रत्येक कार्य पर समय-समय पर विचार होता ही रहता है। जब कोई प्रश्न सामने आएगा तो एक समझदार माता उसका उत्तर देगी, यद्यपि ऐसा करते समय वह अवसर को देखकर उसके अनुकूल बच्चे को इतनी ही जानकारी देगी कि उससे बच्चे की केवल सामयिक जिज्ञासा ही शान्त हो जाए। इससे अधिक वह बच्चे को कुछ न बतलाएगी। यौन विषय और मलमूत्र-निष्कासन को अन्य बातों की तरह बिना किसी अरुचि और घृणा के साथ बतलाना चाहिए। नौकर और धाइयाँ अक्सर न केवल यौन विषय को गर्हित भावना के साथ बतलाती हैं, वरन् वे मलमूत्र-निष्कासन आदि को भी घृणा के साथ नाक-भौं सिकोडकर बतलाती हैं। कोई भी हितैषी माता अपने बच्चे के मलमूत्र-त्याग के प्रति किसी प्रकार की घृणा का अनुभव नहीं करती, और यह रुख महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यौन अवयव और मलमूत्र त्याग करने के अवयव ऊपर से इतने सयुक्त हैं कि उनमें से किसी एक के प्रति घृणापूर्ण रुख दूसरे को भी अपनी लपेट में ले सकता है। कभी-कभी यह कहा जाता है कि सिखाने योग्य सही रुख यही है कि दोनों प्रकार के अंग न तो समान रूप से 'घृणित' हैं और न 'पवित्र' ही। किन्तु किसी न किसी तरह उसको जल्दी ही स्पष्ट कर देना चाहिए कि जहाँ दोनों प्रकार के अंग स्वाभाविक हैं और उनमें से कोई भी घृणित नहीं है, वहाँ उनकी अन्तिम सार्थकता में भारी अन्तर है और सेक्स के परिणाम व्यक्ति के लिए इतने दुःखपूर्ण और जाति के लिए इतने भाग्य-निर्णायक हो सकते हैं कि यदि हम सेक्स के लिए 'पवित्र' शब्द को अस्वीकार कर दें तो हमें कोई ऐसा शब्द खोजना होगा जो उसके बराबर ही प्रभावशाली हो।

प्रारम्भिक यौन शिक्षा का बाद के जीवन में क्या महत्त्व है, यह डा० कैथराइन डेविस द्वारा विवाहित स्त्रियों के बीच की गई व्यापक जाँच से अच्छी तरह दिखलाया गया है। इस जाँच के फलस्वरूप जो स्त्रियाँ अपना-अपना विवाहित जीवन सुखी मानती हैं उनको एक वर्ग में और जो स्त्रियाँ अपने विवाहित जीवन को दुखी समझती हैं उनको एक दूसरे वर्ग में रखने पर यह पाया गया कि सुखी वर्ग की ५७ प्रतिशत स्त्रियों को प्रारम्भिक जीवन में सेक्स की कुछ सामान्य शिक्षा मिल चुकी थी, किन्तु दुखी वर्ग में सिर्फ ४४ प्रतिशत को ही यह शिक्षा मिली थी। डा० जी० वी० हैमिल्टन के निष्कर्ष, जो इससे बहुत कम सामग्री पर आधारित हैं, पूर्ण-रूप से पूर्वोक्त निष्कर्षों से मेल नहीं खाते, किन्तु उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण तथ्य खोज निकाला कि माँ ही लड़कियों के लिए प्रारम्भिक यौन शिक्षा देने का श्रेष्ठ साधन है। ऐसी शिक्षा पाने वाली विवाहिता स्त्रियों का ६५ प्रतिशत [illegible] [illegible] के यौन सम्बन्ध 'उपयुक्त' थे, किन्तु [illegible] वर्ग में यह प्रतिशत ३४ [illegible]

पर अक्सर ऐसे कार्यो का कोई भी यौन उद्देश्य नही होता और वे अक्सर क्रीडात्मक आवेग या जिज्ञासा के कारण होते है। इसमे सन्देह नही कि पिछले कुछ सालो से उक्त मिथ्या तर्क को मनोविश्लेपण के असावधान अनुयायियो ने प्रश्रय दिया है।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि वाल्यावस्था पर अध्ययन करने वाले विद्वान् ऐसे व्यक्ति रहे है जिन्होने अपनी जानकारी विकृतमस्तिष्क कर्ताओ के अध्ययन से प्राप्त की है। आटो रैंक अपनी पुस्तक 'आधुनिक शिक्षा' मे लिखते है—"आजकल के स्नायविक रोगग्रस्त वर्ग के अध्ययन से निकाले गए सामान्य निष्कर्पो को वडी साव-धानी के साथ ग्रहण करना चाहिए क्योकि अध्ययन के पात्रो से भिन्न परिस्थितियो मे मनुष्य की प्रतिक्रिया अलग प्रकार की होती है।" वे आगे कहते है कि आजकल के वालक की तुलना आदिम मनुष्य से नही की जा सकती और शायद सबसे अच्छा यही हो कि शिक्षा वहुत ज्यादा नपी-तुली और एक दिशा मे निर्दिष्ट न हो।

अब श्रेष्ठ अधिकारी विद्वानो का यह मत है कि जहा तक यौन शिक्षा के मूल तत्त्वो का सम्वन्ध है, वच्चो का पथ-प्रदर्शन वहुत कम उम्र मे ही शुरू हो जाना चाहिए और वास्तविक रूप से इस कर्तव्य को पूरा करने के लिए एक वुद्धिमती और उदार माता वहुत उपयुक्त है। यहा यह वता दिया जाए कि सही तरीके से केवल मा ही इस काम को कर सकती है और वच्चों की स्वस्थ और हितकर परि-णति के लिए एक जरूरी शर्त यह है कि माताओ को इस वारे मे उचित प्रशिक्षण मिले। कभी-कभी यह कहा जाता है कि इससे वच्चो का दिमाग कृत्रिम रूप से यौन विषयो पर केन्द्रित हो जाने का खतरा है, दूसरी तरफ यह खतरा है कि वे तथ्यो के विषय मे विलकुल वुद्धू वने रह जाए। जो भी हो, वच्चे के दिमाग के स्वाभाविक कार्यकलाप को याद रखना वहुत महत्त्वपूर्ण है। वच्चे की यह जानने की इच्छा कि शिशु कहा से आता है, यौन सज्ञानता का लक्षण नही है। वह तो एक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक तथ्य को खोज निकालने की इच्छा है। इसके वाद थोडा आगे चलकर वच्चे की यह जानने की इच्छा भी कि अपने से भिन्न लिंग के व्यक्तियों के शरीर की वनावट कैसी होती है, उतनी ही निर्दोष और स्वाभाविक है। वल्कि उनकी जवरदस्ती वच्चों मे अस्वस्थ यौन सज्ञानता इन जिज्ञासाओ को शान्त कर देने से नही, वरन् उनका तर्कहीन रूप से जवरदस्ती दमन करने के कारण होती है। तव वच्चा चोरी से इन रहस्यों का उद्घाटन करने मे अपना ध्यान लगाता है क्योकि खुलकर प्रयत्न करने पर उसे झिडकिया खानी पडती है।

माता द्वारा वच्चे को दी जाने वाली यौन जानकारी के वारे मे कोई भी औप-चारिक अथवा विशेष वात नही होनी चाहिए। जव माता और वच्चे के वीच

स्वाभाविक और घनिष्ठ सम्बन्ध है तो प्रत्येक कार्य पर समय-समय पर विचार होता ही रहता है। जब कोई प्रश्न सामने आएगा तो एक समझदार माता उसका उत्तर देगी, यद्यपि ऐसा करते समय वह अवसर को देखकर उसके अनुकूल बच्चे को इतनी ही जानकारी देगी कि उससे बच्चे की केवल सामयिक जिज्ञासा ही शान्त हो जाए। इससे अधिक वह बच्चे को कुछ न बतलाएगी। यौन विषय और मलमूत्र-निष्कासन को अन्य बातो की तरह बिना किसी अरुचि और घृणा के साथ बतलाना चाहिए। नौकर और धाइया अक्सर न केवल यौन विषय को गर्हित भावना के साथ बतलाती हैं, वरन् वे मलमूत्र-निष्कासन आदि को भी घृणा के साथ नाक-भौ सिकोडकर बतलाती हैं। कोई भी हितैषी माता अपने बच्चे के मलमूत्र-त्याग के प्रति किसी प्रकार की घृणा का अनुभव नही करती, और यह रुख महत्त्वपूर्ण है क्योकि यौन अवयव और मलमूत्र त्याग करने के अवयव ऊपर से इतने सयुक्त हैं कि उनमे से किसी एक के प्रति घृणापूर्ण रुख दूसरे को भी अपनी लपेट मे ले सकता है। कभी-कभी यह कहा जाता है कि सिखाने योग्य सही रुख यही है कि दोनो प्रकार के अंग न तो समान रूप से 'घृणित' है और न 'पवित्र' ही। किन्तु किसी न किसी तरह इसको जल्दी ही स्पष्ट कर देना चाहिए कि जहा दोनो प्रकार के अग स्वाभाविक है और उनमे से कोई भी घृणित नही है, वहा उनकी अन्तिम सार्थकता मे भारी अन्तर है और सेक्स के परिणाम व्यक्ति के लिए इतने दुखपूर्ण और जाति के लिए इतने भाग्य-निर्णायक हो सकते है कि यदि हम सेक्स के लिए 'पवित्र' शब्द को अस्वीकार कर दे तो हमे कोई ऐसा शब्द खोजना होगा जो उसके बराबर ही प्रभावशाली हो।

प्रारम्भिक यौन शिक्षा का बाद के जीवन मे क्या महत्त्व है, यह डा० कैथराइन डैविस द्वारा विवाहित स्त्रियो के बीच की गई व्यापक जाच मे अच्छी तरह दिखलाया गया है। इस जाच के फलस्वरूप जो स्त्रिया अपना-अपना विवाहित जीवन सुखी मानती है उनको एक वर्ग मे और जो स्त्रियां अपने विवाहित जीवन को दुखी समझती हैं उनको एक दूसरे वर्ग में रखने पर यह पाया गया कि सुखी वर्ग की ५७ प्रतिशत स्त्रियों को प्रारम्भिक जीवन में सेक्स की कुछ सामान्य शिक्षा मिल चुकी थी, किन्तु दुखी वर्ग में सिर्फ ४४ प्रतिशत को ही यह शिक्षा मिली थी। डा० जी० वी० हैमिल्टन के निष्कर्ष, जो इससे बहुत कम सामग्री पर आधारित है, पूर्ण-रूप से पूर्वोक्त निष्कर्षो से मेल नही खाते, किन्तु उन्होने यह महत्त्वपूर्ण तथ्य खोज निकाला कि मा ही लड़कियो के लिए प्रारम्भिक यौन शिक्षा देने का श्रेष्ठ साधन है। ऐसी शिक्षा पाने वाली विवाहिता स्त्रियो का ६५ प्रतिशत ऐसे वर्ग मे था जिनके यौन सम्बन्ध 'उपयुक्त' थे, किन्तु अनुपयुक्त वर्ग मे यह प्रतिशत ३५ से

भी कम था। जब प्रारम्भिक शिक्षा हमउम्र साथियो अथवा अश्लील बातचीत के जरिए से मिली तो 'उपयुक्त' वर्ग का प्रतिशत गिरकर ५४ रह गया और पिता और भाइयो से शिक्षा पाने वाले वर्ग की स्त्रियो का विवाहित जीवन असन्तुष्ट था। साथ ही उनकी सख्या भी बहुत कम थी।

इन बातो को अच्छी तरह गाठ मे बाध लेना चाहिए कि बच्चा जब पहले-पहल प्रश्न पूछना शुरू करता है तब उसके सरल और स्वाभाविक प्रश्नो का उत्तर सरल और स्वाभाविक तौर से देना चाहिए, जिससे कि उसके विचारो मे रुकावट न हो और किसी चीज के रहस्य बन जाने से जो भावनाए पैदा होती है, वे पैदा न हो। अधिक देर तक प्रश्नो का समाधान न होने से ही उपद्रव होता है। नग्न शरीर के सबध मे इस तरह का विकृत और रुग्ण कौतूहल ऐसे बच्चे मे ही पैदा हो सकता है जो अपने से भिन्न लिग के बच्चो के नग्न शरीरो को देखे बिना ही बढ रहा है। कभी-कभी एकाएक किसी वयस्क के नग्न शरीर की झलक पहली बार देखने पर ऐसे बच्चे के मन पर कष्टकर धक्का लग सकता है। अत यह वाछनीय है कि बच्चे एक-दूसरे के नग्न शरीरो से परिचित रहे। शायद इस दृष्टि से ही कुछ माता-पिता अपने स्नान का आयोजन भी इस प्रकार करते है कि जब बच्चे बहुत छोटे रहते है तभी से वे उनके साथ नगे होकर नहाते है। इस प्रकार बहुत से खतरे खुद-बखुद टल जाते है क्योकि इस तरह की सरलता और स्पष्टता से यौन सज्ञानता के विकास मे विलम्ब होता है और अवाछनीय जिज्ञासाए पनप नही पाती। यह भी हो सकता है कि ऐसा छोटा बच्चा जो अपनी नगी छोटी बहिन को देखते हुए उसके साथ-साथ बडा होता है, वह शायद यह जानने की कोशिश ही न करे कि शारीरिक बनावट और आकृति मे भी कोई यौन भेद हो सकता है। वे सब प्रभाव बच्चे के भावी विकास के लिए अच्छे आधार-स्तम्भ है जिनसे बच्चे मे समय से पूर्व यौन परिपक्वावस्था और यौन-विषयक ज्ञान का उदय होने मे विलब लगता है। एक बुद्धिमान् यौन आरोग्यशास्त्री यह भली भाति समझता है कि इस उद्देश्य की पूर्ति यौन बातो को कृत्रिम रूप से रहस्य बनाकर नही की जा सकती।

पर साथ ही हमे यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिए कि बच्चे के प्रति यह रुख, जो अब सब से अधिक समझदारीपूर्ण माना जाने लगा है, अभी तक दृढता के साथ स्थापित नही हो सका है। जैसा कि हाल मे कहा गया है, यदि यह सच है कि बच्चे को अपनी खुद की आवश्यकताओ के अनुसार अपने माता-पिता का निर्माण करना है तो उसके साथ यह भी सच है कि इस तरह से प्रस्तुत परिस्थिति का हमारे प्राचीन सस्कारो के आधार पर, जिनका अस्तित्व हमेशा स्वीकार करना ही पड़ता है, मेल बैठाना आसान नही है। इस कारण बच्चे की स्थिति पहले की अपेक्षा अब कही

अधिक कठिन हो जाती है और सच तो यह है कि आज यह स्थिति बहुत ही मुश्किल है। आज बच्चा पहले के समान शिक्षा की सामान्यत स्वीकृत और मुश्किल से बदलने वाली निर्दिष्ट सामाजिक प्रणाली के अधीन नही रह गया है, पर साथ ही मानसिक रूप से उसका इतना विकास नही हुआ कि वह वयस्क व्यक्तियो के आत्म-अनुशासन को ग्रहण कर सके। रैंक साहब लिखते हैं कि आज के बच्चे को जिस सकटपूर्ण बाल्यावस्था मे से गुजरना पडता है उतनी सकटपूर्ण बाल्यावस्था शायद मानव-इतिहास के किसी भी काल मे नही थी।

अतएव यदि सामान्यत उन सुधरी हुई परिस्थितियो मे भी अभी तक 'कठिन' अथवा 'समस्या'-बालक से हमारा साबका पडता है तो हमे आश्चर्य नही करना चाहिए। अभी तक वशानुक्रम और वातावरण दोनो ही से ऐसे बच्चो के यदा-कदा पैदा होने मे सहायता मिलती है। जो प्रबुद्ध विचार अब प्रबल होते जा रहे है उनसे किसी विशेषज्ञ की विशिष्ट सहायता के बिना भी ऐसी दशाओ की चिकित्सा मे यथेष्ट पथ-प्रदर्शन हो सकता है, पर ऐसा हमेशा ही होगा, ऐसी बात नही है। इसलिए, हमे यह देखकर सतोष करना चाहिए कि यह प्रवृत्ति बढती जा रही है कि अब ऐसे समस्या-बालको को शैतान या पापी नही कहा जाता, बल्कि यह माना जाता है कि उनके ऊपर डाक्टर, मनोवैज्ञानिक, मनोचिकित्सक और सामाजिक कार्यकर्ता सम्मिलित रूप से ध्यान दे। श्रीमती डब्ल्यू०एफ०डूमर की प्रेरणा और जनहित की तीव्र लगन से सन् १९०९ मे डा० विलियम हीली के निर्देशन मे शिकागो मे किशोर-मनोनिर्देश-सस्थाओ की स्थापना हुई। सन् १९१४ मे यह बाल-न्यायालय का एक विभाग बन गया। तब से इस उद्देश्य को ध्यान मे रखकर विशेष बाल-पथ-प्रदर्शन-आरोग्य-भवनो की वाछनीयता स्वीकृत होती जा रही है। उसे बाल-पथ-प्रदर्शन-आरोग्य-भवनों की स्थापना के लिए होने वाले आन्दोलन का प्रारभ कहा जा सकता है। जिस प्रकार उनका विकास हुआ है, उनमे तीन प्रकार के व्यक्तियो—मनोचिकित्सक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कार्यकर्ता—की सम्मिलित चेष्टा रहती है। कभी-कभी ऐसा हो सकता है कि ऐसे मामलों के लिए विशेष रूप से सुसज्जित डाक्टर इन तीनो व्यक्तियो के कार्यों को एकसाथ ज्यादा आसानी और सहूलियत के साथ कर सके, किंतु ये आवश्यक योग्यताए विरले ही किसी एक व्यक्ति मे सम्मिलित रूप से पाई जाती है और साधारण डाक्टर इस तरह के विशेष कार्य के लिए समय भी नही निकाल सकता। अतएव यह सम्भव है कि इन आरोग्य-भवनो का विकास जारी रहेगा, यद्यपि उनका किसी विशेष विचारधारा अथवा कार्य-प्रणाली के संप्रदाय से सबध नही रहेगा क्योंकि ऐसा करना अवाछनीय होगा। न्यूयार्क बाल-पथ-प्रदर्शन-सस्था का आयोजन एक बडे व्यापक पैमाने पर हुआ है। लदन बाल-पथ-प्रदर्शन-आरोग्य-भवन की स्थापना

सन् १६३० मे हुई थी।

बाल-पथ-प्रदर्शन से होने वाली जाच रो हम मनुष्य के प्रकारो के सबंध में अधिक गहरी जानकारी पा सकते है। शुरू से ही डाक्टरगण विशिष्ट मन शारीरिक टाइपो के अध्ययन के प्रति आकर्षित हुए थे, जिसे अब शरीररचना-विज्ञान कहते है। वह प्रारभिक युग मे डाक्टरो के लिए बहुत आकर्षक साबित हुआ। बात यह है कि स्पष्ट रूप से ऐसा अध्ययन डाक्टरी विज्ञान और जीवन दोनो के ही लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। जो भी हो, पिछले कुछ ही वर्षो मे इतनी सामग्री—आकडे आदि मिले कि उसपर इस प्रकार के अध्ययन की ठोस नीव रखी जा सकती है। यह कहा जा सकता है कि सन् १६२१ मे प्रोफेसर केत्शमेर की युगातरकारी पुस्तक 'शारीरिक गठन और चरित्र' के प्रकाशन से ही रचना-विज्ञान को वास्तविक वैज्ञानिक आधार मिला, यद्यपि अभी भी वह प्रारभिक अवस्था मे है और उसका लगातार विकास हो रहा है।

व्यापक रूप से देखने पर यौन जागृति और शिक्षा का महत्त्व जितना गभीर आज है उतना वह पहले कभी नही था। यौवनारभ के समय यौन-सबधी ज्ञान की दीक्षा को हमेशा जाति के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा है। जैसा कि हमे मालूम है, मध्य अफ्रीका तथा ससार के कई अन्य भागो मे बसने वाली जातियो मे, जिन्हे हम कमोवेश मोटे तौर पर आदिम जातिया कह सकते है, इस प्रकार की दीक्षा एक-दम एक पवित्र सस्कार और वयस्क-जीवन के लिए व्यावहारिक तैयारी है। बच्चा खेल के रूप मे सेक्स से पहले ही परिचित रहता है और वयस्क लोग भी ऐसे खेलो को आजादी के साथ खेलने देते है। परतु यौवनारभ के समय यह एक गभीर बात हो जाती है। समाज और जाति के तकाजो पर विचार करना होता है। नवयुवक अथवा नवयुवती को समूह मे उसके उचित सामाजिक स्थान पर लगा देना पडता है और उसके लिए वह शिक्षा जरूरी है जिसे 'नैतिक शिक्षा' की सज्ञा दी जा सकती है। वह अक्सर सक्षिप्त और तीक्ष्ण होती है। और जिस समय वयोवृद्ध लोग जीवन के कर्तव्यों के सबध में शिक्षा देते है और कबीले के पवित्र रहस्यों का उद्घाटन करते हैं उस समय शायद दीक्षा पाने वाले का किसी प्रकार छेदन आदि कर दिया जाता है अथवा उसे कठोर संयम में पृथक् रखा जाता है। तत्पश्चात् बच्चा स्त्री या पुरुष बन जाता है और नई सुविधाओं, नए कर्तव्यों और नई जिम्मेदारियों को ग्रहण करता है। यह एक सराहनीय प्रणाली है और जीवन की कमोबेश आदिम परिस्थि-तियो के अन्तर्गत इससे बढकर कोई दूसरी प्रणाली नही निकाली जा सकती थी। यह हमारा दुर्भाग्य है कि ईसाई-धर्म मे इस प्रकार के सस्कारों अथवा कर्मकाडो का इतना अधिक ह्रास हो गया है कि वे या तो महत्त्वहीन है या अधिकाश रूप से लुप्त हो गए है।

आज हम इस हानि के प्रति सचेत हो रहे है और उसे सुधारने की चेष्टा कर रहे है। किंतु अब हम उस ढाचे पर किसी प्रणाली का निर्माण नही कर सकते, और किसी नई प्रणाली का निर्माण करने के पहले हमे अपनी सभ्यता के उस सोपान पर विचार करना होगा जिससे होकर हम गुजर रहे है।

उस सोपान मे बुद्धि पर सारा जोर दिया जाता था और शिक्षा के वे तरीके जो वजनदार थे अथवा जो व्यापक रूप से लोकप्रिय थे, बुद्धिवृत्ति को शिक्षित करने के तरीके थे। किंतु यौन आवेग, जो अभी तक सामाजिक साथ ही वैयक्तिक जीवन का प्रमुख आधार है, आसानी से बुद्धि के दायरे मे नही लाया जा सकता। इसका नतीजा यह हुआ कि हमारी शिक्षा-प्रणालियो मे, यहा तक कि वर्तमान समय मे भी, सेक्स का बुद्धि-बहिर्भूत तत्त्व प्राय पूरी तौर से छोड़ दिया गया है। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली मे और उस समय की दीक्षित करने की सुनियोजित योजना मे कोई समानता नही है। जब मनुष्य मनुष्य बनना सीख रहा था उस युग की परिस्थिति के अनुसार यह योजना अत्यत सराहनीय थी। हमारे लिए शिक्षा सपूर्ण जीवन के लिए न होकर जीवन के एक खड-विशेष, धन पैदा करने से सबधित खड तक ही सीमित रही है।

हमारी शिक्षा जीवन के उस अग के प्रति जो यौन आवेग पर आधारित है, विविध सोपानो और मात्राओ मे उपेक्षा, अरुचि यहा तक कि घृणा के साथ सयुक्त रही है क्योकि वह अग बुद्धि के दायरे मे नही आ सका और हमारी शिक्षा-प्रणाली सिर्फ बुद्धि से ही सबधित थी। यह एक जाना हुआ तथ्य है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली से होने वाली उत्पत्ति मे अपेक्षाकृत होशियार व्यक्ति—कहने का मतलब यह है कि ऐसे लोग जिनकी सकुचित योग्यताए बुद्धि के विकास पर केंद्रित होती है—अक्सर प्रेम और सेक्स से सबधित मामलो के प्रति तिरस्कारपूर्ण अथवा निदा-पूर्ण रुख रखते है। उन्हे विद्यालयो मे जो शिक्षा मिलती है उसका परिणाम यही होता है, यद्यपि यह बात नही है कि ऐसा किसी योजना के फलस्वरूप हुआ है। जीवन मे दीक्षित करने की प्राचीन प्रणालियों का निश्चित रूप से यह सामान्य परि-णाम नहीं होता था। इसलिए हमें अपनी नई प्रणाली का निर्माण करते समय उन प्रणालियों के खतरे से बचना होगा जिनसे हम अभी-अभी निकले है।

किंतु एक दूसरी बात ऐसी है जिसके सबध मे हमे आदिम समाजो के उदा-हरण पर चलने से बचना चाहिए और वह है यौवनारभ पर यौन दीक्षा मे विलब करना। मनोविश्लेषको की खोज से तथ्य व्यापक रूप से मालूम हो गया है कि काम-वासना की शुरुआत केवल यौवनारंभ से ही नही होती। यह तथ्य पहले भी कुछ हद तक मालूम था, किंतु उसकी पूर्ण सार्थकता और महत्त्व का समुचित बोध नही था। काम-जीवन की जातिगत विशेषताए तो यौवनारभ पर ही शुरू होती है, किंतु

वैयक्तिक विशेषताए, जो परोक्ष रूप से जातीय होती है, उससे वहुत पहले यहा तक कि शैशवास्था से ही शुरु हो सकती है और अक्सर होती ही है।

इस तथ्य का व्यावहारिक परिणाम यह होता है कि प्रथम यौन दीक्षा का भार समाज से लेकर, जो पुराने जमाने मे यौवनारभकालीन दीक्षाओ को सपन्न करता था, माता-पिता के हाथो मे सोप दिया जाता हे। कारण यह है कि वालक को यौन शिक्षा वाल्यावस्था के प्रारभ मे ही देना जरूरी हे। इन परिस्थितियो मे यह दीक्षा एक ओपचारिक और सज्ञान दीक्षा नही होती, वल्कि माता-पिता के, अक्सर माता के पथ-प्रदर्शन मे होती है। इस तरह की दीक्षा देने वाली माता अक्सर उन विधि-निषेधो से मुक्त हो जाती है जिनके कारण पहले वयस्क लोगो के लिए यह मुश्किल था कि वे अपने वच्चो मे यौन स्फूर्ति के लक्षणो के अस्तित्व को मान ले या स्वाभाविक रूप से उनपर व्यवहार करे।

अव यह आशा करना उचित ही हे कि स्कूलो मे अन्य विपयो की शिक्षा के साथ-साथ जैसे-जैसे वालक का विकास होता है उसे प्राणिशास्त्र की प्रारभिक शिक्षा भी दी जाएगी। इसमे मानव-जीवन के सभी तथ्य आ जाएगे, जिनमे सेक्स भी सम्मिलित रहेगा, साथ ही उसपर अनुचित रूप से जोर नही दिया जाएगा। जैसा कि एक लब्धप्रतिष्ठ प्राणिशास्त्री की हैसियत से रगल्स गेट्स ने कहा है, "स्कूल के प्रत्येक छात्र और छात्रा को शिक्षा के अनिवार्य अग के रूप मे वनस्पति और प्राणियो के स्वभाव, शरीर की वनावट और कार्यो के वारे मे, साथ ही उनके परस्पर-सबधो और पारस्परिक प्रतिक्रियाओ के विषय मे कुछ शिक्षा मिलनी चाहिए। उन्हे वशानुक्रम के सबध मे भी कुछ ज्ञान होना चाहिए और उन्हे यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक शरीर अपनी प्रजनन-सबधी विशेषताओ के सूक्ष्म से सूक्ष्म ब्योरो को उत्तराधिकार के रूप मे ग्रहण करता है और फिर उन्हे अपने उत्तराधिकारी को प्रदान कर देता है।"

इस शिक्षा के विकास के साथ एक प्रकार की जातीय दीक्षा का निर्माण होता है, जो अपेक्षाकृत आदिम जातियो के क्रियाकाड से मिलती-जुलती है। इन प्राणिशास्त्रीय रूपरेखाओ के माध्यम से ही हम सेक्स के उस पहलू की आधुनिक धारणा पर पहुचते है जो पुराने जमाने मे पवित्र मानी जाती थी। क्योकि मै फिर एक वार यह कहूगा कि हमे उन मूर्खतापूर्ण ईमानदार लोगो के विचार को स्वीकार नही करना चाहिए जो यह चाहते है कि भोजन और मल-मूत्र-त्याग के प्रति वच्चे का जो साधारण रुख रहता है, काम-जीवन के प्रति भी उसका वही रुख रहे और वह इसी रुख को लेकर वडा हो। प्राणिशास्त्र के जरिए यह आसानी से समझ मे आ जाता है कि मल-मूत्र-त्याग की अपेक्षा सेक्स मे और भी कुछ है। सेक्स एक प्रणाली

मात्र ही नही है, जिससे जाति कायम रहती और बनती है, बल्कि यह वह आधार-शिला है जिसपर आने वाले ससार के समस्त सपनो का निर्माण होना चाहिए। कुछ अन्य अपेक्षाकृत वैयक्तिक उद्देश्य भी है, जिनकी ओर यौन आवेग को मोडा जा सकता है, किंतु ठोस केंद्रीय तथ्य हमेशा यही रहता है।

दूसरे उद्देश्य भी महत्त्वपूर्ण रहते है। हमारी शिक्षा-प्रणालियो ने यौन आवेग को जिस उपेक्षा और यहा तक कि घृणा की दृष्टि से देखा है उससे उस आवेग की अतिव्यापक गतिशील शक्तिया कुठित हो गई है। इसलिए यह और भी जरूरी हो गया है कि यौन आवेग की अतर्गत शक्तियो को प्रोत्साहन दिया जाए और उनका विकास किया जाए। अकेली बुद्धि अनुर्वर और किसी काम की नही होती और उसका शरीर पर कोई गहरा और नस-नस मे भिद जाने वाला प्रभाव नही होता। पर इतने पर भी हमारे जीवन की अनुर्वर प्रवृत्तियो के बीच यौन आवेग अभी तक अबाध बना हुआ है, भले ही वह भस्मावृत हो या तिरस्कृत हो। यहा तक कि आटो रैंक के शब्दो मे—"यौन आवेग वह अतिम भावनात्मक स्रोत है जो हमारी शिक्षा का अतिबौद्धिकीकरण होने पर भी हमारे लिए बच गया है।" यहा हम यौन आवेग मे अपनी भावी सभ्यता के लिए एक महान् आशा पाते है। इससे कुछ अतर नही पडता कि यौन आवेग अपनी स्वाभाविक अभिव्यक्तियो के रूप मे है या उद्दात्तीकरण के रूप मे, क्योकि ये दोनो साथ-साथ चलते है और कोई भी रूप दूसरे का पूर्णत दमन कर पनप नही सकता। इस प्रकार हमारे सामने भविष्य की सभ्यता के लिए बडी आशाए बधती है।

सहायक पुस्तक-सूची

ए० मोल—The Sexual Life of the Child

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex, especially, Vols. I and VI, also 'The New Mother' in More Essays of Love and Virtue

स्टैन्ले हाल—Adolescence

मैरी चाडविक—Difficulties in Child Development (dealing especially with the mistakes of parents in bringing up their children.)

आटो रैंक—Modern Education . A Critique of Its Fundamental Ideas, 1932

डब्ल्यू० हीली—The Individual Delinquent, 1915

बर्नर्ड हार्ट—'Work of a Child Guidance Clinic,' British Medical Journal, 19th Sept., 1931.

क्रेट्शमेर—Physique and Character.

विनिफ्रेड डि काक—New Babes for Old.

के० डि श्विनित्ज—How a Baby Is Born : What Every Child Should Know

अध्याय ४

यौन विच्युति और कामात्मक प्रतीकवाद

पहले यौन जीवन के सभी लेखक इस बात को मानकर चलते थे कि मैथुनिक जीवन का सिर्फ एक ही ढाचा है और उस रूप से किसी तरह का अलगाव स्वाभाविक नही है। इसे चुपचाप मान लिया जाता था और उसपर कभी तर्क नही किया जाता था। यह एकमात्र ढाचा क्या था, इसकी उचित परिभाषा देने की उन्हे जरूरत भी नही मालूम हुई। प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती थी कि वह इस ढाचे को अपनी सहजात बुद्धि से जानता है। पर ज्यो ही हम यौन जीवन के वास्तविक और अन्तरग तथ्यो की जाच करना शुरू करते है त्यो ही हम देखते है कि यह प्राचीन और परम्परागत कल्पना गलत थी। यौन जीवन के केवल एक ही ढाचे का होना सत्य से इतनी दूर है कि यह कहना सत्य के अधिक निकट होगा कि जितने व्यक्ति है, यौन जीवन के उतने ही ढाचे है, कम से कम यह तो कहा ही जा सकता है कि ढाचे के टाइपों की एक बडी सख्या है। किसी व्यक्ति का स्वभाव इनमे से किसी एक ढाचे के निकट होता है, पर ठीक उसी तरह कभी नही रहता। जब से मैंने यौन मनोविज्ञान का अध्ययन करना शुरू किया है, तब से मै इसे बराबर देख रहा हू। मैंने यह साफ करने की चेष्टा की है कि प्रकृति मे अन्य स्थलो की भाति यहा भी हमे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि स्वाभाविक दायरे के भीतर एक बडी सीमा मे प्रकार-भेद होते है। आज धीरे-धीरे अनुभवी पर्यवेक्षक इसे मानते जा रहे है। एक प्रख्यात स्त्री-रोग-विशेषज्ञ डा० डिकिन्सन किसी निश्चित यौन ढाचे के अस्तित्व के विषय मे सन्देह प्रकट करते है। यह सन्देह दिन-ब-दिन बढता ही जा रहा है।

स्वाभाविक दायरे मे रहने के लिए सभी प्रकारान्तरो के लिए यह आवश्यक है कि उनमे किसी न किसी बिन्दु पर प्रजनन का तत्त्व भी सम्मिलित रहे, जिसके लिए ही सेक्स का अस्तित्व है। पर साथ ही यौन क्षेत्र से प्रजनन को अलग कर देना पूरी तरह से वैध है और किसी-किसी परिस्थिति मे ऐसा करना नैतिक रूप से अनिवार्य भी हो जाता है। किन्तु ऐसे यौन कार्य-कलाप उचित रूप से मस्तिष्क-विकृति के सूचक माने जा सकते है जिनमे प्रजनन सम्भव नही है। ऐसे कार्यकलाप विच्युति

मे आ जाते है।

यौन विच्युतियो को पहले 'विपरीतताए' कहा जाता था। इस शब्द का उदय उस समय हुआ जब यौन गडबडियो को दुनिया भर मे पाप या अपराध नही तो कम से कम दुर्गुण तो अवश्य माना जाता था। आज भी इस शब्द का प्रयोग वे लोग करते है जिनके विचारो की जडे भूतकाल की उन परम्पराओ मे स्थित है जिनसे वे निकल नही पाते। प्रारम्भिक वर्षो मे मैंने स्वय उसका प्रयोग किया है, यद्यपि ऐसा मैंने विरोध के साथ किया था और साथ ही यह स्पष्ट भी कर दिया था कि उससे मेरा क्या मतलब था। अब मै यह अनुभव करता हू (जैसा कि डिकिन्सन ने भी बतलाया है) कि वह समय आ गया है कि इस शब्द का यथासम्भव बिलकुल ही वर्जन कर दिया जाए। यहा तक कि मूल लैटिन शब्द परवर्सस (विपरीत) से भी कभी-कभी नैतिक निर्णय का आशय निकलता है। यह शब्द उस समय से काम मे आ रहा है जब कि यौन विषयो के सम्बन्ध मे वैज्ञानिक और चिकित्सा-शास्त्रीय दृष्टि से विचार नही होता था। विज्ञान तथा चिकित्साशास्त्र का उद्देश्य यौन गडबडियो का अध्ययन करना तथा जरूरत पडे तो उनका इलाज करना है, न कि उनकी निन्दा करना। इसमे सन्देह नही कि इस शब्द का उन व्यक्तियो पर दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम होता है जिनसे यह कहा जाता है कि वे विपरीतता के शिकार रहे है। इसके अलावा यहा एक ऐसे शब्द को गले से लगाए रखने से कोई लाभ नही जो पूर्ण रूप से एक अलग युग का है। इससे भ्रम पैदा होता है। यह शब्द पूरे तौर से बाबा आदम के जमाने का और शरारतपूर्ण है, इसलिए इससे बचना चाहिए। यौन आवेग की एक असाधारण अभिव्यक्ति को सूचित करने के लिए किसी-किसी समय 'स्थान-च्युति' शब्द का भी प्रयोग किया गया है। ऐसे शब्द से कम से कम यह लाभ है कि इससे नैतिक गुणावगुण सूचित नही होता, परन्तु चूकि उसमे यौन आवेग के सम्बन्ध मे, जो वस्तुत' गतिशील, जानदार और परिवर्तनशील है, एक स्थिर धारणा निहित है। इसलिए यह 'विच्युति' शब्द की अपेक्षा कम सन्तोषजनक है क्योकि 'विच्युति' शब्द मे गतिशीलता सूचित होती है।

बहुत समय तक मैंने बहुत सी और अधिकाश यौन विच्युतियो के लिए प्रतीकवाद शब्द का प्रयोग किया था। कामात्मक प्रतीकवाद (या अधिक सकुचित अर्थ मे कामात्मक फेटिशवाद) का अभिप्राय एक ऐसी दशा से है जिसमे मनोवैज्ञानिक यौन प्रक्रिया या तो सक्षिप्त हो जाती है या फिर इस प्रकार से भटक जाती है कि इस प्रक्रिया का कोई हिस्सा या कोई पदार्थ या कोई कार्य जो, सामान्यत इसके सीमान्त पर अथवा उसके दायरे के एकदम बाहर भी होता है, अक्सर कम उम्र मे ही ध्यान का प्रधान केन्द्र बन जाता है। जो बात स्वस्थ प्रेमी के लिए गौण महत्त्व

रखती है, यहा तक कि उपेक्षणीय है, वह इस तरह सब से महत्त्वपूर्ण बन जाती है और ऐसा उचित रूप से कहा जा सकता है कि यह सम्पूर्ण यौन प्रक्रिया का प्रतीक वन जाती है।

व्यापक दृष्टि से देखने पर सभी यौन विच्युतिया कामात्मक प्रतीकवाद का उदाहरण है क्योकि प्रत्येक ऐसे मामले मे यह देखा जाता है कि किसी वस्तु अथवा किसी कार्य को ऐसी मान्यता प्राप्त हो जाती है जिसका स्वस्थ मनुष्य के लिए वहुत थोडा या बिलकुल भी कामात्मक मूल्य नही है, दूसरे शब्दो मे वह स्वाभाविक प्रेम का प्रतीक वन जाता है। इसके सिवाय कामात्मक प्रतीकवाद स्वस्थ प्रेम के अपेक्षाकृत अधिक परिमार्जित रूपो मे भी कार्य करता है क्योकि इन रूपो मे प्रिय व्यक्ति के किन्ही विशेष बिन्दुओ पर प्रेमात्मक ध्यान केन्द्रित करने की प्रवृत्ति होती है। पर ये विन्दु अपने-आपमे महत्त्व-रहित होते हुए भी प्रतीकात्मक मान्यता प्राप्त कर लेते है।

इस प्रकार जव हम प्रतीकवाद शब्द का प्रयोग उसके अपेक्षाकृत प्राचीन अर्थ मे करते है और उसे इन विच्युतियो के, जिन्हे पहले बिना किसी भेद-भाव के विपरीतता कहा जाता था, कामात्मक क्षेत्र पर लागू करते है तो यह देखा जाता है कि वह मनोविश्लेषण-विषयक साहित्य मे प्रचलित सकुचित अर्थ से कही अधिक आगे निकल जाता है। जब मनोविश्लेषक इस सज्ञा का प्रयोग करता है तो उसके ध्यान मे मुख्यत कोई मनोवैज्ञानिक यन्त्र होता है जो निस्सन्देह रूप से अक्सर कार्यशील होता है। अर्नेस्ट जोन्स का कथन है—"प्रतीकवाद के समस्त रूपो का आवश्यक कार्य है उस रोक-थाम पर कावू पाना जो किसी अनुभूत भाव की मुक्त अभिव्यक्ति मे वाधा पहुचा रहा है।" निस्सन्देह यह एक दिलचस्प ढग है, जिससे एक प्रतीक कार्य कर सकता है। किन्तु हमे असावधानी के साथ प्रतीकवाद के सभी रूपो पर इस ढग को नही थोपना चाहिए। एक वहुत ऊचे दरजे के खास उदाहरण को लिया जाए। एक देशभक्त के लिए उसका राष्ट्रध्वज देश का प्रतीक है, किन्तु राष्ट्रीय झडे के प्रति उस देशभक्त की निष्ठा का अर्थ किसी एक निषेध पर कावू पा लेना नही है और जव पुराने जमाने मे नौसैनिक युद्ध के समय अपने जहाज के मस्तूल पर झण्डे को कीलो से जड देता था तो वह निश्चित रूप से इस कारण नही करता था कि वह देश के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करने मे डरता था। प्रतीक का एक आधारभूत महत्त्व यह है, जैसा कि इस उदाहरण से सूचित होता है, कि वह एक अपेक्षाकृत सूक्ष्म अनुभूतिपूर्ण भाव को ठोस स्वरूप प्रदान करता है। जव एक प्रेमी अपनी प्रेमिका के किसी विशेष अग अथवा उसकी वस्तुओ, उसके केश अथवा उसके जूतो पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है, तव वह अपने किसी निषेध या रोक-थाम

पर काबू नही पा रहा है; वह तो अपनी विखरी हुई भावनाओं को, जिन्हे वह अपनी प्रेमिका के व्यक्तित्व के प्रति महसूस करता है, एक अपेक्षाकृत अधिक सुव्यवस्थित केन्द्र की ओर ले जा रहा है। इन सव के वावजूद प्रतीको का एक विशेष वर्ग होता है, जिनके अन्तर्गत परोक्ष रूप से प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु किसी छिपी हुई वस्तु का स्थान ले लेती है। यह छिपी हुई वस्तु ही वास्तविक चालक शक्ति होती है। वात यह है कि उसमे छिपी हुई वस्तु और प्रतिनिधि वनी हुई वस्तु के कुछ समान लक्षण होते है, और इस तरह वह उस तृप्ति को प्रदान कर सकती है जो वस्तुत. उस छिपी हुई वस्तु से मिलनी चाहिए। चाहे मनोविश्लेषको ने प्रतीकवाद के इस वर्ग को कभी-कभी वढा-चढाकर भी दिखलाया हो, तो भी उसका अस्तित्व है और उसकी उपेक्षा नही करनी चाहिए।

जव हम इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले लक्षणो को समूहवद्ध कर उनका वर्गीकरण करते है, तव कामात्मक प्रतीकवाद का विस्तार प्रकट हो जाता है। इन लक्षणो को उन वस्तुओ के आधार पर, जो उन्हे जागरित करती है, तीन प्रमुख वर्गो मे सुविधाजनक रूप से वाटा जा सकता है

(१) शरीर के अंग—(क) स्वाभाविक—हाथ, पैर, स्तन, नितम्व, केश, क्षरण और मल-मूत्र, पसीना आदि गन्ध और महक।

(ख) अस्वाभाविक या विकृत—लगडापन, कैंचापन, चेचक के दाग आदि, वच्चो के प्रति यौन प्रेम,[1] अधिक उम्र वालो के प्रति प्रेम, मुर्दो के प्रति आकर्षण इस वर्ग के अन्तर्गत रखे जा सकते है। इसके साथ-साथ जानवरो से होने वाली मैथुनिक उत्तेजना (जानवरो के प्रति कामात्मक प्रेम) को भी इस वर्ग मे रख सकते है।

---

१. वच्चों के प्रति यौन आकर्षण को कभी-कभी एक अलग विच्युति माना जाता है। चिकित्साशास्त्रीय विधि-शास्त्र की दृष्टि से इसे इस रूप में मानना सुविधाजनक भी है। लेपमैन ने वडी सावधानी के साथ वच्चो के ऊपर होने वाले यौन उत्पातो का अध्ययन किया है। मेरा झुकाव उनके इस मत की तरफ है कि जन्मजात आधार पर ऐसी किसी यौन विच्युति का अस्तित्व नही है जिसमें केवल कच्ची उम्र की ही लडकियो के प्रति विशेष रूप से यौन आकर्षण रहता हो। उसका सवध आसानी से वृद्धावस्था में होने वाली नपु सक बुढमस हालत से जोडा जा सकता है। अन्यथा वच्चों के प्रति यौन आकर्षण या तो वहुत थोडे से अति परिमार्जित व्यक्तियों में यदा-कदा स्वाद वदलने के लिए अपनाई जाने वाली एक विलासिता के रूप में पाया जाता है अथवा ऐसे कमजोरदिमाग लोगों की यौन प्रवृत्ति के एक हिस्से के रूप में दृष्टिगोचर होता है जिनमें वच्चे और जवान की कोई तमीज नहीं है। जहा तक उसकी मनोवैज्ञानिक परिभाषा का प्रश्न है, शायद सव से अच्छा यही होगा कि उसे कामात्मक प्रतीकवाद से मिलता-जुलता माना जाए।

(२) **जड पदार्थ**—(क) पहनने के वस्त्र—दस्ताने, जूते और मोजे तथा मोजों के गाटर चोगे, रूमाल,-नीचे पहने जाने वाले कपडे जैसे गजी, कच्छा, पेटीकोट आदि।

(ख) व्यक्तिगत रूप से सम्बन्ध-रहित वस्तुए—यहा ऐसे सारे पदार्थ शामिल किए जा सकते हैं जो सयोगवश आत्म-मैथुन के दौरान मे यौन भावनाओ को उद्दीप्त करने की क्षमता प्राप्त कर ले। पिगमैलियनवाद अर्थात् मूर्तियो के प्रति यौन आकर्षण को भी इसीमे सम्मिलित किया जा सकता है।

(३) **कार्य और रुख**—(क) सक्रिय—चाबुक मारना, क्रूरता, कामात्मक प्रदर्शन, अगच्छेद और हत्या।

(ख) निष्क्रिय—चाबुक खाना, क्रूरता सहना। वैयक्तिक महके और कण्ठ-स्वर इस वर्ग के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

(ग) कामोद्दीपक दृश्यो के प्रति आकर्षण—कामोद्दीपन करने वाले दृश्य और पदार्थ, आरोहण, झूलने आदि के दृश्य, मल-मूत्र-त्याग के कार्य, जानवरो का मैथुन।

यह स्पष्ट है कि यौन आवेग की विच्युतियो के असख्य प्रकार-भेद हैं और उनका दायरा व्यापक है। एक छोर पर हम उस निर्दोष और सुखकर आकर्षण को पाते हैं जो प्रेमी को प्रेमिका के दस्ताने अथवा चप्पल देखने से मिलता है। यह एक ऐसा आकर्षण है जिसे परिमार्जित से परिमार्जित और सहीदिमाग से सहीदिमाग व्यक्ति महसूस करते हैं, तो दूसरे छोर पर हम यो ही बिना सोचे-विचारे किए गए खूनी हमलो को देखते हैं, जिनका सम्बन्ध 'जैक दि रिपर' के साथ वताया जाता है। परन्तु हमे यह याद रखना चाहिए कि इन विच्युतियो की किसी भी विन्दु पर कोई निश्चित सीमा-रेखा नही है और वे निर्दोष अतिशय आसक्ति से शुरू होकर स्पष्ट रूप से दिखलाई न देने वाले अनुक्रमो से गुजरकर खूनी अत्याचार तक पहुच सकती हैं। इसलिए जव हमारा अपराध-विज्ञान अथवा चिकित्साशास्त्रीय विधि-शास्त्र के क्षेत्र से सरोकार न भी हो और हमारा प्रधान सरोकार स्वस्थ और स्वाभाविक यौन जीवन से हो, तव भी हमे विच्युतियो पर विचार करना ही पडता है क्योकि एक छोर पर वे सव स्वस्थ और स्वाभाविक दायरे के भीतर आ जाती हैं।

कामात्मक प्रतीकवाद की अतिशयताए मुख्य रूप मे पुरुषो मे पाई जाती हैं। वे स्त्रियो मे इतनी कम देखने मे आती हैं कि क्राफ्ट एविंग ने अपनी पुस्तक 'साइकोपेथिया सेक्चुआलिस' के वाद के सस्करणो तक मे भी लिखा है कि उन्हे स्त्रियो मे कामात्मक अतिशयताओ के उदाहरण नही मिले। जो भी हो, स्त्रियो

मे यौन विच्युतिया चाहे जितनी भी कम क्यो न हो, पाई अवश्य जाती है और वे स्पष्ट रूप मे पकड मे भी आ जाती है। कामात्मक प्रतीकवाद अपने स्वाभाविक रूप मे स्त्रियो मे आम तौर से पाया जाता है और जैसा कि मोल वतलाते है कि स्त्रिया सैनिको की वर्दी से प्रभावित होती है और उसके प्रति आकर्पित होती है, सम्भवत इसका कारण यह है कि वर्दी स्त्रियो मे साहस के प्रतीक के रूप मे स्वीकृत है, पर यह विच्युति विकृत रूपो मे भी पाई जाती है। सच तो यह है कि कामात्मक अतिशयता का एक रूप कामचौर्य अपने विशिष्ट रूप मे लगभग स्त्रियो मे ही पाया जाता है।

सहायक पुस्तक सूची

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex, especially Vols III and V

जी० वी० हैमिल्टन—A Research in Marriage

आर० एल० डिकिन्सन—A Thousand Marriages

क्राफ्ट एविंग—Psychopathia Sexualis

थायनाट तथा वेयसे—Medico-Legal Aspects of Moral Offensces

अर्नेस्ट जोन्स—'The Theory of Symbolism,' Papers on Psycho-Analysis, Chap. VIII

एस० हरबर्ट—The Unconscious in Life and Art

बाल्यावस्था की यौन विच्युतियां

जब हम बाल्यावस्था और किशोरावस्था के यौन व्यवहार का सर्वेक्षण कर रहे थे तो हमने देखा था कि यदि एक बार हम अपने धार्मिक, नैतिक अथवा सामाजिक सस्कारो को एक ओर रख दे, तो 'विपरीतताओ' की परिभाषा करना आसान नही है। जीव-विज्ञान की दृष्टि मे बहुत सी चीजे ऐसी है जो स्वाभाविक होते हुए भी हमारी परम्पराओ से बाहर है। साथ ही मानव-वैज्ञानिक सिद्धान्त की और इतिहास की दृष्टि से परम्पराओ मे एकरूपता नही है। अतएव मै इस बात को असम्भव यहा तक कि शरारत भरी मानता हू कि वच्चे का वर्णन एक ऐसी परिभाषा मे किया जाए जिसे फ्रायड ने पहले 'पालीमार्फ परवर्स' सज्ञा दी। हा, जैसा कि जेलिफ ने वतलाया है—फ्रायड ने वाद को चलकर इस सज्ञा को वहुत

कुछ त्याग दिया और उसके स्थान पर आत्ममैथुनिक या जैसा कि उसे कुछ लोग कहना पसन्द करेंगे 'प्राक्जननात्मक' कहा है। फ्रायड कुछ समय पहले खुद इस नतीजे पर पहुचे है कि विकास और शिक्षा द्वारा धीरे-धीरे बनने वाली दीवारो का बच्चो मे कोई अस्तित्व नही होता। अतएव उनके क्षेत्र मे विपरीतता का तो कोई प्रश्न ही नही हो सकता क्योकि वैसा करना उनके सम्बन्ध मे स्वय फ्रायड के शब्दो मे 'वयस्क और पूर्ण रूप से उत्तरदायी व्यक्तियो के नैतिक और विधि-सहिताओ के अनुसार' निर्णय करना होगा।

'पालीमार्फस परवर्सिटी' की धारणा सिर्फ सतही है। वह उस प्रकार की विपरीतता है (जैसा कि मुझे अक्सर बतलाने के अवसर मिले है) जिसकी तुलना इस बात से की जा सकती है कि कोई अनजान निरीक्षक छोटे फर्न वृक्षो के मरोडे हुए अपुष्पपर्णो को देखकर यह नतीजा निकाले कि वह विकृत है, जबकि असल मे वह विकृत नही है। उस वृक्ष के क्षेत्र मे जीवन का यह तकाजा है कि बढने की अवस्था मे उस प्रकार मरोडा हुआ आकार हो। सच तो यह है कि इस क्षेत्र मे मरोडे हुए आकार का न होना और उसमे पूर्ण रूप से विकसित वृक्ष के लक्षण प्रकट होना ही विकृति होगी।

इस बात पर जोर देना जरूरी है क्योकि कभी-कभी जिसे यौन विज्ञान कहा जाता है उसके भावी अग्रदूत और शिक्षक भी अक्सर भूतकाल की रूढियो की दलदल मे फस जाते है। 'विपरीतता' का अतिशय आतक बच्चो मे 'विपरीतता' के ढूढने और उनपर लम्बे व्याख्यान देने का मर्ज समस्त विपरीतताओ से बढकर विपरीतता है। जहा तक अभी मालूम हो सका है, आदर्श अवस्था विरले ही किसी सहीदिमाग और उचित रूप से स्वाभाविक जीवन-यापन करने वाली जाति मे पाई जाती है, चाहे हम इसके लिए आज के असभ्य लोगो को देखे या उन प्राचीन सभ्य जातियो को देखे जिनमे हमारी अपनी जडे स्थित है। जब आलोचना और नुक्स निकालने की उक्त प्रवृत्ति वयस्क व्यक्तियो के विरुद्ध कार्यशील की जाती है, तब भी हम इसी नतीजे पर पहुचते है। बाल्यावस्था की तथाकथित विपरीतताए किसी न किसी रूप मे और किसी न किसी मात्रा मे बाद के जीवन मे भी बनी रहती है क्योकि जैसा कि जेलिफ कहते है, "बहुत थोडे से ही लोग वस्तुत बडे हो पाते है।" अन्तर इतना ही है कि जो कुछ था उसमे अब मैथुन का वयस्क कार्य और जुड जाता है, जिसके कारण शुक्राणुकोश का डिम्बकोश से मिलन सुनिश्चित हो जाए। किन्तु बाल्यावस्था और किशोरावस्था की विपरीतताए यौन क्रीडा-कार्य के एक खण्ड के रूप मे उचित नियन्त्रण मे बनी रह सकती है। उस रूप मे प्रेमकला और गर्भाधान की तकनीक का एक वैध और यहा तक कि वांछनीय हिस्सा होगा। इस प्रकार वे औचित्यपूर्ण

प्रकारान्तरो की परिधि मे आ जाते हैं। उन्हे 'विपरीतताए' तभी कहा जा सकता है जब कि वे इतनी विस्तृत हो जाए कि यौन सभोग के केन्द्रीय कार्य की इच्छा की जगह ले ले और जब वे उसे कार्यान्वित करने की सामर्थ्य को घटा दे, अथवा उसे नष्ट कर दे।

इस तरह हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि बाल्यावस्था की "कथित विपरीतताओ के सम्बन्ध मे कुछ कहने से बचे।" बच्चे का मन ठीक उसी तरीके से काम नहीं करता जिस तरीके से वयस्क का मन करता है। जो एक सोपान मे स्वाभाविक है वह विकास के उससे पहले के सोपान मे ऐसा ही हो, यह आवश्यक नही है। इस कारण बच्चे के लिए वयस्क व्यक्ति के मन की अथवा वयस्को के लिए बच्चे के मन की कार्य-प्रणाली को समझना हमेशा आसान नही होता। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि वयस्कगण यह स्पष्ट रूप से महसूस नही करते कि जब वे स्वय बच्चे थे तो क्या थे। जो भी हो, हममे से बहुत से लोग इस बात को याद कर सकते हैं कि कभी-कभी हमे कितना गलत समझा जाता था और फलस्वरूप हमारे साथ कैसा अन्यायपूर्ण बर्ताव किया जाता था। उन मामलो मे, जहा बच्चो और वयस्को के बीच काफी समानता है, ऐसा होने की सम्भावना है और इस कारण ऐसा होने की सभावना यौन क्षेत्र मे बहुत अधिक है जहा दोनो के बीच बहुत कम समानता है।

इतने पर भी हमे यह निष्कर्ष नही निकालना चाहिए कि बचपन मे यौन गडबडिया होती ही नही है। जो कुछ भी हो, यह प्रश्न उतना गुणगत नही है जितना परिमाणगत है और प्रकार-भेदगत न होकर मात्रा-भेदगत है। चाहे वह प्रकार-भेदगत हो चाहे मात्रा-भेदगत, हम बहुत कम क्षेत्रो मे उसका कारण विकृत वशानुक्रम कह सकते है। बच्चा जब यौन आवेग के उन प्रसुप्त रूपो को प्रदर्शित करता है, जो स्वय उसके लिए अथवा दूसरो के लिए नुकसानदेह हो सकते हैं——जैसा कि वह सह-सुख-दु ख-अस्तित्व-भावना को खून-खच्चर की हद तक पहुचा दे या कामचौर्य के ढग की चोरी मे फसे तो हमे यह समझना चाहिए कि हमारा साबका विकृत वशानुक्रम के बच्चे से पड रहा है। उस हालत मे हमारा सारा ध्यान उस मर्ज को दूर करने के लिए चिकित्सा-सबधी अथवा आरोग्य-शास्त्र-सबधी उपयुक्त परिस्थितिया प्रस्तुत करने की ओर रहना चाहिए, क्योकि मामलो का सामना करते समय हमे यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि कुछ ऐसे व्यक्ति होते है जो दिमाग के अजीब घुमाव के कारण मानवीय क्रियाओ के वशानुक्रम-तत्त्व को समझने मे असमर्थ होते है, जब कि अन्य व्यक्ति उतने ही अजीब किंतु दिमाग के उलटे घुमाव के कारण पुरुषार्थ के तत्त्वो को समझने मे असमर्थ जान पडते हैं। इन दोनो प्रकारो के लोग अपनी दृष्टि की दिशा मे उपयोगी कार्य कर लेते है किंतु उनमे से कोई भी अकेले सपूर्ण जीवन-यत्र के

प्रकृतिस्थ और संतुलित लिंग तक पहुंचने में असमर्थ रहते हैं। वस्तुतः पक्ष को वास्तविक रूप से देख पाने के लिए इन दृष्टियों के समन्वय करने की आवश्यकता है। यदि हम ऐसा करें तभी हम स्वयंप्राप्त अवांछनीय तत्त्वों का इलाज कर सकते हैं और साथ ही यदि यह तत्त्व जन्मजात और गठनगत है तो उसे दूर करने के लिए सही परिस्थिति पैदा कर सकते हैं।

प्रारंभिक यौन जीवन में जो गडबडी होती है उसके दो प्रकार होते हैं, पर साथ ही उन गड़बड़ियो मे यह प्रवृत्ति होती है कि प्रतिकूल परिस्थितिया मिलने पर स्थायी हो जाएं। गडबडियो के ये दो प्रकार हैं—त्रुटियुक्त होने की प्रवृत्ति और अतिशयता की प्रवृत्ति। हमारी जैसी सभ्यता है उसमे बाह्य और आतरिक दोनो ही तौर से यौन कार्यकलाप के लिए उत्तेजनाए साथ ही तत्संबधी कार्य-कलाप पर पग-पग पर प्रतिबध होते हैं। दोनो प्रकार की गडबडियो के होने की विशेष संभावना रहती है। प्रारभिक जीवन मे त्रुटिजन्य गडबडिया अति-शयजन्य गडबडियो की अपेक्षा कम चिताजनक होती हैं क्योंकि वे सिर्फ विकास के धीमेपन को सूचित करती हैं, किंतु ऐसा नितात सभव है कि वयस्क जीवन मे पहुचने पर वह गडबडी शायद प्रबल हो जाए। यहा तक कि जब उसमे विलंब होता है तो सभव है कि वह अधिक सतोषपूर्ण और शायद प्रबल भी निकले। हैमिल्टन की जाच से यही इगित मिलता है। उन्होने देखा कि जितनी देर से यौन जिज्ञासाए उठेगी, विवाहित जीवन के उतने ही अधिक सतोषपूर्ण होने की सभावना होगी। ऐसा वे इस बात से कहते हैं कि उस हालत मे पूर्ण यौन परितृप्ति अधिक होती है और यही उनकी निगाह मे सबसे सुविधाजनक परीक्षण है। इस प्रकार हम सभ-वत हैमिल्टन के सबसे अजीब और अप्रत्याशित परिणामो की व्याख्या कर सकते है, जिसके अनुसार ऐसी स्त्रिया जो पहले-पहल यौन तथ्यो को जानकर डर गई थी या घबरा गई थी, बाद को चलकर उनका यौन जीवन अधिक सतोषजनक होता है (लगभग ५६ प्रतिशत पूर्ण यौन परितृप्ति प्राप्त कर लेती हैं)। उसके विपरीत वे स्त्रिया जिन्हे यौन जीवन के तथ्यो के बारे मे पहले-पहल पता होने पर प्रसन्नता, दिलचस्पी अथवा सतोष हुआ, उनका यौन जीवन बाद को इतना सुखी नही हुआ। हम यह मान सकते हैं कि वे बच्चिया जो सतुष्ट हुई थी उनका यौन जीवन पहले से ही चालू हो गया था और जो बच्चिया घबरा गई थी उनका कोई यौन जीवन नही था। अतएव यह परिणाम वस्तुत असगत होने के बजाय उस परिणाम से मेल खाता है कि जिन बच्चो को कम उम्र मे यौन जिज्ञासाए नही होती उनका अतत विवाहित जीवन अत्यत सतोषजनक होता है। यह आवश्यक नही है कि समय से पूर्व यौन परिपक्वता आवश्यक रूप मे बुरी ही हो, बल्कि भावी

कल्याण की दृष्टि से उसका होना उसके न होने की अपेक्षा आशाप्रद है। यहा इतना और बता दिया जाए कि डाक्टर कैथराइन डैविस को मालूम हुआ कि जिन लडकियो ने कभी हस्तमैथुन नही किया था अथवा वचपन मे यौन सवधी खेल नही खेले थे, बाद को चलकर उन लडकियो से कम सुखी हुई जिन्हे वचपन मे यौन अनुभव था। और पियर्सन का कहना है कि उन स्त्रियो के जो हस्तमैथुन की आदत को जारी रखती है, और उनके जो प्रारभिक जीवन मे ही उसे छोड देती है, स्वास्थ्य मे अतर होता है। जो स्त्रिया इस आदत को जारी रखती है वे पहले से अधिक स्वस्थ और अधिक शक्तिशाली थी। वे यह भी कहते है कि उन स्त्रियो के स्वास्थ्य मे जो कम उम्र मे ही हस्तमैथुन शुरू कर देती है और जो अठारह साल की उम्र के पश्चात् शुरू करती है, कोई खास अतर नही होता। पर यह एक ऐसा निष्कर्ष नही है, जिसे हम पूरी तरह मान सके।

जहा तक कि कमउम्र लोगो मे पाई जाने वाली काम-सवधी त्रुटियों और अतिशयताओ के इलाज का सवध है, त्रुटियो का इलाज किसी भी हालत मे आसान है। जैसा कि हम देख चुके है, प्राप्त प्रमाणो से ज्ञात होता है कि त्रुटिया यौवनारभ के पहले असतोषजनक होने की अपेक्षा सतोषजनक होती है, वशर्ते कि वे कृत्रिम रूप से उत्पन्न न हो, चाहे शारीरिक अथवा मानसिक वाह्य परिस्थितियो के जरिए, सिर्फ सतही तौर पर पैदा नही की गई हो। अतिशयता से होने वाली गडबडिया इतनी अधिक है और अक्सर इतनी जटिल होती है कि उनमे से प्रत्येक पर अलग-अलग विचार करना पडता है। ऐसे मामले मे एक बुद्धिमान् डाक्टर की जरूरत होती है, जो वच्चो और उनकी कठिनाइयो से भली भाति परिचित हो। पहले जमाने मे ऐसे डाक्टरो का अस्तित्व नही होता था। आज भी उनकी सख्या कोई अधिक नही है, पर ऐसी आशा की जा सकती है कि बाल-स्वभाव अध्ययन और बाल-पथप्रदर्शन के ढग पर, जिनका इस समय विकास किया जा रहा है, भविष्य मे बाल्यावस्था और किशोरावस्था की यौन गडबडियो का इलाज सुलभ होगा।

किंतु प्रधान रूप से वालको को सही रास्ता दिखाना घर मे ही शुरू होना चाहिए और अधिकाश बच्चो के लिए वही समाप्त भी हो जाना चाहिए। प्रकृति ने मा को ही बाल-पथप्रदर्शक के रूप मे चुना है—यद्यपि पिता का भी इसमे, यहा तक कि लडकियो के पथप्रदर्शन मे भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। आजकल मातृत्व एक गभीर कार्य बन गया है, जिसके द्वार सभी स्त्रियो के लिए नही खुलते। मातृत्व एक अनुशासन है और उसके साथ कई तरह के तकाजे लगे हुए है। स्त्रियों को परिस्थितियो को धन्यवाद देना चाहिए कि भविष्य के नेपोलियन तोपो की खुराक के रूप

मे अधिक बच्चे पैदा करने की माग नही करेगे, क्योकि दुनिया की आबादी यो ही जरूरत से ज्यादा बढ रही है। मानवता को आज चद किंतु श्रेष्ठतम माताओ की ही जरूरत है। हम निश्चयपूर्वक यह कह सकते है कि उसके परिणाम मे अततोगत्वा हमारे यौन जीवन मे एक क्राति होगी, जो शैशव से ही शुरू होती है, जैसे कि इस प्रकार की हरएक क्राति की शुरुआत होनी चाहिए।

इस दृष्टि से निकट भूतकाल की माताए मोटे तौर पर दो वर्गो मे विभाजित की जा सकती है—(१) बहुसख्यकवर्ग—जिन्होने अपने अज्ञान अथवा डरपोकपन के कारण प्राय पूरे तौर से अपने बच्चो मे सेक्स की उपेक्षा की, यह एक ऐसा रुख था जिसका परिणाम बाद को जाकर अच्छा ही हुआ और (२) अल्पसख्यकवर्ग—जो अधूरी जानकारी की बुराइयो से ग्रस्त थी और जिन्होने इस विषय के प्रति स्नायविक व्यग्रता और भय प्रकट किया, जो हर हालत मे हितकारी सिद्ध नही हुआ। आज की नूतन माता ऐसी दुनिया मे रहते हुए जिसमे सेक्स के सबध मे अपेक्षाकृत अधिक हितकर वातावरण का बनना शुरू हो गया है, अपने बच्चो के प्रति एक ऐसे रुख को ग्रहण करना स्वत ही सीख रही है जो पूर्वोक्त दोनो वर्गो से अलग है। वह सतर्क है और उसमे जानकारी अधिक है, किंतु साथ ही वह उन मामलो मे हस्तक्षेप करने के लिए अति उत्सुक नही है जिनमे उसका सामना ऐसी बातो तथा प्रवृत्तियो से होता है जो सदेहजनक मालूम होती है। किसी-किसी समय प्राय. सहजात बुद्धि से माताए यह महसूस करती जा रही है कि पूर्ण विकास तक पहुचने के पहले बच्चे को अनेक सोपानो मे से गुजरना पडेगा। वे यह जानती है कि अवांछनीय जान पडने वाले कार्यकलाप मे भी हस्तक्षेप करने की अत्यधिक व्यग्रता उस कार्यकलाप से अधिक हानिकर हो सकती है। और वे यह भी महसूस करती है कि सबसे खास बात है बच्चे को समझना, उसके विश्वास को प्राप्त करना और इस तरह उसकी कठिनाइयो मे उसकी विश्वसनीय सलाहकार बन जाना। यहा यह कह दिया जाए कि इस प्रकार का स्वयस्फूर्त ज्ञान बिलकुल ठीक है। जो लोग बच्चो और शिशुओ से घनिष्ठ रूप से परिचित है वे उदाहरणस्वरूप यह जानते है कि वयस्क-जीवन मे जारी रहने वाला हस्तमैथुन ऐसे लोगो मे हो सकता है जिनकी माताएं पहले से ही इस आदत को छुडाने के लिए बहुत कोशिश करती थी। वे यह भी जानते है कि बच्चा शैशवकाल से ही अगूठा चूसना शुरू कर सकता है और उससे उसे सुख मिलता है। कुछ लोग यह मानते है कि यह प्रवृत्ति बाद को चलकर हस्तमैथुन मे परिणत हो जाती है। पर यदि इसमे बाधा न दी जाए तो बदले मे मैथुनिक तृप्ति के अधिक निश्चित साधन न अपनाने पर भी यह आदत छूट सकती है।

जब हम घर के बाद अपनी नज़र स्कूलो पर डालते है तो हमारी कठिनाइया

और भी वढ जाती है, क्योकि स्कूलो मे वच्चे एक भीड के रूप मे इकट्ठा कर दिए जाते है और उनका पथप्रदर्शन वे नही कर पाते जो वच्चो को सवसे अधिक पहचानते और प्यार करते है। निश्चय ही यह एक अस्वाभाविक दशा है और इसमे वुराइयो की सभावना कई गुनी वढ जाती है। एलिजावेथ गोल्डस्मिथ ने 'सभ्यता मे सेक्स' नामक अपनी पुस्तक मे एक स्कूल के सवध मे लिखा है—"हम इसी निष्कर्ष पर पहुचे कि यह वाछनीय है कि छोटे वच्चो की हस्तमैथुनिक गतिविधि को न रोका जाए, और उसकी सारी परिस्थिति और वच्चा किस प्रकार परिस्थिति के प्रति प्रतिक्रिया करता है, इसका अध्ययन किया जाए। साथ ही इस वात पर जोर दिया जाए कि वह स्वस्थ और वाहरी गतिविधियो मे भाग लेने वाला सक्रिय वालक वने और वह वालक अन्य लोगो के साथ उसके जो सम्वन्ध है, उनसे और अपनी गतिविधि से सतुष्ट रहे।" यहा इस वात पर जोर तो दिया गया है, पर हमे इस नीति के परिणामो के वारे मे कुछ नही वतलाया गया है। इसमे सन्देह नही कि इस वारे मे अभी निश्चित रूप से कुछ कहने का समय नही आया है। हमे तव तक प्रतीक्षा करनी चाहिए जव तक कि इस तरह का वालक वयस्क होने पर स्वय अपने प्रारम्भिक जीवन का सिहावलोकन न कर ले। फिर भी यह एक ऐसी नीति है जिसे जागरूकता के साथ ही एक हद तक कार्यान्वित किया जा सकता है।

जैसा कि हम जानते है, स्कूलो मे जिस साधारण नीति का अनुसरण किया जाता है वह यह होती है कि देखकर भी अनदेखा किया जाता है और जव कोई अपराधी बिलकुल रगे हाथो पकडा ही जाता है तो फिर उसे वाकी लोगो के सामने नमूना वनाकर सजा दी जाती है। इसे ह्यू-डी-सेलिनकोर्ट ने अपने एक उपन्यास 'एक छोटा बालक' मे अच्छी तरह चित्रित किया है और इस प्रश्न को वड़े सराहनीय ढग से प्रस्तुत किया है। जहा लडकियो के आत्ममैथुनिक कार्यकलाप विविध प्रकार के होते हुए भी साधारणत बहुत गुप्त रूप से और अक्सर कम या ज्यादा मात्रा मे अनजान मे किए जाते है, वहा लडको का आत्ममैथुनिक कार्यो को छिपाने का कम झुकाव होता है। वडे-वडे स्कूलो मे कई वार 'हस्तमैथुन क्लव' जैसी गुप्त सस्थाए होती है। अवश्य ही इन सस्थाओ के अस्तित्व के बारे मे शिक्षको को कुछ पता नही होता। ऐसे केन्द्रो के उत्तराधिकार के रूप मे प्राप्त अतिकामुक लडके सदस्य होते है। ये लडके उसी प्रकार के होते है जिन्हे स्पष्ट रूप से अव समस्या-बालक कहा जाता है। ये वालक रोगग्रस्त दशा मे होने के साथ ही प्रभावशाली होते है। इसलिए उनका अपने उन साथियो पर अनुचित प्रभाव पडता है जो अपेक्षाकृत सहीदिमाग होते है, पर कच्ची उम्र के होते है, इस कारण उनपर वहुत जल्दी असर पडता है। यदि वच्चो को स्वाभाविक विकास के लिए स्वतन्त्रता देना है

तो उसके लिए यह एक बहुत जरूरी शर्त है कि जव वहुत से बच्चे इकट्ठे रखे जाए तो इस तरह के वच्चो को वडी सावधानी से अलग रखा जाए। प्रयोगात्मक प्रयत्नो के नतीजो से पता चलता है कि यौन क्षेत्र के अलावा भी सव तरह की आरोग्य-सम्बन्धी तथा दूसरे किस्म की बुरी आदतो को प्रोत्साहन मिलता है और प्रभावशाली बालक क्रूरता-सम्वन्धी अपने आवेगो को, चाहे वे स्वाभाविक हो या रोगग्रस्त, दुर्वलो को पीडित करने के लिए उपयोग मे ला पाते हैं। इस तरह जो लोग इस आदर्श का समर्थन करते हे कि वच्चे को विना किसी विघ्न-बाधा या प्रतिवन्ध के स्वाभाविक विकास के सोपानो मे से गुजरने दिया जाए उनके सामने यह कठिनाई आती है कि उन्हे एक तो अपने हस्तक्षेप करने की स्वाभाविक इच्छा पर नियन्त्रण रखना पडता है, साथ ही उन्हे ऐसे दूसरे प्रभावो को हटाने के लिए सतर्क रहना पडता है जो स्वाभाविक विकास को वाधित या गलत रास्ते पर ले जाते हैं। इन विच्युतियो के इलाज के लिए कभी-कभी ऐसे समस्या-वालको को पृथक् करना जरूरी हो जाता है, पर यह अलग करना भी व्यक्तिगत ढग पर कार्यान्वित होना चाहिए क्योकि एक समस्या-बालक दूसरे समस्या-वालक से विलकुल अलग होता है और सेकडो प्रकार-भेद होते हैं। उनके इलाज के लिए यह जरूरी है कि विशेष प्रकार की ऊचे दरजे की योग्यता काम मे लाई जाए। ऐसे वच्चो मे खोजने पर विकृत यौन तत्त्व अक्सर मिलता है, साथ ही उनके स्वभाव की विलक्षणताए यौन क्षेत्र के वाहर वहुत दूर तक फैली रहती हैं और अक्सर समाज-विरोधी होती हे।

जो भी हो, यह हमेशा सही माना जा सकता है कि साधारण वच्चो के बारे मे जिम्मेवारी अपरिहार्य रूप से प्रथम स्थान मे माता-पिता की, विशेषत माता की होनी चाहिए। यही कारण है कि मातृत्व को अव केवल जैविक कार्य के रूप मे नही माना जा सकता, वल्कि वह अव एक शिल्प वन गया है जिसके लिए प्रवुद्ध और प्रशिक्षित बुद्धि की जरूरत है और ऐसी स्त्रियो को माता नही वनना चाहिए जो दिमाग और साथ ही शरीर के स्वाभाविक झुकाव के कारण मातृत्व के उपयुक्त न हो। अयोग्य, असावधान अथवा वेवकूफ माता-पिताओ के वच्चो पर पडने वाले वुरे प्रभाव को अव सामान्यत स्वीकार किया जाने लगा है। वे माता-पिता भी जिन्हे इनमे से किसी भी वर्ग मे रखे जाने पर आपत्ति होगी, जव अपने काम-धन्धो मे डूवे रहते हैं या परिवर्तनशील मानसिक लहरो मे वह जाते हे, तव वे भी अपने वच्चो के साथ वारी-वारी से कभी अनुचित कडाई का तो कभी अनुचित आसक्ति का व्यवहार करते हैं। इस व्यवहार से वे स्वय अपने प्रति अपने वच्चो मे आलोचना के विपय वन जाते हैं। वात यह है कि वच्चे अपने माता-पिता के अच्छे या वुरे होने का फैसला करते हैं और वे इस वात के लिए उत्सुक रहते

है कि उनके माता-पिता पूर्णता के आदर्श हो और इसलिए वे अपने माता-पिता की आलोचना करते समय बाल की खाल उधेडते है।

प्रोफेसर विनिफ्रेड कुलिस ने लदन मे माता-पिताओ के सघ की एक सभा मे भाषण देते हुए बतलाया था, "दूसरे बच्चे ही बच्चो को श्रेष्ठ रूप से अनुशासित करते है और उन्हे आत्म-नियन्त्रण सिखलाते है।" यदि इस प्रसग को विचार के दायरे मे लिया जाए तो यह बहुत ही समझदारीपूर्ण वक्तव्य है। हमे अपनी बराबरी वालो के साथ ही रहकर जीना पडता है और हम बिना अनुशासन और नियत्रण के उनके साथ चल नही सकते। आवेगो का प्रतिरोध करने और कुछ स्वाभाविक सभावनाओ को दबाने के अर्थ मे जीवन मे हमेशा अवदमन होना चाहिए। सामाजिक जीवन मे निर्बाध उच्छृखलता के लिए कोई जगह नही है। जैसा कि फ्रायड मनोविश्लेपण के बारे मे दिए गए अपने सत्ताइसवे भाषण मे प्रशसनीय रूप से कहते है, "मुक्त रूप से जीवन-यापन करना स्वत एक दमन है" क्योकि वह हमारे आधे आवेगो को और सब से मानवीय आधे खड को कुचल देता है, इसीमे हमारा अतिम सुख निहित रहता है। यह अपेक्षाकृत अच्छा होगा कि बडे सयाने लोग अनुशासन और नियत्रण लादने वाले व्यक्ति न बने, बल्कि जब कठिनाइया आए तो पथप्रदर्शक और बीच-बचाव करने वाले बने। बहुत ही थोडी उम्र से आत्म-अनुशासन और आत्म-नियत्रण का निर्माण होना शुरू हो जाता है। निर्माण का यह कार्य उस कच्ची उम्र मे समवयस्क बालको के बीच सब से स्वाभाविक और हितकर रूप से हो सकता है। जिस शिक्षा का कोई भी मूल्य है, वह समान लोगो मे जिदगी बिताकर ही प्राप्त की जा सकती है।

सहायक पुस्तक-सूची

ए० मोल—The Sexual Life of the Child

एस० फ्रायड—Three Contributions to Sexual Theory.

स्टैन्ले हाल—Adolescence.

हैवलाक एलिस—'Sexual Education', Studies in the Psychology of Sex, Vol VI

विलियम तथा डोरोथी थामस—The Child in America Behaviour, Problems and Programs.

ओ० रैंक—Modern Education

मल-मूत्र-त्याग मे यौन आनंद

बचपन मे प्राय. सब से अधिक पाए जाने वाले कामात्मक प्रतीक मल-मूत्र-त्याग से सबधित वर्ग के होते है, जिनके महत्त्व पर फ्रायड तथा अन्य लोगो ने जोर दिया है। मूत्र-त्याग और मल-त्याग की प्रणालिया यौन केद्रो के इतने निकट है कि दोनो वर्गो के बीच शारीरिक और मानसिक रूप से रहने वाले घनिष्ठ सबध स्पष्ट है। मूत्र और मल-त्याग ऐसी प्रक्रियाए है जो किसी भी हालत मे कम उम्र के दिमाग मे दिलचस्पी पैदा किए बिना नही रह सकती क्योकि वे चीज़ों के पैदा करने के बचकाने आवेग को सतुष्ट करती है। इस प्रकार वे कामात्मक आवेग के प्रारभिक रूप है, साथ ही उनमे शक्ति की अभिव्यक्ति भी होती है। हैमिल्टन ने अपनी जाच के दौरान मे देखा कि उनके द्वारा परीक्षित २१ प्रतिशत विवाहित पुरुषो और १६ प्रतिशत विवाहित स्त्रियो को बचपन मे निष्कासित मल और मूत्र के बारे मे दिलचस्पी रही और उन्हे मल-मूत्र-निष्कासन से संबद्ध खेलो तथा अजीब बातो का अनुभव था। ऐसा जान पडता है कि इन कार्यो मे स्नायविक शक्ति का भी कुछ हिस्सा है, जो आगे चलकर यौन दिशा मे चली जाती है, जवान लडकियो मे और कभी-कभी स्त्रियो मे भी जब पूर्ण यौन उत्तेजना हो जाती है तो पूर्ण परि-तृप्ति अनियन्त्रित और ठहर-ठहरकर होने वाले रूप से मूत्र-त्याग का रूप ले सकती है। सम्भवत निद्राकाल मे मूत्रादि-त्याग का कुछ सम्बन्ध यौन क्रियाशीलता और कभी-कभी हस्तमैथुन से रहता है। फ्रायड का विश्वास है कि बचपन मे आनन्ददायक यौन अनुभूति के लिए मलाशय मे मल को रोक रखना दृष्टिगोचर हो सकता है, साथ ही यह भी निश्चित है कि बाद के जीवन मे इसीलिए पेशाब रोक ली जाती है। बच्चो मे अक्सर यह विश्वास पाया जाता है कि वयस्को के मैथुनिक कार्यो का मल-मूत्र त्यागने से कुछ सम्बन्ध है। मल-मूत्र-त्याग आदि जिस रहस्य से ढके रहते है, उससे इस प्रकार के सिद्धान्त की पुष्टि होती है। इन कार्यो मे ली जाने वाली दिल-चस्पी का यौवनारम्भ की अवस्था के पश्चात् भी, विशेषकर लडकियो मे, बना रहना असम्भव नही है पर जैसे-जैसे यौन विषयो के बारे मे दिलचस्पी बढती जाती है इन कार्यो मे दिलचस्पी घटती जाती है और कभी-कभी लज्जा की भावना के साथ उसका अन्त हो जाता है। कुछ अवसरो पर वह वयस्क यौन आवेग मे भी बनी रहती है। अपेक्षाकृत सामान्यत' शैशवकाल मे मल-मूत्र-निष्कासन मे होने वाली दिलचस्पी का जब कमोवेश दमन किया जाता है तो वह ऐसी परिस्थितियो मे फ्रायड-वर्णित हिस्सा अदा करती है। पर यौवनारम्भ तक मल-मूत्र-त्याग मे यौन दिलचस्पी स्वाभाविक समझी जा सकती है। बात यह है कि यौवनारम्भ के पहले तक बच्चे मे बहुत सी बाते ऐसी होती है जो आदिम मन मे पाई जाती है। पौराणिक गाथाओं

तथा लोक-कथाओ से ज्ञात होता है कि मल-मूत्र-त्याग को बहुत महत्त्व दिया जाता था। किन्तु यौवनारम्भ तक मल-मूत्र-त्याग की प्रक्रिया मे दिलचस्पी का होना स्वाभाविक समझना चाहिए, इस सोपान मे बच्चे मे और जहा तक इन मल-मूत्र-निष्कासन-सम्बन्धी दिलचस्पियो का वयस्क-जीवन मे बने रहने का प्रश्न है, भले ही उनमे कुछ विभिन्नता हो, वह विभिन्नता सामान्यत पृष्ठभूमि मे रहती है और वही रहकर किसी भी परिस्थिति मे यौन क्रीडा की प्रक्रिया मे एक वैध हिस्सा अदा कर सकती है।

उग्र दशाओ, विशेषकर मल-त्याग मे आनन्द लेने की प्रवृत्ति की दशाओ के वर्णन प्राप्त होते हे। ऐसी दशाओ मे (मोल ने एक ऐसे मामले को पूरे ब्योरे के साथ रिकार्ड किया है) मल-त्याग की सम्पूर्ण क्रिया और निष्कासित पदार्थ मे दिलचस्पी इतनी बढ सकती है कि वह समस्त स्वस्थ और स्वाभाविक यौन दिलचस्पियो का स्थान ले ले। अल्प मात्रा मे यह प्रवृत्ति रहने पर व्यक्ति गुदा मे मैथुनिक उत्तेजना का अनुभव करता है, जो बचपन से ही कोष्ठबद्धता अथवा आनन्द का अनुभव करने के उद्देश्य से मल-त्याग की क्रिया को रोकने के आवेग से सम्बद्ध समझी जाती है। मनोविश्लेषक मानते हैं कि यह आवेग बचपन की प्राथमिक प्रवृत्ति पर आधारित है। बचपन के बाद जब इस प्रवृत्ति का दमन किया जाता है तो उससे सुव्यवस्था, मितव्ययिता यहा तक कि कृपणता पैदा हो सकती है। और यदि उसका दमन न किया जाए तो इन गुणो के विपरीत मानसिक लक्षण पैदा हो सकते हैं। यह विषय और विचार-सापेक्ष है। हैमिल्टन ने इस बात पर विचार किया। उन्हे दस व्यक्ति (नौ पुरुष और एक स्त्री) ऐसे मिले जिन्होने इस बात से तो इन्कार किया कि उन्हे गुदा से मैथुनिक उत्तेजना मिलती है, पर उन्होने यह माना कि वे बचपन से ही कोष्ठबद्धता से पीडित रहे। इन व्यक्तियो मे असाधारण रूप से एक भारी अनुपात मे, सूमपन, सुव्यवस्था के प्रति अनुराग, सादवाद, मासोकवाद, धन अथवा अन्य चीजो को दबाकर रखना, यहा तक फिजूलखर्ची आदि बाते देखी गई। पर ये नतीजे इतने अस्पष्ट और परस्पर-विरोधी थे कि कोष्ठबद्धता के साथ वयस्क मानसिक गुणो का कोई स्पष्ट सम्बन्ध नही स्थापित होता था।

बाल्यावस्था के पश्चात् मल-त्याग के आनन्द मे और मूत्र-त्याग के आनन्द मे परस्पर साधारण रूप से सम्बन्ध नही रहता, यद्यपि अल्पमात्रा मे उनमे सम्बन्ध पाया जा सकता है। मल-त्याग मे आनन्द की उग्र दशाए पुरुषो मे पाई जाती हैं। मूत्र-त्याग मे आनन्द की दशाए स्त्री और पुरुषो दोनो मे तुलनात्मक रूप से अधिक पाई जाती है, पर इसमे भी स्त्रियो मे पुरुषो की अपेक्षा कुछ अधिक पाई जाती हैं। मूत्र-त्याग की प्रक्रिया का यौन-अगो से निकट और स्पष्ट सम्बन्ध रहता है, यही बात

स्नायविक क्षेत्र मे भी है और इस बात से मूत्र-त्याग मे आनन्द को प्रोत्साहन मिलता है। कभी-कभी नवयुवतियो और स्त्रियो को पुरुषो से पेशाब के प्रति रुख के विषय मे होड लगाने की इच्छा होती है। ऐसी स्त्रियो के लिए इस प्रकार की प्रतियोगिता सम्भव हो सकती है जो जवान है और जिनके बच्चे नही हुए है क्योकि प्रसूति के बाद मूत्र-त्याग करने वाली पेशियो का बल कम हो जाता है। ऐसी दशाओ मे किसी समलैगिक मैथुनिक प्रवृत्ति का होना जरूरी नही है।

सैजर ने जिसे मूत्र-प्रणाली की मैथुनिक उत्तेजना की सज्ञा दी है उसे कभी-कभी बहुत महत्त्व दिया जाता है। व्यापक अर्थ मे इसे मूत्रयुक्त मैथुनिक उत्तेजना की सज्ञा दी जा सकती है और इसमे सिर्फ मूत्र-प्रणाली और मूत्र-त्याग ही नही बल्कि मूत्राशय से लेकर मूत्ररध्र तक मूत्रयन्त्र की परिधि मे आने वाले सभी अवयव आ जाते है। यह कहा जाता है कि जब यह मूत्रात्मक यौन उत्तेजना स्वाभाविक दिखलाई देने वाली क्रिया से यौन क्षेत्र और यौन क्षरणो के क्षेत्र मे स्थानान्तरित हो जाती है तो मूत्र-सम्बन्धी गडबडियो के साथ ही वीर्य-सम्बन्धी गडबडिया हो सकती है। इसके बाद यह तर्क भी दिया जाता है कि इस प्रकार की मूत्रात्मक मैथुनिक उत्तेजना का प्रसार उच्चतम मानसिक क्षेत्र तक भी हो सकता है क्योकि शिशु के सामने पहले कर्तव्य के रूप मे पहली बात यही आती है कि मूत्र-त्याग और मल-त्याग का नियमन किया जाए।

बच्चो की बिस्तर मे पेशाब करने का काम से सम्बन्ध जोडने की प्रवृत्ति बहुत पहले से मानी जाती है। फ्रायड और दूसरे मनोविश्लेषको ने अनियन्त्रित मूत्र-त्याग और मूत्र-प्रणाली की मैथुनिक उत्तेजना का सम्बन्ध उच्चाकाक्षा और आक्रमणात्मक प्रवृत्ति से भी जोडा है। शायद इस विचार की उत्पत्ति इस बात से हुई हो कि बच्चियो मे मूत्र-क्रिया मे विशेष दिलचस्पी बच्चो की मूत्र-क्रिया के साथ होड मे पैदा होती है। इस प्रकार की होड के साथ मूत्रात्मक कामात्मकता का कोई वास्तविक या निरन्तर सम्बन्ध नही मालूम होता। क्योकि जिन लोगो मे इस प्रकार की कामात्मकता नही है, उनमे भी मूत्रात्मक कामात्मकता बहुतायत से पाई जाती है।

बचपन मे साधारणत पानी के प्रति दिलचस्पी और विशेषत मूत्र-त्याग सबधी कार्यो मे पाई जाने वाली दिलचस्पी के लिए मैने प्राय 'अडीनिज्म' शब्द का प्रयोग किया है। यह दिलचस्पी बाद के जीवन मे भी बनी रहती है। यह दिलचस्पी स्त्रियो मे इस दशा मे सामान्यत पाई जाती है कि न तो वह निश्चित रूप से निच्युति का ही रूप लेती है और न तो यौन आवेग का ही स्थान लेती है। स्त्रियो मे इस दिलचस्पी के होने का लेखा-जोखा उनके जीवन की विविध परिस्थितियो से प्रस्तुत किया जा सकता है। अब यह दिलचस्पी शायद सामाजिक परिस्थितियो मे परि-

वर्तन के कारण कम होती जा रही है। फिर भी पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे पानी के प्रति होने वाले प्रेम और स्पर्शजन्य सुख पाने की प्रवृत्ति मे घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। पुरुषो मे वीर्य-निष्कासन और मूत्र-निष्कासन की प्रक्रिया बिलकुल अलग-अलग होती है। यानी जिस समय एक क्रिया होती है उस समय दूसरी नही होती। स्त्रियो मे पानी के प्रति प्रेम साधारण रूप से पुरुषो से ज्यादा पाया जाता है, इसका कारण यह है कि स्त्रियो मे स्पर्शजन्य सम्पर्कों मे अधिक आनन्द की प्रवृत्ति होती है।

सहायक पुस्तक-सूची

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex, Vol V, also 'Undinism' Studies in the Psychology of Sex, Vol VII

अर्नेस्ट जोन्स—Papers on Psycho-Analysis, 'Anal Eroticism,' Chs XXX and XL

कामात्मक अतिवाद

मैथुनिक प्रतीकवादो मे सब से विशिष्ट प्रकार कामात्मक फेटिसिज्म या अतिवाद का है। इस शब्द का प्रयोग सब से पहले बिने ने सन् १८८८ मे किया था। कोई भी मैथुनिक प्रतीकवाद जैसे कामाग-प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी अतिवादयुक्त हो सकती है, और प्रत्येक अतिवादात्मक वस्तु प्रतीक बन सकती है। मैथुनिक प्रतीक बनने वाले ऐसे पदार्थो की सख्या की कोई व्यावहारिक सीमा नही है, जिनमे केवल शरीर के अग ही नही बल्कि निर्जीव पदार्थ भी आ जाते है। कोई भी ऐसा पदार्थ नही है जो इस प्रकार अर्थयुक्त न बन सके। यही कारण है कि अश्लीलता को कानून की मान्यताप्राप्त परिभाषा के अनुसार इस रूप मे मानना और उसे दबाने की कोशिश करना अव्यावहारिक है "कि वह उन लोगो को विकृत और भ्रष्ट करती है जिनके दिमागो पर ऐसी अनैतिक बातो का असर हो सकता है।" इस सबध मे डा० जेलिफ की एक रोगिणी जेनिया एक्स ने लिखा था कि उसके जीवन मे तेरह-चौदह साल की उम्र से ही यौन प्रतीक कष्टकर रूप से आने लगे। उसके ही शब्दो मे—"इस उम्र से ही मेरा सघर्ष सज्ञान रूप से यौन-सबधी रहा और बाद को चलकर यह सघर्ष अधिक हो गया। मै अपने को हमेशा चारो ओर से, विशेष रूप से शिश्न के प्रतीको से, घिरी हुई पाती हू। बगीचे मे पानी सीचने का

रबर का नल, नल आदि से निकलने वाली पानी की धार, विशेष रूप से नाशपाती और अन्य लंबे प्रकार के फल, लटकती हुई मंजरियां, फूलों के बीच स्थित स्त्री के सिर, किसी भी गोल छिद्र में लगी हुई छडी या छड़ी के आकार की वस्तु, ये सब मेरे लिए शिश्न के प्रतीक हैं। इसके साथ ही ये वस्तुएं भी मेरे लिए शिश्न के प्रतीक हैं या मैथुनिक उत्तेजना देती हैं—कान का लटकता हुआ निचला हिस्सा या ललरी, जिसे मैं हमेशा आवेग के साथ दबाती रही हूं; मेरे दांत और मेरी जीभ (अक्सर मैं दांतों को जीभ से तब तक ठेलती रहती हू जब तक मैं इस क्रिया से ऊब न जाऊं) मेरी अपनी कोई भी उंगली जिसे मैं किसी आकस्मिक यौन विचार को दबाने के लिए अपनी ओर बार-बार करती हूं, पर जल्दी ही भूल सुधारने के उद्देश्य से दूसरी उंगलियों के साथ मोड लेती हू; मेरा अंगूठा (जिसे मैं अपनी यौन भावनाओं का दमन करने के उद्देश्य से अनियन्त्रित रूप से ही मुट्ठी मे बाध लेती हू); वर्णमाला के कुछ अक्षर आदि। ये कुछ प्रतीक हैं जिनसे मैं हर क्षण परेशान रहती हूं और जिनके कारण शिश्न अथवा पुरुष और स्त्री के अंगो के वास्तविक सम्पर्क की याद आ जाती है।"

मार्किनोव्स्की २७ साल की उम्र की अत्यत बुद्धिमती विवाहिता स्त्री की दशा का वर्णन करते हैं। यह स्त्री स्नायविक रोगग्रस्त थी और उसमे रोगग्रस्त विच्युति की प्रवृत्ति मौजूद थी। इस दशा मे यौन प्रतीको की बहुमुखी जटिलता फिर एक बार हमारे सामने आती है। ये प्रतीक उसे सपनो मे दिखलाई देते थे और वह इन सपनो की व्याख्या अपने ढग से करने मे बडी होशियार थी। ये प्रतीक निम्न-लिखित हैं—बदरगाह मे लगर डाले हुए जहाज और पानी मे चलते हुए जहाज मैथुन के प्रतीक थे; पानी मा के शरीर का प्रतीक था (यह धारणा बचपन के उस विचार से सम्बद्ध थी कि मैथुन और मूत्राशय मे सम्बन्ध रहता है)। मरना (एक प्रकार का त्याग होने के कारण) प्रेम करने का प्रतीक है, छुरी शिश्न का प्रतीक है; कीडे और साप पुरुष-अग के छोटे प्रतीक हैं, घोडे और कुत्ते तथा फारते भी मैथुनिक प्रतीक हैं (उसने एक बार एक कुत्ते के शिश्न को चूमा था), रेल का इजन, पेड और केला शिश्न के प्रतीक हैं (बचपन से ही वह रेल के इजन को आकर्षक पाती थी), जान से मार डालना मैथुन करने का प्रतीक था (कभी-कभी उसके विचार कामात्मक निष्ठुरतायुक्त रहते थे); अनेक मछलियां मैथुन की प्रतीक हैं, पानी बरसना, मूत्र और आसू वीर्य के प्रतीक हैं, पेशाब करने की चाह यौन उत्तेजना का एक रूप है।

इनमे से अधिकांश प्रतीक किसी भी जगह और किसी भी व्यक्ति के लिए मैथुनिक प्रतीक बन सकते हैं। प्रतीक के यौन आकर्षण के केन्द्र के रूप में परिणत

होने के लिए यह जरूरी है कि इस ओर पहले से ही असदिग्ध स्नायविक रोगग्रस्त प्रकार की पूर्वप्रवृत्ति मौजूद हो, यद्यपि यह प्रवृत्ति हर हालत मे हमेशा ही स्पष्ट नही रहती। इसके साथ ही यह भी जरूरी है कि कोई ऐसा प्रवल प्रभाव भी रहे जिसके द्वारा प्रवल यौन उत्तेजना के क्षणो मे प्रतीक वाली वस्तु तीव्रता के साथ चेतना के समक्ष प्रस्तुत की जाए। विना किसी पूर्वप्रवृत्ति के ऐसे किसी आकस्मिक सयोग से मुश्किल से ही कोई वस्तु (वहुत थोडे से अग को छोडकर) अतिवादी प्रतीक वन सकती हैं। कारण यह है कि ऐसे आकस्मिक सयोग तो लगातार होते ही रहते हैं। हिर्शफेल्ड का तर्क है कि प्रतीक वाली वस्तु मे अक्सर व्यक्ति की विशिष्ट प्रकृति की अभिव्यक्ति होती है। एक नौकरानी के दिमाग पर एक सिपाही का लाल कोट एक प्रतीक वाली वस्तु के रूप मे असर करता है क्योकि वह लाल कोट नौकरानी के लिए युद्ध और वीरता का प्रतीक है। नौकरानी पर इस वात का प्रभाव पडता है। ऐसा भी हो सकता है कि अनेक अपेक्षाकृत कम स्पष्ट दशाओ मे प्रतीक वाली वस्तु वस्तुत व्यक्तिगत स्वभाव की विलक्षणता पर आधारित आदर्शो को व्यक्त करे। परन्तु अधिकाश मामलो मे यह वात प्रमाणित नही की जा सकती। साथ ही प्रतीक वाली वस्तु की प्रकृति कोई विशेष भाव-व्यजक न होने के कारण प्रमाण की पकड मे नही आती। एक स्त्री को पेशाव करते समय देखकर एक लडका उसका प्रशसक वन जाता है। उस समय उसने भग-प्रदेश के घने वालो की एक झलक पा ली और फिर भग-प्रदेश के वाल उसके लिए प्राय प्रतीक वाली वस्तु वन जाते हैं। एक नवयुवक फर्श पर लेटा है, इसी समय एक सुन्दर लडकी खेल-खेल मे उसके ऊपर पैर रख देती है और तब तक खेलना जारी रखती है जब तक यौन उत्तेजना न हो। इस दशा मे उस नवयुवक के लिए पैर जीवन भर के लिए प्रतीक वाली वस्तु बन जाता है।

अल्प मात्रा मे ऐसी प्रतीक वाली वस्तु के प्रति अनुराग पूर्ण रूप से स्वाभाविक है। प्रत्येक प्रेमी अपनी प्रेमिका के किसी व्यक्तिगत लक्षण अथवा उसके सम्पर्क मे आने वाले अनेक पदार्थो मे से कुछ पदार्थो के प्रति विशेष रूप से आकर्षित हो सकता है। पर जब यह प्रवृत्ति दूसरी प्रवृत्तियो से अलग हो जाती है, या जब उसका साधारणीकरण हो जाना है तो वह निश्चित रूप से विकृति वन जाती है क्योकि मैथुनिक पात्र के न होने पर भी प्रतीक वाली वस्तु से सिर्फ उत्तेजना ही नही बल्कि पूर्ण यौन परितृप्ति भी हो जाती है और समागम की इच्छा नही होती।

अपेक्षाकृत कमउम्र, परन्तु निश्चित रूप से विकृतमस्तिष्क लोगो के मामलो मे कर्ता अपनी प्रतीक वाली वस्तु को प्राक्क्रीडा के प्रारम्भिक सोपान मे इस प्रकार व्यवस्थित करता है कि प्रतीक वाली वस्तु से जागरित होने वाली भावनाए

अवरुद्ध और गुमराह नही हो पाती। इस प्रकार वह अपना इलाज स्वय कर लेता है। अधिक गम्भीर दशाओं मे कर्ता को अपनी विकृति यानी प्रतीक वाली वस्तु से इतनी अधिक और इतनी आसानी से परितृप्ति मिलती है कि उसे कभी स्वाभाविक बनने की इच्छा ही नही होती। कई दशाओ मे इस प्रकार के प्रतिवाद से विविध समाज-विरोधी अपराध होते है। विशेषकर वाछित प्रतीक वाली वस्तुओ, जैसे जूते, रूमाल, पहनने के कपड़े आदि की चोरी की जाती है। यदि कानूनी अपराध की नौवत न भी आए तो अनुचित रूप से होने वाली उत्तेजना से खीझ तो पैदा हो ही सकती हे। उदाहरण के लिए एक युवती की ऐसी दशा को लिया जाए जिसके लिए चश्मा प्रतीक वाली वस्तु बन गया था और जब कभी वह किसीको यहा तक कि स्त्री को भी चश्मा पहने देखती थी तो वह उत्तेजित हो जाती थी। ऐसे मामलो मे पहले इलाज के लिए सम्मोहन का प्रयोग किया जाता था। कई बार इसमे सफलता भी मिलती थी।

मैथुनिक प्रतिवाद के कुछ रूप ऐसे है जो मनोवैज्ञानिक प्रभाव की दृष्टि से अत्यन्त जटिल हो सकते है। पैरो के प्रतीक वाली वस्तु बन जाने के बारे मे यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सभ्यता की परिस्थितियों मे पैरो के बहुधा खुले न रहने के कारण जूता ही प्रतीक वाली वस्तु बन जाता है। यहा यह बता दिया जाए कि सारे ससार मे यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि पैरो का मैथुनिक अगो से सम्बन्ध हो जाता है और इस प्रवृत्ति से पैर प्रतीक वाली वस्तु के लिए प्राय: स्वाभाविक आधार दिखलाई देता है। यहा तक कि यहूदियो मे भी 'पैर' शब्द का यौन अगो के लिए लाक्षणिक रूप में प्रयोग किया जाता था। उदाहरण के लिए हम 'इसाया' मे एक स्थान पर 'पैरो के बाल' लिखा पाते है, जिसका आशय 'भगप्रदेश के बाल' से है। इसके अतिरिक्त दुनिया के दूर-दूर के भागो मे पैर को नग्नता का केन्द्र माना जाता रहा है। स्पेन मे भी ऐसा ही था और सन् १७७७ मे पेड्रोन ने लिखा था—"स्त्रियो मे अब पैर ढकने की प्रथा का फैशन उठता जा रहा है। जैसाकि पहले जमाने मे होता था अब वैसा नही होता। किसी स्त्री के लिए पैर दिखला देना अब प्रेम को स्वीकार करने के अर्थ मे नही लिया जाता जैसा कि यहूदी नही प्राचीन रोम मे भी था।"

स्वस्थ प्रेमी के लिए भी पैर शरीर के सब से आकर्षक अगो मे से होते है। स्टैन्ले हाल ने इस सम्बन्ध मे एक प्रश्नावली तैयार की थी। जिन युवक और युवतियो ने उस प्रश्नावली के उत्तर दिए थे उन्होने अपने से भिन्न लिंग के व्यक्ति के शरीर के सब से प्रशसित अगो के वर्ग मे (आख, बाल, कद, आकृति) पैरो को पाचवा स्थान दिया था। हिर्शफेल्ड जैसे अन्य निरीक्षक देखते है कि प्रतीक वा

वस्तु के रूप मे पैर की अपेक्षा हाथ का प्रयोग अधिक पाया जाता है। दुधमुहे शिशुओ की दिलचस्पी विचित्र रूप से सब से पहले अपने ही पैरो मे होती है। अधिकाश सभ्य देशो मे आज सहीदिमाग प्रेमी अपनी प्रेमिका की आख के समान उसके पैरो को प्रधान रूप से महत्त्व नही देता। कुछ लोगो के लिए, जो अल्प सख्या मे होने पर भी नगण्य नही है, पैर या जूता स्त्री का सब से अधिक आकर्षक अग रहता है और कुछ रोगग्रस्त मामलो मे उसके पैर अथवा जूते की तुलना मे स्वय स्त्री को महत्त्वहीन पुछल्ला मात्र माना जाता है। रेस्तिफ द लॉ ब्रितोन एक महत्त्व-पूर्ण लेखक मे पाए जाने वाले पैर को प्रतीक बनाने की प्रवृत्ति का एक दिलचस्प उदाहरण देते है। लेखक महोदय के क्षेत्र मे पैर का प्रतीक बनाना बहुत स्पष्ट था, किन्तु वह उग्र किस्म का नही था, और जूता, चाहे वह कितना भी सुन्दर क्यो न रहा हो, उनके लिए स्त्री का स्थान नही ले सकता था।

पैर को प्रतीक बनाने का तरीका सम्पूर्णत खामख्याली तो है, पर कई बार उसकी उत्पत्ति किसी मानसिक या भावगत आवेग का पुनरुदय है। यह पहले हमारे पूर्वपुरुषो मे शायद मौजूद था और अब पूर्वपुरुष से आई हुई प्रकृति या विकास के रुक जाने के कारण फिर दिखाई पडने लगा है। इस आवेग को आज भी छोटे-छोटे बच्चो मे अक्सर ढूढा जा सकता है। ये प्राचीन आवेग कई बार सिर उठाते है और वे कुछ स्थायित्व भी प्राप्त कर लेते है। ये आवेग अस्वस्थ-स्नायुयुक्त तथा समय से पहले परिपक्व व्यक्तियो पर ऐसे प्रभावो के कारण उत्पन्न होते है जो आज के यूरोप की औसत तथा साधारण जनता पर या तो कभी पडते ही नही या पडने पर भी फौरन उनपर काबू पा लिया जाता है। सच तो यह है कि हमारी सभ्यता मे प्रेम तथा उत्तेजना-सम्बन्धी जो अत्यन्त उच्च जटिल मान्यताए है वे उनके अधीन कर दी जाती है। एल० विन्स वागेर ने एक मामले का विशद मनो-विश्लेषण किया है—जेर्डा नाम की एक लडकी बचपन मे एडियो पर बैठकर जूतो से भगद्वार और मलद्वार को दबाने की आदी हो गई थी। इससे इन कामो-त्तेजक केन्द्रो मे उत्तेजना पैदा होती थी और उसे पेशाब करने मे आनन्द मिलता था (शायद पूर्ण परितृप्ति के रूप मे)। इस प्रकार जूता उसके लिए दोस्त, प्रेमी और प्रियतम बन गया और वह सावधानी के साथ दूसरो की नजरो से उसकी रक्षा करने लगी। पैर और विशेषकर जूता-सहित पैर उसके लिए समस्त यौन विचारो से परिप्लावित होकर शिश्न का प्रतिनिधि और आदिम जातियो के समान समस्त उर्वरता का प्रतीक बन गया। इस आधार पर यथासमय दूसरे प्रकार के आतक और अन्य लक्षणो का विकास हुआ, जिससे मूल अभिव्यक्ति कुछ हद तक ढक गई और घट गई।

यहा यह बता दिया जाए कि यह केवल पैर के प्रतीक वाली वस्तु बन जाने के सम्बन्ध मे ही सच नही है। प्रतीक वाली वस्तु के कुछ अन्य प्रकारो मे दिखलाई देने वाली जन्मजात पूर्वप्रवृत्ति अपेक्षाकृत स्पष्ट होती है। यह बात सिर्फ बालो के या फरो (Furs) के प्रतीक वाली वस्तु बनने आदि के सम्बन्ध तक ही सीमित नही है। प्रतीक वाली वस्तु बनने के सभी प्रकारो की कुछ दशाओ मे इस बात का पता तो लगाया ही नही गया कि इस विच्युति की शुरुआत किस घटना से हुई (इस कमी की यह व्याख्या की जा सकती है कि मूल घटना भुला दी गई है)। साथ ही कुछ दशाओ मे यह भी देखा जाता है कि प्रतीक वाली वस्तु का विकास बहुत धीरे-धीरे हो रहा है। यद्यपि इस प्रकार इस अर्थ मे हम पैर के प्रतीक बनने को निरवच्छिन्न रूप से पूर्वजो से प्राप्त नही कह सकते, तो भी हम यह तो देख ही सकते है कि यह जन्मजात आधार पर खडी होती है। इस दृष्टि से गार्नियर के समान हम भी प्रतीक वाली वस्तु बनने मे जन्मजात तत्त्व को आवश्यक मान सकते है।

मैथुनिक प्रतीकवाद का जन्मजात तत्त्व ध्यान देने योग्य है क्योकि यौन विच्युतियो के रूपो की अपेक्षा अतिवादी प्रतीक शरीर की जन्मजात अवस्थाओ द्वारा कम से कम स्पष्ट रूप से प्रभावित होते है। और ये प्रतीक अधिकाशत. बचपन के आकस्मिक सम्पर्को अथवा प्राप्त मानसिक धक्को से शुरू होते है। विपरीतता कभी-कभी व्यक्ति की बनावट मे इतने पक्के तौर पर जमी होती है कि प्रतिकूल दिशा मे सब से शक्तिशाली प्रभावो के होने के बावजूद भी उसका उदय और विकास होता रहता है। परन्तु प्रतीक वाली वस्तु की दशा मे यदि हमेशा नही तो अक्सर ही यह पाया जा सकता है कि वह कर्ता के बचपन मे होने वाली किसी यौन भावनात्मक घटना के धक्के या सदमे के कारण एक निश्चित प्रारम्भिक बिन्दु से शुरू हुई थी, यद्यपि फेटिशवाद अतिअनुभूतिशील, समय से पूर्व यौन रूप से परिपक्व, स्नायविक रूप से दुर्बल, डरपोक व्यक्तियो मे, दूसरे शब्दो मे न्यूनाधिक रूप से विकृत स्नायविक वशानुक्रम के व्यक्तियो मे पाया जाता है।

इस प्रकार के सयोग सहीदिमाग व्यक्तियो के बचपन मे भी घटित हो सकते है। किस अश तक वे परवर्ती जीवन, विचारो और भावना को प्रभावित करेगे, यह इस बात पर निर्भर करता है कि कर्ता किस सीमा तक रोगग्रस्त भावनाओ को ग्रहण कर सकता है या वह किस हद तक वशानुक्रम से प्राप्त विच्युतियो का शिकार है। निस्सन्देह समय से पूर्व यौन परिपक्वावस्था इस विच्युति के अनुकूल पडती है। ऐसा बालक इस प्रकार के मैथुनिक प्रतीकवाद मे ग्रस्त होने के लिए बाध्य है जो समय से पूर्व यौन परिपक्वास्था प्राप्त कर लेता है, साथ ही अस्वाभाविक तौर पर अपने से भिन्न लिग के व्यक्तियो के प्रति अनुभूतिशील होता है। व्यक्ति मे

ऐसे प्रतीकवाद की सभी मात्राए देखी जा सकती है। अल्प-अनुभूतिशील साधारण प्रेमी को तो इन बातो की बिलकुल भी अनुभूति नही होती, पर अधिक सतर्क और कल्पनाशील प्रेमी उन्हे उच्च शक्ति से युक्त वासना-स्तर के चित्ताकर्षक भाग बना लेते है। जब प्रतीकवाद की जडे गहरी पड जाती है तो स्नायविक दृष्टि से अपेक्षाकृत दुर्बल व्यक्ति को यह प्रतीत हो सकता है कि वह प्रतीक उसके प्रिय व्यक्ति के आकर्षण का पूर्णरूपेण एक आवश्यक तत्त्व है। अन्त मे यह बता दिया जाए कि पूर्ण विकृतमस्तिष्क व्यक्ति के लिए प्रतीक साधारणीकृत हो जाता है। इस दशा मे मैथुनिक साथी की बिलकुल ही जरूरत नही होती और साथी को या तो प्रतीक का सिर्फ पुछल्ला माना जाता है या फिर उसको बिलकुल ही अलग कर दिया जाता है। कर्ता को सिर्फ प्रतीक की ही वाछा बनी रहती है और अकेला प्रतीक ही उसकी मैथुनिक परितृप्ति करा देने के लिए काफी है। जहा यह माना जा सकता है कि वाछनीय व्यक्ति के सौन्दर्य के अनिवार्य अग के रूप मे प्रतीक की माग रहती है, वहा यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिए कि केवल अन्तिम दशा मे चलकर ही प्रतीक इतना पूर्ण होता है कि उससे यौन परितृप्ति हो सकती है। इसी दशा मे हमे रोगग्रस्त प्रकारान्तरो के दर्शन होते है। प्रतीकवाद की अपेक्षाकृत अपूर्ण दशाओ मे भी वाछनीय तत्त्व स्त्री ही रहती है और इससे प्रजनन का उद्देश्य भी पूरा हो सकता है। पर जब स्त्री की उपेक्षा की जाती है और प्रतीक को मैथुनिक पूर्ण परितृप्ति के लिए पर्याप्त, यहा तक कि अधिक वाछनीय साधन माना जाता है, तो यह दशा पूरे तौर से रोगग्रस्त बन जाती है।

क्राफ्ट एबिंग का विचार था कि जूते की प्रतीक वाली वस्तु बन जाना व्यापक तौर पर कमोबेश मासोकवाद का प्रच्छन्न रूप है। पैर अथवा जूता अधीनता अथवा विनम्रता के प्रतीक है। मासोकवादी अपने प्रियजन की उपस्थिति मे इस अधीनता का अनुभव करता है। मोल ने यही बात अधिक सही तौर पर कही है कि मासोकवाद और जूता के प्रतीक वाली वस्तु बनने मे प्राय निकट-सम्बन्ध रहता है। गार्नियर का भी यही मत था। उसने सावधानीपूर्वक यह भी बतला दिया कि ऐसे भी बहुत से मामले होते है जिनमे इस प्रकार के सम्बन्ध का पता नही चलता।

जब हम सही तौर से यह स्वीकार करते है कि मासोकवाद और पैर के प्रतीक वाली वस्तु बनने मे अक्सर सम्बन्ध रहता है तब भी हमे इस बात मे बहुत सतर्क रहना चाहिए कि हम इन दोनो को मिलाकर एक कर देने की सामान्य चेष्टा न करे। यहा जिस व्यापक अर्थ मे मैथुनिक प्रतीकवाद शब्द का प्रयोग किया जा रहा है, उसके अन्तर्गत मासोकवाद और पैर की प्रतीक वाली वस्तु बनना दोनो ही मैथुनिक

प्रतीकवादो के रूप मे सयुक्त किए जा सकते हैं। एक मासोकवादी के लिए उसकी अतिशय विनम्रता के आवेग प्रिय व्यक्ति की उच्छ्वसित उपासना के प्रतीक है। एक पैर को प्रतीक मानने वाले के लिए, उसकी प्रेमिका के व्यक्तित्व मे जो सब से सुन्दर और परिमार्जित तथा स्त्रियोचित भाग है, उसका केन्द्रीभूत प्रतोक प्रेमिका का जूता या पैर है। किन्तु यदि इस भाति उन्हे एकसाथ सयोजित किया जाए तो भी वे अक्सर पूर्ण रूप से पृथक् ही रहते है। सच तो यह है कि मासोकवाद से पैर की प्रतीक वाली वस्तु वनने की क्रिया को प्रोत्साहन मिलता है। मासोकवादी के लिए जूता निरवच्छिन्न प्रतीक नही है, वह सिर्फ एक साधन है, जो उसे अपने आवेग को पूरा करने योग्य वनाता है, उसके लिए सच्चा यौन प्रतीक जूता नही, वल्कि आत्म-अधीनता की भावना है। इसके विपरीत पैर को प्रतीक वाली वस्तु मानने वाले के लिए जूता अथवा पैर सिर्फ एक साधन ही नही, वल्कि सच्चा प्रतीक है। उसकी उपासना का केन्द्र, एक आदर्शीकृत पदार्थ है, जिसका ध्यान करके अथवा जिसे श्रद्धा से छूकर वह तृप्त हो जाता है। स्वय कर्ता मे कोई अपने को गिराने वाला आवेग नही होता और न उसमे अधीनता की लेशमात्र भावना ही होती है। यहा यह ध्यान देने योग्य है कि रेस्तिफ द लॉ व्रितोन के वताए हुए व्यक्ति के क्षेत्र मे कर्ता वार-वार उन स्त्रियो को वश मे करने की वात कहता है जिनके प्रति वह इस प्रकार की वस्तु को प्रतीक वनाने वाले प्रेम का अनुभव करता है। वह यह भी वतलाता है कि जव वह वालक ही था, तव भी वह इस सम्वन्ध मे एक सुकुमार और परी जैसी लडकी की प्रशसा करता था क्योकि ऐसी लडकी को वश मे करना ज्यादा आसान दिखलाई देता था। आजीवन उसका रुख पुरुषभावयुक्त और सक्रिय रहा, न कि मासोकवादी।

यह निश्चय करते समय कि कोई व्यक्ति मासोकवाद से ग्रस्त है या फेटिश-वाद से, यह आवश्यक है कि उसके सम्पूर्ण मानसिक और भावनात्मक रुखो पर विचार किया जाए। अलग-अलग व्यक्तियो की दृष्टि मे किसी एक ही कार्य का अलग-अलग महत्त्व हो सकता है। क्राफ्ट एविंग का विश्वास था कि किसीको अपने ऊपर चलवाने की इच्छा पूर्णरूपेण मासोकवाद का लक्षण है। किन्तु ऐसी वात नही है। किसी कर्ता मे किसीको अपने ऊपर चलवाने की इच्छा पैर के फेटिशवाद से सम्वन्धित मथुनिक प्रतीकवाद हो सकती है और उसमे अधीनता स्वीकार करने की इच्छा का भी अभाव हो सकता है। यह वात स्पष्ट रूप मे एक ऐसे व्यक्ति के क्षेत्र मे देखी गई थी जिसे मै जानता था। वह अव मर चुका है। वह वडा दवग और साहसी स्वभाव का था और उसमे अधीनता स्वीकार करने की कोई भी इच्छा नही थी। हाल ही मे मार्शा और फुलर द्वारा लिपिबद्ध एक मामले मे मासोकवाद के

कोई आसार नही थे। यहा तक कि जब ऐसी प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है तो यह हो सकता है कि वह सिर्फ गौण हो और प्रतीकवाद पर परोपजीवी ढग से एक इल्लत मात्र हो।

फेटिशवादग्रस्त व्यक्ति को कभी-कभी किसीको अपने ऊपर चलवाने की जो इच्छा होती है वह स्वय अपने मे एक दिलचस्प बात है क्योकि उससे यह दिखलाई देता है कि किस प्रकार मैथुनिक प्रतीक-वस्तुओ का सकुचित आकर्पण अधिक विस्तृत कामात्मक प्रतीको के आकर्पण मे निमज्जित हो जाता है। जब पैर किसी प्रिय पात्र का होता है तो वह एक पूजा करने योग्य भौतिक वस्तु की अपेक्षा कुछ और भी अधिक होता है। यह शक्ति का एक केन्द्र है, वह दबाने का एक साधन हो जाता है और इस प्रकार से यह स्थितिशील कामात्मक प्रतीक से अलग होकर गतिशील कामात्मक प्रतीक के लिए प्रारम्भ-बिन्दु है। उसकी गतिविधि की शक्ति खुद यौन अगो को शक्ति का स्थान ले लेती है। यहा हमारा साबका ऐसे प्रतीकवाद से पडता है जो कामात्मक प्रतीक-पूजा से पूर्णत भिन्न है, जो सिर्फ एक निश्चित पदार्थ को पूजता है, वह एक ऐसा गतिशील प्रतीकवाद है जिसमे उन गतियो के दृश्य से परितृप्ति मिलती है जिनसे भावात्मक रूप से यौन प्रक्रिया के आधारभूत लय-ताल और दबाव-सम्बन्धी क्रियाए और प्रतिक्रियाए प्रत्यक्ष हो जाती है। यही प्रवृत्ति अन्य एक ऐसे मामले मे भी दृष्टिगोचर होती है जिसके सम्बन्ध मे चारकोट और मैगनान ने लिखा है। वर्णित व्यक्ति किसी स्त्री के जूते मे कील ठोकने की प्रक्रिया से उत्तेजित हो जाता था, जो कि स्पष्ट रूप से मैथुन का प्रतीक था।

सहायक पुस्तक-सूची

फ्रायड—Three Contributions to Sexual Theory

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex Vols III and V.

तन्तु-अतिवाद और मनुष्येतर प्राणियों से यौन आनन्द-प्राप्ति

अब यह जरूरी है कि फेटिशवाद के क्षेत्र को पूर्ण रूप से छोडने के पहले हम यौन प्रतीको के उस विशेष वर्ग को भी देख ले जिसमे मानव-शरीर से सान्निध्य का अक्सर अभाव रहता है। यानी अब हम उस क्षेत्र को देखे जिनमे अनेक प्रकार के तरीके आते है; जैसे जानवरो, जानवरो से उत्पन्न पदार्थो अथवा जानवरो के मैथुन के दृश्यो से मनुष्यो मे कामेच्छा जागरित हो जाती है। यहा हमारा साबका

एक ऐसे प्रतीकवाद से पडता है जो मुख्यत सादृश्यजन्य सम्बन्धो पर आधारित है, जानवरो की मैथुनिक क्रिया मनुष्यो की मैथुनिक क्रिया की याद दिलाती है; जानवर मनुष्य का प्रतीक बन जाता है।

जिन बातो पर अब हम यहां विचार कर रहे है, उनमे अनेको उपवर्ग है। सब से पहले तो वह कमोबेश आनन्द है जो मैथुन करते हुए जानवरो को देखने से, विशेप तौर पर कमउम्र व्यक्तियो को कभी-कभी मिलता है। इसे मनुष्येतर प्राणी के मैथुन मे यौन आनन्द की सज्ञा दी गई है और वह स्वस्थ प्रकार के दायरे के अन्तर्गत है। इसके अलावा ऐसी दशाए होती है जिनमे जानवरो के सम्पर्क से उन्हे थपथपाने आदि से यौन उत्तेजना अथवा परितृप्ति हो जाती है; यह सकुचित अर्थ मे मैथुनिक फेटिशवाद है और क्राफ्ट एविंग ने इसे 'मनुष्येतर प्राणी के प्रति यौन अनुराग' की सज्ञा दी है। इसके अतिरिक्त एक श्रेणी वह है जिसमे जानवरो के साथ वास्तविक या बनावटी मैथुन की इच्छा की जाती है। इन दशाओ मे अपने सीमित अर्थ मे फेटिशवाद सन्निहित नही है, किन्तु ये दशाए मैथुनिक प्रतीकवाद के दायरे मे आ जाती है (उस अर्थ मे जिसमे उसे यहा लिया गया है।) इस श्रेणी के दो भाग किए जा सकते है—एक तो वह, जिसमे व्यक्ति पर्याप्त रूप से सहीदिमाग किन्तु निम्न सास्कृतिक स्तर का रहता है, और दूसरा वह, जिसमे व्यक्ति अपेक्षाकृत परिमार्जित सामाजिक वर्ग मे से होता है किन्तु उसमे मानसिक रोग की दशाए मौजूद रहती है। पहले मामले मे हम उसे उचित रूप से 'जानवरो के साथ व्यभिचार' की सज्ञा दे सकते है (कुछ देशो मे उसे समलैंगिक मैथुन भी कहते है। पर वह गलत साथ ही भ्रामक है और इस प्रयोग से बचना चाहिए)। दूसरे मामले मे क्राफ्ट एविंग द्वारा प्रस्तावित सज्ञा 'मनुष्येतर प्राणियो के साथ वास्तविक या बनावटी मैथुन की इच्छा' का प्रयोग करना शायद अधिक उपयुक्त होगा।

लडके और लडकियो दोनो को ही जानवरो की मैथुन-क्रिया का दृश्य रहस्यपूर्ण और चित्ताकर्षक लगता है। ऐसा आम तौर पर देखा जाता है। यह अपरिहार्य है कि इस प्रकार दिलचस्पी हो क्योकि इस दृश्य से उस रहस्य का कमोबेश उद्घाटन होता है जो उनसे छिपाया जाता है। इसके अतिरिक्त वह एक ऐसा रहस्य है जिसका वे अपने भीतर घनिष्ठ रूप से स्पन्दन अनुभव करते है और यहां तक कि पूर्ण रूप से भोले और अनजान बच्चो मे भी इस तरह के दृश्य से अस्पष्ट यौन उत्तेजना पैदा हो जाती है। मालूम होता है कि यह बात लडको की अपेक्षा लडकियो मे अधिकता मे होती है। यहा यह बता दिया जाए कि विशेषकर स्त्रिया वयस्कावस्था मे भी ऐसे दृश्यो के सामने होने पर इसी प्रकार की भावना का अनुभव करती है। सोलहवी सदी मे इगलैंड और फ्रास इन दोनो देशो मे राजपरिवारो की और अभिजात-

वर्गों की महिलाए ऐसे दृश्यो का मजा लेने लगभग खुले-आम चली जाती थी। अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक काल मे इस प्रकार के दृश्य कुत्सित और गन्दे माने जाते है और निस्सदेह वे सभी असन्तुलित मस्तिष्क वालो के लिए ऐसे है भी।

यह आसानी से समझ मे आ जाता है कि जानवरो के मैथुन का निरीक्षण क्यो किया जाता है। वचपन मे ऐसा करना यौन भावना का वहुत-कुछ मामूली प्रतीक है। इसके अतिरिक्त जानवरो के फेटिशवाद का एक दूसरा उपविभाग 'तन्तु-फेटिशवाद' है। यह जानवरो के उस फेटिशवाद से स्वाभाविक रूप से पृथक् होता है जिसका केन्द्र मानवीय शरीरो मे होता है। इस विच्युति मे यौन आकर्षण विविध तन्तुओ के प्रति होता है, जो शायद हमेशा जानवरो के ही होते है। यहा एक और वहुत जटिल वात हमारे सामने आती है। कुछ अश मे हम यह देखते है कि वहुत अधिक क्षेत्र मे स्त्रियो के कपडो के प्रति यौन आकर्पण पाया जाता है क्योकि इस प्रकार के तन्तु वेशभूषा मे शामिल होते है। कुछ अश मे स्पर्शानुभूतिशीलता के क्षेत्र मे एक यौन विच्युति पाई जाती है क्योकि इन मामलो के एक काफी वडे अनुपात मे स्पर्श-सम्वन्धी अनुभूतिया ही मैथुनिक आवेगो को जागरित करती है। किन्तु कुछ अश मे यह दिखलाई देगा कि यहा सज्ञान रूप से अथवा अवचेतन रूप से एक जानवर प्रतीक के रूप मे मौजूद रहता है और यह ध्यान देने योग्य है कि ये सव वस्तुए और विशेषकर फर जो कि इन समूहो मे सवसे अधिक प्रचलित है, स्पष्ट रूप से जानवरो से ही उत्पन्न होते है। स्त्री के केशो को हम एक ऐसी प्रतीक वनी वस्तु मान सकते है जो सक्रमण की एक कडी है और किसी भी तन्तु-फेटिशवाद से अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक प्रचलित प्रतीक है। वाल एक ऐसी वस्तु है जो मनुष्य तथा पशुओ दोनो मे ही होता है। साथ ही उन्हे शरीर से अलग भी किया जा सकता है और उनमे तन्तु के गुण है। क्राफ्ट एविग कहते है कि स्पर्श, घ्राण और श्रवण, साथ ही दृष्टि—ये सब केशो से उत्पन्न होने वाले आकर्पण मे अन्त प्रविष्ट हो जाते है।

एक-यौन प्रतीक बनने वाली वस्तु के रूप मे केश शरीर का ही भाग है; किन्तु चूकि उसे शरीर से अलग किया जा सकता है और केश वाले व्यक्ति की अनुपस्थिति मे भी प्रतीक वाली वस्तु के रूप मे यौन रूप से कार्यशील बना रहता है इसलिए केश वस्त्र आदि के ही स्तर का है और वह जूते, रूमाल तथा दस्ताने के साथ उसी तरीके से असर पैदा करता है। मनोवैज्ञानिक रूप से केशो के फेटिशवाद से कोई विशेष समस्या खडी नही होती। आखो के वाद स्त्रियो के केशो के प्रति यौन आकर्षण सव से अधिक होता है, जिस सुविधा से बाल को जूड़ावधी हालत मे काट लिया जा सकता है उससे केशो का फेटिशवाद चिकित्साशास्त्रीय विधि-

शास्त्र की दृष्टि मे एक दिलचस्प दशा के रूप मे सामने आता है।

किसी भी सभ्य देश मे, कुछ समय पहले केशकर्तक पाए जा सकते थे। इस सम्बन्ध मे जो सबसे सतर्क अध्ययन किए गए है वे पेरिस मे ही घटित घटनाओ को लेकर किए गए है। यह बात दूसरी है कि आधुनिक फैशनो के कारण ऐसे केशचौरो की हरकते कम हो गई हो। इस प्रकार के व्यक्ति अक्सर दुर्बल स्नायु और हीन वशानुक्रम के होते है। केशो के प्रति आकर्षण का विकास बचपन मे ही हो जाता है, कभी-कभी रोगग्रस्त आवेग का उदय बाद के जीवन मे बुखार के पश्चात् ही उदित हो सकता है। छिटके लहराते केश या जूडे अथवा चोटी मे गुथे केश यौन प्रतीक हो सकते है यानी एक व्यक्ति मे साधारणत एक ही प्रकार का प्रतीक हो सकता है, दोनो प्रकार का एकसाथ नही। केशो को छूने अथवा उन्हे काटने के कार्य के दौरान मे मैथुनिक उत्तेजना अथवा वीर्य-स्खलन हो सकता है, जो कि आगे चलकर बहुत से मामलो मे हस्तमैथुन के लिए प्रयोग मे लाया जाता है। केशो को चुराने वाला व्यक्ति आम तौर पर विशुद्ध फेटिशवादी होता है और उसकी अनुभूतियो अथवा भावनाओ के साथ किसी प्रकार का निष्ठुरतामूलक आनन्द सयुक्त नही होता।

अक्सर तन्तुप्रतीक अधिकतर फर और मखमल-सम्बन्धी होते है। कपडो मे लगे हुए पख, रेशम और चमडा भी कभी-कभी इस बारे मे अपना प्रभाव डालते है। यह ध्यान देने योग्य है कि ये सब जानवरो से उत्पन्न पदार्थ है। सम्भवतः सबसे दिलचस्प फर है, जिसके आकर्षण को निष्क्रिय दु खमूलक यौन आनन्द के सम्पर्क मे ही अक्सर पाया जाता है। जैसा कि स्टैन्ले हाल ने बतलाया कि बचपन मे फर के प्रति भय और साथ ही उसके प्रति प्रेम का पाया जाना असाधारण नही है, वह शैशव मे और ऐसे बच्चो मे भी प्रकट हो सकता है जो कभी जानवरो के सम्पर्क मे नही आए है। यहा यह ध्यान देने योग्य है कि तन्तु-फेटिशवाद की अधिकाश जटिलतारहित दशाओ मे प्रकट रूप से आकर्षण जन्मजात आधार पर उदित होता है क्योकि वह दुर्बल अथवा तुनुकमिजाज प्रकृति के व्यक्तियो मे बचपन मे ही प्रकट हो जाता है और उसका सम्बन्ध किसी निश्चित अथवा सकारण घटना से नही जोडा जा सकता। मैथुनिक उत्तेजना प्राय हमेशा ही दृष्टि की अपेक्षा स्पर्श से उत्पन्न होती है। यदि विशिष्ट यौन अनुभूतियो को सहलाने की प्रक्रिया का विशेष रूप माना जाए तो तन्तु-फेटिशवाद की इन दशाओ मे मैथुनिक प्रतीकवाद जानवरो के विशिष्ट सम्पर्क की तुलना मे कमोवेश जन्मजात विच्युति जान पडेगी।

इस दिशा मे मनुष्येतर प्राणियो के प्रति कामात्मक आवेग मे मैथुनिक

उत्तेजना की मात्रा बहुत बढ जाती है। क्राफ्ट एविंग इस सिलसिले मे एक मामले का उल्लेख करते है। एक बुद्धिमान्, पर सुकुमार रक्ताल्पतायुक्त और क्षीण मैथुनिक शक्ति वाले, जन्म से ही स्नायविक रोगग्रस्त व्यक्ति को बचपन से ही घरेलू जानवरो, विशेषकर कुत्तो और बिल्लियो से बहुत प्रेम था। जब वह उन्हे थपथपाता था तो वह मैथुनिक भावनाओ का अनुभव करता था, यद्यपि वह यौन विषयो के बारे बेखबर था। यौवनारम्भ पर उसने अपनी भावनाओ की वास्तविक प्रकृति को समझा और उसने अपनी इन आदतो से बचने की कोशिश की। उसे इसमे सफलता मिली, किन्तु तब वह जानवरो की आकृतियो से युक्त कामात्मक सपने देखने लगा और इनके कारण उसने इसी तरह के विचारो से सम्बद्ध हस्त-मैथुन शुरू कर दिया। साथ ही इस काल मे उसे जानवरो के साथ किसी प्रकार का घनिष्ठ सम्पर्क रखने की इच्छा नही थी और जिन जानवरो के प्रति वह आकर्षित होता था उनके नर या मादा होने के विषय मे वह उदासीन रहता था। उसके यौन विचार विकृत नही थे। इस प्रकार की दशा स्पर्श पर आधारित फेटिशवाद के वर्ग की जान पडती है और इस तरह यह तन्तु फेटिशवाद और जानवरो के प्रति आकर्षण की सम्पूर्ण विपरीतता के बीच सक्रमण वाली कडी बन जाती है।

क्राफ्ट एविंग मानते थे कि यह पशुओ के प्रति कामात्मक आवेग से पूर्णत भिन्न है। इस मत को स्वीकार नही किया जा सकता। प्राणियो के प्रति कामात्मक अनुराग, पशुगमन या जानवरो के साथ व्यभिचार और पशुगमनेच्छा मे उसी लक्षण को हम अधिक मात्रा और विकृत रूप मे पाते है जो प्राणियो के कलात्मक प्रेम मे पाया जाता है। फर्क केवल इतना है कि वे या तो अपेक्षाकृत अल्प-अनुभूतिशील अथवा अधिक स्पष्ट रूप से मनोरोगपीडित व्यक्तियो मे पाए जाते है। जो भी हो, कभी-कभी यह कहना कुछ मुश्किल सा है कि हम हमेशा यहा तक कि अक्सर ही पशुगमनेच्छा और पशुगमन मे भेद कर सकते है क्योकि यदि पशुओ के साथ साधारण व्यभिचार के मामलो की उचित रूप से हमेशा छानबीन की जाए, जैसी कि होनी ही चाहिए, तो यह सम्भव है कि इस तरह के अधिकाश मामलो मे मानसिक गडबडी के थोडे चिह्न पाए जाए। जैसा कि मोल कहते है पाप और रोग के बीच मे स्पष्ट रेखा खीचना सम्भव नही है।

अब हम इस वर्ग की सब से कुत्सित और सब से अधिक पाई जाने वाली विपरीतता—जानवरो के साथ व्यभिचार या जानवरो के साथ मैथुन से अथवा अन्य किसी प्रकार के निकट-सम्पर्क से यौन परितृप्ति प्राप्त करने के आवेग पर आ पहुचते है। इस विच्युति को भली भाति समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने-आपको जानवरो के प्रति उस दृष्टिकोण से मुक्त कर ले जो अपरिहार्य रूप से परिमार्जित

सभ्यता और शहरी जीवन का परिणाम है। अधिकाश यौन विच्युतियो का सभ्यता के साथ मेल वैठ जाता है, वशर्ते कि वे वडी हद तक सभ्य जीवन की ही उपज न हो। इसके विपरीत जानवरो के साथ व्यभिचार (सिवा एक रूप के, जिसका उल्लेख आगे किया जाएगा) वुद्धिहीन, अल्प-अनुभूतिशील और गवार किसानो मे पाई जाने वाली यौन गडवडी है। वह आदिम जातियो और ग्रामीण समाजो के वीच फूलती-फलती है। ऐसे गोवरगनेश ही इस प्रकार के दुर्गुण मे फस जाते है जिनमे स्त्रियो के लिए कोई आकर्षण नही होता अथवा जो स्त्रियो के साथ मेल-जोल वढाने और प्रेम करने के काविल नही है। सस्कृति के कुछ सोपानो मे तो वह कोई पाप ही नही है। इस प्रकार जव तेरहवी सदी के अन्त मे स्वीडन के गैर-ईसाई कानूनो द्वारा उसे अपराध घोषित किया गया तो उस समय भी वह जानवरो के मालिक के प्रति अपराध माना गया जो हरजाना पाने का हकदार था। इससे भी अधिक सरल जातियो के वीच जैसे व्रिटिश कोलम्विया के 'सेलिश' जाति के जीवनमान मे जानवर मनुष्य मे नीचे नही माने जाते और किसी-किसी वात मे तो श्रेष्ठ ही माने जाते है और इसलिए वहा इस धारणा के ही लिए कोई स्थान नही है कि जानवरो के साथ किया जाने वाला व्यभिचार हीन होता है।

ये तीन दशाए जानवरो के साथ व्यभिचार के लिए वहुत अनुकूल पाई गई है—(१) जीवन की आदिम धारणा, जिसमे मनुष्य और इतर जानवरो के वीच प्रभेदमूलक कोई ऊची दीवार नही है। (२) किसान और उसके पशुओ की पारस्परिक चरम घनिष्ठता, जिसके साथ अक्सर स्त्रियो का वियोग भी जुड़ जाता है। (३) वहुत से लोकप्रचलित विश्वास, जैसे गर्मी, सुज़ाक आदि यौन रोगो के अचूक इलाज के रूप मे जानवरो के साथ मैथुन करना।

जानवरो के साथ व्यभिचार देहातो मे आम है। एक किसान की आँखों मे, जिस की वुद्धि अपरिमार्जित है और जो स्त्री से केवल जान्तविक आवश्यकता की पूर्ति चाहता है, जानवर और मनुष्य के वीच कोई वडा प्रभेद नही जान पडता। एक जर्मन किसान ने इस मामले मे मजिस्ट्रेट से कहा—"मेरी पत्नी वहुत अरसे से वाहर गई हुई थी और इसलिए मैने अपनी सुअरनी का उपयोग किया।" यह एक ऐसी व्याख्या है जो निश्चित रूप से धार्मिक और कानूनी धारणाओ से अपरिचित एक किसान को अक्सर स्वाभाविक और पर्याप्त दिखलाई पडती है। इस प्रकार जानवरो के साथ व्यभिचार हस्तमैथुन और यौन आवेग की दूसरी अभिव्यक्ति के सदृश है जो किसी और अच्छे साधन के उपलव्ध न होने के कारण की जाती है और निरवच्छिन्न अर्थ मे आवेग की विच्युति नहीं है। इन तरह का व्यवहार युद्ध-क्षेत्र मे ब्रह्मचर्य-पालन के लिए मजवूर सैनिको मे भी पाया जाता है और इस सम्बन्ध मे

मध्य युग मे साथ ही प्रथम महायुद्ध के सिपाहियो के बारे मे बकरी का उल्लेख किया जाता है।

परन्तु सभी क्षेत्रो मे किसानो मे जानवरो के साथ व्यभिचार की अधिकता का कारण सिर्फ उनकी कुण्ठित समझदारी अथवा स्त्रियो की अनुपस्थिति ही होती है, सो बात नही। एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारण उनकी जानवरो के साथ निरन्तर घनिष्ठता है। यह कोई अचरज की बात नही है कि किसान जानवरो को न केवल अपने साथी मनुष्यो के बराबर ही घनिष्ठ समझे, वल्कि मनुष्यो की अपेक्षा अधिक घनिष्ठ समझे।

किसी देश मे अथवा किसी काल मे यौन वासना की परितृप्ति के लिए पुरुषो और कभी-कभी स्त्रियो द्वारा जो जानवर प्रयोग मे लाए गए है, उनके बहुत से ब्योरे मिलते है। स्वाभाविक रूप से इस काम मे घरेलू जानवर ही सब से अधिक लाए जाते हैं। और मुश्किल से ही कोई घरेलू जानवर ऐसा होगा जिसे इस काम मे न लाया गया हो। इस तरीके से सब से अधिक दुरुपयोग किए जाने वाले जानवरो मे सुअरनी एक है। ऐसे मामले, जिनमे घोडियो, गायो और गदहियो, साथ ही बकरियो और भेडो के साथ व्यभिचार किया जाता है, लगातार होते रहते है। समय-समय पर कुत्तो, बिल्लियो और खरगोशो के सम्बन्ध मे भी ऐसा सुना जाता है। मुर्गियो, बत्तखो और विशेषकर चीन मे हसिनियो का प्रयोग भी असाधारण नही है। कहा जाता था कि रोमन स्त्रियो को सापो से असाधारण प्रेम था। भालुओ और मगरो का भी इस सम्बन्ध मे उल्लेख किया जाता है।

जानवरो के साथ व्यभिचार के प्रति सामाजिक और कानूनी दृष्टिकोण एक अश तक, जहा यह प्रतिफलित करते है कि यह व्यभिचार कितना प्रचलित है, तो दूसरी ओर उनसे एक अश तक वह रहस्यात्मक और धार्मिक आतक-मिश्रित घृणा व्यक्त होती है जो इस प्रकार के व्यभिचार से पैदा होती है। कभी-कभी इस अपराध के लिए सिर्फ जुरमाने की व्यवस्था की गई है और कभी-कभी अपराधी और उसका निर्दोष साथी, दोनो एकसाथ जला दिए गए है। मध्य युग और उसके बाद के युग मे इस प्रकार के व्यभिचार की अधिकता का प्रमाण यह है कि पन्द्रहवी और सोलहवी सदी के उपदेशको के प्रवचनो का यह एक प्रिय विषय था। यह अर्थपूर्ण है कि उस समय यह आवश्यक समझा गया कि जो पशुओ के साथा व्यभिचार करे उन गिरजे के अधिकारियो—बिशपो, पादरियो आदि को उनके दर्जे के अनुसार प्रायश्चित्त की अलग-अलग अवधि निश्चित हो।

इस दोष के दोषियो के प्रति उग्र कठोरता का प्रयोग किया गया है। इसमे सदेह नही कि ऐसा बहुत बडे पैमाने पर इसलिए किया गया है कि पशुओ के साथ

व्यभिचार को समलैंगिक अप्राकृतिक व्यभिचार का एक रूप समझा जाता था और समलैंगिक अप्राकृतिक व्यभिचार खुद एक ऐसा अपराध समझा जाता था जिसे उससे होने वाली सामाजिक या व्यक्तिगत हानि के अलावा रहस्यमिश्रित आतंक की दृष्टि से देखा जाता था। यहूदी इस भय से त्रस्त जान पड़ते थे; और तभी यह आदेश दिया गया था कि अपराधी और उसके शिकार दोनो को जान से मार डाला जाए। मध्ययुग मे विशेषकर फ्रास मे अक्सर यही नियम प्रचलित था। आदमी और सुअरनिया, आदमी और गाए, आदमी और गदहिया साथ-साथ जलाए जाते थे। तुलूस मे एक स्त्री कुत्ते से मैथुन करने के कारण जिन्दा जला दी गई थी। यहा तक कि सत्रहवी सदी मे भी एक विद्वान् फ्रासीसी वकील ने ऐसी सजाओ को उचित ठहराया था। ऐसा जान पड़ता है कि आज भी जानवरो के साथ व्यभिचार के प्रति सामाजिक और कानूनी दृष्टिकोण मे इस तथ्य को उचित महत्त्व नही दिया गया है कि यह अपराध अक्सर ऐसे लोगो द्वारा किया जाता है जो या तो रोगग्रस्त रूप से विकृतमस्तिष्क होते है अथवा जो वुद्धि के इतने नीचे दरजे पर होते है कि वे अल्प-वुद्धिता की सीमा पर स्थित होते है। इसके सिवाय यह भी याद रखना चाहिए कि थोडे से मामलो को छोडकर, जिनमे जानवरो के प्रति क्रूरता निहित रहती है अथवा जो सादवाद से सयुक्त होते है, जानवरो के साथ व्यभिचार प्रत्यक्ष रूप से समाज-विरोधी कार्य है ही नही। फोरेल का कहना है कि जव तक उसके साथ किसी प्रकार की क्रूरता नही रहती, तव तक वह यौन आवेग की सव से हानिरहित पथभ्रष्टताओ मे से एक होती है।

सहायक ग्रन्थ-सूची

क्राफ्ट एविंग—Psychopathia Sexualis

डब्ल्यू० हावर्ड—'Sexual Perversion,' Alienist and Neurologist Jan, 1896

फोरेल—The Sexual Question

थायनाट तथा वेइसे—Medico-Legal Moral offenses

कामचौर्य

कामचौर्य शब्द का प्राचीन अर्थ मे (उनकी शुरुआत अठारहवी सदी से होती है) एक ही विषय मे अस्वाभाविक 'आसक्ति' के लिए प्रयोग किया गया था। चिकित्सा-शास्त्र मे यह शब्द कभी स्वीकार नहीं किया गया और कानून ने तो अक्सर उसे मानने

से ही इन्कार कर दिया। उसके प्रयोग का उद्देश्य चोरी करने के एक कमोवेश अदम्य आवेग को व्यक्त करना था। यह दुरावेश एक ऐसा मानसिक आवेश है जिसके लिए कोई सज्ञान उद्देश्य नही रहता और जिसके विरुद्ध कर्ता (जो साधारणत स्त्री होती है) संघर्ष करता रहता है। पहले इस दशा को अत्यासक्तियुक्त अवसादमय उन्माद से सम्बन्धित माना जाता था। अव प्रवृत्ति यह है कि इस शब्द का प्रयोग वन्द कर दिया जाए। जब किसी कचहरी मे चोरी के मुकदमे मे अभियुक्त के वचाव के लिए यह दलील दी जाती है कि उसने किसी रोगग्रस्त आवेग के कारण चोरी की तो कोई मजिस्ट्रेट फौरन ही मुहतोड जवाव दे सकता है—"उसी मर्ज की दवा के लिए ही तो मै यहा मौजूद हू।" पर कामचौर्य एक काफी निश्चित दशा है। वह केवल अस्पष्ट मानसिक दुरावेश नही है। वह ऐसे स्पष्ट कारणो से होता है जो खोजे जा सकते है। इन कारणो को आसानी से खारिज नही किया जा सकता और यह दशा यौन मनोविज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत हमारे सामने आ जाती है। यह तथा-कथित कामात्मक चौर्यप्रवृत्ति की दशा है, जिसका सव से अच्छा नाम कामचौर्य है। शिकागो के मनोचिकित्सक कीर्नान ने सन् १९१७ मे इस सज्ञा का (क्लैप्टोलैग्निया के सादृश्य पर यौन भावनाओ के साथ चोरी के सम्वन्ध को वतलाने के लिए) प्रवर्तन किया था। फौरन ही मैने इस शब्द को स्वीकार कर लिया और तव से मै इस दशा के लिए सव से उपयुक्त नाम इसी शब्द को मानता रहा हू। (इसी प्रकार अग्निकाण्ड मे कामात्मक आनन्द की विरल दशा के लिए पायरोलैग्निया शब्द का प्रयोग किया जा सकता है।) मालूम पडता है कि इस दशा को सब से पहले लियो के लाकासानी ने सन् १८९६ मे लिपिवद्ध किया था।

यह कहा जा सकता है कि कामचौर्य का उदय मन्त्रणा के व्यापक आधार पर होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि यहा यौन भावनाओ के साथ दु ख तथा नियन्त्रण की भावना भी सयुक्त होती है। अनेक निरीक्षको ने इस विषय को अस्पष्ट ढग से छू भर दिया है, पर फ्रान्सीसी मनोचिकित्सको द्वारा इन दशाओ के वर्णन से पूर्व (उदाहरणार्थ सन् १९०५ मे डेपोई ने इस दशा के कई निर्दिष्ट उदाहरण दिए थे) ये निरीक्षक उसे स्पष्ट रूप से नही समझ सके थे। उन्होने दिखलाया कि इस दशा मे निहित मानसिक प्रक्रिया वस्तुत मैथुनिक स्फीति और पूर्ण कामतृप्ति की प्रक्रिया थी, जो प्रतीक रूप से दुरावेशात्मक आवेश मे रूपान्तरित हो जाती थी। इसमे कर्ता कमोवेश किसी वेकार चीज को, जैसे रेशम का टुकडा या ऐसी ही किसी अन्य वस्तु को, चुराने के लिए आतुर हो जाता था। इस चुराई हुई वस्तु के सम्बन्ध मे वह समझता था कि वह मैथुनिक उत्तेजना के लिए प्रयोग मे आती है। कर्ता इस दुरावेश के प्रति सघर्ष भी करता है, पर उसकी अन्तिम परिणति चोरी होती

है। आनुषगिक रूप से यह चोरी पूर्ण यौन परितृप्ति से मिलती है और कभी-कभी वास्तविक रूप से मैथुनिक पूर्ण परितृप्ति भी हो जाती है। इस प्रक्रिया की कर्त्री, जो अक्सर अच्छी हैसियत की स्त्री होती है, चुराई गई वस्तु को चोरी के बाद और कुछ महत्त्व नही देती, या तो उसे वह छिपा देती है या फिर फेक देती है। कर्त्री को इस बात का स्पष्ट ज्ञान नही भी हो सकता कि उसके इस व्यवहार की जडे कामात्मक है। और यदि उसे सज्ञान रूप से इसका ज्ञान है भी, तो भी वह लगभग सभी क्षेत्रो मे इस उद्देश्य को खुद-ब-खुद नही मानेगी। इस प्रकार हम देखते है कि सच्चे अर्थ मे कामचौर्य रोगग्रस्त चौर्यप्रवृत्ति का एक रूप नही है, यद्यपि भ्रमवश कामचौर्य को शेषोक्त का अग ही समझा जाता था क्योकि सैद्धान्तिक रूप से रोगग्रस्त चौर्यप्रवृत्ति उद्देश्यरहित और अदमनीय होती है। इसके विपरीत कामचौर्य का निश्चित उद्देश्य रहता है, चाहे वह उद्देश्य सज्ञान हो या न हो। यद्यपि इस क्षेत्र मे उद्देश्य वस्तुत चोरी करना नही होता और न तो वह अदमनीय ही होता है, बल्कि इस कार्य को उपयुक्त अवसर पर और उचित सावधानी के साथ पूरा किया जाता है। यद्यपि कर्ता अक्सर ही या हमेशा स्नायविक रोगग्रस्त होता है, तो भी यह आवश्यक नही है कि वह अत्यधिक मनोरोगग्रस्त हो। यह दशा पागलपन के अतर्गत नही है और अब कामचौर्य को समाप्तप्राय रोगग्रस्त चौर्यप्रवृत्ति के साथ न रखकर मनोविज्ञान के अन्तर्गत रखना चाहिए। कामचौर्य को कामात्मक फेटिशवाद का एक रोगग्रस्त रूप माना जा सकता है।

चोरी के साथ सयुक्त यौन आवेग के कुछ अपेक्षाकृत कम सामान्य रूप भी है, जिन्हे कामचौर्य से सम्बद्ध होने पर भी उससे अलग मानना चाहिए। इस प्रकार की एक दशा का विशेष वर्णन स्टेकेल ने सन् १९०८ मे किया था, जो सामान्यत रोगग्रस्त चौर्यप्रवृत्ति की मनोविश्लेषणात्मक व्याख्या करते समय सामने रखी जाती है। यहा चोरी कामात्मक उद्देश्य से नही की जाती, यानी चोरी करना कामात्मक तृप्ति का जरिया नही है। इसके साथ ही चोरी प्रतीक बनी हुई वस्तु की नही बल्कि किसी ऐसी चीज की होती है जिसमे कामात्मक व्यञ्जना होती है। इस तरह यह दशा यौन परितृप्ति की स्थानापन्न है, जो विशेषकर स्त्रियो मे उनके पतियो की नपुसकता से होने वाली दमित भावनाओ के कारण पाई जाती है। स्टेकेल इस प्रकार से रोगग्रस्त चौर्यप्रवृत्ति के समस्त प्रकारो की व्याख्या करते है। पर यदि हम रोगग्रस्त चौर्यप्रवृत्ति के अस्तित्व को ही खारिज कर दे तो यह व्याख्या किसी काम की नही रहती।

हीली ने चोरी के साथ यौन भावनाओ के एक अन्य स्पष्टत पृथक् मेल का वर्णन और प्रदर्शन किया है। तरुण-तरुणियो दोनो मे ही ऐसी दशाए होती है

जिनमे कामात्मक आकर्षण के प्रति झुकाव तो होता है, पर मैथुनिक कार्य उन्हे इतने दोषयुक्त और घृणित जान पडते है कि उनका झुकाव चोरी करने की तरफ हो जाता है जो उन्हे अपेक्षाकृत कम घृणित जान पडता है। इस दशा की मानसिक प्रक्रिया कामचौर्य की मानसिक प्रक्रिया से उल्टी होती है, क्योकि यहा चोरी के कार्य से कामात्मक इच्छा की वास्तविक या प्रतीक रूप से परितृप्ति नही होती, बल्कि इस दशा मे तो कर्ता उससे पलायन करता है।

सहायक पुस्तक-सूची

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex Vol VII, 'Kleptolagnia.'

हीली—Mental Conflicts and Misconduct

स्टेकेल—Peculiarities of Behaviour

कामांग-प्रदर्शन

यौन आवेग की एक प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति ऐसी है जो बचपन मे निर्दोष ढग से बिना किसी मानसिक विकृति के घटित हो सकती है, पर उसका वयस्क-जीवन मे होना गम्भीर माना जाता है। मेरा मतलब कामाग-प्रदर्शन से है। कई लेखको ने बतलाया है कि इस अभिव्यक्ति का यौवनोद्गम मे, यहा तक कि किशोरावस्था मे, पाया जाना असाधारण नही है। इस दशा का क्षेत्र विकासमान यौन अगो के प्रदर्शन तक (लड़कियो मे विशेष तौर पर वक्ष के प्रदर्शन तक) अधिक रहता है। यह एक साधारण बचकाना प्रवृत्ति है, जो पूर्णरूपेण स्वाभाविक दिखलाई देती है। फ्रायड यह लिखते है कि छोटे बच्चे भी नग्नावस्था मे आनन्द का अनुभव करते हैं। सोने के लिए बिस्तर पर जाने के पहले वे नगे रहकर नाचना चाहते है। यही कारण है कि अपरिचितो के सामने भी वे अपने छोटे-छोटे वस्त्रो को उघाड देते है और नगे हो जाते है। फ्रायड इसे विगत स्वर्गिक अवस्था (जिसमे आदम और हौवा ईडन के बगीचे मे नगे रहते थे) के सस्मरण से सम्बद्ध मानते है, जो बाद मे चलकर कामाग-प्रदर्शन के रूप मे रोगग्रस्त दुरावेश बन जाता है और अक्सर सही दिमाग की दशा मे भी यौवनोद्गम के बाद निश्चित किन्तु सयमित रूप मे प्रकट होता है। पुटनैम का कथन है कि हम जिस बहुलता के साथ स्वप्न मे यह देखते है कि हम नाकाफी तौर पर कपड़े पहने हुए है, वह हमारी प्रच्छन्न

कामाग-प्रदर्शन-वृत्ति को प्रकट करती है। यद्यपि मैं इस मत को स्वीकार नही कर सकता क्योकि इसमे इस वात को नजर-अन्दाज कर दिया जाता है कि सोते समय हम सचमुच ही ऐसी हालत मे होते हैं। कभी-कभी वचपन मे (यहा तक कि बारह वर्ष की अवस्था मे भी) यौन अगो के प्रति सरल दिलचस्पी के रूप मे यह एक पारस्परिक आचरण होता है यानी वच्चे एक-दूसरे से यह कहते है कि तू मेरा देख और मै तेरा देखू। यह दशा अक्सर शरारत अथवा विद्रोह के आवेग के कारण भी होती है। यदि वह स्थायी रूप पकड ले तो यह समझना चाहिए कि इस दशा का कोई अस्पष्ट यौन कारण है। साथ ही यह दशा किसी अनजान तृप्ति की इच्छा से किसी उद्वेग का भी चिह्न है या हस्तमैथुन का ही एक रूप है और उस हालत मे इस दशा का साधारण हस्तमैथुन के समान ही इलाज करना चाहिए। वयस्को मे कामाग-प्रदर्शन निश्चित रूप से मैथुन का प्रतीक है और उसके प्रकारो को कई समूहो मे विभक्त किया जा सकता है।

लासेग ने सन् १८७७ मे सब से पहले कामाग-प्रदर्शन-विच्युति का वर्णन और नामकरण किया था। अत इस प्रकार यह विच्युति कामात्मक प्रतीकवाद का एक रूप है। इस प्रकार कामाग-प्रदर्शन का कार्य मैथुनिक आनन्द का स्थान ले लेता है क्योकि इसमे अपने से भिन्न लिंग के साधारणत निर्दोष और कमउम्र के व्यक्तियो को जानबूझकर यौन अगो को दिखलाने के कार्य मे तृप्ति मिलती है। इस प्रदर्शन के लिए विशेष रूप से वच्चो को पसन्द किया जाता है। यह कोई असाधारण वात नही मालूम होती और अधिकाश स्त्रियो को अपने जीवन मे एकाधिक वार विशेषकर जव उनकी उम्र कम थी, किसी ऐसे पुरुष से सावका पडा होगा जो इस तरह जानबूझकर उनकी उपस्थिति मे नगा हो गया होगा। यह सचमुच ही सव से ज्यादा साधारणत पाया जाने वाला यौन अपराध है। इस वारे मे नार्वुड ईस्ट ने ब्रिक्स्टन जेल मे देखा कि वहा हवालात मे रखे गए २९१ यौन हवालातियो मे से अश्लील ढग से कामाग-प्रदर्शन करने के अपराध के ही मामलो मे १०१ व्यक्ति थे, यद्यपि यहा यह वता दिया जाए कि कुल मिलाकर यौन अपराधियो की यह सख्या जेल के समस्त कैदियो की कुल सख्या का सिर्फ चार प्रतिशत ही थी। कामाग-प्रदर्शनकारी, जवान और ऊपरी तौर पर हट्टा-कट्टा होते हुए भी, महज नग्नता-प्रदर्शन और उस कार्य के द्वारा उत्पन्न होने वाली भावनात्मक प्रतिक्रिया से ही सन्तुष्ट हो जाता है। वह शायद ही कभी उन स्त्रियो से जिनके सामने वह नगा होता है, कोई मैथुनिक तकाजा करता है। कामाग-प्रदर्शनकारी शायद ही उस स्त्री से वोलता है, उस स्त्री के पास पहुचने की वात तो दूर रही। नियमत वह मैथुनिक उत्तेजना के चिह्नो के प्रकट करने तक मे भी

असफल रहता है। कामाग-प्रदर्शनकारी शायद ही कभी हस्तमैथुन करता है। कामाग-प्रदर्शन के कार्य और उसकी समझ मे इस कार्य से स्त्री पर होने वाली भावनात्मक प्रतिक्रिया से ही उसकी वासना की पूर्ण रूप से परितृप्ति हो जाती है। वह सन्तुष्ट और परितृप्त होकर लौटता है।

कामाग-प्रदर्शन के अनेक वर्गीकरण किए गए है। मेडर ने इसके तीन रूप माने है—

(१) **शैशवकालीन**—इसमे दिमाग सही रहने पर भी बच्चे दूसरो को घूरते है और चाहते है कि दूसरे भी उन्हे घूरे।

(२) **वृद्धावस्थाकालीन**—जो नपुसको मे मैथुनिक उत्तेजना का एक तरीका है।

(३) **यौन आमन्त्रण के रूप में कामांग-प्रदर्शन**—जो पर्याप्त रूप से सही दिमाग पर त्रुटिपूर्ण पुस्त्व के व्यक्तियो मे पाया जाता है।

यह वर्गीकरण पूर्ण नही भी हो सकता है, पर इसमे सही तौर पर मैथुनिक दुर्बलता के तत्त्व पर जोर दिया गया है, जो कामांग-प्रदर्शन मे बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। साथ ही इस विश्लेषण मे इस तथ्य पर भी जोर दिया गया है कि बचपन के साधारण कार्यकलाप मे मानसिक गडबडियो को स्वाभाविक आधार प्राप्त है।

क्राफ्ट एबिग ने कामाग-प्रदर्शनकारियो को इन चार चिकित्सा-सम्बन्धी वर्गो मे रखा था—

(१) ऐसी दुर्बलता की दशाए जिनमे मस्तिष्क या रीढ की बीमारी है जिससे चेतना आच्छादित हो जाती है और साथ ही नपुसकता पैदा हो जाती है।

(२) मिरगी की दशा, जिसमे यह कार्य अस्वाभाविक शारीरिक आवेग के कारण अपूर्ण चेतना की अवस्था मे सम्पन्न होता है।

(३) थोडी-बहुत स्नायविक रोगग्रस्त दशाए।

(४) ऐसी दशाए जिनमे गहरे आनुवेशिक प्रभाव के कारण सामयिक रूप से विस्फोट होता है। यह वर्गीकरण पूर्ण रूप से सन्तोषजनक नही है।

नार्वुड ईस्ट ने व्यावहारिक दृष्टि से कामाग-प्रदर्शनकारियो को दो मुख्य वर्गो मे रखा था—

(१) मनोरोगी, जो सम्पूर्ण संख्या के लगभग दो तिहाई रहते है, जिसमे स्वप्नवादी और मानसिक रूप से त्रुटियुक्त व्यक्तियो की प्रधानता रहती है।

(२) भ्रष्टचरित्र मे बाकी एक तिहाई, जिनका उद्देश्य पापपूर्ण होता है। अधिकाश दशाए निम्नलिखित दो मिले-जुले वर्गो मे से किसी एक के अन्तर्गत आ जाती है (क) ऐसे मामले जिनमे कमोबेश जन्मजात अस्वाभाविकता रहती है, पर अन्य दृष्टियो से मानसिक सन्तुलन बिलकुल ठीक होता है, कर्ता अक्सर नव-

युवक या नवयुतिया होते है और वे कम या ज्यादा उस लक्ष्य के प्रति सचेत होते है जिसे वे प्राप्त करना चाहते है। वे बहुधा कडे सघर्ष के बाद ही अपने आवेगो के सामने घुटने टेकते है। (ख) ऐसे मामले जिनमे मानसिक या स्नायविक गड-बडियो या शराब आदि नशेबाजी के कारण होने वाले अध पतन से उच्चतर केन्द्रो वाली अनुभूति घट गई है, ऐसे कर्ता अक्सर बूढे आदमी होते है (पादरी आदि) जिनका जीवन पूर्ण रूप से पवित्र रहता है। वे बहुधा सिर्फ अस्पष्ट रूप से ही जानते है कि वे किस प्रकार की परितृप्ति चाह रहे है और इसलिए उनमे अक्सर अभिव्यक्ति के पूर्व कोई द्वन्द्व या सघर्ष नही होता। आराम और बलवर्धक उपचार से उनका स्वास्थ्य सुधर सकता है और इस प्रकार वे कार्य बन्द हो सकते है। केवल प्रथम वर्ग के ही मामलो मे विकसित यौन गडबडी होती है। दूसरे वर्ग के मामलो मे कमोवेश निश्चित रूप से यौन उद्देश्य तो रहता है, पर वह मुश्किल से सज्ञान होता है और आवेग के उदय होने का कारण उसकी उग्रता नही, पर उच्चतर निषेधकारी केन्द्रो की अस्थायी अथवा स्थायी दुर्बलता होती है। शराब इसका सामान्य कारण है या तो वह वास्तविक मानसिक भ्रान्ति उत्पन्न कर देती है या प्रच्छन्न प्रवृत्तियो को मुक्त कर देती है। नार्वुड ईस्ट का कहना है कि इग्लैड मे शराब की खपत मे कमी होने के साथ ही अश्लील कामाग-प्रदर्शन के लिए सजा पाने वालो की सख्या मे भी कमी हो गई (इग्लैड और वेल्स मे सन् १९१३ मे ८६६ आदमियो को ऐसे मामलो मे सजा मिली थी, सन् १९२३ मे अपेक्षाकृत बडी जनसख्या मे सजायाफ्ता लोगो की सख्या सिर्फ ५४८ थी)।

मिरगी वाली ऐसी दशाओ मे चेतना लुप्त हो जाती है। अधिक से अधिक इन दशाओ के सम्बन्ध मे यही माना जा सकता है कि उनमे एक छद्म कामाग-प्रदर्शन रहता है। वे इतने सामान्य नही है जितना कि समझा जाता है। नार्वुड ईस्ट की १५० मामलो की शृखला मे (यद्यपि उनमे मिरगी वाले लोग मौजूद थे) कोई भी ऐसा मामला नही मिला और वे कहते है कि उनके अनुभव के अनुसार ऐसे मामले अक्सर इतने अधिक नही पाए जाते जितने कि वे नाटकीय होते है। नि सन्देह यह सच है कि वास्तविक या दृश्यमान कामाग-प्रदर्शन की दशाए मिरगी के मरीजो मे भी हो सकती है, जैसा कि स्पष्ट तौर पर अनेक वर्ष पहले पेल्लाडा ने वेरोना मे दिखलाया था। जो भी हो, हमे हडबडी के साथ यह निष्कर्ष नही निकाल लेना चाहिए कि चूकि मिरगी के मरीजो मे ऐसे मामले होते है इसलिए वे आवश्यक रूप से अचेतन कार्य है। जब छद्म कामांग-प्रदर्शन का कार्य सच्चे अर्थ मे मिरगी से सयुक्त होता है, तो उसमे कोई मानसिक यौन तत्त्व नही रहता और वह निश्चित रूप से किसी भी प्रकार की परिस्थिति मे होने के लिए बाध्य है, चाहे मरीज अकेला हो या भीड

हो। वह बिलकुल उन मामलो से मिलता है जिनमे मिरगी का मरीज मानसिक दौरे के समय ऊपरी तौर पर उद्देश्यपूर्ण किन्तु वास्तव मे अवचेतन रूप से पेशाव करने का कार्य करता है। इस प्रकार का कार्य स्वचालित, अचेतन और अनिच्छा-पूर्वक होता है। इस दशा मे मरीज दर्शको को अक्सर देखता ही नही; अत. यह कामाग-प्रदर्शन का कार्य नही हो सकता क्योकि प्रदर्शन के कार्य मे पहले से सोचा-समझा और सज्ञान उद्देश्य रहता है। दूसरी ओर जव कभी समय या स्थान पहले से ही सोच-समझकर चुन लिया जाता है (एकान्त और शान्त स्थान, सिर्फ एक या दो नवयुवतियो अथवा वच्चो की उपस्थिति) तव यह वात मालूम होने पर भी कि कर्ता मिरगीग्रस्त है, यह स्वीकार करना मुश्किल होता है कि हमारे सामने प्रस्तुत मामला मिरगी के कारण होने वाला अवचेतनमूलक मामला है।

मिरगी के मर्ज वाले इन छद्म कामाग-प्रदर्शनकारियो को छोडकर, जो कानूनी तौर पर स्पष्ट रूप से अपने कार्य के लिए जिम्मेदार नही ठहराए जा सकते, यह वात फिर अव भी याद आती है कि कामांग-प्रदर्शन मे अक्सर या तो मस्तिष्क-विकृति वहुत ऊची मात्रा मे स्नायविक रोग के आधार पर रहती है या वास्तविक वीमारी ही होती है। यह वात कामाग-प्रदर्शन मे प्राय किसी भी विकृति की अपेक्षा वडी हद तक सच है। विना विशेषज्ञो द्वारा डाक्टरी जाच के किसी भी कामाग-प्रदर्शनकारी को जेल नही भेजना चाहिए। हिर्शफेल्ड का विश्वास है कि कामाग-प्रदर्शनकारी कभी सहीदिमाग नही होता। कुछ मामलो मे कामाग-प्रदर्शन का आवेग नियन्त्रण मे लाया जा सकता है, अथवा वह अवस्था यो ही निकल जा सकती है। जिन लोगो मे कामाग-प्रदर्शन एक वडी हद तक लम्बे अरसे तक शराव पीने अथवा अन्य प्रभावो के कारण मस्तिष्क के उच्चतर केन्द्रो की निषेध और नियन्त्रण करने की शक्ति के नष्ट होने से होता है उन व्यक्तियो का इलाज हो सकता है और आरोग्यशास्त्र के नियमो के पालन से और इलाज से इस दशा को काबू मे लाया जा सकता है। जब वह नौजवानी मे होती है तो वह स्वयस्फूर्त रूप से बहुत वढ जाती है। उदाहरण के लिए तरुण रूसो के मामले मे—जो लिखता है कि जव वह लडका था तो उसने एक या दो बार दूर से अपने शिश्न आदि कामागो को लडकियो को दिखलाया था—यह बात पाई जाती है। जब मै बहुत वर्ष पहले मोरैविया मे से गुजर रहा था तो मैने एक जवान स्त्री को रेलवे लाइन के पास एक नाले मे नहाते हुए देखा और ज्यो ही रेलगाडी वहा से निकली उसने पीठ फेर ली और शमीज उठा ली। (यहा हमे इस बात को ध्यान मे रखना चाहिए कि नितम्वो का प्रदर्शन कर भूत आदि भगाने की प्राचीन रीति आगे चलकर मिट गई और यही वात घृणा व्यक्त करने के तरीके के रूप मे विशेषकर स्त्रियो द्वारा अमल मे लाई जाने लगी।)

बचपन की अवस्था को छोडकर स्त्रियो मे कामाग-प्रदर्शन की सच्ची विच्युति बहुत ही विरल है। जैसा कि डगलस ब्रायन ने लिखा है कि कामाग-प्रदर्शन मे स्त्रिया सम्पूर्ण शरीर को ही शिश्न-तुल्य मानकर दिखलाती है।

कामाग-प्रदर्शन एक ऐसा कार्य है जो देखने मे प्रयोजनरहित और अर्थहीन जान पडता है किन्तु यह समझना कि वह आवश्यक रूप से पागलपन है, नादानी होगी। इस समय तो नही, पर पहले पागलपन और यौन विकृतियो पर लिखने वाले लेखक-गण ऐसा ही समझते थे। यह बात दूसरी है कि उग्र रूप मे यह दशा दोनो मे से किसी एक के साथ सम्बद्ध हो सकती है।

कामाग-प्रदर्शन को हमे बुनियादी तौर पर पूर्वराग की विकृति पर आधारित एक प्रतीकात्मक कार्य समझना चाहिए। यदि कामाग-प्रदर्शनकारी पुरुष है तो वह अपने यौन अवयवो को स्त्री दर्शक को दिखलाता है और इस दृश्य के फलस्वरूप स्त्री मे जो थोडी सी यौन-विषयक शर्म की प्रतिक्रिया का धक्का लगता है उसमे ही कर्ता मैथुन की स्वाभाविक भावनाओ के समान तृप्ति पा लेता है। वह महसूस करता है कि उसने मानसिक रूप से स्त्री पर बलात्कार कर दिया है।

कामाग-प्रदर्शन इस प्रकार बहुत से व्यक्तियो द्वारा अनुभव किए जाने वाले उस आवेग के सदृश है और सचमुच ही उससे सम्बन्धित है जिसमे वे अपने से भिन्न लिंग के कमउम्र और भोलेभाले व्यक्तियो को अश्लील कहानिया सुनाते है या उनके प्रति अशिष्ट आचरण करते है। यह भी कामाग-प्रदर्शन का एक रूप है, और उसके द्वारा होने वाली परितृप्ति शारीरिक कामाग-प्रदर्शन के बिल्कुल समान ही भावनात्मक गडबडी पर आधारित है, जिसे वह उत्पन्न करता है, यद्यपि यहा हम नैके के इस मत को स्वीकार नही कर सकते कि कामाग-प्रदर्शन सादवाद का ही एक रूप है और इस दशा मे परितृप्ति का अनुभव सिर्फ इस प्रदर्शन से पैदा होने वाले आतक के कारण होता है। दोनो प्रकार के कामाग-प्रदर्शन एक ही व्यक्ति मे सयुक्त हो सकते है।

यह बडी दिलचस्प बात है कि कामाग-प्रदर्शन का चाबुक लगाने या दागने से सम्बन्धित मैथुनिक प्रतीकवाद से निकट सादृश्य है। चाबुक मारने वाला स्त्री के पास छडी लेकर (छडी स्वत शिश्न का प्रतीक है और कुछ देशो मे उसके ऐसे नाम भी होते है जो शिश्न के लिए प्रयुक्त होते है) पहुचता है ताकि वह स्त्री के किसी अन्तरग भाग पर ऐसे निशान उभारे जिनसे स्त्री को शर्म लगे और उसके शरीर मे ऐसी उत्कम्पित गति पैदा हो जो मैथुनिक उत्तेजना के साथ सम्बद्ध रहती हो। चाबुक खाते समय स्त्री या तो ऐसी मीठी शर्म का अनुभव करती है या चाबुक लगाने वाला यह कल्पना कर लेता है कि वह ऐसा अनुभव कर रही है।

छडी से दागने की विच्युति मे कामाग-प्रदर्शन की अपेक्षा मैथुनिक प्रक्रिया की नकल असली प्रक्रिया से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है क्योकि कामाग-प्रदर्शनकारी स्त्री की सहमति नही पा सकता और न तो वह स्त्री के नग्न शरीर के घनिष्ठ सम्पर्क को ही प्राप्त कर सकता है। इसके बीच का अन्तर इस तथ्य से सम्बन्धित है कि सक्रिय दागने वाला व्यक्ति कामाग-प्रदर्शनकारी की अपेक्षा अधिक पौरुषशाली और सही-दिमाग व्यक्ति होता है। जो भी हो, यहा केवल सादृश्य मात्र है न कि एकरूपता। हमे कामाग-प्रदर्शनकारी को कभी सादवादी नही समझना चाहिए, जैसा कि कभी-कभी समझा जाता है। अधिकाश क्षेत्रो मे कामाग-प्रदर्शनकारी का यौन आवेग शिथिल रहता है और वह सामान्य पक्षाघात (लकवे) की प्रारम्भिक दशा बुढापाग्रस्त मानसिक विकृति या मानसिक विश्रृखलता के किसी अन्य शिथिल करने वाले कारण जैसे दीर्घकालीन शराब की लत आदि से पीडित हो सकता है। उसकी यौन शिथिलता इस तथ्य से भी सूचित होती है कि दर्शक के रूप मे चुने जाने वाले व्यक्ति अक्सर बच्चे ही रहते है।

जैसा कि आपातदृष्टि से दिखलाई देता है, कामाग-प्रदर्शन का कार्य मनोवैज्ञानिक तौर से इतना जटिल नही है कि उसकी व्याख्या ही न की जा सके। कामाग-प्रदर्शनकारी अक्सर झेपू और डरपोक होता है और कभी-कभी अपेक्षाकृत उसकी शारीरिक बनावट अविकसित रहती है। साथ ही उसका कामाग-प्रदर्शन-कार्य उसके झुकाव के विरुद्ध एक उग्र प्रतिक्रिया के रूप मे होता है। फेटिशवादी भी इसी प्रकार अक्सर झेपू और गुमसुम होते है और हिर्शफेल्ड ने इस बात पर जोर दिया है कि कामाग-प्रदर्शनकारी मे अक्सर फेटिशवाद के तत्त्व मौजूद रहते है। सचमुच ही वे इन दो बातो को इन सब मामलो मे मौजूद मानते है—(१) अन्तर्जात और स्नायविक रोगग्रस्त। (२) बहिर्जात, जिसमे अक्सर फेटिशवाद के तत्त्व होते है। कामाग-प्रदर्शनकारी किसी स्त्री के चेहरे से नही पर अक्सर उसके पैरो ही से अधिक उत्तेजित होता है। हिर्शफेल्ड का विश्वास है कि बच्चो और स्कूली लडकियो को देखकर कर्ता इन कार्यो की ओर प्रेरित होता है। क्योकि सम्भवत· ये लोग ही पाव सब से अधिक खुले रखते है।

इस कार्य से होने वाली प्रतिक्रिया को इन तीन वर्गो मे से किसी एक मे रखा जा सकता है—(१) लडकी डर जाती है और भाग जाती है, (२) वह नाराज होती है और अपराधी को गालिया देती है, (३) उसे आनन्द मिलता है, वह खुश होती है और हसती है या मुस्कराती है। यह अन्तिम प्रतिक्रिया ही है जिससे कामाग-प्रदर्शनकारी को सब से अधिक तृप्ति मिलती है।

यह सम्भव जान पडता है कि कामाग-प्रदर्शन के सदृश कामात्मक प्रतीकवाद

का एक रूप उन विरल दशाओ मे भी पाया जा सकता है जिनमे स्त्रियो के सफेद कपडो पर स्याही, तेजाव अथवा अन्य किसी धव्वा लगाने वाले द्रव्य पदार्थ को फेंक-कर कर्ता यौन परितृप्ति पाता है। मोल, हिर्शफेल्ड, थ्वानो और अन्य लोगो ने इस प्रकार के मामले लिपिवद्ध किए है। थ्वानो का ख्याल है कि ऐसे मामलो मे धव्वा ही फेटिश है। यह वस्तुस्थिति का एक गलत व्योरा है। अधिकाश मामलो मे सम्भवत. सफेद कपडे ही प्रधान रूप से फेटिश होते है, किन्तु धव्वा लगाने अथवा कपडे खराव करने के कार्य से यह फेटिश अधिक तीक्ष्णता के साथ साकार वन जाता है और साथ ही इसी समय दोनो पक्ष एक भावनात्मक अवस्था मे प्रविष्ट हो जाते है, जो फेटिशवादी के लिए मैथुन की नकल वन जाती है। हम शायद इस लक्षण के साथ उस आकर्षण को जोड सकते है जो अक्सर जूते के फेटिश बनाए हुए व्यक्ति को कीचड भरे जूते मे दृष्टिगोचर होता है। स्त्रियो मे स्वच्छता के प्रति जो प्रेम रहता है उसे रेस्तिफ द लॉ व्रितोन स्त्रियो के उस आकर्षण से सम्बद्ध करते है जो उन्हे अपने पैरो के प्रति होता है। इस सम्वन्ध मे यह ध्यान देने योग्य है कि स्त्री के शरीर मे पैर ही ऐसे अग है जिन्हे साफ रखना वहुत मुश्किल है।

गार्नियर ने कोडे दागने और इस प्रकार से अन्य अभिव्यक्तियो के लिए साद-वादयुक्त फेटिशवाद शब्द का प्रयोग किया है, जिनपर हम यहा विचार कर रहे है। इस शब्द का प्रयोग वे इस आधार पर करते है कि ये अभिव्यक्ति मे मिश्रज है, जिनमे किसी एक निर्दिष्ट पात्र के प्रति पूजा की रोगग्रस्त भावना के साथ ही साथ थोडी-वहुत हिंसा भी मिली रहती है। कामात्मक प्रतीकवाद की जिस धारणा को मैने अपनाया है उसकी दृष्टि से इस शब्द के प्रयोग की कोई जरूरत नही है। यहा दो असमान मानसिक अवस्थाओ का मिश्रज सयोग नही होता। यहा हमे सिर्फ कामात्मक प्रतीकवाद पर विचार करना हे, जो कमोवेश पूर्ण और जटिल है।

प्रतीकवाद की प्रक्रिया के तौर पर कामांग-प्रदर्शन की धारणा मे यह निहित रहता है कि कामाग-प्रदर्शनकारी उस स्त्री की मानसिक प्रतिक्रियाओ के प्रति सज्ञान रूप से या अचेतन रूप से ध्यान दे। वह एक ऐसी भावना को उत्पन्न करना चाहता है जिसे वह सम्भवत समझता है कि अधिकाश दशाओ मे वह आनन्ददायक होगी। परन्तु किसी न किसी कारण से उसकी समझने की सूक्ष्मतर शक्तिया या तो निरुद्ध रहती है, काम नही करती और वह ठीक ढग से उस प्रभाव का जो वह उत्पन्न करने जा रहा है या अपने कार्य के सामान्य नतीजे का आकलन करने मे असमर्थ रहता हे या फिर वह एक प्रवल आवेगात्मक दुरावेग मे वह जाता है जो उसके विवेक पर काबू कर लेती है। वहुत से मामलो मे कामाग-प्रदर्शनकारी के पास यह विश्वास करने के लिए काफी कारण होते है कि उसका कार्य अन्यथा न होगा, आनन्ददायक

होगा, बात यह है कि उसे निम्न श्रेणी की नौकरानियो आदि मे सहिष्णु दर्शक भी मिल जाते है।

परन्तु कामाग-प्रदर्शनकारी की इच्छा अक्सर महज सहलाने जैसे हलके मनोरजन की अपेक्षा कुछ और भी ज्यादा प्रभाव पैदा करने की होती है। वह एक प्रबल प्रभाव पैदा करना चाहता है, चाहे वह आनन्ददायक हो या न हो। कभी-कभी एक दुर्बल, अहकारग्रस्त और नारीप्रकृति का पुरुप अधिक से अधिक भावनात्मक प्रभाव पैदा करने की कोशिश करता है। कामाग-प्रदर्शनकारी अपने स्त्री-पात्र मे भावनात्मक आघात को बढाने की कोशिश करता है। यह इस तथ्य से भी देखा जा सकता है कि वह कामाग-प्रदर्शन करने के लिए गिरजाघर को चुन सकता है। पर वह प्रार्थना के समय ऐसा कार्य नही करेगा क्योकि वह हमेशा लोगो के जमाव से बचता है, बल्कि शायद वह शाम का ही समय चुने, जबकि गिरजाघर मे इक्की-दुक्की स्त्रिया तितर-बितर रहती है और घुटनो के बल बैठकर प्रार्थना करती है।

कामाग-प्रदर्शनकारी गिरजे को इसलिए नही चुनता कि वह कोई धार्मिक आघात पहुचाना चाहता है। नियमत तो कामाग-प्रदर्शनकारी यह महसूस ही नही करता कि उसका कार्य धार्मिक भावनाओ पर आघात पहुचाने वाला है। वह गिरजाघर को इसलिए चुनता है कि वहा कार्य सम्पन्न करने और उससे वाछनीय परिणाम निकलने के लिए वास्तव मे सब से अनुकूल परिस्थिति रहती है। इस प्रकार के एक व्यक्ति ने कहा था—"प्रभावो के विनिमय के लिए ठीक इसीकी जरूरत थी।" "वे क्या सोच रही है ? मेरे बारे मे वे एक-दूसरे से क्या कहती है ? ओह! उन बातो को मै जानना चाहूगा।" गार्नियर के एक मरीज ने जो इस उद्देश्य से गिरजे मे जाया करता था, यह महत्त्वपूर्ण वक्तव्य दिया—"मै गिरजो मे जाना क्यो पसन्द करता हू ?—इस प्रश्न का जवाब मै मुश्किल से ही दे सकता हू। किन्तु मै जानता हू कि केवल वही मेरे कार्य का पूरा-पूरा महत्त्व है। स्त्री का दिमाग भक्ति से ओत-प्रोत रहता है और उसे यह देखना ही चाहिए कि ऐसे स्थान मे इस प्रकार का कार्य करना सिर्फ एक घटिया दर्जे का मजाक या घृणात्मक अश्लीलता नही है। गिरजे मे मै सिर्फ अपना मनोरजन करने के लिए ही नही जाता हू। मेरा उद्देश्य उससे कही गम्भीर है। जिन स्त्रियो को मै अपने कामागो को दिखलाता हू उनमे मेरे कार्य का क्या नतीजा होता है यह देखने के लिए मै उनके चेहरो पर नजर गडाए रहता हू। मै यह चाहता हू कि वे यह प्रकट करे कि उन्हे बहुत आनन्द मिला। तथ्य तो यह है कि मै चाहता हू कि वे अपने-आपसे यह कहने के लिए बाध्य हो जब प्रकृति इस प्रकार दिखलाई देती है तो वह कितनी प्रभावशाली मालूम देती

है।" यह साफ है कि यहा हमे उसी भावना के चिह्न मिलते है जिसने प्राचीन-काल मे शिश्न-पूजा की प्रेरणा दी थी। यह एक ऐसी भावना है जो सचमुच आज भी, जैसा कि स्टैन्ले हाल तथा अन्य लोगो ने बतलाया है, नवयुवको और किशोरो साथ ही स्त्रियो मे पाई जाती है, यद्यपि सामान्यत यह भावना सयम के भीतर रहती है और पूर्ण विकसित पुरुष अथवा स्त्री-अगो के मालिक अथवा मालकिन होने के रूप मे मौजूद है।

यही कारण है कि सही दिमाग की दशा के निकटतम रूपो मे कामाग-प्रदर्शन तरुणावस्था की एक अभिव्यक्ति है। नार्वुड ईस्ट ने देखा कि उनके १५० मामलो मे से ५७ मे (जो एक तिहाई से भी अधिक है) कर्ताओ की उम्र २५ साल से कम थी और उनकी सख्या उम्र के बढने के साथ क्रमश घटती जाती थी, साथ ही कुल सख्या के अधिकाश व्यक्ति अविवाहित थे। यह भी एक कारण है कि एक महत्त्व-पूर्ण समूह को (नार्वुड ईस्ट के अध्ययन मे ४० को) 'स्वप्नद्रष्टाओ' की सज्ञा क्यो दी जा सकती है। दूसरे शब्दो मे ये स्वप्नद्रष्टा अस्वाभाविक पूर्वराग की तरुणावस्थाकालीन कल्पनाओ का विकास करते है, यद्यपि जैसा कि नार्वुड ईस्ट ने लिखा है—"इन क्षेत्रो मे से कइयो के सम्बन्ध मे जानकर खेतो मे चलने वाली जानवरो की प्रेमलीला तथा प्रेमनिवेदन की बात याद आती है, जिसमे दिखावे का तत्त्व बहुत जोरदार होता है।"

यह पूर्वजो मे प्रचलित शिश्न-पूजा का ही एक प्रकार से छद्म रूप है जिसे कामाग-प्रदर्शन के कार्य मे हम प्रतिफलित देखते है। यहा सही मानो मे वशानुक्रम से प्राप्त पूर्वजो के किसी सहजात का पुनरावर्तन नही होता, बल्कि सभ्यता मे मौजूद रहने वाली सूक्ष्मतर और उच्चतर भावनाओ के जडीभूत होने अथवा प्रति-रुद्ध होने के कारण प्रदर्शनकारी अपेक्षाकृत आदिम युग के मानसिक स्तर पर पहुच जाता है और इस तरह वह उस आधार को प्रस्तुत कर देता है जिसपर निम्नतर सस्कृति के आवेग स्वाभाविक रूप से जड जमा सकते है और पनप सकते है। जब वशानुगत स्नायविक रोगग्रस्त गडबडी बहुत ज्यादा गहराई तक नही होती तो अक्सर अनुकूल परिस्थितियो मे व्यक्ति सतोषजनक और पूर्णरूप से स्वाभाविक व्यवहार मे लौट जाता है।

यह दिखलाई देगा कि कामाग-प्रदर्शनकारी—जैसाकि यौन विच्युतियो के साथ अक्सर होता है—एक यौन अभिव्यक्ति को सिर्फ एक सोपान आगे ले जा रहा है, जिसका एक आदिम मूल आधार है और जो उचित रूप से नियन्त्रित सीमाओ के भीतर और उचित परिस्थितियो मे जायज भी माना जा सकता है। कामाग-प्रदर्शनकारी अक्सर हद से ज्यादा नार्सिसस्वादी या आत्मप्रेमी होता है। किन्तु

चाहिए। दूसरी वार अपराध करने पर अपराधी को किसी आरोग्य-भवन मे अनिवार्य रूप से कम से कम एक महीने के लिए जाच और इलाज के लिए रखना चाहिए। यह फोरेल के मत के भी अनुकूल है कि कामाग-प्रदर्शनकारी खतरनाक नही होते और यदि कमजोर दिमाग के न हो तो उन्हे मानसिक आरोग्य-भवन मे थोडे समय से अधिक नही रखना चाहिए।

सहायक पुस्तक-सूची

क्राफ्ट एबिंग—Psychopathia Sexualis

हैवलाक एलिस—Studies in the Psychology of Sex, Vol V, 'Erotic Symbolism'

डब्ल्यू नार्वुड ईस्ट—'Observations on Exhibitionism,' Lancet, Aug 23, 1924

सहयौन सुखदुःखास्तित्व (सादवाद, मासोकवाद)

सहयौन सुखदु खास्तित्व (श्रेक नोट्सिग द्वारा प्रवर्तित) एक सुविधाजनक शब्द है, जो कामात्मक उत्तेजना और कष्ट के सम्बन्ध को सूचित करता है, पर जिसमे उसके सक्रिय और निष्क्रिय रूपो के स्पष्ट प्रभेद का कोई उल्लेख नही रहता। सक्रिय रूप को सामान्यत मार्किस-द-साद (१७४०–१८१४) के नाम पर 'सादवाद' कहा जाता है, जिन्होने उसे कुछ अश मे अपने जीवन मे और अधिकतर अपनी पुस्तको मे चित्रित किया था। निष्क्रिय रूप को आस्ट्रिया के उपन्यासकार साकेर मासोक (१८३६–१८९५) के नाम पर 'मासोकवाद' कहा जाता है, जिन्होने इस यौन विच्युति का, जिसका उन्हे स्वय अनुभव रहा है, वार-वार अनेक उपन्यासो मे वर्णन किया है। सादवाद की परिभाषा सामान्यत ऐसी यौन भावना के रूप मे की जाती है जो भावना के केन्द्र व्यक्ति को कष्ट—चाहे वह शारीरिक हो या नैतिक—पहुचाने की इच्छा से सयुक्त होता है। मासोकवाद एक ऐसी यौन भावना है जो भावना जागरित करने वाले पात्र द्वारा शारीरिक रूप से दलित किए जाने और नैतिक रूप से अपमानित किए जाने की इच्छा से सम्बद्ध है। जब पूर्ण विकसित होने पर सहयौन सुखदु खास्तित्व के अन्तर्गत आने वाले कार्य—चाहे वे सक्रिय हो या निष्क्रिय (सूक्ष्म-क्रिय), चाहे वास्तविक हो या दिखावे के रूप मे या प्रतीकात्मक हो, अथवा सिर्फ कल्पित हो—अपने-आपमे यौन आवेग की परितृप्ति के लिए पर्याप्त हो जाते है, और अन्तिम सोपान मे मैथुन की आवश्यकता के वगैर ही पूर्ण परितृप्ति हो जाती है।

सहयौन सुखदु खास्तित्व सज्ञा के प्रयोग की वाछनीयता इस वर्ग की ऐसी अभिव्यक्तियो के अस्तित्व से प्रकट होती है जो सुविधापूर्वक सादवाद या मासोकवाद मे से किसीके भी क्षेत्र मे नही आते। इस प्रकार क्राफ्ट एबिग और मोल ने निष्क्रियतापूर्वक मार खाने को मासोकवाद के रूप मे मानने से इन्कार कर दिया और उसे सिर्फ शारीरिक उत्तेजना के रूप मे स्वीकार किया, ऐसी बात हो सकती है, किन्तु बहुत से मामलो मे वह निश्चित रूप से मासोकवादी और सक्रिय रूप मे सादवादी की होती है। इन दोनो मे से प्रत्येक मामले मे कामात्मक भावना कष्ट के साथ सयुक्त रहती है। इस प्रकार सहयौन सुखदु खास्तित्व सज्ञा मे सुविधापूर्वक वे सब लक्षण समा जाते है जिन्हे सादवाद अथवा मासोकवाद के अन्तर्गत रखना हमेशा आसान नही होता।

पारिभाषिक रूप से सादवाद और मासोकवाद का एकसाथ निमज्जन असुविधाजनक है, पर मनोवैज्ञानिक रूप से वह उचित है। मासोकवाद, जैसा कि फ्रायड ने उसके सम्बन्ध मे कहा है, स्वय अपने के प्रति मुडा हुआ सादवाद ही है। सचमुच यही मुख्य आधार है जिसके अनुसार यह वाञ्छनीय है कि सादवाद और मासोकवाद एकसाथ एक शीर्षक के अन्तर्गत रख दिए जाए। चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से उनका अस्तित्व अक्सर अलग-अलग रहता है, किन्तु उनके बीच कोई स्पष्ट सीमारेखा नही है, और यद्यपि विशुद्ध मासोकवादी मे सादवाद का कोई तत्त्व खोजना मुश्किल है, तथापि सादवाद मे मासोकवाद के तत्त्व मिलना सामान्य बात है। यहा तक कि साद स्वय विशुद्ध सादवादी नही थे और उनमे मासोकवाद के स्पष्ट तत्त्व थे, जो उनके ग्रन्थो मे व्यक्त होते है। यदि वे वास्तविक रूप से बिलकुल ही एकाकार न हो तो भी सक्रिय और निष्क्रय तत्त्व घनिष्ठ रूप से सयुक्त हो सकते है। इस प्रकार प्रधान रूप मे सक्रिय सहयौन सुखदु खास्तित्व का कर्ता जिसके लिए कोडा कामोद्दीपक फेटिश है, लिखता है—"कार्य के सक्रिय पक्ष के प्रति मै प्रतिक्रिया करता हू। मैने निष्क्रिय पक्ष की ओर भी थोडी सी दिलचस्पी का विकास किया है, किन्तु मेरा यह दृढ विश्वास है कि निष्क्रिय अर्ध अवचेतन विपरीतता अथवा कार्य के स्थानान्तरण पर यह निर्भर करती है जिसका नतीजा यह है कि यद्यपि कष्ट मुझपर ही पडता है पर अवचेतन रूप से मुझे यह कल्पना हो जाती है कि मै ही अन्य किसी व्यक्ति को कष्ट दे रहा हू।" यह एक ध्यान-योग्य दिलचस्प बात है कि जहा मासोकवादी का सामान्य स्वभाव कभी-कभी पुरुष-प्रकृति का और कठोर हो सकता है, वहा सादवादी अक्सर डरपोक, सुकुमार और स्त्रीस्वभावयुक्त व्यक्तित्व का होता है। इस तरह के एक गीडेन नामक नवयुवक का अध्ययन [illegible] ने किया था। यह युवक अक्सर पागलखाने मे

भेज दिया गया। इस नवयुवक ने एक लड़के की हत्या कर डाली थी। रक्त के बारे मे उसमे चार साल की उम्र से ही कामात्मक भावनाए उठने लगी थी। वह खून करने के खेल खेलना पसन्द करता था। वह शारीरिक रूप से अल्पविकसित, साथ ही बहुत डरपोक, सुकुमार और इतना झेपू था कि वह एकान्त के अलावा पेशाब भी नही कर सकता था। वह बहुत धार्मिक था और अश्लीलता तथा अनैतिकता से उसे घृणा थी और उसका मुखड़ा बच्चे के समान मनोहर था। किन्तु उसके लिए रक्त और हत्या का प्रेम एक अदम्य दुरावेश था और उसकी परितृप्ति से उसे भारी भावनात्मक परितोष मिलता था। ए० मारी ने एक अन्य सादवादी फ्रासीसी नवयुवक का अध्ययन किया था। इस नवयुवक का स्वभाव भी रीडेल जैसा ही था। वह बहुत डरपोक था, जरा-जरा सी बात मे झेपता था, बच्चो से भी आख मिलाने मे या स्त्रियो तक पहुचने मे उसे डर लगता था। वह भी एकात के अलावा पेशाब नही कर पाता था। वह भी पागलखाने भेजा गया था।

हिर्शफेल्ड ने मेटाट्रोपवाद शब्द का प्रवर्तन कर सादवाद और मासोकवाद की परिभाषाओ के सम्बन्ध मे पाई जाने वाली कुछ कठिनाइयो को दूर करने की कोशिश की है। इसका अर्थ एक प्रकार का परावर्तित या परिवर्तित कामात्मक रुख है, जिसमे पुरुष मे स्त्री का नारीसुलभ स्वस्थ रुख दृष्टिगोचर होता है और उसकी अति हो जाती है और स्त्री पुरुष का स्वस्थ पुरुषसुलभ रुख अपना लेती है और उसकी अति कर डालती है। अतएव पुरुष मे सादवाद का अर्थ सिर्फ इतना ही होगा कि पुरुषसुलभ स्वस्थ कामात्मक रुख की अति हो और स्त्री मे मासोकवाद का अर्थ सिर्फ स्वस्थनारी-सुलभ कामात्मक रुख की अति करना होगा। इस प्रकार मासोकवाद और सादवाद दोनो ही इसके अनुसार कि वे पुरुष मे होते है या स्त्री मे, बिलकुल भिन्न बन जाते है। इस प्रकार हिर्शफेल्ड की राय मे पुरुष का सादवाद और स्त्री का मासोकवाद स्वस्थ यौन आवेग की अति-अनुभूतिशील या कामोन्मादग्रस्त उग्र अवस्था है पर विपरीत लिग के व्यक्ति मे पाए जाने पर वे साधारण अवस्था से उठी हुई पूर्ण रूप से द्वन्द्वात्मक विच्युतिया बन जाती है। जो भी हो, यह धारणा सामान्यत स्वीकार नही की गई। इससे विषय बड़े भद्दे ढग से जटिल बन जाता है। वह स्वस्थ और स्वाभाविक कामात्मकता की धारणा पर आधारित है, जिसे सभी स्वीकार नही कर सकते। हिर्शफेल्ड स्वय स्वीकार करते है कि सादवादी पुरुष अक्सर पौरुष गुण-युक्त नही होता और मासोकवादी पुरुष स्वभाव मे नारीसुलभ नही होता, इस कारण मेटाट्रोपवादी धारणा मुश्किल से ही लागू हो सकती है। चाहे हम स्त्रियो पर विचार कर रहे हो या पुरुषो पर, अब भी सहयौन सुखदुखास्तित्व का उसके दो परस्पर-विरुद्ध किन्तु अक्सर सम्बन्धित रूपों—सादवाद और मासोकवाद के

साथ प्रयोग सब से अधिक सुविधाजनक जान पडता है।

कष्ट को आनन्द के रूप मे अनुभव करने मे एक कठिनाई खडी हो जाती है। जो भी हो सहयौन सुखदु खास्तित्व मे यह बात नही है कि जो आनन्द है वही कष्ट है, बल्कि आनन्द तो कामात्मक उत्तेजना मे रहता है, अक्सर सहयौन सुखदु खास्तित्वग्रस्त कर्ता अतिकामात्मक शक्तियुक्त होने की अपेक्षा अल्पयौन शक्तियुक्त पाया जाता है। वे अति-अनुभूतिशील या यौन रूप से अत्यन्त सबल और सक्रिय दशा के विपरीत होते है। इसलिए उन्हे यौन सक्रियता को जगाने के लिए स्वाभाविक उद्दीपनों की अपेक्षा प्रबल उद्दीपनो की आवश्यकता होती है। प्रबल अनुभूतिया और प्रबल भावनाए, यहा तक कि बहुत ही विसदृश भावनाए, जैसे चिन्ता और शोक भी उद्दीपन कार्य मे और इस प्रकार आनन्द देने मे समर्थ होते है, यद्यपि वे अपने-आपमे कष्टकर है। क्यूलेर ने स्त्री और पुरुषो, दोनो मे ही पाई जाने वाली बहुत सी ऐसी दशाए सामने रखी है जिनमे कर्ताओ का नैतिक चरित्र उच्च कोटि का था। उनमे स्नायविक शैथिल्य के लक्षण भी प्रकट थे। अपने शिथिल यौन आवेग को पुन उत्तेजित करने के लिए सहयौन सुखदु खास्तित्वग्रस्त कर्ता इस मूलभूत मनोवैज्ञानिक तथ्य का सज्ञान रूप से या अवचेतन रूप से लाभ उठाता है।

आगे यह भी ध्यान मे रखना चाहिए कि बहुत से लोगो मे, विशेषकर स्नायविक प्रवृत्ति के लोगो मे अल्प मात्रा मे कष्ट (मानसिक आघात, चिन्ता, भय आदि की सम्बद्ध भावनाओ-सहित) के होने से—चाहे दूसरो को कष्ट सहते देखा जाए या खुद कष्ट सहा जाए—एक आनन्ददायक मानसिक स्थिति जागरित हो जाती है। अवश्य ही यह कष्ट इतना घनीभूत नही होता कि उससे वास्तविक कामात्मक अनुभूति को उद्दीपन मिले। कष्ट के प्रति होने वाली स्वाभाविक प्रतिक्रिया या तो दु खपूर्ण या सहानुभूतिपूर्ण होती है। एक व्यक्ति खुद अपने को होने वाले कष्ट के कारण दुखी रहता है और दूसरा व्यक्ति अपेक्षाकृत कम सीमा तक दूसरो के कष्ट के लिए दुखी रहता है। शेषोक्त दशा मे दु ख की मात्रा का घटना-बढना इस बात पर निर्भर रहता है कि कष्ट-पीडित व्यक्ति के प्रति कर्ता का कितना स्नेह है। पर इस दु ख की भावना मे आनन्द या सन्तोष का भी कुछ तत्त्व हो सकता है, हमे लुक्रेटियस के द्वितीय खड मे लिए गए एक उद्धरण मे इस बात की एक प्राचीन अभिव्यक्ति मिलती है। यह उद्धरण समुद्र के किनारे सुरक्षित रूप मे खडे हुए एक व्यक्ति की भावनाओ के सम्बन्ध मे है, जो दूसरे लोगो को डूबते हुए देखता है। लुक्रेटियस इसका बडी दिलचस्पी के साथ स्पष्टीकरण करते है—"हमे किनारे पर खडे होकर मृत्यु से लडने वाले नाविक की विपत्तिग्रस्त अवस्था देखना अच्छा लगता है। पर यह हमे इसलिए अच्छा नही लगता कि हमे दूसरो के दुर्भाग्य से मजा लेनी

है, बल्कि इसलिए अच्छा लगता है कि इस विचार से हमे सात्वना मिलती है कि हम स्वय उस दुर्भाग्य के शिकार नही है।" अखबारो के मोटे-मोटे विज्ञापनपत्रो मे 'आश्चर्यजनक' शब्द से ज्यादा प्रयोग किसी अन्य विशेषण का नही होता और शायद वह इसलिए है कि 'आश्चर्यजनक' से बढकर लुभावना कोई अन्य विशेषण नही है। 'आश्चर्यजनक' शब्द मे अक्सर कष्ट या मानसिक आघात का तत्त्व भी निहित रहता है। 'ग्रैन्ड गिन्योल' जैसे भयकरतायुक्त नाटको को देखने के लिए आज भी मुग्ध दर्शक जुड जाते है। साथ ही यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि ऐसे उपन्यास अक्सर ऊचे दरजे के लेखको की रचनाए होती है जिनमे कष्टपूर्ण परिस्थितियो को आमोदपूर्ण और कष्टग्रस्त पात्रो को हास्यास्पद बना दिया जाता है। यह साफ है कि जिसे अकामात्मक सादवाद और मासोकवाद कहते है (जिसे जर्मन मे 'सादेनफ्रायदे' या 'कष्ट मे सुख' का नाम दिया जा सकता है) उसका कुछ तत्त्व अल्प मात्रा मे सामान्य जनता मे व्यापक रूप से पाया जाता है।

जब हम इन विचारो को ध्यान मे रखते है तो हमे यह मालूम होता है कि सादवादी सभी दशाओ मे निष्ठुरता की इच्छा से परिचालित क्यो नही होता। सादवादी का उद्देश्य तो भावना को जागरित करना और उसकी अनुभूति करना होता है, न कि कष्ट देना। उदाहरणार्थ यह बात बुद्धियुक्त आहतो के नात्युग्र सादवादी यानी सक्रिय सहयौन सुखदु खास्तित्व वाले कर्ता की दशा से देखी जा सकती है, जिसे पहले ही उद्धृत किया जा चुका है। वह लिखता है—"कोडे मारने की वास्तविक क्रिया से मै मुग्ध हो जाता हू । मेरी जरा भी यह इच्छा नही रहती कि मै स्त्री का अपमान किया करू। स्त्री को कष्ट का अनुभव होना जरूरी है, पर ऐसा अनुभव उसे सिर्फ कोडे लगाने की तेजी की अभिव्यक्ति के रूप मे ही होना चाहिए, कष्ट पहुचाने की महज प्रक्रिया से मुझे कोई आनन्द नही होता। इसके विपरीत उससे मुझे घृणा होती है। इस गडबडी के अलावा मुझे क्रूरता से बहुत घृणा है। अपनी जिन्दगी मे मैने सिर्फ एक ही जानवर को जान से मारा है और मै दु ख के साथ इस घटना को याद रखता हू ।"

इस बात की सम्भावना है कि सहयौन सुखदु खास्तित्व मे हमारा ध्यान कष्ट के तत्त्व पर ही जम जाए क्योकि हम इस दशा मे निहित समस्त मानसिक लक्षणो को समझने मे असमर्थ रहते है। कल्पना कीजिए कि एक वाद्ययन्त्र अनुभूतिशील हो जाता है तो उस हालत मे यह कहना युक्तिसगत होगा कि वाद्य का अनुष्ठान कष्ट देना है, और निश्चित रूप से भविष्य मे ऐसे वैज्ञानिक और मनोविश्लेपक मिलेगे जो यह निष्कर्ष निकालेगे कि सगीत से प्राप्त होने वाला आनन्द कष्ट देने से प्राप्त होने वाला आनन्द है, और सगीत का भावनात्मक असर इस प्रकार

पहुचाए गए कष्ट के कारण है।

सहयौन सुखदु खास्तित्व के अन्तर्गत अस्वाभाविक यौन आवेग की कुछ सब से उत्कट अभिव्यक्तिया आती है। सादवाद के कारण कुछ अत्यन्त हिसात्मक दुराचार हो सकते है जो मानवस्वभाव के विरुद्ध है और मासोकवाद के कारण मानवीय प्रकृति का भद्दा से भद्दा अपमान हो सकता है। पर यह याद रखना जरूरी है कि दोनो ही स्वाभाविक मानवीय आवेगो पर आधारित है, पर वे उन प्रवृत्तियो के अन्तिम सीमान्त है जो अल्प मात्रा मे होने पर वैधजैविक क्षेत्र के अन्तर्गत माने जा सकते है।

सहयौन सुखदु खास्तित्व का स्वाभाविक सामान्य आधार जटिल और बहु-मुखी है। इस सम्बन्ध मे विशेष रूप से दो बाते ऐसी है जिन्हे ध्यान मे रखना चाहिए—(१) कष्ट चाहे पहुचाया जाए या सहन किया जाए, पूर्वराग-प्रक्रिया की गौण उपज है, जो निम्नतर श्रेणी के जानवरो और मनुष्यो मे समान रूप से पाया जाता है। (२) कष्ट चाहे सहन किया जाए चाहे पहुचाया जाए, विशेषत जन्मजात अथवा वातावरण से प्राप्त स्नायविक शिथिल दशाओ मे स्नायुओ के लिए उत्तेजक है और यौन केन्द्रो पर उसका जोरदार असर होता है। यदि हम इन दो आधारभूत बातो को ध्यान मे रखे तो हमे सहयौन सुखदु खा-स्तित्व की प्रक्रिया के बहुरूपी यन्त्र को विशद रूप से समझने मे कठिनाई नही होती और हमे उनके मनोविज्ञान की चाभी मिल जाएगी। यौन आवेग का प्रत्येक सहयौन सुखदु खास्तित्व वाला रूप या तो पूर्वराग के किसी आदिम स्तर की अति-वृद्धि है (जो कभी-कभी पूर्वजो से आए हुए लक्षणो के रूप मे प्रकट होती है) या फिर वह उन प्रयत्नो को सूचित करती है जो शिथिल शरीर मे यौन स्फीति की स्थिति उत्पन्न करने के लिए कामोद्दीपक के रूप मे काम करते है।

सब तरह का प्रेम, जैसा कि प्राचीन अग्रेज लेखक राबर्ट बर्टन ने बहुत पहले कहा था, एक प्रकार की दासता ही है। प्रेमी अपनी प्रेमिका का सेवक होता है। उसे प्रेमिका की सेवा करने और उसकी कृपादृष्टि पाने के लिए सब तरह के खतरे उठाने, अनेक सकटो का मुकाबला करने तथा बहुत से बुरे लगने वाले कामो को करने के लिए तैयार रहना चाहिए। प्रेमी के उस दृष्टिकोण के प्रमाणो से रोमाटिक कविता भरी पडी है। हम आदिम अवस्थाओ की ओर, असभ्य समाजो के बीच, जितना ही पीछे जाते है उतने उतना ही यह देखते है कि पूर्वराग मे प्रेमी की यह दासता और उन परीक्षाओ की [illegible] जिनमे से उसे अपनी प्रेमिका की दयादृष्टि को पाने के लिए गुजरना पडता है, कुल मिलाकर यौनक्रिया दासता के रूप मे स्पष्ट हो जाती है। जानवरो मे यह चीज उनसे भी अधिक अपरिपक्व रूप मे देखी जाती है। मादा का

मे आ जाते हैं।

यौन विच्युतियों को पहले 'विपरीतताए' कहा जाता था। इस शब्द का उदय उस समय हुआ जब यौन गडवडियो को दुनिया भर मे पाप या अपराध नही तो कम से कम दुर्गुण तो अवश्य माना जाता था। आज भी इस शब्द का प्रयोग वे लोग करते हैं जिनके विचारो की जडे भूतकाल की उन परम्पराओ मे स्थित हैं जिनसे वे निकल नही पाते। प्रारम्भिक वर्षो मे मैंने स्वय उसका प्रयोग किया है, यद्यपि ऐसा मैंने विरोध के साथ किया था और साथ ही यह स्पष्ट भी कर दिया था कि उससे मेरा क्या मतलव था। अब मैं यह अनुभव करता हू (जैसा कि डिकिन्सन ने भी वतलाया है) कि वह समय आ गया है कि इस शब्द का यथासम्भव बिलकुल ही वर्जन कर दिया जाए। यहा तक कि मूल लैटिन शब्द परवर्सस (विपरीत) से भी कभी-कभी नैतिक निर्णय का आशय निकलता है। यह शब्द उस समय से काम मे आ रहा है जब कि यौन विषयो के सम्वन्ध मे वैज्ञानिक और चिकित्सा-शास्त्रीय दृष्टि से विचार नही होता था। विज्ञान तथा चिकित्साशास्त्र का उद्देश्य यौन गडवडियो का अध्ययन करना तथा जरूरत पडे तो उनका इलाज करना है, न कि उनकी निन्दा करना। इसमे सन्देह नही कि इस शब्द का उन व्यक्तियो पर दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम होता है जिनसे यह कहा जाता है कि वे विपरीतता के शिकार रहे हैं। इसके अलावा यहा एक ऐसे शब्द को गले से लगाए रखने से कोई लाभ नही जो पूर्ण रूप से एक अलग युग का है। इससे भ्रम पैदा होता है। यह शब्द पूरें तौर से वावा आदम के जमाने का और शरारतपूर्ण है, इसलिए इससे वचना चाहिए। यौन आवेग की एक असाधारण अभिव्यक्ति को सूचित करने के लिए किसी-किसी समय 'स्थान-च्युति' शब्द का भी प्रयोग किया गया है। ऐसे शब्द से कम से कम यह लाभ है कि इससे नैतिक गुणावगुण सूचित नही होता, परन्तु चूकि उसमे यौन आवेग के सम्वन्ध मे, जो वस्तुत गतिशील, जानदार और परिवर्तनशील है, एक स्थिर धारणा निहित है। इसलिए यह 'विच्युति' शब्द की अपेक्षा कम सन्तोषजनक है क्योकि 'विच्युति' शब्द मे गतिशीलता सूचित होती है।

वहुत समय तक मैंने वहुत सी और अधिकाश यौन विच्युतियो के लिए प्रतीकवाद शब्द का प्रयोग किया था। कामात्मक प्रतीकवाद (या अधिक सकुचित अर्थ मे कामात्मक फेटिशवाद) का अभिप्राय एक ऐसी दशा से है जिसमे मनोवैज्ञानिक यौन प्रक्रिया या तो सक्षिप्त हो जाती है या फिर इस प्रकार से भटक जाती है कि इस प्रक्रिया का कोई हिस्सा या कोई पदार्थ या कोई कार्य जो, सामान्यत इसके सीमान्त पर अथवा उसके दायरे के एकदम वाहर भी होता है, अक्सर कम उम्र मे ही ध्यान का प्रधान केन्द्र वन जाता है। जो वात स्वस्थ प्रेमी के लिए गौण महत्त्व

रखती है, यहा तक कि उपेक्षणीय है, वह इस तरह सब से महत्त्वपूर्ण वन जाती है और ऐसा उचित रूप से कहा जा सकता है कि यह सम्पूर्ण यौन प्रक्रिया का प्रतीक वन जाती है।

व्यापक दृष्टि से देखने पर सभी यौन विच्युतिया कामात्मक प्रतीकवाद का उदाहरण है क्योकि प्रत्येक ऐसे मामले मे यह देखा जाता है कि किसी वस्तु अथवा किसी कार्य को ऐसी मान्यता प्राप्त हो जाती है जिसका स्वस्थ मनुष्य के लिए वहुत थोडा या विलकुल भी कामात्मक मूल्य नही है, दूसरे शब्दो मे वह स्वाभाविक प्रेम का प्रतीक वन जाता है। इसके सिवाय कामात्मक प्रतीकवाद स्वस्थ प्रेम के अपेक्षाकृत अधिक परिमार्जित रूपो मे भी कार्य करता है क्योकि इन रूपो मे प्रिय व्यक्ति के किन्ही विशेष विन्दुओ पर प्रेमात्मक ध्यान केन्द्रित करने की प्रवृत्ति होती है। पर ये विन्दु अपने-आपमे महत्त्व-रहित होते हुए भी प्रतीकात्मक मान्यता प्राप्त कर लेते है।

इस प्रकार जव हम प्रतीकवाद शब्द का प्रयोग उसके अपेक्षाकृत प्राचीन अर्थ मे करते है और उसे इन विच्युतियो के, जिन्हे पहले विना किसी भेद-भाव के विपरीतता कहा जाता था, कामात्मक क्षेत्र पर लागू करते है तो यह देखा जाता है कि वह मनोविश्लेषण-विषयक साहित्य मे प्रचलित सकुचित अर्थ से कही अधिक आगे निकल जाता है। जव मनोविश्लेषक इस सज्ञा का प्रयोग करता है तो उसके ध्यान मे मुख्यत कोई मनोवैज्ञानिक यन्त्र होता है जो निस्सन्देह रूप से अक्सर कार्यशील होता है। अर्नेस्ट जोन्स का कथन है—"प्रतीकवाद के समस्त रूपो का आवश्यक कार्य है उस रोक-थाम पर कावू पाना जो किसी अनुभूत भाव की मुक्त अभिव्यक्ति मे वाधा पहुचा रहा है।" निस्सन्देह यह एक दिलचस्प ढग है, जिससे एक प्रतीक कार्य कर सकता है। किन्तु हमे असावधानी के साथ प्रतीकवाद के सभी रूपो पर इस ढग को नही थोपना चाहिए। एक वहुत ऊचे दरजे के खास उदाहरण को लिया जाए। एक देशभक्त के लिए उसका राष्ट्रध्वज देश का प्रतीक है, किन्तु राष्ट्रीय झडे के प्रति उस देशभक्त की निष्ठा का अर्थ किसी एक निषेध पर कावू पा लेना नही है और जव पुराने जमाने मे नौसैनिक युद्ध के समय अपने जहाज के मस्तूल पर झण्डे को कीलो से जड देता था तो वह निश्चित रूप से इस कारण नही करता था कि वह देश के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करने मे डरता था। प्रतीक का एक आधारभूत महत्त्व यह है, जैसा कि इस उदाहरण से सूचित होता है, कि वह एक अपेक्षाकृत सूक्ष्म अनुभूतिपूर्ण भाव को ठोस स्वरूप प्रदान करता है। जव एक प्रेमी अपनी प्रेमिका के किसी विशेष अग अथवा उसकी वस्तुओ, उसके केश अथवा उसके जूतो पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है, तव वह अपने किसी निषेध या रोक-थाम